सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

४९

(जनवरी-मई १९३२)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें यरवदा जेलमें गांधीजी के कारावासके पहले पाँच महीनों (४ जनवरी ३२ से मई, १९३२ तक) की सामग्री आती है। लन्दनमें हुई गोलमेज-परिषदसे वापस आनेपर गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया था। इस कारावाससे गांधीजी को आरामका एक मौका मिला जिसकी कि उन्हें बहुत जरूरत थी। इससे पहलेका लभभग एक साल बहुत ही कड़ी राजनीतिक हलचलोंमें बीता था जिसने उन्हें बुरी तरह थका दिया था। इसलिए कारावासके पहले कुछ दिनोंमें उन्होंने अपनी दैनन्दिनीमें और मीराबहन व नारणदास गांधीको अपने पत्रोंमें यही लिखा कि "अभी मुझे थकान लगती रहती है, नींदकी भूख भी मिटी नहीं है।" (पृष्ठ ४)। वल्लभभाई पटेलको गांधीजी के साथ ही गिरफ्तार किया गया था और यरवदा जेलमें उन्हींके साथ रखा गया था। फिर मार्चमें महादेव देसाई भी वहाँ आ गये। इन दोनोंके साथ रहते हुए गांधीजी को, लगता है, कुछ महीने पूरा आराम मिला। जैसाकि इस खण्डकी सामग्री और महादेव देसाईकी उन दिनोंकी डायरीसे स्पष्ट है, उनका समय ऐसी शान्तिसे गुजरा जैसी कि उन्हें जीवनमें फिर कभी नसीब नहीं हुई।

२८ दिसम्बर, १९३१ को बम्बईमें जहाजसे उतरनेपर गांधीजी ने देखा कि सरकार कांग्रेसके प्रभावको मिटानेपर तुली हुई है। वह उनके साथ बातचीत करनेको तैयार नहीं थी, क्योंकि उसके लिए उसने जो शर्तें रखी थीं, उन्हें स्वीकार करना गांधीजी और कांग्रेसके लिए अपमानजनक था। अतः उन्होंने देशको सत्याग्रह शुरू करनेकी सलाह दी। लेकिन, जैसा कि उन्होंने भारत-मन्त्रीको जेलसे लिखे अपने एक पत्रमें बताया, वे "सहयोग देनेकी पूरी इच्छा लेकर ही बम्बई पहुँचे" थे (पृष्ठ ११) और मानसिक रूपसे फिर संघर्ष छेड़नेके लिए तैयार नहीं थे। कारावास इस तरह मानो एक बड़ी राहत बनकर आया। पुलिसके आनेकी खबर पाकर उन्होंने वल्लभभाईको जो पुर्जा भेजा था, उसमें लिखा था, "ईश्वरकी कृपा निस्सीम है" (पृष्ठ २)।

जैसा कि गांधीजी का कायदा था, एक बार जेलमें पहुँच जानेके बाद उन्होंने देशकी राजनीतिक हलचलोंमें दिलचस्पी लेना एक तरहसे बन्द ही कर दिया। उन्होंने केवल विनम्र विरोधके दो पत्र लिखे, एक बम्बईके गवर्नरको और दूसरा भारत-मन्त्रीको, जिनमें सत्याग्रह आन्दोलनको कुचलनेके लिए सरकार द्वारा की जा रही कठोर दमनकारी कार्रवाइयोंका विरोध किया गया था। गिरफ्तारीके समय गांधीजी ने जल्दी-जल्दी वेरियर एल्विनको जो नोट लिखा था, उसमें उनसे ब्रिटिश लोगोंको यह बता देनेके लिए कहा गया था कि "मैं उन्हें भी वैसे ही प्यार करता हूँ जैसे अपने देशवासियोंको। मैंने उनके प्रति घृणा या द्वेषवश कभी कुछ नहीं किया और ईश्वरने चाहा तो भविष्यमें भी कभी ऐसा कुछ नहीं करूँगा" (पृष्ठ २)। गवर्नरको लिखे पत्रके अन्तमें भी इसी तरहका आश्वासन था: "मैंने अंग्रेजोंका भला चाहनेवाले एक

मित्रकी हैसियतसे यह पत्र लिखा है। मैं चाहूँगा कि संघर्ष दोनों तरफसे सम्माननीय ढंगसे चलाया जाये ताकि उसके अन्तमें दोनोंमें से प्रत्येक पक्ष यह कह सके कि उसके कार्योंमें कोई द्वेषकी भावना नहीं थी" (पृष्ठ २९)। सर सैम्युअल होरको जो पत्र लिखा, उसकी भाषा अपेक्षाकृत तीखी थी: "मुझे लगता है कि आजकल जो दमन चल रहा है, वह जिसे औचित्यकी सीमा कहा जा सकता है, उससे बाहर हो गया है। सारे देशमें सरकारका आतंक फैला हुआ है। अंग्रेज अधिकारी और हिन्दुस्तानी अधिकारी दोनों ही मानवतासे भ्रष्ट होकर पशुओं-जैसा व्यवहार कर रहे हैं।" और उन्होंने इस बातका संकेत दिया कि एक सत्याग्रहीकी हैसियतसे, उन्हें दोनों देशोंके लोगोंके सम्बन्धोंको, जो पहले ही खराब हैं, और खराब होनेसे रोकनेके लिए अनिश्चित कालतक उपवास करना पड़ सकता है (पृष्ठ १८२)।

दमनके परिणामोंकी उन्हें चिन्ता थी, पर उससे कहीं गहरी चिन्ता उन्हें इस बातकी थी कि ब्रिटिश सरकार दलित वर्गोंके लिए कहीं पृथक् निर्वाचिक-मण्डल स्वीकार न कर ले, क्योंकि उनका यह खयाल था कि यह कदम हिन्दू-समाजको "चीरकर उसके टुकड़े-टुकड़े" कर देगा। यद्यपि वे यह स्वीकार करते थे कि "सवर्ण हिन्दू कितना ही प्रायश्चित्त क्यों न करें, सदियोंसे उन्होंने हरिजनोंको जान-बूझकर जैसा अधःपतित जीवन जीनेके लिए बाध्य किया है, उसका परिशोधन वे नहीं कर सकते।" फिर भी उनकी यह धारणा थी कि "पृथक् निर्वाचिक-मण्डल बनाना न तो . . . उनकी अधम स्थितिका प्रायश्चित्त है और न ही उसके निराकरणका उपाय है" (पृष्ठ १८१)। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकारको यह जता दिया कि "अन्त्यजोंके लिए अगर वह पृथक् निर्वाचिक-मण्डल बनानेका निर्णय देगी, तो मुझे आमरण उपवास करना पड़ेगा", और अपने इस निर्णयके पक्षमें उन्होंने कहा कि "मैंने जो कदम उठाना सोच रखा है वह कोई पद्धति नहीं, वह मेरे जीवनका एक अंग है। वह अन्तरात्माका आदेश है, जिसकी मैं अवज्ञा नहीं कर सकता" (पृष्ठ १८२)। बादमें सितम्बरमें उपवास जब शुरू हुआ तो उससे राष्ट्रीय आन्दोलनमें एक नया मोड़ आया और अन्तमें सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया तथा हरिजनोंकी दशा सुधारनेके लिए रचनात्मक कार्यका आरम्भ हुआ — दलित वर्गोंको अब हरिजन ही कहा जाने लगा था।

१९३०की तरह, इस बार भी गांधीजी ने जेलमें अपना अधिकांश समय कातने और पत्र लिखनेमें लगाया। लेकिन, इसके अतिरिक्त उन्होंने, जैसाकि उनकी दैनन्दिनी की प्रविष्टियोंसे स्पष्ट है, पुस्तकें भी काफी पढ़ीं, अर्थशास्त्र व खगोल विज्ञानका गहरा अध्ययन किया और आकाश-दर्शनमें बड़े उत्साहसे रुचि ली। पत्रोंका यद्यपि उनके लिए मुख्यतया नैतिक और शिक्षात्मक प्रयोजन था, (पृष्ठ ४४१), पर साथ ही वे उनकी मानवीय सम्पर्ककी भारी आवश्यकताकी भी पूर्ति करते थे। साथी कैदियोंसे मिलनेकी अनुमतिके लिए सरकारसे प्रार्थना करते हुए गांधीजी ने लिखा: "यदा-कदा अपने कुछ साथियोंसे मिलना मेरे लिए इन्सानियतका ऐसा तकाजा है जिससे मैं अपनेको, अपने सम्पूर्ण मानसिक तन्त्रको झिंझोड़े और तोड़े बिना, वंचित नहीं कर

सकता" (पृष्ठ १६४)। पत्रों द्वारा मानवीय सम्पर्ककी यह आवश्यकता भी पूरी होती रही। डॉ० प्राणजीवन मेहताके पुत्र मगनलालको अपने पत्रमें वे लिखते हैं: "यह याद रखना कि माँ-बाप अपने बच्चोंके पत्रोंसे कभी अघाते नहीं हैं" (पृष्ठ ४४८)। बहुत-से साथी कार्यकर्त्ताओं और आश्रमवासियोंके लिए गांधीजी पिता ही थे। इसीलिए वे उनके पत्रोंका, जिनमें गम्भीर आध्यात्मिक समस्याओंसे लेकर दांत साफ करनेकी सर्वोत्तम विधितक (पृष्ठ २०६–७) सभी विषयोंकी चर्चा रहती थी, स्वागत करते थे और उनका उत्तर देते थे।

गांधीजी के लिए कोई भी चीज इतनी तुच्छ नहीं थी कि उसपर ध्यान ही न दिया जाये। आश्रमके बच्चोंको यह बताते हुए कि अपने पत्रोंको वे दिलचस्प कैसे बना सकते हैं, उन्होंने लिखा: "तुम्हारे आसपास रोज कितनी बातें होती हैं। यदि तुम उनपर ध्यान दो, तो इतना लिख सको कि पन्नोंपर-पन्ने भर जायें" (पृष्ठ ८८)। गांधीजी की यह अपार जिज्ञासा और जीवनकी छोटी-से-छोटी बातोंमें उनकी रुचि खुद उनके कुछ पत्रोंसे स्पष्ट होती है। बिल्लीके रंग-ढंग और अपने बच्चोंके साथ उसके व्यवहारके जो वर्णन उन्होंने दिये हैं (पृष्ठ ४००–१), वे गांधीजी की निरीक्षण-शक्तिके अच्छे उदाहरण हैं। 'आकाश-दर्शन' सम्बन्धी लेखों (पृष्ठ २८६–९) में हमें गांधीजी के बौद्धिक व्यक्तित्वके ऐसे पक्षके दर्शन होते हैं जिसे उनके राजनीतिक और नैतिक कार्योंने उन्हें पूर्णतया सन्तुष्ट करनेका अवसर नहीं दिया। सृष्टिकी विराटता, सुव्यवस्था और सुन्दरताकी अनुभूति उनमें प्राय: काव्यमयी शैलीमें व्यक्त हुई है। वे लिखते हैं: "जिस नाटककी योजना प्रकृतिने हमारे लिए आकाशमें की है उसको मनुष्यकृत एक भी नाटक नहीं पा सकता" (पृष्ठ २८८)। इस चिरन्तन नृत्यकी निरन्तर बदलती मुद्राओंको देखते हुए उन्हें लगता था "आकाशमें अवस्थित दिव्यगण मानो ईश्वरका मूक स्तवन कर रहे हों" (पृष्ठ २८८)। मीराबहनको उन्होंने लिखा, "इस अध्ययनसे अनन्त परमात्माके साथ मैं अधिक एकराग हो जाता हूँ", (पृष्ठ ३३०) क्योंकि "बाह्य दृष्टिसे वहाँ सहज ही ईश्वर रहता है" (पृष्ठ २८६)।

नारणदास गांधीको लिखे गये पत्र मुख्यतया आश्रमसे सम्बन्धित विषयोंपर हैं। वे यह दिखाते हैं कि गांधीजी को आश्रमवासियोंकी नैतिक और आत्मिक उन्नति तथा नारणदासकी भलाई, दोनोंकी फिक्र थी। जब-तब सामने आनेवाली मानवीय और प्रशासनिक समस्याओंपर सलाह देनेके अलावा, गांधीजी आश्रममें नये-नये प्रयोग करनेके सुझाव भी रखते थे, ताकि आश्रम और भी अच्छी तरह सेवाकार्य कर सके। लेकिन साथ ही उन्हें इस बातका भी खयाल था कि नारणदासपर बहुत अधिक बोझ नहीं पड़ना चाहिये। और उन्होंने उन्हें लिखा था: "विचारधारा चल रही है और मैं उसे तुम्हारी ओर प्रवाहित करता चला जा रहा हूँ। . . . तुम समर्थ हो इसलिए मनमें जो नये-नये विचार आते हैं, उन्हें सामने रखते हुए संकोच नहीं करता। . . . जब तुम्हें लगे कि बहुत हो गया तब तुरन्त इशारा कर देना और मैं चुप हो जाऊँगा" (पृष्ठ ४२७)।

मीराबहनको लिखे गये पत्रोंमें उनसे उनके सम्बन्धका एक नया ही पहलू प्रकट होता है। प्रेमाबहनके नाम एक पत्रमें गांधीजी यह स्वीकार करते हैं कि "उसे (मीरा-बहनको) मैंने जितना रुलाया है उतना किसी भाई और बहनको नहीं रुलाया। और इसमें कारण मेरी कठोरता, अधीरता और मोह थे। . . . मैं उसे पूर्ण देखना चाहता हूँ। उसमें जरा भी कमी दिखाई देती है, तो . . . मैं उससे खीझकर बोलता हूँ। . . . मैं इन अनुभवोंसे अपने अन्दर भरी हुई हिंसाको पहचान सका और पिछले संस्मरणोंको याद करके खुदको सुधारनेका प्रयत्न कर रहा हूँ" (पृष्ठ १४९)। गांधीजी के रुखमें हुआ यह परिवर्तन मीराबहनको लिखे उनके पत्रोंमें भी प्रतिबिम्बित होता है। मीराबहनको यह सलाह देते हुए कि उनसे मुलाकातोंके बारेमें वह अपने पर संयम रखे, वे कहते हैं: "परन्तु संयम वही है जिससे शक्ति मिले। अशक्ति या उदासी आती हो, तो वह यान्त्रिक या ऊपरसे लादा हुआ बन जाता है" (पृष्ठ ५९)। इसीलिए उन्होंने मीराबहनको यह अनुमति दे दी कि यदि इस मामलेमें संयम उसके लिए कष्टकर हो तो वह जब इच्छा हो तब उनसे मिल सकती है। गांधीजी पहले प्रायः इस बातपर जोर देते रहते थे कि मीराबहन उनके ध्येयमें लगकर ही उनकी सर्वोत्तम सेवा कर सकती है। लेकिन अब हम उन्हें नरम पड़ते देखते हैं। अपने एक पत्रमें उन्हें वे लिखते हैं: "जब मैं बाहर आऊँगा, तुम निश्चय ही मेरे साथ रहोगी और निजी सेवाका पहलेवाला काम सँभालोगी। मैं बिलकुल साफ देखता हूँ कि तुम्हारे पास आत्मविस्तारका केवल यही रास्ता है। मैं पहलेकी तरह तुम्हें किसी भी प्रकार कुंठित करनेका दोषी नहीं बनूँगा। . . . मैं इस सत्यको एक बार फिर समझ रहा हूँ कि सुराज्य स्वराज्यका स्थान नहीं ले सकता" (पृष्ठ २६)।

परन्तु गांधीजी के कुछ अत्यन्त दुर्लभ निजी प्रसंग तो उन पत्रोंमें मिलते हैं जो उन्होंने प्रेमाबहन कंटकको लिखे। उसने प्रेमाबहनको इस बातके लिए प्रोत्साहित किया कि वह उससे मनचाहे प्रश्न पूछ सकती है और उसने, ऐसा लगता है, इस छूटका निस्संकोच उपयोग किया। आश्रमसे सम्बन्धित उसके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए गांधीजी ने समझाया कि किस तरह "इसमें धर्म और अर्थ दोनोंकी भली-भाँति रक्षा होती है", और "आश्रमका अस्तित्व . . . देशसेवाके द्वारा जगतसेवा करनेके लिए है और जगतसेवाके द्वारा मोक्ष प्राप्त करनेके लिए और ईश्वरका दर्शन करनेके लिए है" (पृष्ठ ३९)। अन्य लोगोंको लिखे अपने पत्रोंमें जहाँ वे शुद्ध चैतन्यकी स्थितिके बारेमें, जो विचार-तरंगोंसे मुक्त होते हुए भी कोई निष्क्रिय स्थिति नहीं होती, यह संकेत-भर करते हैं कि मैंने उसकी "थोड़ी-सी झलक देखी है" (पृष्ठ ४३), और "मेरे लिए यह तो अनुभवगम्य-जैसा है" (पृष्ठ २१४), वहाँ प्रेमाबहनको वे ब्रह्मज्ञानके बारेमें कुछ विस्तारसे लिखते हैं: "यह मूक ज्ञान है —स्वयंप्रकाश है", (पृष्ठ ४१३)। उसकी स्पष्ट आलोचनाओंका गांधीजी स्वागत करते थे। प्रेमाबहनके नाम अपने एक पत्रमें उन्होंने लिखा था: "किसी भी मामलेमें ईश्वरने मेरी जड़ताको लम्बे समयतक टिकने ही नहीं दिया। . . . तेरे पत्र इस जागृतिमें सहायक ही हैं" (पृष्ठ १४९)। उनकी असंगतियोंके बारेमें प्रेमाबहनने जो लिखा, उसे न्यायो-

चित ठहराते हुए गांधीजी ने कहा : " 'यंग इंडिया' का लेखक एक व्यक्ति है। आश्रममें सबके परिचयमें आनेवाला व्यक्ति दूसरा है। . . . उसपर मैं सत्यका पुजारी हूँ, अतः जान-बूझकर दोष छिपानेका तो प्रयत्न भी मुझसे नहीं हो सकेगा। इसलिए मुझमें रहनेवाले कौरव जहाँ-तहाँसे निकल ही पड़ते हैं। . . . ऐसा दिखता है कि कौरवोंकी हार हुआ करती है। लेकिन इस बारेमें अभी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह तो . . . मृत्युके बाद ही कहा जा सकता है" (पृष्ठ ९२)।

इंग्लैंडसे लौटते हुए उन्होंने रोमकी जो यात्रा की थी उसके बारेमें उसे लिखते हुए, गांधीजी ने कहा : "रोममें चित्रकला देखकर खूब आनन्द लिया . . . वहाँ २–३ महीने रहनेको मिलें, तो चित्र और मूर्त्तियाँ रोज देखूँ और धीरे-धीरे उनका अध्ययन करूँ" (पृष्ठ ३८)। यूरोपकी कलाकी भारतकी कलासे तुलना करते हुए उन्होंने कहा, "भारतकी कला कल्पना-प्रधान है। यूरोपकी कलामें यथार्थताका अनुकरण है।" और अन्तमें लिखा, "इससे तू इतना तो देख ही सकेगी कि मैं कलामें रस जरूर ले पाता हूँ। लेकिन ऐसे तो अनेक रसोंका मैंने त्याग किया है; मुझे करना पड़ा है। सत्यकी खोजमें जो रस मिले, उन्हें जी-भरकर मैंने पिया है . . ." (पृष्ठ ३८)।

इंग्लैंडके अपने अनुभवोंके बारेमें गांधीजीने आश्रमवासियोंको लिखा। बच्चोंको उन्होंने एक मॉन्टेसरी स्कूलके अपने निरीक्षण और बच्चोंकी एक 'चायपार्टी' का विवरण दिया। बहनोंके आगे उन्होंने यूरोपकी स्त्रियोंकी निर्भीकता, सेवा-भावना और त्यागकी क्षमताका उदाहरण रखा। भारतकी स्त्रियोंको वे यूरोपकी स्त्रियोंसे किसी भी तरह कम नहीं समझते थे, फिर भी वे यह महसूस करते थे कि उनकी अधिकतर शक्ति दबी रहती है (पृष्ठ ३५)। उन्होंने कहा: "सबसे बड़ा दोष बहनोंमें यह देखा गया है कि वे अपने मनकी बात छिपाये रखती हैं। . . . कदम-कदमपर जो उन्हें नहीं भाता, वही करती हैं और उन्हें वही करना भी चाहिए, ऐसा वे मानती हैं" (पृष्ठ २५७)।

आध्यात्मिक साधनाके अपने प्रचुर अनुभवके आधारपर गांधीजी ने सत्यके अन्य अन्वेषकोंका अमूल्य पथ-प्रदर्शन किया। परन्तु उनके आगे जब एक 'स्मृति' रचनेका सुझाव रखा गया तो उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा : "मैं जो-कुछ कहता या लिखता हूँ, वह किसी विशेष पद्धतिके अनुसार किया गया विचार नहीं होता। सत्यकी आराधनाके सिलसिलेमें परिस्थितियोंसे पार पाने लायक शक्ति ही मेरे पास है" (पृष्ठ २४८)। इसी बातको दूसरे ढंगसे कहते हुए उन्होंने नारणदास गांधीको अपने एक पत्रमें लिखा, "मेरा एक दोष कहो, गुण कहो, है। प्रसंग आनेपर ही सम्बन्धित विचार प्रकट करता हूँ। . . . मेरा जहाज तो सहजभावसे यात्रा करनेवाला है। मेरे पास मार्गका नक्शा नहीं होता। हो भी काहे को? वह भक्तिके विरोधमें जाता है" (पृष्ठ ३३)। शास्त्रोंकी व्याख्यामें भी वे हृदयकी सहजस्फूर्त अन्तःप्रेरणाओंपर निर्भर रहते थे। वे कहते थे, "मुमुक्षुके हृदयमें जो अर्थ उतर आये, वह तो श्रद्धापूर्वक उसीपर दृढ़ रहे और उसे अनुभवमें

सिद्ध करे। . . . जिन्हें अपना आचार दृढ़ करना है, उनके लेखे तो स्वीकृत अर्थके अनुसार आचरण करना ही समन्वय है" (पृष्ठ २४९)।

'गीता-पत्रावली' में अधिकतर 'भगवद्गीता' का यह मुख्य कथ्य ही स्पष्ट और प्रवाहमयी शैलीमें सार-रूपमें रखा गया है कि सत्कर्मों और ईश्वरकी भक्ति द्वारा उत्तरोत्तर मनको पवित्र करता हुआ साधक अन्तमें परम सत्यका साक्षात्कार कर लेता है। प्रत्यक्ष जगत और आत्मिक जगतमें से आसानीसे और समयसे पूर्व एकको चुना जा सकता है, इस बातको अस्वीकार करते हुए गांधीजी ने इसपर जोर दिया कि "आश्रम जिस तरह साबरमतीके किनारे है, उसी तरह हमारे हृदयमें भी है" (पृष्ठ ४८)। वे यह मानते थे कि सभी आत्मिक व्याधियोंका "मूल एक ही है और वह है अभिमान। दवा भी सबकी एक ही है। अभिमान त्याग दें और शून्य बन जायें" (पृष्ठ १०७)। गांधीजी के अनुसार मनको निर्मल करने और अहंकारको मिटानेमें निःस्वार्थ सेवाके अलावा पौराणिक आख्यानोंमें रस लेनेसे भी उपयोगी सहायता मिलती है। मनुष्यको अपने हृदयके अन्दर और बाहर दुनियामें एकसाथ बुराईके विरुद्ध संघर्ष करना है। बाहरी शत्रु सामाजिक या संस्थागत होता है, जिसका रूप हर युगमें बदलता रहता है। भीतरी शत्रु हमारे सामान्य मानव स्वभावमें निहित हैं और उसपर अन्तर्यामी ईश्वरका आह्वान करके ही काबू पाया जा सकता है। इसीलिए गांधीजी जातीय महाकाव्योंकी आध्यात्मिक व्याख्या करके उनके 'काव्य-सत्य' को स्वीकार करते थे और उसका उपयोग करते थे। "रामायण और महाभारत दोनोंमें देव और असुर, राम और रावणमें रोज चल रही लड़ाईका वर्णन है" (पृष्ठ ११०)। "सच्चा कुरुक्षेत्र हमारा अपना शरीर है। वह कुरुक्षेत्र भी है और धर्मक्षेत्र भी है" (पृष्ठ ११२)। सच्चे साधकका, जो समय-समयपर प्रत्यक्ष होनेवाले सापेक्ष सत्यको दृढ़तापूर्वक स्वीकार करता हुआ और उसे मुस्तैदीसे अमलमें लाता हुआ पूर्ण सत्यकी ओर बढ़ता है, यह कर्त्तव्य है कि वह बुराईकी निर्ममतासे निन्दा करे, किन्तु बुराई करनेवालेके प्रति निर्ममता न दिखाये। "इस सापेक्ष सत्यको हम उस समय तो पूर्ण सत्य-जैसा ही मानकर चलेंगे" (पृष्ठ ४६३)।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजी ने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजी के कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजी के नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय' (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संग्रहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, व्यक्तियों, पुस्तकोंके प्रकाशकों और समाचारपत्रके आभारी हैं:

संस्थाएँ: साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय; नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, नई दिल्ली; बम्बई सरकार; इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन; भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; और भारत कला भवन, वाराणसी।

व्यक्ति: श्री एल्डिथ एल्विन, कैन्टरबरी; श्रीमती मीराबहन, ऑस्ट्रिया, श्री वालजी गो० देसाई, पूना; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्रीमती लक्ष्मीबहन खरे, अहमदाबाद; श्री प्रभुदास गांधी, अल्मोड़ा; श्रीमती शान्ता देवी, श्रीमती प्रेमाबहन कंटक, ससवाड (पूना); श्रीमती गंगाबहन वैद्य, बोचासण; मंगला देसाई, बड़ौदा; श्रीमती वनमाला देसाई, नई दिल्ली; श्री हमीद कुरैशी, अहमदाबाद; श्री शिवाभाई पटेल, बोचासण; श्री हरिइच्छा कामदार, बड़ौदा; श्री नीलकण्ठ मशरूवाला, श्रीमती प्रेमलीला ठाकरसी, पूना; श्रीमती मेरी बार कोटगिरी; श्री पुरुषोत्तमदास दामोदर सरैया, बम्बई; श्रीमती मनु बहन मशरूवाला, अकोला; श्रीमती शान्ताबहन पटेल, अहमदाबाद; श्री परशुराम मेहरोत्रा, नई दिल्ली; श्रीमती पुष्पाबहन पटेल, अहमदाबाद; श्री कपिलराय मेहता, अहमदाबाद; श्री बनारसीलाल बजाज, वाराणसी; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री कनुभाई मशरूवाला, अकोला, श्रीमती गंगाबहन झवेरी, अहमदाबाद; श्री द० बा० कालेलकर, नई दिल्ली; श्रीमती तहमीना खम्भाता, बम्बई; श्री शशिलेखा मेहता, अहमदाबाद; श्री भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्या, बढ़वान; श्री भाऊ पानसे, वर्धा; श्री शान्तिकुमार मोरारजी, बम्बई; वेणीलाल गांधी, और श्रीमती ह्यग लम्सडन, ओन्ट्रीओ, कनाडा।

पुस्तकें: 'ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन', 'माई डियर चाइल्ड', 'बापुना पत्रो – ६: गं० स्व० गंगाबहेनने', 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'महादेवभाईनी डायरी' भाग – १, 'बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी'।

समाचारपत्र: 'बॉम्बे क्रॉनिकल'।

अनुसन्धान व सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग और श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। कागजातकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायताके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

विषय-सूची

१. सन्देश : अहमदाबादके मजदूरोंको[1]

[४ जनवरी, १९३२][2]

आपको अपनी सुकीर्तिकी रक्षा करनी है।

शराब छोड़ दीजिए, केवल खादी पहनिए, मिल-जुलकर रहिए। अनसूयाबहन और श्री शंकरलाल बैंकरके आदेशोंका पालन कीजिए।

अपने बच्चोंको ठीक पढ़ाइए।

अपना काम निष्ठाभावसे कीजिए।

अपने अधिकारोंकी रक्षा कीजिए, किन्तु मालिकोंके प्रति किसी तरहका द्वेष रखे बिना।

स्वराज्य-यज्ञमें अपना पूरा योगदान दीजिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-१-१९३२

२. सन्देश : अमेरिकाको

४ जनवरी, १९३२

जिस प्रकार अमेरिकाने अनेक कष्ट सहकर तथा वीरता और त्यागके द्वारा अपनी स्वतन्त्रता पाई थी, उसी प्रकार भारत भी भगवान-द्वारा निर्दिष्ट शुभ घड़ीमें कष्ट सहकर तथा अहिंसा और त्यागके द्वारा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा।

[अंग्रेजीसे]

गृह विभाग, राजनीतिक, फाइल संख्या १४१, पृष्ठ १५-७, १९३२; सौजन्य : भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार।

१. यह और अनुवर्ती तीन शीर्षक गांधीजी ने अपनी गिरफ्तारीके बाद तत्काल ही लिखे थे। **यंग इंडिया**, ७-१-१९३२ में महादेव देसाईने अपने लेख, 'दि हिस्टारिक वीक' (ऐतिहासिक सप्ताह) में गांधीजी की इस गिरफ्तारीका विवरण देते हुए लिखा था कि पहलेकी भाँति गांधीजी की गिरफ्तारी इस बार भी १८२७ के रेग्युलेशन २५ के तहत हुई थी।

२. **यंग इंडिया**, ७-१-१९३२ से।

३. पत्र : वल्लभभाई पटेलको[1]

४ जनवरी, १९३२

ईश्वरकी कृपा निस्सीम है। कृपया लोगोंसे कहें कि सत्य और अहिंसासे कभी न डिगें। डगमगायें कभी नहीं, बल्कि अपना जीवन-सर्वस्व स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए अर्पित करें।

[अंग्रेजीसे]

ट्रायबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन, पृष्ठ ६७

४. पत्र : वेरियर एल्विनको

४ जनवरी, १९३२

प्रिय एल्विन,

आप आ गये हैं, इससे मुझे बहुत खुशी हुई है। मैं चाहूँगा कि आप खुद ही अपने देशवासियोंको बतायें कि मैं उन्हें भी वैसे ही प्यार करता हूँ जैसे अपने देशवासियोंको। मैंने उनके प्रति घृणा या द्वेष-वश कभी कुछ नहीं किया और ईश्वरने चाहा तो भविष्यमें भी कभी ऐसा कुछ नहीं करूँगा। ऐसी ही परिस्थितियोंमें मैंने अपने स्वजनोंके प्रति जैसा व्यवहार किया है, मैं उनके प्रति आज उससे कुछ भिन्न किस्मका व्यवहार नहीं कर रहा हूँ।

सप्रेम,

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६९७) से; सौजन्य : एल्डिथ एल्विन।
ट्रायबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन, पृष्ठ ६७ से भी।

१. **यंग इंडिया,** ७-१-१९३२ में प्रकाशित महादेव देसाईके लेख, 'दि हिस्टारिक वीक' के अनुसार गांधीजी ने वल्लभभाई पटेलके नाम एक परची लिखकर इन पंक्तियोंमें भारतीय जनताको अपना सन्देश दिया था। वल्लभभाई पटेल उस समय कांग्रेसके अध्यक्ष थे। किन्तु परची लिखते समय गांधीजीको यह पता नहीं था कि वल्लभभाई भी अन्यत्र उसी समय गिरफ्तार किये जा चुके थे।

५. पत्र : मीराबहनको

यरवदा जेल[1]
५ जनवरी, १९३२

चि० मीरा,[2]

यह कामकाजी पत्र है। इसलिए अखबारोंमें इसका कोई जिक्र न हो।

और बड़ा फ्लास्क भेजो। यह गरम पानी रखनेमें उपयोगी होगा और सुबह-सुबह वार्डरोंकी मेहनत बच जायेगी।

मैंने महादेवको हिदायतोंके साथ ८०० रुपयेका एक चैक दिया था। मेरे खयालसे उसपर मेरे हस्ताक्षरोंकी जरूरत नहीं है। देख लेना, वह उसके पास है या नहीं और उसपर मेरे हस्ताक्षरोंकी आवश्यकता है या नहीं।

हम दोनों[3] सकुशल हैं।

सबको प्यार,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२०९) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६७५ से भी।

६. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

५ जनवरी, १९३२

चि० शारदा,

मैं तुझे बराबर पत्र लिखता हूँ। एकाध-बार भले ही रह जाये। लेकिन अहिंसाका पालन करनेवाले व्यक्तिका व्यवहार 'जैसेको तैसा' के अनुसार नहीं होता। वह तो बुरा करनेवाले व्यक्तिका अथवा कुछ न करनेवालेका भी भला करता है। इसलिए यदि मैं करूँ तो भी तुझे आलस्य नहीं करना चाहिए। ४७ तार निकालनेमें १२ बार तार टूटे, इसका मतलब यह हुआ कि यदि तार बिलकुल न

१. गांधीजी इसे यरवदा मन्दिर भी कहते थे; देखिए पत्र: विमलचन्द्र वालजी देसाईको, पृष्ठ ४। इसके आगेके पत्रोंमें स्थानका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। गांधीजी ४ जनवरी, १९३२ से ८ मई, १९३३ तक यरवदा-जेलमें थे।

२. इस पत्रमें तथा मीराबहनको लिखे अन्य पत्रोंमें सम्बोधन देवनागरीमें है।

३. यरवदा-जेलमें सरदार वल्लभभाई पटेल बापूके साथ थे।

टूटता तो कम-से-कम ३६ तार और कात सकती। मेरा यह अनुभव है कि एक बार जो तार टूटता है, वह तीन तारका समय ले लेता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९४३) से; सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला।

७. पत्र: विमलचन्द्र वालजी देसाईको

८ जनवरी, १९३२

चि० नानु,

तेरा पत्र मिला। बहुत खुशी हुई। ऐसे ही लिखते रहना। स्याही और कलमका इस्तेमाल कर सके तो अच्छा है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ५७५८) से; सौजन्य: वालजी गोविन्दजी देसाई।

८. पत्र: नारणदास गांधीको

११ जनवरी, १९३२

चि० नारणदास,

निश्चित होकर या वैसे भी तुम्हें पत्र लिखनेके लिए जेल-यात्रा जरूरी थी न? आज ही पत्र लिखनेकी अनुमति मिली है, इसलिए पहला पत्र तुम्हींको लिखने बैठा हूँ।

इस बारकी खूबी यह है कि सरदार साथ हैं। अभी मुझे थकान लगती रहती है, नींदकी भूख भी मिटी नहीं है और पढ़ने तथा सूत्र-यज्ञ करनेके बाद और कुछ नहीं करता। हम दोनोंकी तबीयत अच्छी है। मेरी खुराक जैसी बाहर थी, लगभग वैसी ही है। शहदके बदले गरम पानीमें गुड़ लेता हूँ। सरदारकी खुराकमें चाय, रोटी और सब्जियाँ मुख्य हैं। बाहर भात खाते थे, यहाँ नहीं खाते। यहाँका भात उन्हें माफिक नहीं आता। दूध लेते हैं। गलेकी तकलीफ अभीतक है। मुझे नियमसे लिखते रहना। कौन-कौन जेलमें पहुँच चुके हैं, इसकी ठीक जानकारी नहीं मिली है, सो लिखना। उसके आधारपर पत्र किसे-किसे लिखना है, यह बात समझ सकूँगा।

जमनाको बम्बईमें देखा था। किसीके साथ ज्यादा बात करनेका समय मिला ही नहीं। उसकी और दूसरोंकी खबरें तुम्हीं मुझे देना; या फिर वे लोग ही लिखें। काका साहब, छगनलाल जोशी, वगैरह जेल पहुँच गये हैं, ऐसा मानकर उन्हें पत्र नहीं लिखा।

चप्पल बनानेका चमड़ा वहाँ नहीं रहता, यह आश्चर्यकी बात है। यह तो हम लोगोंके पास कई जगह होना ही चाहिए। सुरेन्द्रसे बात करना। वह इस विषयमें लिखे।

आज पढ़ा कि बा गिरफ्तार हो गई है। खुशी हुई। अगर उसको पत्र पहुँचाना सम्भव हो, तो पहुँचाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८१९९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

९. पत्र : मीराबहनको

१२ जनवरी, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। अब तुम सदाकी भाँति लिख सकती हो। क्या तुम्हें यह पता चल गया है कि तुम मेरे साथ वह धुनकी, जो मैंने चुनी थी, भेजना भूल गई? मैंने हलकी धुनकी इसलिए माँगी थी कि बड़ीके साथ और बहुत-सी चीजोंकी जरूरत होती है। जब तुम या और कोई आये, तब बड़ी धुनकी आ सकती है। तुम्हारी दूरदर्शिताके प्रतापसे मेरे पास अभीतक काफी पूनियाँ हैं। इसलिए मुझे धुनकीके बारेमें चिन्ता नहीं है। मैं इन दिनों आराम कर रहा हूँ और जितना सो सकता हूँ, उतना सोता हूँ। मेरे बारेमें बाकी जानकारी नारणदासको लिखे मेरे पत्रमें मिल जायेगी।

प्रिवा-दम्पती कहाँ है? उनका स्वास्थ्य कैसा है? उन्हें मेरा प्यार। वे मुझे पत्र लिखें। आशा है आश्रममें उनका समय अच्छा गुजरा होगा। क्या जर्मन मित्र आ गये? और कुमारी बार्कर? वेरियर और शामरावके[1] क्या समाचार हैं? आशा है प्यारेलालने ईवन्स और रोजर्सको[2] पार्सल भेज दिए होंगे। वे कहाँ हैं? और देवदास कहाँ है? बर्नार्डकी क्या खबर है?

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१०) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६७६ से भी।

१. शामराव हिवाले, वेरियर एल्विनके मित्र और सहयोगी।

२. **बापूज लैटर्स टु मीरा**में मीराबहन लिखती हैं: "ईवन्स और रोजर्स दो जबर्दस्त गुप्तचर थे जिनको ब्रिटिश सरकारने बापूकी गोलमेज-यात्राके दिनोंमें हर वक्त उनकी सँभाल रखनेके लिए तैनात कर दिया था। बापूने दोनोंको विशेष नक्काशी कराकर एक-एक घड़ी भेजी थी।"

१०. पत्र : मैत्री गिरिको

१२ जनवरी, १९३२

चि० मैत्री,

तेरा खयाल कई बार आता रहा है। मुझे लिखना। तुझे जो चोट लगी थी, अबतक तो वह बिलकुल ठीक हो गई होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२३३) से।

११. पत्र : महालक्ष्मी माधवजी ठक्करको

१२ जनवरी, १९३[२][1]

चि० महालक्ष्मी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम सबका खयाल तो बहुत बार आता है, लिखनेको मन भी चाहता है; पर इस बार बाहर बिलकुल ही फुरसत नहीं मिली। जान पड़ता है अब यहाँसे जरूर लिख पाऊँगा।

सबको एक-सी खुराक माफिक आ जाये, ऐसा नहीं होता। भोजनके वजन और प्रकारके सम्बन्धमें तो आखिरकार सबको अपनी मर्यादाका खयाल रखते हुए खुद ही पता लगाना पड़ता है। इतना तो मैंने अपने और दूसरोंके अनुभवसे देखा है कि मूँगफली किसीको भी अन्ततक माफिक नहीं आती। इसलिए उसे तो छोड़ ही देना चाहिए। बालकोंको तो न ही दें। एकाध-बार खा ली जाये तो दूसरी बात है। बिलकुल ही न खायें तो उसमें हानि नहीं है। नारियल भी खाना जरूरी नहीं है। बादाम उपयोगी है; किन्तु तुम्हारे लिए तो निम्नलिखित खुराक ठीक मानता हूँ।

दूध कच्चा या उबाला हुआ, ज्यादा-से-ज्यादा ३ सेर। खजूर या मुनक्का, खट्टे नींबू दो या तीन, सोड़ाके साथ, जैसे मैं पीता हूँ, या शहद या गुड़के साथ गरम पानीमें।

दिनमें एक बार कच्ची गाजर या मूली (फीके प्रकारकी) अथवा दो या तीन तोला सलादके पत्ते या गोभीके नरम पत्ते खूब चबाकर खाना। थोड़ा नमक लेना।

१. साधन-सूत्रमें '१९३१' है; जान पड़ता है, यह भूलसे लिखा गया है। देखिए "दैनन्दिनी, १९३२" और "पत्र : नारणदास गांधीको", १३-१-१९३२ भी।

इस तरह गाजर या पत्ते खानेसे सम्भव है, तुम्हारी भूख शान्त होगी। खजूर भिगोनेकी जरूरत नहीं है। दूधके साथ वैसे ही खा लेना। उनपर कचरा लगा हो तो उन्हें धो लेना चाहिए। भिगोये बिना खानेसे चबाकर खा सकोगी, और चबा पानेसे सम्भव है तृप्तिका अनुभव होगा। फिलहाल बादाम-पिस्ता न लेना। इतना करके देख लो। इससे शरीर हलका रहेगा। स्राव नियमित हो जायेगा। दूधकी जगह दही लेनेमें कोई हानि नहीं। दही खट्टा हो तो उसमें सोडा डाल लें। जितना खट्टा हो, उस हिसाबसे सोडा डालें। कच्चा टमाटर खाना। इस तरह खुराक लेनेसे पेटमें हवा नहीं बनेगी। कच्चा दूध माफिक न आये तो उबला हुआ दूध लेनेमें कोई बुराई न समझना। सोडा लेते रहनेसे अधिक सम्भावना तो इसी बातकी है कि हवा नहीं बनेगी।

मैंने बच्चोंको बम्बईमें देखा था। उन्हें खाँसते देखकर दुखी भी हुआ था। उन्हें भी उपर्युक्त खुराक दी जा सकती है। उनका वजन बढ़ना ही चाहिए। अभी सूखा मेवा तो न ही खायें। उन्हें शहद ज्यादा देना चाहिए। शहद पानीमें लें या टमाटरके साथ। दूध तो ऐसे ही पी जानेकी आदत बनायें तो अच्छा है। मूँगफली और शहद दोनों एक-साथ नहीं चल पाते। अब मुझे लगता है कि मैंने तुम्हारे सभी सवालोंका जवाब लिख दिया है। कोई रह गया हो और तुम बाहर हो तो फिर पूछना।

सभी बहनोंको आशीर्वाद। धीरे-धीरे सबको लिखूँगा। रमा पत्र लिखे। अभी तुम सब बहनोंको मेहमान ही मानता हूँ। स्वास्थ्य मत बिगड़ने देना। तुम्हारा स्वास्थ्य तो मैंने बहुत ही अच्छा माना था।

माधवजी लिखें। बच्चोंकी खातिर इस पत्रको कलकत्ते भेजना ठीक लगे तो भेज देना। कलकत्तेमें जो देखभाल करनेवाला हो, वह मुझे पत्र लिखे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम्हारा पत्र मुझे देरसे मिला, इसलिए आजकी तारीख डाल देनेपर भी यह डाकमें तो कल ही जायेगा।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८११)से।

१२. पत्रः काशीनाथ और कलावती त्रिवेदीको

१२ जनवरी, १९३२

चि० काशीनाथ,

तुम्हारा पत्र मिला। अभी तो अपनेको धैर्यपूर्वक वहीं गढ़ते रहो। आज तो बस इतना ही।[1]

चि० कलावती,

तुम्हारा खत मिला। मेरा कुछ ऐसा स्मरण है कि तुमने प्रतिज्ञा ली है। कैसे भी हो, जैसे नारणदास कहे करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती और हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५२८४)से।

१३. पत्रः गंगादेवी सनाढचको

१२ जनवरी, १९३२

चि० गंगादेवी,

तुमारा और पंडितजीका स्मरण तो बहोत रहा करता था परंतु पत्र लिखनेका तो समय हि नहिं मिलता था। दोनों कैसे हैं? तुमारा शरीर अब कैसा है? पंडितजी अभी भी खूब काम कर सकते हैं क्या? हरिप्रसादका[2] शरीर कैसा रहता है?

पंडितजीकी वाडी कैसे चलती है? क्या क्या फल होते हैं? भाजी कौन सी होती है? कुछ शहरमें बेचनेके लिये भेजा जाता है? वाडी स्वावलंबित हो गई है?

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५४५)से।

१. इसके बादका अंश हिन्दीमें है।

२. गंगादेवी और तोताराम सनाढ्यका दत्तक पुत्र।

१४. पत्र: अब्बासको

१३ जनवरी, १९३२

चि० अब्बास,

तूने पिंजाईमें क्या-क्या सुधार किये हैं, मथुरादासके[1] सुझाव माने हैं या नहीं, उसका काम कोई सँभाल रहा है या नहीं, आदि समाचार लिखना। तेरा स्वास्थ्य ठीक रहता होगा। इस समय वर्गमें कितने लोग सीखते हैं?

बापूकी दुआ और आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३०५) से।

१५. पत्र : खुशालचन्द गांधीको

१३ जनवरी, १९३२

आदरणीय खुशालभाई,

आपका आशीर्वादरूपी पत्र मुझे बम्बईमें मिला था। उत्तरमें आश्रम ही पहुँच जानेकी आशा थी; किन्तु ईश्वरने और बात शुभ विचारी; इसलिए अब यहींसे आप दोनोंको प्रणाम भेज रहा हूँ। इतनी इच्छा जरूर है कि यदि आपका स्वास्थ्य ठीक रहे और आश्रम बना रहे तो आप वहीं रह जायें। कभी-कभी मुझे याद कर लिया करें। सरदार वल्लभभाई मेरे साथ हैं। हम दोनोंकी तबीयत ठीक रहती है। ठंड भी ज्यादा नहीं है।

मोहनदासके दण्डवत् प्रणाम

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२२१) से; सौजन्य: छगनलाल गांधी।

१. मथुरादास पुरुषोत्तम, एक खादी-विशेषज्ञ।

१६. पत्र : नारणदास गांधीको

१३ जनवरी, १९३[२][1]

चि० नारणदास,

कल जो पत्र भेजा, उसके साथ लक्ष्मीदासका पत्र रह गया। वह इसके साथ है। और भी जितने लिख सका, भेज रहा हूँ। महालक्ष्मीका पत्र कल मिला। उस निमित्तसे कई दूसरे भी लिख डाले। अब इन्हें रवाना कर देना चाहिए। इसलिए ज्यादा नहीं लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

प्रोफेसर थॉमसन[2] १५ तारीखको बम्बई उतरेंगे। अगर आश्रम आयें तो उन्हें ठहराना। सुविधाओंका ध्यान रखना। वे न आयें तो पत्र या तार द्वारा आमन्त्रित करना। पी० एण्ड० ओ० जहाजसे आनेकी सम्भावना है। मीराबहनको मालूम है।

बापू

लक्ष्मीदासके पत्रके सिवा आठ पत्र और हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२०० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१७. पत्र : सर सैम्युअल होरको

१५ जनवरी, १९३२

प्रिय सर सैम्युअल,[3]

मुझे यह आशा कतई नहीं थी कि मैं आपको इतनी जल्दी किसी जेलसे पत्र लिखूँगा।

१. साधन-सूत्रमें १९३१ है। थॉमसनने पी० हर्टोगको अपने ५ दिसम्बर, १९३१ के पत्र (सी० डब्ल्यू० ९४०९) में १९३२ में भारत जानेका अपना इरादा व्यक्त किया था। फिर इस तिथिको १९३१ में मीराबहन आश्रममें नहीं थीं, १९३२ में थीं।

२. **द अदर साइड ऑफ द मैडल, राइज एण्ड फुलफिलमेंट ऑफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, लाइफ ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर** आदि पुस्तकोंके रचयिता।

३. भारत-मन्त्री (१९३१-३५)।

मैंने वायदा किया था कि कोई भी गम्भीर कदम उठानेसे पहले आपको उससे अवगत कराऊँगा। लेकिन घटनाएँ इतनी आकस्मिक तेजीसे घटीं कि मेरे पास न तो समय रहा, न कोई विकल्प। मुझे कोई सन्देह नहीं कि आपने वाइसराय और मेरे बीच आये-गये तार[1] देखे होंगे। मैंने सहयोग बनाये रखनेकी भरसक कोशिश की लेकिन अपने विचारसे मेरा कोई दोष न होने पर भी मैं असफल रहा। मैं यह महसूस किये बिना नहीं रह सकता कि वाइसरायका असम्भव शर्तोंके सिवा, मुझसे किसी और तरह मिलनेसे इनकार करना पूरी तरह गलत था। मैंने अभी-अभी लॉर्ड विलिंगडनको अपने रुखपर पुनर्विचार करनेका आग्रह करते हुए एक निजी पत्र लिखा है।

मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि मैं सहयोग देनेकी पूरी इच्छा लेकर ही बम्बई पहुँचा था। आपके पत्रने, उसके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार करें, एक कठिनाई हल कर दी। मैं आशा करता था कि वाइसरायसे दिल खोलकर साफ-साफ बात करनेसे अन्तरिम कालमें अध्यादेशों और प्रशासन-विषयक कठिनाई हल हो जायेगी। वस्तुतः मैंने हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न तथा अन्य मामलोंके बारेमें सर अकबर हैदरीके साथ, जो मेरे साथ उसी जहाजमें थे, योजना बना ली थी और चूँकि भारतमें जो-कुछ हो रहा था, उसे मैं जानता नहीं था इसलिए उतरनेसे एक दिन पहले जहाजपर मौजूद रायटरके प्रतिनिधिको एक आशापूर्ण सन्देश भी दे दिया था। आपने शायद उसे देखा भी होगा लेकिन भारतमें मैंने जो घटते देखा, उससे मैं निस्सन्देह चकित हो गया। मैंने तुरन्त वाइसरायसे भेंट करनेकी कोशिश की; परिणाम आप जानते हैं।

मैं यह भी कह दूँ : समाचारपत्रोंमें इस आशयके क्लेशकारी विचार छपे हैं कि मेरे साथियोंने मुझे यह रुख अपनानेपर बाध्य किया। यह बात बिलकुल निराधार है। मेरे द्वारा उठाया गया हर कदम मैंने अपनी प्रेरणासे उठाया था और वह सत्याग्रहके मेरे सिद्धान्तकी तर्कसंगत परिणति थी। मैं इससे अधिक सच्चे सहयोगियोंकी कामना ही नहीं कर सकता। सत्याग्रहके मामलेमें वे मेरे सामने मुझे एक विशेषज्ञ मानकर झुक जाते हैं। मैं आपसे इस पत्रका उत्तर देनेकी आशा नहीं करता। मैंने सोचा कि मुझे आपको केवल यह बता देना चाहिए कि मैं इस सबके विषयमें क्या सोचता हूँ। जो भी हो, आपसे अपनी मुलाकातोंके सुखद संस्मरण मैं सदैव सँजोये रखूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेज़ीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५५६) से; सौजन्य : इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन।

१. देखिए खण्ड ४८।

१८. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

१५ जनवरी, १९३२

चि० पण्डितजी,

काशी-यात्राका वर्णन तो तुमने बहुत अच्छा लिख भेजा है। सभी शिष्य आचार्यजी[1] के कामको अच्छी तरह चला रहे हैं और उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं, यह तो बहुत सन्तोषकी बात है। अब छाराओं[2] में फिर जाना शुरू कर देना। उनसे परिचय हो जाये और उनपर असर होने लगे तो यह बहुत बड़ा काम माना जायेगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २२०) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१९. पत्र : पद्माको

१५ जनवरी, १९३२

चि० पद्मा,

तू अभी पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुई है, ऐसा वसुमतीबहनने बताया है। मुझे अपनी तबीयतके बारेमें ब्यौरेवार पत्र लिखना। सरोजिनी देवी[3] कहाँ हैं, कैसी हैं? क्या पिताजी की कोई खबर मिलती है? उन्हें पत्र लिखती है? अपना कार्यक्रम लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१२८) से। सी० डब्ल्यू० ३४८० से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी।

१. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, नारायण मोरेश्वर खरेके संगीत-शिक्षक।

२. मध्य गुजरातके आदिवासी, जो आश्रमवासियोंको परेशान किया करते थे।

३. पद्माकी माँ।

२०. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

१५ जनवरी, १९३२

भाई वालजी,

तुम दोनोंकी तबीयत कैसी है? किसीका स्वास्थ्य कुछ सुधरा या नहीं? कमलनयन कैसा है? उससे लिखनेके लिए कहना। क्या उसने अध्ययनमें कुछ प्रगति की है? क्या वह सन्तुष्ट है? आशा है तुम वहाँ घूम-फिर रहे होंगे। याद रहे, वहाँ तुम पढ़नेके लिए नहीं बल्कि स्वास्थ्य सुधारनेके लिए गये हो; और वहाँ तो घूमने निकले कि प्रकृति रोज नया पाठ पढ़ाती ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४१७) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

२१. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ जनवरी, १९३२

चि० नारणदास,

मीराबहनके नाम लिखे पत्र[1]से मेरे समाचार मालूम हो जायेंगे। आश्रममें कौन-कौन बचे हैं, यह मालूम हो तो पत्र किसे लिखना है, यह समझ पाऊँ। तुम्हारी ओर से पत्रोंकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। जब चाहो तभी लिख सकते हो। अभीतक न लिखा हो तो यह पत्र पाते ही लिखना।

मेरी ओरसे दो बार[2] पत्र जा चुके हैं। यह तीसरी बार है। चीजें भेजनेके बारेमें लिखा था, वह अलग। राधाका क्या हाल है? अन्य सभीकी तबीयतके बारेमें लिखना।

सबको आशीर्वाद।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

पूंजाभाई कैसे हैं? कहाँ रहते है?

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२०१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. ११ और १३ जनवरीको, देखिए पृष्ठ ४ और १०।

२२. पत्र : मीराबहनको

१७/१८ जनवरी, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारी भेजी हुई चीजें मिल गईं। चप्पलें इतनी हलकी हैं कि एक-दो महीनेसे ज्यादा नहीं चलेंगी, यानी तले घिस जायेंगे। इसलिए तलेका चमड़ा जरूरी है। अगर तुम नहीं जुटा सकोगी, तो मुझे रबरके तलेका आश्रय लेना पड़ेगा।

क्या प्रिवा-दम्पती अभी भी वहाँ है? मेरा उन्हें प्यार कहो या लिख भेजो। रोलाँ भाई-बहनको भी मेरा प्यार लिख भेजना।

हम दोनोंकी तबीयत अभीतक अच्छी है। मेरी खुराक बाहर-जैसी ही है। सिर्फ शामके भोजनमें मैंने दही और जोड़ लिया है। रोज सुबह-शाम मिलाकर कम-से-कम दो घंटे घूम लेता हूँ। अभीतक सूतके दो सौ तारसे आगे नहीं पहुँचा। लेकिन मेरा खयाल है कि अगले सप्ताहतक मैं बाकीकी नींद पूरी कर लूँगा। २४ घंटोंमें कुल मिलाकर ९ घंटे जरूर सो लेता हूँ। पढ़ाई भी काफी कर रहा हूँ।

इस समयतक आश्रमकी किसी डाकके आनेकी आशा रखी थी। अभी मुझे दूसरी धुनकी न भेजना।

सस्नेह,

बापू

१८ जनवरी, १९३२

[पुनश्च :]

मैं क्षमा चाहता हूँ। मुझे आज पता लगा कि तुमने धुनकी चटाईमें बाँध दी थी।[1]

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२११) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६७७ से भी।

२३. पत्र : जयशंकर पी० त्रिवेदीको

१८ जनवरी, १९३२

भाई त्रिवेदी[2],

दो बार भेजे गये फल और सब्जीकी कंडियाँ मिल गई हैं। लेकिन अब और न भेजिएगा। हम दोनोंको अपनी आवश्यकतानुसार चीजें यहीं से मिल जाती हैं। आप अपना समय, अपना धन किसी और उपयोगी काममें लगायें, यह सब प्रकारसे ज्यादा अच्छा है। इतना विश्वास रखें कि कुछ जरूरत होनेपर आपके पाससे मँगवाने

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको", १२-१-१९३२।

पूना कृषि कॉलेजके प्रोफेसर।

में संकोच नहीं करूँगा, यह बात आपको अज्ञात तो है नहीं? मनु[1]को विलनेवमें मिला था। उसे मेरा आशीर्वाद लिखें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १००१) से।

२४. पत्र : किंग्सले हॉल, लन्दनके बच्चोंको

२० जनवरी, १९३२

प्यारे नन्हे दोस्तों,

मैं आपकी और उस दिन तीसरे पहर जब हम और आप इकट्ठे बैठे थे तब आपने मेरे प्रश्नोंके जो सुन्दर उत्तर दिये थे, उनकी याद अक्सर कर लेता हूँ।

किंग्सले हॉलमें रहते हुए मुझे आपके प्रेमोपहारोंके लिए धन्यवादका पत्र भेजनेका अवसर ही नहीं मिल पाया। मैं अब आपको जेलसे धन्यवाद भेज रहा हूँ। मुझे आशा थी कि मैं ये उपहार आश्रमके बच्चोंको दे दूँगा। आप 'आंटी' म्यूरियल[2]से कहें, वे आपको उनके बारेमें कुछ बतायेंगी। मैं आश्रम पहुँच ही नहीं सका।

आपको कोई जेलसे लिखा पत्र मिले, यह क्या एक विचित्र-सी बात नहीं है? यों मैं होनेको जेलमें हूँ, किन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं कोई कैदी हूँ। मैंने कोई गलत काम किया, मुझे ऐसा भान नहीं है।

आप सबको मेरा प्यार।

आपका,
जिसे आप चाचा कहते हैं,
गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०१६-ए) से।

२५. पत्र : मणिबहन न० परीखको

२० जनवरी, १९३२

चि० मणिबहन,

तुम बच्चोंकी कक्षा देख रही हो, यह मुझे अच्छा लगा है। तुम्हें इस कामका हिसाब मुझे भेजते रहना चाहिए : लड़कोंमें से कौन अच्छा, कौन निकम्मा, होशियार या बुद्धू है, आदि समाचार तथा उसी तरह अपनी कठिनाइयाँ भी। नरहरि[3] नासिकमें पढ़ा रहे हैं और तुम आश्रममें, यह बढ़िया तालमेल है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९६३) से।

१ जयशंकर त्रिवेदीका पुत्र मानशंकर।
२. किंग्सले हॉलकी प्राचार्या म्यूरियल लेस्टर, जो गांधीजी के लन्दन-प्रवासके दिनोंमें उनकी मेजबान थीं।
३. नरहरि परीख।

२६. पत्र : एस्थर मेननको[1]

२१ जनवरी, १९३२

रानी बिटिया,

बीमार बहन[2] से मुलाकातका तुम्हारा विवरण हृदयस्पर्शी है। जब तुम फिर उससे मिलने जाओ, उसे मेरा प्यार देना।

आशा है कि अब तुम्हारा मन शान्त हो गया होगा। बच्चे[3] बिलकुल ठीक होंगे। उनको मेरी ओरसे चुम्मा देना — अगर तुम्हें लगे कि वे मुझे ऐसा करने देंगे तो।

मेरिया[4] बम्बईमें मेरे साथ थी। परन्तु उससे बात करनेका मुझे वक्त नहीं मिला।

आशा है मेननका स्वास्थ्य ठीक होगा। उसे और बुडब्रूक[5] में सबको मेरा प्यार। कुमारी हेरीसनको मेरा प्यार कहना और मुझे लिखना इन दिनों वह कहाँ है। क्या तुम मॉड चीसमैनको भी पत्र लिखती हो?

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

सरदार वल्लभभाई मेरे साथ हैं। हम दोनों बिलकुल ठीक हैं।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (१०७) से; भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार।
माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ८७-८ से भी।

१. मेनन-परिवार इंग्लैंडमें सेली ओक, बर्मिंघममें था।

२. एक गरीब और बीमार अंग्रेज लड़की, जिसकी गांधीजी के प्रति बड़ी श्रद्धा थी।

३. एस्थर मेननकी पुत्रियाँ नन और टंगी।

४. ऐन मेरी पीटर्सन।

५. बर्मिंघमके पास एक क्वेकर-सेन्टर, जिसकी गतिविधियोंमें एस्थर मेनन और उसके पति भाग लिया करते थे।

२७. पत्र : महावीर गिरिको

२१ जनवरी, १९३२

चि० महावीर,

तेरा पत्र मिला। तू अभीतक पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुआ, यह दुःखकी बात है। क्या तू भी दार्जिलिंग जाना चाहता है? जाना किसीके लिए अनिवार्य नहीं है। जाना हो तो स्वास्थ्य सुधारकर ही लौटनेका निश्चय करके जाना। वहाँ जाकर और ज्यादा बीमार पड़ गया तो मुझे दुःख होगा। यदि न जाये तो डॉ० तलवरकरके कहनेके अनुसार इलाज चलाते रहना। और यदि जाये तो कहाँ रहेगा, आदि बातोंके बारेमें लिख देना। वहाँ तू जाये और रहनेकी ठीक सुविधा न हो पाये तो मुझे उसमें जोखिम दिखाई देता है। तुझे मैं बच्चा नहीं समझता। समझदार सियाने व्यक्तिकी तरह सोच-समझकर निर्णय करना और कृष्णमय्यादेवी[1] से भी सलाह-मशविरा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२३१)से।

२८. पत्र : नारणदास गांधीको

२१ जनवरी, १९३२

चि० नारणदास,

बहुत प्रतीक्षाके बाद आज आश्रमकी डाक मिली। उत्तर न आनेसे थोड़ी चिन्ता हो रही थी। तुमने पार्सलके रूपमें उसे भेजा, इसलिए मिलनेमें देर हुई। पहले भी ऐसा ही हुआ था। मैं यह समझता हूँ कि इस तरह खर्च कम पड़ता है। इसलिए हमेशा यही करना चाहो तो करते रहना। यह किया जा सकता है। ज्यादा डाक पार्सल बनाकर और अपना अकेलेका पत्र डाकसे भेजो तो पैसा बचे और मुझे रोज एक ताजा पत्र मिलता रहे। मोटे तौरपर जब जरूरत हो तभी तुम या दूसरे लोग पत्र लिख सकते हो। ज्यादातर तो वे मुझे तुरन्त दे दिये जायेंगे।

मेरे पत्रसे 'आश्रम समाचार'[2] में जो उद्धरण दिया है, उसमें कोई दोष नहीं है।

१. महावीरकी माँ।

२. आश्रमका हस्तलिखित समाचारपत्र।

हम दोनोंसे आश्रमके जो लोग मिलने आना चाहें, आ सकते हैं। दूसरे ऐसे लोग भी जो राजनीतिके क्षेत्रमें प्रसिद्ध नहीं हैं, आ सकते हैं; जैसे प्यारे अली[१], रमा (रणछोड़भाई); एक ही बारमें दो-चार लोग आ सकते हैं। हफ्तेमें भेंट एक बार हो सकती है। पर हमें इस तरह फिजूलखर्ची नहीं करनी है। इसलिए तुम जिसका आना ठीक समझो, वही आये तो अच्छा है। मैं तो, क्या हो सकता है, वही बताकर अलग हो जाना चाहता हूँ। मेरी ओरसे बन्धन मत मानना। लोगोंकी जरूरत, स्नेह या मोहका नाप मैं कैसे कर सकता हूँ?

कृष्णमय्यादेवी, आदिको दार्जिलिंग जाने देना। खर्च तो होगा, पर वह बर्दाश्त करने-जैसा है। दार्जिलिंगमें रहेंगे तो किसी मित्रके यहाँ ही न? हमें तो सिर्फ रेल-किराया ही लगेगा न? जानेका किराया दे देना। आते समय जो किराया लगे, उसके बारेमें भाई जीवनलाल या बिड़ला-बन्धुओंको वहीं देनेके लिए पत्र लिख देना। यानी जब वे वापस आने लगें, तब उन्हें सलाह देते हुए पत्र लिखा जा सकेगा। क्या महावीर भी साथ जायेगा? जाये तो चार-छः महीने रुक सकता है। अच्छा होने पर वह बाहर कोई काम हाथमें ले सकता है। इसी तरह जब लड़कियाँ जाना चाहें, उन्हें भी भेज देना।

अब्बास साहब कहाँ हैं? वे कैसे रहते हैं? खबर जानकर लिखना। रावजीभाईकी विमला कैसी है? सोजित्राके रावजीभाई मणिभाई कहाँ हैं? शिवाभाई कहाँ हैं?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

वेणीलाल[२] बम्बईमें बहुत बीमार था। अब वह कैसा है? तुमने लिखा है, फिलहाल नवीन वहाँ रहने आ गया है; इसलिए लिखना कि वह अभी कहाँ रहता है, क्या करता है?

सभीके दूसरे पत्र तो यहाँसे मंगलवारको निकलेंगे। आज तो यह समझो कि पत्र दलबहादुर गिरिके परिवार और कुसुमके लिए लिखा है। कान्ति[३], बाल[४], पृथुराज[५], वगैरह योद्धाओंको धन्यवाद। उन्हें पत्र बादमें।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२०२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. बम्बईके एक व्यापारी। वे अपनी पत्नी नूरबानू सहित गांधीजी के उत्साही अनुयायी थे।
२. वेणीलाल गांधी।
३. कान्ति गांधी, हरिलाल गांधीका पुत्र।
४. द० बा० कालेलकरका द्वितीय पुत्र।

२९. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

२२ जनवरी, १९३२

प्रिय रामानन्द बाबू,

पिछली बार कारावासकी अवधिमें[1] आपने मेरे प्रति जो सौजन्य दिखाया था, क्या मैं आपसे फिर वही सौजन्य[2] दिखानेको कहूँ? 'मॉडर्न रिव्यू' का ताजा अंक तो मैंने देखा था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत रामानन्द चटर्जी
शान्तिनिकेतन[3]

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९५२६)से; सौजन्य: शान्तादेवी।

३०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२२ जनवरी, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। जेलकी बहनोंसे मिली, यह ठीक किया।

चमत्कार जैसी कोई चीज इस जगतमें नहीं है अथवा सब चमत्कार ही है। पृथ्वी अधरमें लटक रही है और आत्मा शरीरमें है, यह जानते हुए भी हम उसे देख नहीं सकते, ये महान चमत्कार ही तो हैं। इनके सामने दूसरे कहे जानेवाले चमत्कार तो जादूगरके आमके पेड़की तरह तुच्छ लगते हैं।

'आँख एक रखना'[4] का अर्थ है: टेढ़ा न देखना, अर्थात् दृष्टि निर्मल रखना, उसके द्वारा कुदृष्टि न डालना। इसके सिवा दूसरा अर्थ है ही नहीं।

१. ५ मई, १९३० से २६ जनवरी, १९३१ तक।
२. देखिए खण्ड ४३, "पत्र: रामानन्द चटर्जीको", १८-६-१९३०, ।
३. पत्र २/१ टाउनशैंड रोड, भवानीपुर, कलकत्ताके पतेपर दिगन्तरित कर दिया गया था।
४. सेंट मेथ्यू–४, २२ की पंक्ति 'कीप दाइन आई सिंगल' का रूपान्तर।

सरोजिनीदेवीका किस्सा दुःखद है। लेकिन हम अनासक्तिपूर्वक उसके साथ व्यवहार करेंगे तो उसकी गाड़ी सीधी चलने लगेगी, फिर वह वहाँ रहे या प्रयागमें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२६७) से। सी० डब्ल्यू० ६७१६ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

३१. पत्र : सर फ्रेडरिक साइक्सको[1]

२३ जनवरी, १९३२

प्रिय मित्र,

पिछले वर्ष आपसे मेरी जो सद्भावपूर्ण बातचीत हुई थी, उसीसे मुझे आपको यह पत्र लिखनेका साहस होता है। यदि आपको ऐसा लगे कि मैं तो कैदी हूँ, इसलिए मुझे आपको पत्र नहीं लिखना चाहिए तो मैं फिर पत्र नहीं लिखूँगा और यह पत्र आप चाहें तो फेंक सकते हैं। लेकिन यदि आपने मेरे यह पत्र लिखनेका बुरा न माना तो यथा-अवसर मैं फिर लिखनेका साहस करूँगा।

यद्यपि मेरी रायमें सभी अध्यादेश एक अत्यन्त दुःखद भूल हैं और बिलकुल ही अनावश्यक हैं, फिर भी सरकार-द्वारा एक दूसरे ही दृष्टिकोणका अपनाया जाना और कांग्रेसको कुचलनेकी उसकी कोशिशकी बात मैं समझ सकता हूँ। संगठनको कुछ समयके लिए शायद निष्क्रिय बनाया जा सके, परन्तु उसकी भावना कभी नहीं कुचली जा सकेगी। लेकिन यह एक अलग बात है।

मैं आपका ध्यान जिस बातकी तरफ दिलाना चाहता हूँ, वह तो वे ज्यादतियाँ हैं जो अध्यादेशोंके अन्तर्गत की जा रही हैं।

अहमदाबादमें एक शान्तिपूर्ण सभाको जबर्दस्त लाठीचार्जसे तितर-बितर करना और सभामें लोगोंपर घोड़े दौड़ाना एक नृशंस तरीका लगता है। अनेक नौजवानोंको गम्भीर चोटें आईं और कुछ औरतोंको भी थोड़ी-बहुत चोटें लगीं। एक युवा स्त्रीको बाल पकड़कर घसीटा गया। यह सूचना मुझे उन समाचारपत्रोंसे मिली है जो मुझे दिये जाते हैं। कहा जाता है कि नडियादमें और भी ज्यादा क्रूरतापूर्ण बरताव किया गया और प्रकाशित खबरोंके अनुसार सूरतमें तो वह सबसे ज्यादा बुरा रहा। कहा जाता है कि दो छात्रावासोंसे लड़कोंको आनन-फानन बाहर निकाल दिया गया और छात्रावासोंपर अधिकारियोंने कब्जा कर लिया। ऐसा तरीका उसे अमलमें लानेवाले लोगोंको नृशंस बना देता है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि यह सारा बरताव उन लोगोंके प्रति किया जा रहा है जो इसके जवाबमें कुछ

१. बम्बईके गवर्नर।

नहीं करते और जिनके विषयमें कोई यह नहीं कहेगा कि उन्होंने पहले कभी कोई हिंसक कार्य किया है।

अधिकारियोंने अहमदाबादमें राष्ट्रीय विद्यापीठकी इमारतपर कब्जा कर लिया है। इस विद्यापीठमें सावधानीसे चुनी गई पुस्तकोंका काफी बड़ा संग्रह है। पुस्तकालयमें एक धार्मिक पुस्तकोंका विभाग भी है। यह एक मानी हुई बात है कि वह निष्ठावान विद्वानों-द्वारा बनाया हुआ अपने ढंगका एक ही पुस्तकालय है। उसमें कुछ दुर्लभ और बहुमूल्य पाण्डुलिपियाँ हैं। इसमें एक छोटा-सा संग्रहालय है, जिसमें कलाकृतियोंका संग्रह है। मैदानमें मूल्यवान पेड़-पौधे लगे हुए हैं। यह सारा-का-सारा प्रयास जो दस वर्षोंके धैर्ययुक्त परिश्रमका परिणाम है, कदाचित् बिना किसी उचित कारणके नष्ट हो जानेवाला है।

कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध तैयब-परिवारके सदस्य श्री अब्बास तैयबजी, जो देशके अत्यन्त आदरास्पद भारतीयोंमें से एक हैं, जो बड़ौदा उच्च न्यायालयके भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश हैं और जिनकी उम्र इस समय ७८ वर्षकी है, नडियादमें अन्य कैदियोंके साथ इस तरह कैद करके रखे गये हैं कि उसे एक कठघरेमें बन्द कर देना कहा जा सकता है।

मैं आपसे इन बातोंकी जाँच करनेको कहता हूँ। जो इन अपराधोंके लिए जिम्मेदार कहे जाते हैं, उनका अपने अपराधोंसे इनकार कर देना ही जाँच-पड़ताल नहीं माना जा सकता। ऐसी इनकारियाँ बहुधा बेकार साबित हुई हैं।

ज्यादतियोंके जो दृष्टान्त मुझे स्पष्ट प्रतीत हुए हैं, यहाँ मैंने उनमें से केवल कुछ चुनकर सामने रखे हैं। यदि पिछले अनुभवसे कोई अनुमान लगाया जा सकता हो तो जो मामले सबसे बुरे रहे होंगे, उन्हें अखबारोंमें छपने ही नहीं दिया गया होगा। और फिर मुझे सभी अखबार मिलते भी नहीं हैं।

मैंने अंग्रेजोंका भला चाहनेवाले एक मित्रकी हैसियतसे यह पत्र लिखा है। मैं इस बातका इच्छुक हूँ कि दोनों तरफसे कटुताका ऐसा प्रत्येक कारण बचाया जाना चाहिए जो बचाया जा सकता है। मैं चाहूँगा कि संघर्ष दोनों तरफसे सम्माननीय ढंगसे चलाया जाये ताकि उसके अन्तमें दोनोंमें से प्रत्येक पक्ष यह कह सके कि उसके कार्योंमें कोई द्वेषकी भावना नहीं थी।

मैं हूँ आपका सच्चा मित्र
मो० क० गांधी

सर फ्रेडरिक साइक्स
बम्बई

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रेक्ट्स, गृह विभाग, विशेष शाखा, फाइल सं० ८००(४१), भाग-१, पृष्ठ १५-१६। जी० एन० ३८५६ से भी।

३२. पत्र : मीराबहनको

२३ जनवरी, १९३२

चि० मीरा,

आश्रमकी डाक, जिसकी मैं कितने ही दिनोंसे प्रतीक्षा कर रहा था, कल ही आई। आशा है अब डाक मुझे नियमित रूपसे मिल जाया करेगी। बेशक, तुम्हारा बम्बई जाना ठीक था। तुम कहाँ ठहरोगी और क्या करोगी, इसका अन्तिम निर्णय तुम्हींको करना चाहिए।

तुम जब प्रिवा-दम्पतीको लिखो तो उन्हें बताना कि मैं उनकी याद बराबर करता रहता हूँ। उन्हें अपने स्वास्थ्यकी किसी भी हालतमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे मुझे लिखें।

मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि बड़ी धुनकी[1] न तो लाना और न भेजना। तुमने मुझे इतनी अधिक पूनियाँ भेज दी हैं कि अभी मुझे कुछ सप्ताहतक पींजनेकी जरूरत नहीं होगी। और इसकी मुझे खुशी है। अभीतक मेरे शरीरमें पहले-जैसी ताकत नहीं आई है। नौ बजे रातसे पौने चार बजे सुबहतक पूरी नींद लेनेके बावजूद दिन-भरमें कम-से-कम तीन बार सोता हूँ। अभीतक मुझे नींद और आरामकी आवश्यकता है। पिछले सालकी तरह मैं पाँच सौ गज नहीं कातता[2]। इतना दो दिनमें कातता हूँ। लेकिन मुझे आशा है कि मैं जल्दी ही रोज पाँच सौ गज कातने लगूँगा। इसके लिए मैं अपने ऊपर जोर नहीं डालूँगा। मुझमें जो शक्ति अभी बाकी है, उसे बचाकर रखनेका प्रयत्न करूँगा। यह तुम्हें अधिक पूनियाँ लाने या भेजनेके लिए सूचना नहीं है। उनकी जरूरत होते ही मैं सूचित कर दूँगा। मेरा स्वास्थ्य खूब अच्छा है और सरदार वल्लभभाईका भी। मैंने तुम्हें सिर्फ यह बताया है कि मुझे अभीतक कितने आरामकी जरूरत है। लन्दनके कामकी थकान भयंकर थी। और मेरे खयालसे शरीरको अभी लम्बे आरामकी जरूरत है। समुद्र-यात्रासे बेशक लाभ हुआ था; किन्तु लन्दनके बाद ही बम्बईकी धूमधामने उसपर पानी फेर दिया।

मुलाकातोंके बारेमें इस बार कोई कठिनाई नहीं है। मैंने पिछली बार जो-कुछ माँगा था, वह सब इस बार दे दिया गया है। इसलिए हर सप्ताह मुलाकातें हो सकती हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हर सप्ताह किसीको आना ही चाहिए। मेरी तरफसे कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मैं सिर्फ चेतावनी देता हूँ कि हम गरीब लोग हैं और इसलिए प्रेमकी खातिर मिलने आनेमें किफायत करनी चाहिए। काम तो इतना नहीं हो सकता और प्रेम तो त्यागसे ही पनपता है। खैर, तत्वज्ञानकी बात छोड़ो। मैं जानता हूँ, तुम सब जो उत्तम है, वही करोगे। अवश्य

१. देखिए पृष्ठ १४।

२. **बापूज लैटर्स टु मीरा** से।

ही, जिन लोगोंकी राजनीतिक क्षेत्रमें ख्याति है, वे विशेष अनुमतिके बिना नहीं मिल सकते।

बहनोंको, कमलाको और खुद तुमको मेरा प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१२)से; सौजन्य : मीरावहन। जी० एन० ९६७८ से भी।

३३. पत्र: कान्ति गांधीको

२३ जनवरी, १९३२

चि० कान्ति,

तुमने पत्र लिखकर ठीक ही किया। तुम सबको प्रसाद मिला, यह जानकर तो मैं बहुत ही खुश हुआ हूँ। प्रसाद मिलनेपर भी मनमें क्रोध न आये, दया ही आये और इसके बाद भी ऐसा प्रसाद लेनेकी तैयारी हो तो जीवन सार्थक माना जायेगा। सन्त फ्रांसिसको कोई गाली देता था तो वह मनमें प्रसन्न होते थे और ईश्वरका आभार मानते थे कि उसने गाली देनेवालेको मारनेकी प्रेरणा नहीं दी और मार खानेपर यह आभार मानते थे कि उसने उसे जानसे मार डालनेकी प्रेरणा नहीं दी। जानसे मारनेवालेके लिए कहते थे कि उसने यातना दे-देकर मारनेकी कोशिश तो नहीं की। तात्पर्य यह है कि जिसने शरीरका मोह छोड़ दिया है और जिसने शरीरको केवल सेवाका ही साधन माना है, उसे शारीरिक प्रहार स्पर्श हीं नही कर सकते।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९०५)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३४. पत्र: बाल कालेलकरको

२३ जनवरी, १९३२

चि० बाल,

तेरा पत्र मुझे मिल गया था, पर उसका जवाब कहाँसे देता? अब तो तुझे जो-कुछ पूछना हो सो यहीं लिखकर पूछना। मैं उसका जवाब देनेका प्रयत्न करूँगा। जिन्हें लड़ाईका रंग लगा है, ऐसे सब लोगोंको धन्यवाद तो भेज ही दिया है। मैं सबको अलग-अलग पत्र नहीं लिख रहा हूँ तथापि, वे सब अपने-अपने अनुभव लिखकर भेजें। कान्तिके पत्र[1] में जो थोड़ा-सा लिखा, वह तुम सबपर लागू होता

१. देखिए पिछला शीर्षक।

है। उस पत्रमें जो-कुछ लिखा है, इस वक्त तो उससे ज्यादा मुझे कुछ नहीं कहना है। याद रखें, कि हम कोई सेवा कर पायें तो हमें उससे फूल नहीं उठना चाहिए। वल्कि जो-कुछ कर पायें, उसे हम कम ही मानें। संसारमें हम कर्ज लेनेके लिए जन्म नहीं लेते, उसे उतारने आते हैं। जिसे कर्ज उतारनेकी जरूरत नहीं, उसे शरीररूपी जंजाल सिरपर लेनेकी क्या जरूरत है। वह मुक्त प्राणी है। और कर्जदार सोलह आने भरपाई कर दे तो भी इसमें उसके लिए गर्व करनेका कोई कारण नहीं। इतना करनेपर ही वह विश्राम लेनेके योग्य बन पाता है। कर्जसे मुक्त हुआ अर्थात् बन्धनसे मुक्त हुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९०४)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३५. पत्र: गंगाबहन वैद्यको

२३ जनवरी, १९३२

चि० गंगाबहन (बड़ी),

तुम्हारे पत्रसे मैं निश्चिंत हो गया हूँ। सबकी परीक्षा हो रही है। हम तो सिर्फ यही इच्छा करें कि ईश्वर हमें पूर्ण आहुतिके योग्य माने। जिसके हिस्सेमें जो सेवा आये, वह उसे पूरी तरह कर पाये, इतना ही काफी है।

काकु कैसा है? क्या करता है?

तुम दूध और फल कॉफी ले लेती हो न? इसमें लोभ न करना और संकोच भी न करना। औषधि समझकर लेना। कॉफी पीनेसे शरीर अच्छा रहता हो तो कॉफी भी लेना।

नाथ[1] को कभी-कभी आ जानेके लिए लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६: गं० स्व० गंगाबहेनने, पृष्ठ ६२। सी० डब्ल्यू० ८७८८ से भी; सौजन्य: गंगाबहन वैद्य।

१. केदारनाथ कुलकर्णी, किशोरलाल मशरूवालाके गुरु।

३६. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

२३ जनवरी, १९३२

चि० पण्डितजी,

तुम्हारा पत्र मिला।

तालके बारेमें तुमने ठीक जानकारी भेजी है। समय निकालकर उसके अनुसार करके देखूंगा। पुस्तक तो अभी नहीं मिली है।

मथुरी[1] के विषयमें तुमने ठीक किया है। उसे जल्दी उठनेकी जरूरत नहीं है। उसपर कामका या पढ़ाईका बोझ नहीं होना चाहिए। वह अपनी मर्जीसे उठे-बैठे। खान-पानके बारेमें मर्यादाका पालन करना। मुख्य खुराक तो दूध होना चाहिए। भात बहुत कम ले। दाल बिल्कुल नहीं। आवश्यक है कि सब्जी सीधे-सादे ढंगसे पकाई हुई ले। एक-दो कच्चे टमाटर उबालकर खा ले तो ठीक है।

गजानन[2] के बारेमें तुम्हारी सलाह मुझे उचित लगती है।

गुरु पण्डितजी[3] के बारेमें तुमने जो लिख भेजा है, वह मजेदार है। मण्डल बनाया है यह भी ठीक लगता है। पहले तो तुम सब शिष्य अपने पुरुषार्थसे कुछ करो और फिर समाजसे मदद माँगो: यही योग्य लगता है, और यही तुम्हें शोभा देता है। फिलहाल, जबतक यह दावानल सुलग रहा है, अपनी योजना धीमी गतिसे चलने देना। जितना बिलकुल आवश्यक हो, उतना जरूर करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२१)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

३७. पत्र : मथुरी ना० खरेको

२३ जनवरी, १९३२

चि० मथुरी,

तेरा पत्र मिला। तेरा पहला काम तो अपने स्वास्थ्यको अच्छी तरह सुधारना है। खेल-खेलमें जितना सीख सके उतनेसे अधिक सीखनेका लोभ मत करना। हमारा सच्चा शिक्षण तो अच्छा बननेमें है। और यह तो बीमार या स्वस्थ सभी

१. नारायण मोरेश्वर खरेकी बेटी, एक गायिका।

२. नारायण मोरेश्वर खरेका भतीजा।

३. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर; देखिए पृष्ठ १२।

लोग कर सकते हैं। अक्षर-ज्ञान तो आभूषणकी तरह है। वे सबको थोड़े ही मिलते हैं?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६०)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

३८. पत्र: गजानन वि० खरेको

२३ जनवरी, १९३२

चि० गजानन,

तुमारा खत मिला। काकाश्रीने जो अभिप्राय दीया है सही है। दुःख सहनेके लिये तैयार रहना काफी है। जब तुमारे बलिदानका आवश्यकता होगी तब तुमको कोई नहिं रोकेगा। दरम्यान तुमारे निजी कार्यमें तन्मय रहना चाहिये।

ड्राइंगमें आजकल क्या चलता है?

बापूके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ३०६)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

३९. पत्र: लीलावती आसरको

२३ जनवरी, १९३२

चि० लीलावती,

तेरा पत्र मिल गया है। हम मिले तो थे न। दूसरी बहनोंसे तो मुलाकात भी नहीं हुई। उनके लिए क्या कहें? किन्तु तेरी अधीरता समझकर मुझे तुझे खास पर्ची भेजनी चाहिए थी। सो अब भेज रहा हूँ। अपनी शक्तिसे बढ़कर मेहनत न करो तो अच्छा है। बाकी तुम सबकी देखभाल करनेवाला ईश्वर है। स्त्रियोंकी प्रार्थनाका पहला श्लोक[1] याद करना। यह श्लोक सबपर लागू होता है। ऐसा न समझना कि यह प्रार्थना तो हजार वर्ष पहले की गई थी।

हम सब द्रौपदीके समान निस्सहाय हैं। ईश्वरके सामने नर-नारीका कोई भेद नहीं है। नर और नारीके शरीरमें वास करनेवाली आत्मा तो एक ही है। हम

१. गोविन्द, द्वारिकावासिन्, कृष्ण, गोपीजनप्रिय,।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥

मोहवश शरीरकी भिन्न आकृति देख भ्रममें पड़ जाते हैं और विकारवश भी हो जाते हैं। यदि अन्तरमें वास करनेवाले जीवको पहचान लें और सभी जीव एक ही हैं, यह समझकर सबकी सेवामें ही लीन हो जायें तो इसके बाद इधर-उधरके विचार मनपर हावी होकर हमें परेशान नहीं करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३२२)से। सी० डब्ल्यू० ६५९७ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर।

४०. पत्र : मंगला शं० पटेलको

२३ जनवरी, १९३२

चि० मंगला,

तेरा सुन्दर अक्षरोंमें लिखा पत्र मिला। हाँ, विलायतमें भी 'लकड़ी'[1] मिल जाती है। तुम्हें 'गीता'के सभी अध्याय जबानी याद हैं? पुष्पाको कितने याद हैं? वह बीमार कैसे पड़ी? उसकी नाक कुछ बढ़ गई है। उसे कहना कि नाक बढ़ाकर उसे कटाये नहीं। क्या दोनों सुबह उठती हो? कमला कहाँ है? कभी पत्र लिखती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७२)से। सी० डब्ल्यू० ३६ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन ब० देसाई।

४१. पत्र: निर्मला ह० देसाईको

२३ जनवरी, १९३२

चि० निर्मला (बुआ),

सच बात है। बम्बईमें तुझे देखा न होता तो पत्र लिखनेके लिए नहीं कहता। किन्तु देखा और इसलिए तुझे अलगसे पत्र लिखनेके बदले आनन्दीको ही लिखा कि तुझे पत्र लिखनेके लिए कहे। तेरे अक्षर अच्छे हो गये हैं।

मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६२) से।

1. अर्थात् पैदल चलते समय जिनका सहारा लिया जा सके, ऐसी लड़कियाँ।

४२. पत्र: वनमाला न० परीखको

२३ जनवरी, १९३२

चि० वनमाला,[1]

अच्छा हुआ तूने पत्र लिखा। तेरी लिखाई अच्छी हो गई है। वहाँ ध्यान लगाकर पढ़ना। विद्यापीठकी याद आती है? मोहन[2] क्या करता है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६२) से। सी० डब्ल्यू० २९८५ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई।

४३. पत्र: शारदाबहन चि० शाहको

२३ जनवरी, १९३२

चि० बबु,

तू गले-पड़ी लड़की लगती है! तू मुझे जब लिखे तब लिखूँ और जब न लिखे तब भी क्या लिखा ही करूँ? जान पड़ता है तुझे अभी भी दमा बना हुआ है। ऐसा क्यों? कॉडलिवर आयल कितना पिया? इससे लाभ मालूम पड़ा या नहीं? तू अब क्या कर रही है? खाँसी चलती है क्या? वर्षके आरम्भमें कितना वजन था? धूपमें बैठती है या नहीं? तेलकी मालिश करती है या नहीं? खुली हवा, धूप और शरीरमें तेलकी मालिश, यह तो तेरे लिए बहुत ही आवश्यक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती सी० डब्ल्य० (९९०४) से; सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला।

१ व २ नरहरि परीखकी पुत्री तथा पुत्र।

४४. पत्र: वासुदेवको

२३ जनवरी, १९३२

भाई वासुदेव,

तुम्हारा खत मीला। आत्माकी उन्नति संयम पालनसे होती है। आत्माका स्वभाव निर्विकारता है। ईस लीये विकारमात्रका संयम आवश्यक है।

बापुका आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ८९०३–ए) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४५. पत्र: रैहाना तैयबजीको

२४ जनवरी, १९३२

चि० रैहाना,

तेरा पत्र मिला। बाबाजानको नडियादमें कितने दिन रखा गया था? वहाँ उन्हें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? बाबाजानके खाने-पीनेका क्या प्रबन्ध है? पिछली बार उनकी दाढ़ीमें जूँ पड़ गई थी। इस बार सावधान रहें। इसके लिए किसीसे मदद लेनी पड़े तो लें या मुझे बुला लें। क्या सबसे मिल सकते हैं? तुम सब [महीनेमें] कितनी बार मिल सकते हो? बाबाजानसे कहना कि सरदार और मैं उन्हें बहुत याद करते हैं और अक्सर उनकी कुर्बानीकी बातें करते हैं।

तू किसलिए परेशान होती है। ईश्वरकी जो मर्जी होगी, वही काम तुझसे लेगा। अम्माजानको हम दोनोंकी ओरसे बहुत-बहुत वन्देमातरम् और सलाम, खुदा हाफिज और जो सब कहना ठीक हो, सो कह देना। सोहेला[1] का बेटा कितने महीनेका हो गया है? दिये हुए वचनका तू पालन करेगी, यह तो मैं जानता ही हूँ। ईश्वर जब फिर मिलायेगा, तब ज्यादा बात करेंगे। मुझे पत्र लिखती रहना। ज्यादातर, जितने पत्र आते हैं, वे सब मुझे दे दिये जाते हैं। यहाँसे भी लिखनेके लिए संख्यापर कोई बन्धन नहीं है। राजनैतिक मामलोंपर नहीं लिख सकता और अब्बाजान-जैसे बड़े-बड़े लोगोंको नहीं लिख सकता। लेकिन तुम-जैसी बच्चियों और लड़कोंको मजेसे शिक्षापत्र और प्रेमपत्र लिख सकता हूँ। इतनी सुविधा भी काफी मानी जायेगी।[2]

१. रैहाना तैयबजी की बहन।

२. अगले अनुच्छेदकी भाषा-ज्यों-की-त्यों रखी गई है।

अब उर्दू शुरू होता है। हमीदा बहादुर लड़की है। खुदा उससे बड़ा काम लेगा और उसको बड़प्पन देगा। बस खुदा हमीदाको उम्र दराज करे। इस बारेमें तुमको भी तो धन्यवाद मिलना चाहिए। क्योंकि हमीदा आखिरमें तुम्हारी सहेली है न? मेरी गलतियाँ बता दो। आजके लिए इतना काफी है न? खुदा हाफिज।

बापूके आशीर्वाद और दुआ

[पुनश्चः]

रोहिणी, राधाबहन, आदिसे मिलो तो मेरा आशीर्वाद कहना।[1]

गुजराती व उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६३६) से।

४६. पत्र : कुसुम देसाईको

२४ जनवरी, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तुझे बम्बईमें देखा तो जरूर, मगर कुछ पूछ ही नहीं सका। अब सारे महीनोंका अपना हिसाब भेजना। तेरा स्वास्थ्य देखनेमें तो ठीक लगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८२७) से।

४७. पत्र : लालजी के० परमारको

२४ जनवरी, १९३२

चि० लालजी,

मामासाहब[2] लिखते हैं कि इन दिनों तू खाली बैठा रहता है। सूत नहीं है इसलिए बुन भी नहीं रहा है। जो कातना जानता है उसके लिए सूतका अभाव कैसा? तू खुद ही कात और जब एक थानके लिए जितना चाहिए उतना सूत हो जाये तो उसे बुन डाल। इसके अलावा आसपासके लोगोंको भी कातनेके लिए प्रोत्साहित करना। जिसके मनमें सेवाकी इच्छा है, उसे उसका अवसर मिल ही जाता है। तुझे सिखानेके लिए जो परिश्रम किया गया है उसे व्यर्थ न जाने देना। मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२९५) से।

१. यह वाक्य गुजरातीमें है।

२. अनुमानतः वि० ल० फड़के जो उन दिनों गोधराके हरिजन आश्रमकी देख-रेख कर रहे थे।

४८. पत्र : रुक्मिणी बजाजको

२४ जनवरी, १९३२

चि० रुक्मिणी,

भला तू पत्र क्यों लिखेगी? और अब तो माँ हो गई है इसलिए कहना ही क्या? बच्चेका नाम मैंने तेरे ससुरसे पूछा था; यह भी उन्होंने मुझपर ही लाद दिया है। तू इसमें मेरी मदद कर। तुम दोनोंको जो नाम अच्छे लगें, वे मुझे लिख भेजना। फिर उनमें से जो मुझे अच्छा लगेगा, वह मैं चुन लूँगा। बनारसी कैसा है? तुम्हारे ससुर तो, जिसे तू उत्तम कहे, ऐसे व्यक्ति हैं। परोपकारी भी बहुत हैं। किन्तु पैसा कमाये बिना विलायत छोड़नेकी हिम्मत नहीं करते और विलायतमें कमा पानेकी स्थिति है नहीं। हो सकता है कि तू आग्रह करे तो वे आ जायें। उन्हें लिखना कि जिनके लिए वे पैसा कमानेका परिश्रम कर रहे हैं, उन्हें उसकी जरूरत नहीं है। फिर वे क्यों इस चक्करमें पड़ते हैं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०५९) से।

४९. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

२४ जनवरी, १९३२

भाई विट्ठलदास,

तुम्हारे बारेमें सरदारसे पूछ ही रहा था कि इतनेमें तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी कमजोरी लम्बी चल रही है। पर इसकी चिन्ता न करना। पूरी तरह आराम करो। बिलकुल स्वस्थ होनेपर ही काम शुरू करना। इस बीच विचारधारा तो चलती ही रहेगी। जो व्यक्ति किसी काममें निपुण[1] होता है, वह अपने विचारोंसे भी बहुत काम कर सकता है। यह कर्मयोगकी खूबी है; उसकी विशेषता है।

हम दोनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

सासवड आश्रमके सभी भाई-बहनोंको आशीर्वाद।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७७९) से।

१. विट्ठलदास जेराजाणी खादी-विशेषज्ञ थे।

५०. पत्र : हरिप्रसादको

२४ जनवरी, १९३२

चि० हरिप्रसाद,

गंगादेवीकी सेवा भली भांती कर रहे हो उसका फल तुमको ईश्वर अच्छा हि देगा। गीता माता तो हमें सीखाती है कि कोई कार्य कोई सेवा हम फलेच्छासे न करें। इसलिये तुमारे मनसे तो सेवा हि पूर्ण फल है और ऐसे हि होना चाहिये। तुमारा शरीर अच्छा होगा। तुमारी दिनचर्या लिखो।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५५०) से।

५१. पत्र : तुलसी मेहरको

२४ जनवरी, १९३२

चि० तुलसी मेहर,

तुमारे दोनों खत आये थे। तुमको क्या लिखना? तुमारा कार्य सूर्यकी गतिसा नियम बद्ध चल हि रहा है। चलाते रहो। मूझे दतुन मिलते रहते हैं। आजकल दतून सरदार तैयार करते हैं।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६५३९) से।

५२. पत्र : नारणदास गांधीको

२३[1]/२५ जनवरी, १९३२
शनिवार, अपराह्न ३ बजे

चि० नारणदास,

जितने लिखे जा सकें, उतने पत्र लिखूँगा और मंगलवारकी डाकसे जानेके लिए दे दूंगा। मैं जितना नियमित होना चाहता हूँ, नहीं हो पाता। आरामकी जरूरत है। यों तबीयत तो ठीक ही है। मीराबहनके पत्रसे अधिक मालूम होगा। आज वजन लिया गया। १०६½ पौण्ड निकला। सरदारका १४४½ हो गया है। मुझे केवल अब काफी आरामकी जरूरत है और मैं आराम कर रहा हूँ।

१. साधन-सूत्रमें २४ तारीख है किन्तु शनिवार २३-१-१९३२ को पड़ा था।

अब्बाससाहब तुम्हारे पड़ोसी हैं। उनके समाचार लेते रहते होगे। खानेकी जरूरी चीजें पहुँचाते रहना। हमीदाबहन, कानजीभाईकी पत्नी और उनकी लड़की भी वहीं हैं। कोई बहन उनसे मिलने भी जाती होगी।

तिलकमको क्या विशेष काम सौंपा जाये, यहाँसे यह नहीं सूझता। उसे हिन्दी तो सीख लेनी चाहिए। कातना-बुनना सीखे, यह भी इष्ट है। वह सन्तोष तो देता है न?

अपराह्न, २५[1] जनवरी, १९३२

चम्पाने दुःखद पत्र लिखा है। लगता है, रतिलाल काफी तकलीफ दे रहा है। किसी तरह चम्पाको उससे अलग किया जा सके तो इष्ट होगा। चम्पा अब और सन्तानका बोझ सहने लायक नहीं रही है। सम्भवतः रतिलाल अपनेपर अंकुश नहीं रख पाता है। पूरा धर्म-संकट है। चम्पाके अनुसार रतिलाल दिन-भर बंगलेमें पड़ा रहता है और जब जी में आता है, बच्चोंको पीटने लगता है। समझ नहीं पाता, इसमें तुम क्या कर सकते हो। कोई भाई या बहन वेतन ले और उसके साथ रहे तो ठीक हो। देखना, और कुछ सूझे और योग्य लगे, तो करना।

जो मिलने जाये, वह मगनभाईसे कह दे कि उनका पत्र मिल गया है। उन्हें अभी तो पत्र कैसे लिख सकता हूँ? काकासाहबसे वह यह कह दे कि लिखनेकी सब बातें ध्यानमें तो हैं। यथाशक्ति और यथासमय लिखना सोचा है।

तुम देखोगे कि बाहरके लिए अनेक पत्र मैं तुमको भेज देता हूँ। जानता हूँ कि इन्हें यथास्थान भेजनेमें खर्च दुगना होता है और तुम्हारा काम बढ़ जाता है। तुम चाहो तो उन पत्रोंको सीधा ही भेजकर खर्च और समयकी बचत कर सकता हूँ। मुझे कुछ ऐसी याद है कि पहले भी मैंने यह प्रश्न पूछा था और मुझे याद है तब तुमने पत्र अपने मारफत भेजनेके लिए लिखा था। क्या करूँ, लिखना।

इसके साथ अलग कागजपर १४वाँ[2] अध्याय है। अब शुरू कर दिया है तो यथासम्भव हर हफ्ते लिखता रहूँगा।

आजकी डाकमें कुछ उपयोगी पत्र (कुछ कतरनें भी) हैं। देखनेका समय मिले तो देख जाना। मेरा एक दोष कहो, गुण कहो, है। प्रसंग आनेपर ही सम्बन्धित विचार प्रकट करता हूँ। उनका ठीक प्रसंग न आये तो वे रह जाते हैं। इसलिए जो विचार इस तरह फुटकर रूपमें कह देता हूँ, यदि उन्हें सँभालकर न रखें तो सम्भव है वे चले ही जायें। इससे कोई बड़ी हानि होगी, ऐसा तो नहीं है। किन्तु महादेव, काका, वगैरहने संग्रह किया है, इसलिए मैं भी कुछ मोहमें पड़ गया हूँ। यों मेरा जहाज तो सहज भावसे यात्रा करनेवाला है। मेरे पास मार्गका नक्शा नहीं होता।

१. साधन-सूत्रमें २४ है पर १४ वाँ अध्याय २५-१-१९३२ को समाप्त हुआ था; देखिए "गीता-पत्रावली', २१-२-१९३२, १४ वाँ अध्याय; तथा "दैनन्दिनी, १९३२", इस खण्डका अंतिम शीर्षक।

२. परन्तु गांधीजी इसे भेजना भूल गये थे और इसे फिर उन्होंने २६-१-१९३२ के पत्रके साथ भेजा था। इसके लिये तथा **गीताके** अन्य सारांशोंके लिए देखिए "गीता-पत्रावली", २१-२-१९३२।

हो भी काहेको? वह भक्तिके विरोधमें जाता है। जो प्रभुके नचाये नाचना चाहता है, उसका अपना क्या आरम्भ? जो वस्तु जब प्राप्त हो जाती है, उसमें तन्मय हो सकें तो बहुत हो गया। किन्तु यह सब 'तत्त्व-मीमांसा' है। इससे क्या लाभ? जैसा लगे वैसे रहो, किसी भी तरह प्रभुको लहो।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

तुम्हारे पत्रके सिवा आठ और हैं।

लक्ष्मण गिरि ९६ हैरिसन रोड, कलकत्तासे लिखते हैं कि गिरि-कुटुम्बको रवाना कर दिया जाये। तुम्हारी जानकारीके लिए लिख रहा हूँ। तुम वहींसे उत्तर दे देना। मैं नहीं दे रहा हूँ।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५३. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार
२५ जनवरी, १९३२

बहनो,

सब बहनोंको लिख सकूँ, ऐसा कैसे हो सकता है? हाँ, जिसे लिखनेकी जरूरत महसूस होती है, उसे समय मिलनेपर मैं लिख देता हूँ। किन्तु जिस प्रकार मैं पहले सारी बहनोंके नाम एक पत्र लिखा करता था, इस बार भी उसी तरह लिखते रहनेका विचार तो अवश्य है।

इन दिनों, जब हम सब लोगोंकी परीक्षा हो रही है, मेरी कामना है कि द्रौपदीकी प्रार्थना तुम्हारे लिए महान आश्वासन देनेवाली सिद्ध हो। सच पूछो तो हम सब द्रौपदीकी ही स्थितिमें हैं। हमारी लाज कोई मनुष्य नहीं ढक सकता; उसे तो ईश्वर ही ढक सकता है। ऐसा जरूर होता है कि वह अपनी सहायता मनुष्यके द्वारा भेजता है; किन्तु मनुष्य तो निमित्त मात्र है। इतना तो उस कठिन परिस्थितिके विषयमें, जिसमें से हम इस समय गुजर रहे हैं।

अब थोड़ा अपने इंग्लैंडके अनुभवोंके सम्बन्धम। जो प्रेम मुझे भारतकी बहनोंसे मिलता रहा है, लगभग वैसा ही मुझे इंग्लैंडमें भी मिला है, ऐसा कह सकता हूँ। जिस तरह तुम मुझसे कुछ छुपाती नहीं हो, उसी तरह इंग्लैंडमें भी मुझे ऐसी अनेक बहनें मिलीं जिन्होंने मेरे समीप अपना हृदय सम्पूर्ण भावसे खोलकर रख दिया। वे जाने कितनी-कितनी दूरसे प्रातः भ्रमणमें मेरा साथ देनेके लिए और बातचीत करनेके लिए आती थीं। इन अनुभवोंसे मैंने यही सार निकाला कि अहिंसा बड़ी व्यापक वस्तु है। अहिंसामें निर्विकारिताका समावेश तो हो ही जाता है।

मैंने यह भी देखा कि भारतकी स्त्रियाँ यूरोपकी स्त्रियोंकी तुलनामें किसी भी तरह कम नहीं हैं। भारतकी स्त्रियोंमें कुछ शक्तियाँ दबी हुई पड़ी हैं। कुछ शक्तियोंको प्रकट होनेका अवकाश ही नहीं मिला। यूरोपकी स्त्रियोंमें जहाँ-जहाँ मैंने कोई विशेषता देखी, वहाँ-वहाँ उन विशेषताओंके कारण भी देख सका। हमारे यहाँ भी यदि वे कारण प्रस्तुत हों तो भारतकी बहनें भी वैसी ही बन सकती हैं। तथापि वहाँ स्त्रियोंमें जो विशेषताएँ दिखती हैं, उनपर हमें विचार तो करना ही चाहिए। हममें भी वे सब विशेषताएँ अप्रकट अवस्थामें हैं, ऐसा मानकर हमें फूल नहीं जाना चाहिए। सन्तोष मानकर नहीं बैठ जाना चाहिए। उनमें संगठन-शक्ति है। वे पुरुषोंकी भाँति इकट्ठी होकर अच्छी तरह काम कर सकती हैं। वे अपनेको कमजोर नहीं मानतीं; वे चाहे जहाँ निर्भयतापूर्वक आती-जाती हैं। कोई बहन अकेली हो तो वहाँ रातके समय या दिनमें उसके साथ किसीको भेजनेकी जरूरत नहीं होती। अस्पतालोंमें सेवाका काम तो वहाँ विशेष रूपसे स्त्रियोंका ही कार्य-क्षेत्र हो गया है और वे इस कामको बहुत शोभापूर्वक करती हैं। वहाँकी कुछ बहनोंका त्याग अवर्णनीय है। म्यूरियल लेस्टर — जो हमारे यहाँ रह गई है — धनिक माँ-बापकी लड़की है। मीराबहनकी तरह उसने भी, उत्तराधिकारमें जो सम्पत्ति उसे मिली थी, वह सारी सम्पत्ति अपने ही द्वारा स्थापित आश्रमको दे दी है। उसने और उसकी बहन डोरिसने सेवामें अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है। डोरिस बालकोंकी पाठशाला चलाती है। उसके पास लगभग १० शिक्षिकाएँ हैं जो थोड़ा-बहुत वेतन लेकर काम कर रही हैं। म्यूरियल उस आश्रमको चलाती है जहाँ मैं ठहरा था। दोनों बहनोंको रात-दिन सेवाकी ही धुन लगी रहती है। दोनों कुमारिकाएँ हैं। अब तो उनकी उम्र इतनी अधिक हो गई है कि सामान्यतः उनके मनमें विवाहका विचार आयेगा ही नहीं। दोनों बहनोंकी पवित्रता हम उनके चेहरेपर झलकती देख सकते हैं। म्यूरियलके आश्रममें ऊँच-नीचका या काले-गोरेका भेद होता ही नहीं है। उसने अपने आश्रममें मुझे ठहराया, कह सकते हैं कि इससे तो उसे कुछ बड़प्पन भी मिल सकता था। किन्तु उसने तिल-कमको भी आश्रय दिया था; सो उसके लिए हम क्या कहें? तिलकमसे ही पूछना कि उसे इस आश्रममें कितनी अच्छी तरह रखा गया था। तिलकम तो बिलकुल ही गरीब था। मैंने कहा था कि उसका खर्च मैं दूँगा, किन्तु तिलकमने इस आश्रममें दूसरे आश्रमवासियोंकी तरह पूरा काम किया, इसलिए उन लोगोंने उसकी ओरसे मुझे एक कौड़ी भी नहीं देने दी। इस आश्रममें हब्शियोंको भी इतने ही आदर और प्रेमसे रखा जाता है। ऐसे मीठे संस्मरण तो अनेक हैं, किन्तु इस बार तो तुम इतनेको ही काफी मान लोगी न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

५४. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

मौनवार, [२५ जनवरी, १९३२][1]

बालको और बालिकाओ,

सबको अलग-अलग पत्र तो नहीं लिख सकता इसलिए पहलेकी तरह तुम सबके लिए एक पत्र हर सप्ताह लिखनेका प्रयत्न करूँगा। जो बातें मैं तुम्हें तुमसे मिलनेपर सुनाना चाहता था, वे अब लिखकर बतानेका इरादा है। इस इच्छाको पूरा करना तो भगवानके हाथमें है। वे हमें जैसा रखें वैसे हम रहें और उसीमें सुख मानें। इसीलिए हम नरसी मेहताका वह भजन गाते हैं: 'सुख-दुःख मनमें न आने दें। वे तो विधाताने शरीरके साथ ही गढ़े हैं'।[2]

अब अपनी बात कहता हूँ। पहले तो डोरिस बहनकी शालाके विषयमें कहना चाहता हूँ। हमारे यहाँ म्यूरियल बहन आकर रही थी न? उसकी बहन डोरिसने अपना जीवन बालकोंको अर्पित कर दिया है। इन बालकोंके लिए डोरिस बहन एक सुन्दर शाला चला रही है। शालामें कोई पुरुष शिक्षक नहीं है। सभी शिक्षिकाएँ ही हैं। शालाकी इमारत दोमंजिली है। छत बड़ी है। उसके थोड़े हिस्सेपर छप्पर डाल दिया गया है। बरसात हो तो बच्चे उसके नीचे खेलें, सोयें, आदि। एक बात मैंने वहाँ देखी और वह मुझे अच्छी लगी। वहाँ सभी बालकोंको दोपहरको आधा घंटा सुला देते हैं। इसके लिए छोटी-छोटी खाटें रखी हुई हैं जिन्हें मोड़कर रखा जा सकता है। याद रहे कि यह सब बालक-बालिकाएँ आठ वर्षसे कम आयुके हैं। जितना काम वे अपने हाथसे कर सकते हैं, उतना काम उनसे ही कराया जाता है। खेलमें शिक्षिका उनके साथ ही खेलती है। बच्चोंको हाथ-मुँह धोना, दाँत साफ करना भी शिक्षिका ही सिखाती है। बच्चोंका एक भी काम ऐसा नहीं जिसकी देख-रेख शिक्षिका नहीं करती। सब बच्चोंके माँ-बाप गरीब हैं। इसलिए वे फीस कुछ नहीं देते। वहाँ खेल-कूद, व्यायाम, उद्योग तो हैं ही। तुम लोगोंकी तरह वे बालक मेरे साथ हिल-मिल गये थे। उन्होंने मुझे वर्षगाँठके दिन खिलौने भेजे थे जिन्हें मैं सँभालकर तुम्हारे लिए ले आया था। पर अब देखें तुम्हें कब दे सकूँगा। आज इतना ही काफी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८८९६ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. बच्चोंके नाम यरवदा-जेलसे लिखा गया यह पहला पत्र है और सम्भवतः आश्रमकी बहनोंको लिखे गये पिछले पत्रके साथ ही लिखा गया होगा।

२. "सुख-दुख मनमां न आणीये घट साथे रे घडीआं"।

५५. पत्र : जमनादास गांधीको

२५ जनवरी, १९३२

चि० जमनादास,

तू जैसा आया वैसा ही चला भी गया — बातचीत तो कुछ हो ही नहीं पायी। अब मुझे जी-भरकर लिख। तेरा काम कैसा चल रहा है? पाठशालामें कितने लड़के हैं? कितने शिक्षक हैं? जगन्नाथ कहाँ है? उसके भाई कहाँ है? तेरा स्वास्थ्य कैसा है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९३६१) से।

५६. पत्र : प्रभावतीको

२५ जनवरी, १९३२

चि० प्रभावती,

मेरा पत्र तुझे मिल गया होगा। तूने उत्तर नहीं दिया। तो भी कहीं तू चिन्ता न करे, इसलिए पत्र लिख रहा हूँ। पिताजी, आदिकी खबर जाननेके लिए उत्सुक हूँ। आशा है, तू चिन्तित नहीं होगी।

हम दोनों मजेमें हैं। मेरी खुराक लगभग वैसी ही है, जैसी बाहर थी।

तुम दोनोंको

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४२४) से।

५७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२५ जनवरी, १९३२

चि० प्रमा,

तेरा पत्र मिला। तू जो चाहती है[1], वह सब लिख सकूँगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता।

धुरन्धरके 'शाही मेहमान' बननेकी बातका मुझे पता नहीं था।

रोममें चित्रकला देखकर खूब आनन्द लिया, लेकिन दो घंटेमें देखकर क्या राय दूं? मेरी शक्ति ही कितनी है? अनुभव कितना है? मुझे उसमें से बहुत-कुछ पसन्द आया। वहाँ २-३ महीने रहनेको मिलें, तो चित्र और मूर्तियाँ रोज देखूं और धीरे-धीरे उनका अध्ययन करूँ। सलीबपर चढ़े हुए ईसाकी मूर्ति देखी। उसने मुझे सबसे ज्यादा अर्कषित किया, यह तो मैं लिख ही चुका हूँ।

लेकिन वहाँकी कला भारतसे अधिक ऊँची है, ऐसा मुझे बिलकुल नहीं लगा। दोनों भिन्न रीतिसे विकसित हुई हैं। भारतकी कला कल्पना-प्रधान है। यूरोपकी कलामें यथार्थका अनुकरण है। इससे पश्चिमकी कलाको समझना तो शायद सरल हो; लेकिन समझनेके बाद वह हमें पृथ्वीपर चिपकाये रखती है। और भारतकी कला जैसे-जैसे समझमें आती है, वैसे-वैसे वह हमें ऊँचाईपर ले जाती है। यह सब तेरे जैसे लोगोंके लिए ही लिखा है। इन विचारोंकी मेरे लिए कोई कीमत नहीं है। हो सकता है कि भारतके बारेमें मेरा छिपा पक्षपात यह लिखवाता हो, या मेरा अज्ञान मुझे कल्पनाके घोड़ेपर चढ़ाता हो। लेकिन ऐसे घोड़ेपर चढ़नेवाला अन्तमें तो गिरेगा ही न?

ऐसा होते हुए भी अगर इसमें से तुझे कुछ मिले तो ले लेना। तू इससे आगे बढ़ गई हो तो इसे फेंक देना। अपनेसे कम जाननेवाले बालकोंके समक्ष माता-पिता, जैसी उन्हें आती हैं, वैसी रामायण-महाभारतकी कहानियाँ कह सकते हैं और अपने बच्चोंकी जरूरत पूरी कर सकते हैं। ऐसा ही मेरे बारेमें भी समझना।

इससे तू इतना तो देख ही सकेगी कि मैं कलामें रस जरूर ले पाता हूँ। लेकिन ऐसे तो अनेक रसोंका मैंने त्याग किया है: मुझे करना पड़ा है। सत्यकी खोजमें जो रस मिले, उन्हें जी-भरकर मैंने पिया है, और अब भी नया रस पीनेको तैयार हूँ। सत्यके पुजारीको सहज ही काम प्राप्त हो जाता है। इसलिए वह स्वभावत: 'गीता' के तीसरे अध्यायका अनुसरण करनेवाला होता है। मैं मानता हूँ कि तीसरा अध्याय पढ़नेसे पहले ही मैं कर्मयोगकी साधना करने लग गया था।

१. प्रेमाबहन कंटकने गांधीजीकी रोम और कलात्मक महत्त्वके अन्य स्थानोंकी यात्राका विवरण माँगा था।

लेकिन यह तो विषयान्तर हुआ।

आश्रमके बारेमें अच्छा प्रश्न पूछा है।[1] आश्रममें उद्योग प्रधान है, क्योंकि मनुष्यका धर्म शरीर-श्रम करना है। जो ऐसा नहीं करता, वह चोरीका अन्न खाता है। फिर आश्रमका श्रम जितना अपने लिए है, उतना ही परमार्थके लिए भी। चरखेको केन्द्र-बिन्दु बनाया है, क्योंकि भारतके करोड़ों लोगोंके लिए खेतीके सामान्य सहायक धन्धेके रूपमें केवल इसीकी कल्पना की जा सकती है। इसमें धर्म और अर्थ दोनोंकी भली-भाँति रक्षा होती है।

आश्रमका अस्तित्व केवल देशसेवाके लिए ही नहीं है, बल्कि देशसेवाके द्वारा जगतसेवा करनेके लिए है और जगतसेवाके द्वारा मोक्ष प्राप्त करनेके लिए और ईश्वरका दर्शन करनेके लिए है।

आश्रममें हर कोई भरती नहीं हो सकता। आश्रम अपंगालय नहीं है, अनाथालय भी नहीं है। वह सेवक, सेविकाओं और साधकोंके लिए है। इसलिए जो शरीरसे काम न कर सकें, उनके लिए आश्रम नहीं है। फिर भी जो सेवाभावसे ओतप्रोत हों, फिर चाहे शरीरसे भले ही अपंग हों, उन्हें जरूर आश्रममें लिया जा सकता है। ऐसे थोड़े ही लोग लिये जा सकते हैं। लेकिन जो आश्रममें आश्रमवासीके रूपमें भरती हुए हों, अगर वे भरती होनेके बाद अपंग हो जायें तो उन्हें निकाला नहीं जा सकता। बाह्य दृष्टिसे देखनेपर आश्रमके बहुत-से कार्योंमें विरोधाभास दिखाई दे सकता है, लेकिन अन्तर्दृष्टिसे जाँचनेपर विरोधका आभास उड़ जायेगा। इतनेसे जो समझमें न आये, वह फिर पूछ लेना। और कोई शंकाएँ हों तो वे भी बिना किसी संकोचके पूछना।

विलायतमें फोटो खिंचवानेके लिए मैं कभी-कभी ही खड़ा हुआ था। उसमें व्रतभंग नहीं हुआ, ऐसा मैं मानता हूँ।

मेरे साथ रहनेवाले सब लोग मेरे-जैसे ही होने चाहिए, ऐसा बिलकुल नहीं है; यह इष्ट भी नहीं है। यह तो नकल करने-जैसा हुआ। मुझमें जो-कुछ अच्छा हो, उसमें से भी जितना पचे, उतना ही ग्रहण करनेमें लाभ है। सरदार चाय पीते हैं; उन्हें कौन रोक सकता है?[2] और चाय उनके लिए औषधिका काम करती हो तो? मेरे साथ रहनेवाले यानी मेरे साथी मांसाहारी भी हैं। उनका क्या हो?

जिसे चाय अनुकूल न आती हो अथवा जो उसकी पैदावारसे सम्बन्धित बातोंका विचार करके चायसे दूर रहता है, वही चाय नहीं पियेगा। बा मेरे साथ रहते हुए भी चाय पीती है, कॉफी भी। उसे मैं प्रेमपूर्वक चाय-कॉफी बनाकर पिला भी सकता हूँ; यह कैसे? तेरे प्रश्नमें केवल विनोद है, यह मैं जानता हूँ। लेकिन ऐसा होते हुए भी हम लोगोंमें ऐसी बातोंके बारेमें कुछ भ्रम है और थोड़ी असहिष्णुता है, हमें यह निकाल देनी चाहिए। तुझमें यह दोष है या नहीं, मैं

१. प्रेमाबहन कंटकने पूछा था कि आश्रमके सिद्धान्त क्या हैं और वह जीवनके प्रति ऊपरसे विरोधी दिखाई देनेके दृष्टिकोणोंके उदाहरण देकर इसके बारेमें गांधीजी की राय जानना चाहती थी।

२. प्रेमाबहन कंटकने पूछा था कि वल्लभभाई गांधीजी के साथ जेलमें रहते हुए चाय कैसे पी सकते हैं।

नहीं जानता। लेकिन इस बारेमें मेरे विचार तू जान ले, यह अच्छा है। और तो बहुत-कुछ इस बारके दूसरे पत्रोंमें है। वे तुझे पढ़नेको मिलें तो पढ़ना और उनपर विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२६९)से। सी० डब्ल्यू० ६७१७ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

५८. पत्र : रमाबहन छ० जोशीको

२५ जनवरी, १९३२

चि० रमा[1]

तुम्हें लिखे बिना नहीं रह सकता। मुझे तुम्हारे आँसू बहुत बार याद आते हैं। क्या अब मन शान्त है? विमला[2] और धीरू[3] कैसे हैं? गंगादेवी धीरूकी जितनी देखभाल करती है, क्या वह भी उसकी उतनी ही सेवा करता है? दोनोंका झगड़ा कुछ कम हुआ?

छगनलालसे कहना कि समाचारपत्र पढ़कर मैं खुश हुआ था। अब उसे जेलमें 'गीता' याद करनेका समय मिले तो वह उसे याद कर डाले।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३३४)से।

५९. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२६ जनवरी, १९३२

चि० जमना,

तुम्हारा पत्र मिला। दुर्बलता और अतिसारके तीन उपाय हैं। दही और फल ही खाना। फलोंमें नारंगी, जामुन, अनार, पपीता, अनन्नास, हरे अंगूर। भूखे पेट कटिस्नान और सुबहके समय भूखे पेट ही सूर्यस्नान करना। एक वक्तमें दही कम ही लेना। चार बार लेना। न पचे तो कम कर देना और यह आशंका मत करना कि इससे दुर्बलता बढ़ेगी।

१. छगनलाल जोशीकी पत्नी।
२. और ३. छगनलाल और रमाबहन जोशीके बच्चे।

काम करनेकी बहुत इच्छा हो तो हमारे यहाँ तो हलका-भारी सभी तरहका काम पड़ा हुआ है। सेवाभावसे किये गये सभी कामोंका मूल्य एक-सा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५०) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

६०. पत्र : नारणदास गांधीको

मंगलवार, २६ जनवरी, १९३२

चि० नारणदास,

पिछले कारावासका मेरा सूत वहाँ बुननेके लिए भेजा था। यदि बुन लिया गया हो तो लिखना। उसका अंक क्या था और बुननेमें ठीक था या कमजोर।

रामजी वगैरह कहाँ हैं? वहाँ कितने बुनकर रह रहे हैं? आश्रममें हर महीने कितना काता जाता है, कितना बुना जाता है? क्या सूतके प्रकारमें कुछ सुधार हुआ है?

मैं विलायतसे जो किताबें लाया था, क्या जानते हो उनका क्या हुआ?

देखता हूँ, कागज पैडके नीचे रखा रह जानेसे 'गीता' का १४ वाँ अध्याय[1] रह गया था; आज भेज रहा हूँ।

प्रेमाबहनके पत्रसे जाना कि तुमने मूँगफली खाकर शरीरको थोड़ा-बहुत बिगाड़ लिया है। मूँगफली न खाओ, यह मेरा आग्रह है। तेलवाला कोई फल खाना ही हो तो बादाम ही खाना चाहिए। मैं दूसरी चीजकी सलाह नहीं देता। बादाम अधिक-से-अधिक ५ तोला लेना चाहिए। यदि दूसरी कोई पौष्टिक खुराक न लें तो ५ तोला लेनेमें बहुत खर्च नहीं आता। ठीक तो यही लगता है कि अगर रोटी आदि न लेनी हो तो, जैसा मैंने कुसुमको बताया है, दूध, फल और कच्ची सब्जियाँ लो। या फिर रोटी, शाक और दूध या दही तथा थोड़ी कच्ची सब्जी — यह पूर्ण भोजन हो जाता है। बीचमें कभी-कभी दूध, रोटी छोड़नेसे फायदा तो होता ही है। दो-तीन दिन केवल फलाहार कर लें। तब कोई तेलवाला फल नहीं लेना चाहिए। आजकी खोज तो यह कहती है कि आदमीको दाल और दूध-जैसी पौष्टिक खुराककी जरूरत कम ही है। अनेक रोगोंकी उत्पत्ति पौष्टिक, स्निग्ध और श्वेत सारयुक्त पदार्थ खानेसे होती है। कह सकते हैं, ऐसा सिद्ध हो गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२०४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए "गीता-पत्रावली", २१-२-१९३२

६१. पत्र : नारणदास गांधीको

२७ जनवरी, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मीराबहन वगैरह आकर मिल गये। महावीरके पत्रके अनुसार सबको दार्जिलिंग भेज देना और उन्हें खर्च दे देना। वालजीभाईसे कहना कि वे अनुवाद[1] भेज सकते हैं। सुधार करनेके बाद वापस भेजने देते हैं या नहीं, सो देखूँगा। सुरेन्द्रको धन्यवाद। उसे बहुत चोट तो नहीं पहुँची।

शेष अगले हफ्ते। आज पत्र[2] भेजा था, मिला होगा। उसके साथ १४वाँ अध्याय जो रह गया था, भेजा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एन० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२०५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

६२. एक पत्र

२८ जनवरी, १९३२

प्रिय,

आपका यह कहना कि अनेक लोग प्रार्थनाको अर्थ समझे बिना ही दुहराते हैं, सही है। इस दोषको दूर करनेका बहुधा प्रयत्न किया गया है। लेकिन ऐसी जगह जहाँकी कोई आबादी जंगम हो, यह काम कर पाना कठिन है। प्रार्थनाके भावसे किन्हीं शब्दोंको दुहराना अपने-आपमें बुरी चीज नहीं है। वह उस संगीतकी तरह है, जिसमें कोई शब्द नहीं होते। शब्दोंके अलावा संगीतका अपना एक अलग असर होता है। अलवत्ता वचावमें यह बात कहना सिर्फ वहींपर सही है जहाँ कोई मिथ्याचार न हो और मन सचमुच प्रार्थनाके स्वरमें बँधा हुआ हो।

यदि मैं गलतीपर नहीं हूँ तो जानवरोंको जूठन इसलिए नहीं दी जाती क्योंकि यह उनके स्वास्थ्यके लिए हितकर नहीं है। उन्हें वैज्ञानिक ढंगसे [चारा आदि] खिलाया जाता है। जूठनको भूमिके अन्दर दबा देनेसे वह बेकार नहीं जाती। वह खाद बन जाती है। सही बात तो यह है कि अन्न बिलकुल बरबाद ही न हो। हम गरीबों-जैसा जीवन बितानेकी कोशिश करते हैं, अतः थालियोंमें उतना ही भोजन

१. आश्रम-व्रत सम्बन्धी प्रवचनोंका; देखिए खण्ड ४४, पृ० ४१।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

परोसना चाहिए जितने कि जरूरत हो। मैं जानता हूँ कि यह सब-कुछ कर पानेमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं।

आपका,

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९२०) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

६३. एक पत्र

२८ जनवरी, १९३२

भाई,

मैंने 'गीता' पर जो-कुछ लिखा है, आप उससे ज्यादा और क्या चाहते हैं? विचार विकारी चित्तमें ही उठते हैं। यहाँ विकार शब्दको विस्तृत अर्थमें लेना चाहिए। विकार अर्थात् कोई भी फेरफार। समाधिमें अच्छे-से-अच्छे विचार भी मनमें नहीं आते; तो भी समाधि कोई निर्जीव दशा नहीं है। ईश्वरको विचार नहीं करना पड़ता क्योंकि वह निर्विकार है। विचारके अभावका अर्थ जड़ता नहीं बल्कि शुद्ध चैतन्य है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता; सिर्फ अनुभवसे जान सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मुझे अनुभव है। यह तो श्रद्धाके आधारपर मेरी मान्यता है। थोड़ी-सी झलक देखी है, ऐसा भी कह सकता हूँ।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९०७) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

६४. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

२८ जनवरी, १९३२

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। जो कुछ हो रहा है, उसमें मुझे कोई नई बात नहीं लगती। यह सब सोचा ही था। अभी तो और बाकी है। तेलकी कड़ाहीमें उबालकर सुधन्वाकी परीक्षा ली गई थी न? सीताको अग्निमें प्रवेश करना पड़ा, प्रह्लादको धधकते हुए स्तम्भका आलिंगन करना पड़ा। जिसकी ईश्वरपर पूर्ण श्रद्धा है, उसकी सहनशक्तिका कोई अन्त ही नहीं है। हाथीको मन और चींटींको कण ईश्वर दे ही रहा है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"[1] 'गीता' का श्लोक है। इसका यही अर्थ है: संसारमें मुझे जो जिस प्रकार भजता है, मैं उसे उसी प्रकार

१. अध्याय ४, श्लोक ११।

देता हूँ। कुएँमें कटोरेसे लेनेवालेको कटोरा-भर और घड़ेसे लेनेवालेको घड़ा-भर पानी मिलता है।

चंचलबहनका काम बहुत बड़ा है। उसे पत्र लिख रहा हूँ। पत्र उसे दे आना या पढ़कर सुना आना। इसे छापना नहीं है।[१]

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–६: गं० स्व० गंगाबहेनने, पृष्ठ ६२। सी० डब्ल्यू० ८७८९ से भी; सौजन्य: गंगाबहन वैद्य।

६५. पत्र: लक्ष्मीबहन ना० खरेको

२८ जनवरी, १९३२

चि० लक्ष्मीबहन,

मुझे बिलकुल ही भूल न जाना। पत्र लिखना। कैसी हो? मथुरी कमजोर क्यों रहती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७९)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

६६. पत्र: अमीना गु० कुरैशीको

२८ जनवरी, १९३२

चि० अमीना,

तेरा पत्र मिला। कल नूरबानूने भी तेरी खबर दी। मुझे विश्वास है कि तुम दोनों अब्बाकी गद्दीके सम्मानकी रक्षा करोगी। ईश्वर तुम दोनोंको लम्बी जिन्दगी दे। मुझे तेरी हिम्मतकी खबर है।

बापूकी दुआएँ

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६०) से। सी० डब्ल्यू० ४३०५ से भी; सौजन्य: हमीद कुरैशी।

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", २८-१-१९३२।

६७. पत्र : मणिबहन न० परीखको

२८ जनवरी, १९३२

चि० मणिबहन,

क्या वहाँ अच्छा लगता है? क्या कानसे पहलेसे कुछ ज्यादा सुनाई देने लगा है? विद्यापीठमें कोई रहता है? नरहरि कैसा है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९६५)से। सी० डब्ल्यू० ३२८२ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

६८. पत्र : शकरीबहन चि० शाहको

२८ जनवरी, १९३२

चि० शकरीबहन,[१]

जबतक यहाँ हूँ तबतक किसी बहनको मुझे [पत्र लिखनेकी परेशानीसे] बचानेका विचार करनेकी जरूरत नहीं है। मैं बाहर होऊँ तो उनके लिखनेसे मेरा बोझ कुछ बढ़ सकता है। मेरे यहाँ रहते हुए तो बाहर न लिखनेका बदला लिया जा सकता है। इसलिए मुझे पत्र लिखना। क्या अब मन शान्त है? बबू[२] कमजोर क्यों रहती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० २९)से।

६९. पत्र : शिवाभाई गो० पटेलको

२८ जनवरी, १९३२

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा क्या हालचाल है? मुझे ब्यौरेवार पत्र लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४२२) से; सौजन्य : शिवाभाई गो० पटेल।

१. चिमनलाल शाहकी पत्नी।

२. शकरीबहनकी पुत्री, शारदा।

७०. पत्र : हरिइच्छा पी० कामदारको

२९ जनवरी, १९३२

चि० हरिइच्छा,

रसिकने लिखा है कि तेरे बेटा हुआ और चार मास जीकर चल बसा। संसार इसी तरह चलता है। जो जन्म लेते हैं, वे सब जीते नहीं और जो जीवित रहते हैं सो भी मरनेके लिए। इसलिए तुझे धीरज क्या बँधाना है! पहली पत्नीके बच्चे हैं, वे भी तो तेरे ही हैं न? बालक जीवित रहता तो तू उसके लिए आशीर्वाद जरूर ले जाती। मुझे मिल गई होती तो अच्छा लगता। अब तो जब ईश्वर मिलायेगा तभी मिलेंगे। इस बीच पत्र लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

सीधा पत्र लिखना चाहो तो लिख सकती हो।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४६८) से। सी० डब्ल्यू० ४९१४ से भी; सौजन्य : हरिइच्छा पी० कामदार।

७१. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

२९ जनवरी, १९३२

चि० जानकीबहन,

मैं तुम्हें केवल देख ही सका। एक शब्द भी बोलनेका समय न मिला। खैर, अब लिखनेका वक्त तो मिलेगा ही। अब तुम भी, जबतक यह सुविधा रहे, तबतक लिखती रहना। कमलनयन[1] किस जेलमें है? उसकी क्या खबर है? मदालसा,[2] ओम[3] पत्र लिखें। तबीयत कैसी रहती है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

सरदार मेरे साथ हैं, यह तो जानती ही हो। हम मजेमें हैं। खाना, सोना और टहलना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २८९४) से।

१. जानकीदेवी बजाजका पुत्र।

२. और ३. जानकीदेवी बजाजकी पुत्रियाँ।

७२. पत्र : नीलकण्ठ बी० मशरूवालाको

२९ जनवरी, १९३२

चि० नीलकण्ठ,

तुम्हारा पत्र मिला। किशोरलाल क्या खाता है? 'यंग इंडिया' मेरे साथ आ गया है। 'गांधी विचार दोहन'[1] भी यहीं होनेकी ज्यादा सम्भावना है। उसे यहाँसे सुधारकर नहीं भेज सकता। इसलिए फिलहाल वह जैसा है, वैसा ही छपा लिया जाये तो कोई हर्ज नहीं। सभी कैदी एक साथ ही रहते हैं न? नाथजी से कहना कि आश्रमका चक्कर लगा आयें। उनकी खाजका क्या हाल है? तुम किशोरलालसे कितनी बार मिल पाते हो? तारा[2] कहाँ है? कैसी है? क्या करती है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

लखू कौन है? मैं भूल गया हूँ।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४१९)से; सौजन्य: नीलकण्ठ बी० मशरूवाला।

७३. पत्र : प्रभावतीको

२९ जनवरी, १९३२

चि० प्रभावती,

तेरा सीवानसे लिखा हुआ पत्र मिल गया है। उससे पहले लिखा हुआ पत्र भी बादमें मिल गया। मेरे पत्र मिलते रहते होंगे। स्वरूपरानीजी[3] से कहना कि स्वरूप और कृष्णा[4] के चले जानेपर भी वे कोई चिन्ता न करें। ईश्वर सबकी खबर रखता ही है। उनकी तबीयत कैसी रहती है? मेरा आहार लगभग वैसा ही है जैसा बाहर था। इस समय वजन १०६ रतल है। सरदार वल्लभभाई साथ हैं। दोनों मजेम हैं। तू कोई समाचारपत्र पढ़ती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४२३)से।

१. किशोरलाल मशरूवाला द्वारा लिखित पुस्तककी पाण्डुलिपि जो उसी वर्ष प्रकाशित हुई
२. तारा मशरूवाला, सुशीला गांधीकी छोटी बहन
३. जवाहरलाल नेहरूकी माँ।
४. पण्डित मोतीलाल नेहरूकी बेटियाँ।

७४. एक पत्र

३० जनवरी, १९३२

चि०,

तुम्हारा पत्र मिला। आनेकी तुम्हारी इच्छा हो और शरीर साथ दे तो जरूर आ सकते हो। किन्तु यह न समझना कि आना जरूरी है। जहाँ आत्माका मेल आत्मासे हुआ है, वहाँ मिलनेके लिए शरीररूपी साधनकी जरूरत उतनी नहीं है। और हम जो अप्रत्यक्ष रूपसे ले-दे सकते हैं, वह प्रत्यक्ष रूपसे नहीं लिया-दिया जा सकता है, इसका मुझे तो नित्य अनुभव हो रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९२१)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

७५. एक पत्र

३० जनवरी, १९३२

चि०,

तुम्हारा पत्र मिला। आश्रम जिस तरह साबरमतीके किनारे है, उसी तरह हमारे हृदयमें भी है। साबरमतीवाला आश्रम तो सरकार ले सकती है, वह बाढ़में डूब सकता है या चोर उसे लूट सकते हैं। किन्तु हृदय-स्थित आश्रमको कोई लूट या जला नहीं सकता। सच्चा आश्रम यही है; इसीको मनमें रखकर बम्बईमें रहो। वहाँ स्वास्थ्यको सँभालकर जिन नियमोंका पालन कर सको, उनका पालन करो। स्वास्थ्य चाहे जैसा रहे, मुख्य व्रतोंका पालन तो किया ही जा सकता है, जैसे कि सत्यादि।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९२२)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

७६. पत्र : मंगला शं० पटेलको

३० जनवरी, १९३२

चि० मंगला,

तूने तो अपनी लिखाई खूब सुधार ली है। 'गीताजी'का क्या हुआ? सभी अध्याय जबानी याद हो गये हैं न? और किसकी याद हुए हैं? 'लाकड़ी'[1] और 'लाड़की'[2] में बहुत अन्तर नहीं लगता, इसलिए कह सकते हैं कि ऐसी 'लाकड़ी' 'लाड़की' तो होगी ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७३) से। सी० डब्ल्यू० ३७ से भी; सौजन्य: मंगला ब० देसाई।

७७. पत्र : महालक्ष्मी मा० ठक्करको

३० जनवरी, १९३२

चि० महालक्ष्मी,

तुम्हारा पत्र मिला।

हवा दूधकी वजहसे भी बन सकती है। ऐसा करो: दूधके बदले दही लेकर देखो। एक बार में आधा सेरसे ज्यादा दही मत लो। उसमें दस ग्रेन सोडा डालो। पूरे दिनमें डेढ़ सेर दही लो। चाहो तो उसके साथ डेढ़ सेर खजूर भी ले सकती हो। खजूर भी एक समय आधा सेरसे ज्यादा न लेना। खजूर गन्दे हों, यह सम्भव है; इसलिए उन्हें धो लेना चाहिए। फिर बीज निकाल लेनेके बाद दहीमें डाल देनेमें कोई हानि नहीं। वे दहीमें डालते ही नरम नहीं पड़ जायेंगे। इसके बाद मैंने जो कच्ची सब्जी बताई है, वह थोड़ी-सी ही खाना। बीचमें प्यास तो लगेगी ही। प्यास लगनेपर पानीमें सोडा और नींबू डालकर पीना। इससे हवा नहीं बनेगी और शरीरमें हलकापन लगेगा। खजूरसे हवा नहीं बनती। दूध ही उसका कारण हो सकता है। दहीसे कब्ज हो जाये तो एक बार दूध ले लेना। दूध ताजा और ठंडा हो तो उसमें भी खजूर डालकर खाओ। खजूर भिगोनेसे नरम हो जाते हैं। ठंडे दूधमें डालकर फौरन खाओगी तो वे सख्त रहेंगे। उनसे शरीर कभी भारी नहीं हो सकता,

१. छड़ी।
२. लाडली।

दूधसे हो सकता है। यदि शरीर-श्रम करना हो तो सिर्फ खजूरसे बहुत दिन काम नहीं चल सकता। माधवजी के पत्रमें मैंने एक सेर खजूर लिखी है। यहाँ उसमें परिवर्तन किया है; अब मैंने तीन सेर दूधके बदले डेढ़ सेर दही या दूध लेनेके लिए ही लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैंने जो मात्रा बताई है, उतनी ही खाना जरूरी न समझना। जो चीज ज्यादा लगे, उसे कम करना। सेरका अर्थ है ४० तोला।

अभी समझ न आया हो तो पूछना। माधवजी को माधवजी क्यों नहीं कहती? श्रीयुत किसलिए?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८१९) से।

७८. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

३० जनवरी, १९३२

बालको और बालिकाओ,

पिछले सप्ताह तुम्हेंडोरिस बहनकी शालाके बारेमें लिखा था। उस शालाके और संस्मरण भी लिख सकता हूँ किन्तु आज वह न लिखकर, मॉन्टेसरी [स्कूलके] बच्चोंके बारेमें लिखता हूँ। मॉन्टेसरीको वृद्ध महिला कहा जा सकता है। उसने बच्चोंकी शिक्षाके काममें ही अपना जीवन अर्पित कर दिया है। वह इटलीकी रहनेवाली है। इटली कहाँ है और आजकल उसका राज्य-शासन किस तरह चल रहा है, यह अपनी शिक्षिकाओंसे मालूम कर लेना। यूरोपका नक्शा सामने रख लेना। उसका आकार ऐसा है, मानो शरीरसे अलग किसीका एक मोटा पैर हो।

लेकिन इस बातको छोड़ दें। हम तो विदुषी मॉन्टेसरीकी शालाकी बात करें। इस महिलाने, जब वह इंग्लैंडमें थी और जब वहाँ उस पद्धतिके अनुसार शिक्षा देनेवालोंका सम्मेलन हो रहा था, मुझे आमन्त्रित किया और यह बताया कि बालकोंको क्या पढ़ाया जाता है और कैसे। पद्धतिकी सबसे बड़ी बात यह बताई कि बच्चे [सब-कुछ] खेल-ही-खेलमें सीखते हैं। इसलिए उन्हें पढ़ाई बोझ नहीं लगती और दूसरी बात, उनकी सभी इन्द्रियाँ — अर्थात् हाथ, पैर, नाक, कान, जीभ, त्वचा और मन, पूरी तरह विकसित हो जाते हैं। उन्हें शिक्षा देनेके क्रमकी व्यवस्था बहुत सोच-विचारकर तय की गई है। इसमें रटकर सीखनेका स्थान ही नहीं है। संगीतका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कसरतके साथ भी संगीत चलता है। नृत्य भी सिखाते हैं। नृत्यमें काफी कसरत होती है। बच्चे बहुत-से काम खुद ही करते हैं और उनमें दिलचस्पी

लेने लगते हैं। मुझे उनकी सबसे अच्छी बात तो यह लगी कि उन्हें मौन रहना और एकाग्र होना सिखाया जाता है। सो इस तरह, कि बच्चे आँखें बन्द करके बैठ जाते हैं और शिक्षिका इतने धीमे बोलती है जैसे कानमें बोल रही हो। बच्चे पूरा ध्यान लगाकर बात सुननेका प्रयत्न करते हैं। जो सुन लेता है, वह चुपचाप पंजोंके बल चलकर शिक्षिकाके पास जा बैठता है। इस तरह, जबतक एकके-बाद-एक बच्चा आकर बैठता रहता है, तबतक सब शांत बैठे रहते हैं। तुम भी ऐसा करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

७९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

३० जनवरी, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। पुस्तकोंकी जो पेटी मैं लाया था, क्या वह वहाँ पहुँच गई है? विद्यापीठमें कोई रहता है? पुस्तकोंकी देखभाल होती है या सब बरबाद हो रही हैं? मासिकपत्र भी बहुत-से तो संभालकर रखने-जैसे होते हैं। बात यह है कि पुस्तकें सँभालनेके लिए पूरा समय देनेवाला एक आदमी होना चाहिए और उसके मातहत दो आदमी होने चाहिए। वरना हमें पुस्तकालयको इतना बड़ा होने ही नहीं देना चाहिए। यह काम विद्यापीठका ही माना जायेगा। यह काम हमारा नहीं है। नहीं है, इसलिए तो विद्यापीठ खोला। नहीं तो आश्रमको ही विद्यापीठ बना डालते। आश्रमका यह क्षेत्र ही नहीं है। आश्रमका काम मुख्यतः आन्तरिक है। विद्यापीठका मुख्यतः बाह्य है और होना भी चाहिए। दोनोंके उद्देश्य एक ही हैं, लेकिन दोनोंकी प्रवृत्तियाँ अलग हैं। इसलिए आश्रममें तो जरूरी पुस्तकें ही रखें; बाकी जिनकी जरूरत पड़े, वे विद्यापीठसे पढ़नेके लिए ले आयें। यह तो जब चैनसे बैठें, तबकी बात है। अभी तो सब-कुछ बाढ़में बहा जा रहा है; और यह अच्छा ही है। बाढ़के अन्तमें भरपूर और काँच-जैसा साफ-स्वच्छ पानी ही रहता है न?

नागपंचमीका उत्सव मुझे याद है। जो उत्तर मैंने उस समय दिया था, उसमें आज भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सिरोंके फूटनेको मैंने पटाखे छूटनेकी उपमा दी है न? और जो आत्माके गुण जानता है, वह तो उसे अक्षरशः मान सकता है। मगर आत्मा मरती नहीं, तो फिर उसके घर या कपड़े भले ही फटा करें, सड़ा करें, जला करें, उससे क्या बिगड़ना है? फिर, आत्मा तो सदा ही पूर्ण है, इसलिए उसे नये घरबारकी कमी नहीं है। समझें तो उसे इनकी जरूरत ही नहीं है। लेकिन यह सब अपने लिए है। इसलिए जहाँ अपने सिर फूटें, वहाँ पटाखे ही फूटते हैं, यह समझना। लेकिन आत्माके लिए अपना क्या और पराया क्या? ऐसा सवाल

नहीं पूछना चाहिए। शरीर है, तबतक थोड़े-बहुत अंशमें अपना और पराया है, ऐसा मानकर ही चलना पड़ेगा। अहं जैसे-जैसे मरता जाता है, वैसे-वैसे अपने और पराया मानकर परायेका भेद कम होता जाता है। पर दूसरोंको मारते रहनेसे यह भेद बढ़ता जाता है। बात जैसे-जैसे समझमें आती जायेगी, वैसे-वैसे नौजवानोंकी तरह बच्चे भी समझदार होते जायेंगे। इसमें धीरजकी जरूरत है। इस बारेमें बच्चोंका पत्र[1] देखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७०)से। सी० डब्ल्यू० ६७१८ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

८०. पत्र : विद्या रावजी पटेलको

३० जनवरी, १९३२

चि० विद्या,

तू पत्र क्यों नहीं लिखती? तेरा क्या हालचाल है? क्या पढ़ती है? किसके साथ दोस्ती है? सबसे ज्यादा अच्छा कौन लगता है? तू कहाँ रहती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२०) से; सौजन्य : रवीन्द्र रावजीभाई पटेल।

८१. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

३० जनवरी, १९३२

बहनो,

आज मैं एक बहनके विषयमें लिखना चाहता हूँ। उसका नाम मॉड रायडन है। अब वह लगभग वृद्ध हो गई है और कुमारिका है। इंग्लैंडमें यह पहली महिला है जिसने धर्मशास्त्रोंके अध्ययनमें ऊँची-से-ऊँची डिग्री प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त आजतक केवल एक ही अन्य स्त्री ऐसी है जिसने यह उपाधि प्राप्त की है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस विषयका अध्ययन बहुत कठिन है। कठिन तो है, किन्तु इस विषयके प्रति स्त्रियोंको कभी ज्यादा आकर्षण हुआ ही नहीं। इसके द्वारा ज्यादा प्रतिष्ठा आदि नहीं प्राप्त की जा सकती। मॉड रायडनने इस विषयका इतना गहरा अध्ययन तो किया ही है, उससे भी बड़ी चीज यह है कि उसने अपना सारा जीवन

१. देखिए पिछला शीर्षक।

गरीबोंकी सेवामें अर्पित किया है। म्यूरियलकी भाँति उसके मनमें भी काले और गोरेका कोई भेद नहीं है। अपने ही परिश्रमसे उसने एक गिरजाघरका निर्माण कराया है, जहाँ गरीबोंको आश्रय मिलता है और जहाँ उनकी सभाएँ होती हैं। ऐसी सेवाके कारण ही इस बहनके सम्मानमें बहुत वृद्धि हुई है। उसकी विद्वत्ताका आदर तो कम ही हुआ है, किन्तु उसने गरीबोंकी जो सेवा की है, उससे उसे बहुत ही यश मिला है। उसकी भाषण-शक्ति भी ज्यादा है। उसके चरित्रके विषयमें तो कहना ही क्या? सारा काम वह अपनी ही जिम्मेदारीपर करती है। वह अपनेको अबला या किसी भी तरह कमजोर तो मानती ही नहीं। उसने देशाटन भी बहुत किया है और इस तरह बहुत अनुभव प्राप्त किया है। सम्भव है कि हमारे कामके लिए वह भारत भी आये। सवाल इतना ही है कि उसे अपने कामसे इस यात्राके लिए फुरसत मिलेगी या नहीं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

८२. एक पत्र

३० जनवरी, १९३२

चि०,

विवाह कार्यमें आश्रममें रहनेवालोंको हरगीज बुलाने नहिं चाहिये और उसमें जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते है उसको विवाहके साथ कैसे संबंध हो सकता है। इसलिए हर प्रकारसे तुमको उस विवाहसे दूर रखना चाहिये। द्रढ़तासे इतना लिखो।

बापुका आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ८९२३)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

८३. पत्र : मीराबहनको

३१ जनवरी, १९३२

तुम सबके आनेकी बात कलकी-सी मालूम होती है।

मुझे खुशी है कि तुम राधाके इतने निकट सम्पर्कमें आ रही हो। उसमें एक नेक स्त्री बननेकी सम्भावनाएँ हैं। तुमने मुझे बताया है कि तुम शामकी प्रार्थनाके समयका पालन नहीं कर सकतीं। ऐसा है तो तुम्हें समय बदलकर उसकी पाबन्दी नियमित रूपसे करनी चाहिए। हाँ, आश्रमकी प्रार्थनाके समय कुछ क्षणोंके लिए प्रार्थनाका ध्यानकर लिया करो। यह केवल सुझाव ही है। इसपर अमल करनेका उत्तम ढंग तुम अच्छी तरह जानती हो।

कृपया नरगिसबहनसे कहो कि मुझे लिखें। अन्य तीनों बहनोंके बारेमें भी सब बातें लिखो।

हमारी तबीयत अभीतक अच्छी है। मुझे अब भी जितनी नींद मिल सके या जितनी मैं ले सकूँ, उसकी आवश्यकता है।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१३) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६७९ से भी।

८४. पत्र: नारणदास गांधीको

रात, २८ जनवरी/१ फरवरी, १९३२

चि० नारणदास,

देखता हूँ कि दाहिना हाथ बहुत काम नहीं देता, इसलिए दोनों हाथोंसे काम लेनेका विचार कर रहा हूँ। थोड़ा समय तो लगेगा; पर यहाँ तो समयका अभाव नहीं मानना चाहिए। दूसरे काम कम करूँगा। चंचलबहनको, जिसके बेटे विसूका देहान्त हो गया है, पत्र लिखा है। वह पत्र न छपाया जाये, न उसपर चर्चा हो। मेरा काम विश्वासपर चलता है। छुपाकर कुछ नहीं करता। इस पत्रके बारेमें बात करूँगा। संवेदना-पत्र लिखनेमें कुछ अनुचित नहीं दिखाई देता; पर ऐसा पत्र छप जाये तो वह अनुचित होगा। वह प्रचार होगा। इसीलिए मैंने गंगाबहनको लिखा है[1] कि चंचलबहनके पढ़ लेनेपर पत्र वापस ले लें। मेरे पत्र किसी अखबारके लिए नहीं हैं। 'आश्रम समाचार' में नीति सम्बन्धी या मेरे स्वास्थ्य-सम्बन्धी जो अंश छापते हो, वह ठीक है।

पारनेरकर अभी शान्त नहीं हुआ। मैं मानता हूँ कि उसकी समस्या नैतिक ही है। तुम बुलाकर उसे आश्वस्त करना। अन्तमें तो वही करना है जो तुम्हें योग्य लगे।

बाग-बगीचा लगाना कोई हाथी पालना नहीं है। यह तो उपयोगी काममें पूँजी लगाना भी है। अंतमें उसपर किया गया खर्च सिरपर नहीं पड़ना चाहिए। बगीचेसे हमेशा जमीनकी कीमत बढ़ जाती है। नमी सोखकर हवा ठंडी बनती है। यह सभीका अनुभव है। झाड़ चुननेमें विचार जरूर करना चाहिए। मैंने तो एक मोटी बात कही। प्रो० त्रिवेदीसे राय लेना। जमीन तो उनकी देखी हुई है। झाड़ोंकी तफसील और उनकी संख्या लिखना। वे कोई बात सुझा सकेंगे तो सुझायेंगे। प्रो० हिगनबॉटमसे भी पूछकर देखना और पट्टणी साहबके यहाँ तो क्यूरेटर होगा ही। उसकी भी मदद ली जा सकती है। आजके कामोंसे इस सबपर विचार करनेका

१. २८ जनवरीके उनके पत्रोंमें, देखिए पृष्ठ ४४।

समय न हो, यह सम्भव है। परिस्थिति ऐसी ही हो, तो मेरे लिखेको भूल जाना। तोतारामजी हमारे सब-कुछ हैं। वे जो कर सकें, वही ठीक।

सोमाभाई कहाँ हैं? भणसाली कहाँ हैं? क्या लीलाबहनकी कोई खबर है? हसमुखरामका क्या हाल है?

दोपहर, २९ जनवरी, १९३२

आज तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। चप्पलके तलेके लिए चमड़ा डाकसे मत भेजना। जब कोई आये तब लेता आये। . . .[1] को अकेले . . .[2] के साथ रखनेमें बड़ा खतरा देखता हूँ। उसके लिखनेमें अतिशयोक्ति हो सकती है लेकिन . . . अपने प्रति भी जिम्मेदार नहीं है। उसपर कब भूत सवार हो जाये, कौन कह सकता है? अगर . . . को उसके साथमें रहने दें तो साथ कोई जवाबदार व्यक्ति होना चाहिए। चिमनलालका अगर . . . पर वश चलता हो तो वह रहे अथवा कोई दूसरा व्यक्ति। . . . में . . . के साथ रहनेकी स्वतन्त्र रूपसे शक्ति होती तो दूसरी बात थी। फिर . . . विषयासक्त भी है। विषयके आवेशमें . . . के साथ बलात्कार करे और . . . को गर्भ रह जाये तो वह बड़े कष्टकी बात हो जायेगी। इन सब बातोंपर विचार करके जो ठीक लगे, सो करना। तुम सारा बोझ उठा सकते हो, इसलिए लिखता हूँ।

अब्बाससाहबको बाहरसे खाना भेज सकनेकी इजाजत है? क्या हम कुछ भेजते हैं? मृदुलाकी तबीयत कैसी रहती है? क्या रणछोड़भाईके बारेमें अखबारकी खबर ठीक है?

बुधाभाई और पार्वतीबहनको पत्र लिख रहा हूँ। क्या नानीबहन वहीं है?

रात, १ फरवरी, १९३२

वहाँसे जो कोई मुझसे मिलने आना चाहे, वह डाह्याभाईसे मिलता हुआ आये या उनका सन्देश जान ले। इस तरह दोनोंको नहीं भटकना पड़ेगा और कुछ कहना होगा तो सन्देश भी मिल जायेगा।

इस बार ५७ पत्र हैं। तुम्हारा अलग। 'गीता' का अध्याय भी अलग।

बापूके आशीर्वाद[3]

१. २. नाम छोड़ दिये गये हैं।

३. इसके बाद साधन-सूत्रमें **गीता**के १५वें अध्यायका सारांश है। देखिए "गीता-पत्रावली", २१-२-१९३२।

रात, १ फरवरी, १९३२

चि० नारणदास,

बहनोंसे पूछकर लिखो कि क्या वे साथके सारांशका अर्थ समझ पाती हैं। अधिक सोचनेपर लगता है कि तीसरा प्रयत्न करके और भी सरल सारांश प्रस्तुत करना चाहिए। वैसा कर सकूँगा या नहीं, सो नहीं जानता; लेकिन मैं जिसे पूरा करने जा रहा हूँ, उसपर कुछ टीका-टिप्पणी देखनेको मिले तो वह सहायक हो सकती है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२०६ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

८५. पत्र : मार्कियोनेस कार्ला विटेलस्चीको

२ फरवरी, १९३२

प्रिय कार्ला,

मुझे आपका पत्र मिला। हाँ, आप ठीक कहती हैं। यदि आपके प्रति मेरा भाव मेरी अपनी पुत्री-जैसा ही न होता, तो उस दिन सुबह जिस कड़ाईसे मैंने आपसे बात की, वैसी न की होती। आपने जो कदम उठाया है, उसकी अब मुझे खुशी है। मुझे पूरा निश्चय है कि आपका स्थान आपके पतिके पास ही है। आप अपने अनिश्चय और अस्थिर स्वभावको दूर कर दें।

जब भी आप चाहें, पत्र लिखें।

ईश्वर आपको प्रकाश और शान्ति दे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

आपका पूरा नाम मुझे याद नहीं है इसलिए मैं लिफाफेपर आपका विवाहसे पहलेका ही नाम लिख रहा हूँ।

मदाम कार्ला,
ओतेल देजाँजेनर
५२, रू ब्लांश
पेरिस मौंमात्रे,
फ्रांस

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५११) से।

८६. पत्र : प्रेमलीला ठाकरसीको

२ फरवरी, १९३२

प्रिय बहन,

तुम्हारे पाससे प्रसाद मिलता रहता है। मैं तुम्हारे प्रेमको समझता हूँ; पर कुछ दया करो। हम दोनोंको यहाँ सब-कुछ मिल जाता है। यहाँ जो खर्च होता है, वह भी तो देशका ही पैसा है। मुझे जिस चीजकी जरूरत होगी, वह तुम्हारे पाससे मंगवानेमें संकोच नहीं करूँगा। . . .[1] से कहलाया तो था कि बार-बार फलादि न भेजा करो। उसपर भी आते ही रहते हैं। इसीलिए यह लिख रहा हूँ। तुमने यात्राके लिए जो शहद भेजा था, वह मैंने बहुत दिनोंतक खाया था। शहद अच्छा था।

मोहनदासके वन्देमातरम्

लेडी विट्ठलदास ठाकरसी
यरवदा हिल

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८२१)से; सौजन्य : प्रेमलीला ठाकरसी।

८७. पत्र : पी० जी० मैथ्यूको

३ फरवरी, १९३२

प्रिय मैथ्यू,

तुम्हारा पत्र मिला। देखता हूँ कि तुम हमेशाकी तरह अबतक शर्मीले बने हुए हो। इस शर्मको छोड़ दो और निस्संकोच लिखो।

मुझे खुशी है कि तुम तिलककी देख-भाल कर रहे हो और भारतनकी भी जिम्मेदारी ले ली है।

तुम्हें जरूर कोशिश करनी चाहिए और मुझे चंद पंक्तियाँ हिन्दीमें लिखनी चाहिए। परशुरामने मुझे लिखा है कि तुमने प्रगति की है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५४८)से।

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

८८. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

३ फरवरी, १९३२

भाई वालजी,

आश्रममें तोतेको कोई पींजरमें नहि रख सकते हैं।

यदि कोइ पूरे तो मन्त्री उसे छोड़ देगा। तोताको यदि मौका मिला तब तो वह उड़ हि जायगा।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४१८) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

८९. एक पत्र

३ फरवरी, १९३२

भाई,

कोई भी करनेके समय सत्य, अहिंसासे अतिरिक्त ईश्वरार्पण बुद्धिकी भावना रखना और केवल सेवावृत्तिसे ही करना।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ८९३२)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

९०. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

३ फरवरी, १९३२

चि० शारदा,

तेरी चिट्ठी मिली। अक्षर तो तूने सुधार लिये हैं। किन्तु वजन बहुत कम है। ८ बजेके बाद धूपमें बैठ जाया कर। पहले ओढ़कर और फिर जैसे-जैसे धूप चढ़ती जाये और ठंड न लगे, तब कपड़े उतारकर फिर शरीरकी मालिश की जाये। ऐसा करेगी तो ठंड महसूस ही नहीं होगी। कॉडलिवर आयल गंगाबहनकी चिकित्साके दरम्यान भले ही न लिया जाये किन्तु शरीरपर तो उसकी मालिश इस अवधिमें भी की जा सकती है। कहते हैं, इससे भी फायदा होता है।

दूध कितना पीती है?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९०५)से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला।

९१. पत्र : मीराबहनको

दुबारा नहीं पढ़ा

४ फरवरी, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा इरादा इस पत्रको सीधा ही डाकमें डलवानेका है। तुम्हारी तन्दुरुस्तीका जो हाल दामोदरदासने सुनाया, उससे मुझे बैचैनी हुई। उसने बताया और तुम्हारे पत्रसे उसका समर्थन होता है कि तुम बहुत ही सरगरमीसे काम कर रही हो।[1] तुम्हें रफ्तार धीमी कर देनी चाहिए। तुम्हें रोज आधी राततक जागकर प्रातः ४ बजे नहीं उठना चाहिए। अगर आधी राततक काम करना जरूरी हो, तो प्रार्थनाके बाद तुरन्त पूरा आराम लेना चाहिए।[2]

अगर हर सप्ताह यरवदा आनेसे तुम्हारे चित्तको शान्ति मिलती हो, तो तुम जरूर आ जाया करो। मैंने कोई मनाही नहीं की है। मैंने इस मामलेमें केवल अपनी भावना प्रकट कर दी है। कैदी कैदी ही हैं। इस वक्त तो अधिकारियोंने हफ्तेवार मुलाकातोंकी इजाजत दे रखी है, और अभीतक मुझे इस इजाजतका उपयोग न करनेके लिए कोई कारण नहीं दिखता। लेकिन यह ज्यादा-से-ज्यादा एक अनिश्चित विशेषाधिकार है, जिसपर बहुत भरोसा नहीं करना चाहिए। एक कैदी और उसके इष्ट मित्रोंके लिए संयम ही उत्तम वस्तु है। परन्तु संयम वही है, जिससे शक्ति मिले। अशक्ति या उदासी आती हो, तो वह यान्त्रिक या ऊपरसे लादा हुआ बन जाता है। अगर तुम संयमके सौन्दर्यको समझ लो और समझनेके बाद उसका स्वाभाविक रूपमें पालन करो, तभी तुम यहाँ कम आओगी। अगर इससे तुम्हें उदासी होती है, तो समझ लो कि यह प्रयत्न तुम्हारे लिए भारस्वरूप और अस्वाभाविक है। उस सूरतमें तुम्हें जरा भी संकोच न रखकर आना ही चाहिए।

मेरा वजन एक पौंड बढ़ा है। अब १०७ पौंड है। वल्लभभाईका वही १४४½ पौंड़ है। शहद फायदा करेगा।

प्रिवा-दम्पतीका एक छोटा-सा पत्र मुझे मिला है।

घरमें और कौन-कौन महिलाएँ हैं?

नरगिसबहन, जालभाई और कमलाको मेरा स्नेह। क्या कमला पंचगनी नहीं जा रही है?

१. "मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलनके बारेमें जितने अधिकृत समाचार मिल सकते थे, इकट्ठे करनेके काममें लगी हुई थी। उन्हें चुनकर और सम्पादन करके साइक्लोस्टाइलमें प्रतियाँ निकालकर विदेशोंमें भेजती थी" — मीराबहन।

२. "प्रार्थनाका वक्त सामान्यतः ४ बजे सुबहका था" — मीराबहन।

आश्रमकी डाकमें मेरे दूसरे पत्रकी आशा न रखना।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१४) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६८० से भी।

९२. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

४ फरवरी, १९३२

चि० निर्मला,[1]

यह सही है कि कुछ लोगोंको खुशीमें रोने और दुःखमें हँसनेकी आदत होती है। प्रयत्न तो यही करना है कि दोनों स्थितियोंमें न हँसें, न रोयें।

तुमने कौन-कौनसे निबन्ध लिखे हैं? सातवींकी पुस्तकमें कौन-सी कविता बहुत अच्छी लगी?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६३) से।

९३. पत्र : मीराबहनको

५ फरवरी, १९३२

चि० मीरा,

आखिरकार तुमको पत्र लिखनेका एक बहाना फिर मुझे मिल गया।

क्या तुम जानती हो कि उन खिलौनोंका क्या हुआ जो डोरिसके बच्चोंने मुझे भेजे थे और जिन्हें यहाँ अपने बच्चोंको देनेके लिए मैंने तुमसे रखनेको कहा था। यदि तुम जानती हो कि वे कहाँ हैं और यदि वे आसानीसे ढूँढे जा सकते हैं तो बच्चोंको दे देना।

दूसरी बात है किताबोंवाली पेटीकी। क्या तुम्हें कुछ अन्दाज है कि प्यारेलाल या महादेवने वह पेटी आश्रम या विद्यापीठको भेजी है या नहीं? शायद मणिलाल जानता है। यदि तुम्हें इस कामको करना-करवाना तो दूर, इसके बारेमें सोचने तकका भी समय न हो तो परेशान न होना।

आशा है कि मैंने कल जो पत्र[2] लिखा था, वह सीधा तुम्हें मिल गया होगा। यद्यपि यह पत्र आज [शुक्रवारको] लिखा जा रहा है, मंगलवारको ही डाकसे भेजा जायेगा।

१. महादेव देसाईकी सौतेली बहन।

२. देखिए "पत्र: मीराबहनको", ४-२-१९३२।

स्मरण रहे कि मैं सीधे तुम्हें जो भी पत्र लिखूँ, उन्हें तुम दूसरे आश्रमवासियोंको भी पढ़नेको देती रहना।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१५) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६८१ से भी।

९४. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

५ फरवरी, १९३२

प्रिय मेजर भण्डारी,[1]

मैं देखता हूँ कि आपके पास २०० से ऊपर सत्याग्रही कैदी 'एक्सटेन्शन' में हैं। इनमें से कई-एक मेरे अन्तरंग सहयोगी हैं। आपके पास पूनाके कुछ लोग पहले ही से थे, यह मैं जानता था। लेकिन चूँकि वे प्रमुख नेता थे इसलिए मैंने उनसे मिलनेकी माँग नहीं की। लेकिन अब बड़ी संख्यामें जो सत्याग्रही दाखिल हुये हैं, उनसे कभी-कभी मुलाकातकी इच्छा इनसानियतका एक ऐसा तकाजा है जिसे मैं शायद दबाऊँगा नहीं। ठीक यही सवाल पिछले साल उठा था और मेजर मार्टिनके साथ और फिर मेजर डॉयलके साथ बातचीतके बाद मुझे इन कैदियोंसे कभी-कभी और दो या तीनके छोटे-छोटे समुदायोंमें मिलनेकी इजाजत दे दी गई थी। मैं फिरसे वही विनती करता हूँ और आशा है कि निस्सन्देह पिछले ही साल-जैसी मर्यादाओंके तहत, इन साथी कैदियों और सहयोगियोंसे मेरे भेंट करनेपर अधिकारियोंको कोई आपत्ति नहीं होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५१३१) से।

१. अधीक्षक, यरवदा सैन्ट्रल जेल।

९५. पत्र : अब्बासको

५ फरवरी, १९३२

चि० अब्बास,

तेरा पत्र मिल गया है। तूने बाँसके चरखेका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। यह बहुत सस्ता माना जायेगा। मुझे तो पेटीवाला गाण्डीव बहुत पसन्द आ गया है। तेरी कताईकी गतिमें कोई वृद्धि हुई है क्या? पिंजाईके बारेमें तेरी बात समझ गया। क्या ओटाईकी मशीनमें कुछ सुधार किया है? हम अब कितने अंकतक का सूत बुन पाते हैं?

बापूके आशीर्वाद और दुआ

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३०६) से।

९६. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

५ फरवरी, १९३२

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारी ओरसे चि० कनु-द्वारा लिखित पत्र मिला।

अब तो तुम्हें अपने कर्त्तव्यका भान होना ही चाहिए। जिनकी प्रतिज्ञा ली है, उन नियमोंका पालन पूरी तरहसे करना चाहिए। जिसने जो अधिकार[1] स्वीकार किया हो, वह उसे छोड़ें नहीं। अधिकार तो हमारे लिए ज्यादा सेवा और ज्यादा संयमके पालनका साधन होना चाहिए। और किसीका भी सेवाके पदसे यों ही जल्दीमें त्यागपत्र दे देना उचित नहीं हो सकता। तुमने नियम-भंगके लिए जो प्रायश्चित्त निश्चित किये हैं, वे अच्छे हैं। अब उनपर दृढ़ रहना चाहिए।

डोरिसबहनकी शालाकी थोड़ी-सी बात लिखनी बच गई थी,[2] वह आज लिख रहा हूँ। एक बार उनकी शालाके बच्चोंका एक समारोह था। विलायतके लोगोंमें इकट्ठे होकर चाय पीने और कुछ खानेका रिवाज है। इस समारोहमें बच्चोंका काम प्रदर्शित किया गया था। बालकोंको सबके सामने खेलोंका प्रदर्शन करना था और सबको नाश्ता परोसना था। यह सब काम उन्होंने बिना घबराये या शोरगुल किये कर दिखाया। उन्हें नाच, कसरत और कुछ संवाद बोलकर दिखाने थे। छोटे-छोटे

१. अर्थात्, जिम्मेदारीका पद।

२. देखिए "पत्र: आश्रमके बच्चोंको", पृष्ठ ३६।

बच्चोंको चाय आदि सबको परोसना बहुत अच्छा लग रहा था। खयाल रहे कि ये सभी आठ वर्षसे कम आयुके थे। इन बालकोंका एक तश्तरीमें चायके प्याले, खानेकी चीजें, आदि रखकर घूमना कोई साधारण बात नहीं मानी जा सकती। यह सब करते हुए किसीने कुछ गिराया हो, यह मैंने नहीं देखा। उनके बनाये चित्र, की हुई सिलाई, कढ़ाई, आदिके नमूने भी अच्छे थे। उन्होंने मेरे लिए एक ऐलबम तैयार किया था। इसे भी तुम्हारे लिए लाया तो हूँ, पर यह सब अब तो [मेरे ही पास] रह ही गया। मैं चाहता हूँ तुममें से कोई इन बच्चोंको पत्र लिखें; वह चाहे गुजरातीमें हो या हिन्दीमें; फिर कोई उसका अनुवाद कर दें। मूल पत्र अनुवादके साथ भेज सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

पता है:
द्वारा कुमारी डोरिस लेस्टर
चिल्ड्रन हाउस
लन्दन ईस्ट

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८९२७ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

९७. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

५ फरवरी, १९३२

बहनो,

अब तो तुम्हारी संख्या बहुत कम रह गई है। किन्तु दुनियामें ऐसा ज्वार-भाटा तो आता ही रहता है। 'गीता-माता' हमें सिखाती है कि उतार-चढ़ाव, ठंड और गर्मी, सुख और दुःख — इन्हें समान समझना चाहिए। इस समय हमें 'गीता-माता' की इस शिक्षाका पदार्थ-पाठ मिल रहा है। यदि हम उसे पचा सकें तो हमारा उसकी गोदमें सिर रखना सफल हुआ कहा जा सकता है।

मैंने देखा है कि कुछ बातोंमें यूरोपके लोग 'गीता' की शिक्षासे अपरिचित होते हुए भी उसके अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं। अभी तो एक ही बात याद आ रही है; उसे यहाँ लिख देता हूँ। लन्दनके बाहर जहाँ-जहाँ मैं गया और वहाँ जिन मित्रोंके घर ठहरा, वे काफी सम्पन्न लोग थे। उनके यहाँ मैंने देखा कि उनके घरमें जो नौकर थे, वे नौकरोंकी तरह नहीं, बल्कि उनके कुटुम्बियोंकी तरह रहते थे। वे नौकरोंपर कामका ज्यादा बोझ नहीं पड़ने देते, उनके साथ-साथ स्वयं भी काम करते हैं, प्रातःकाल जल्दी उठना हो तो नौकरको उठाए बिना ही अपना काम निपटाते हैं। ज्यादातर घरोंमें मैंने यह देखा कि उनके घरोंके ये नौकर बहुत पुराने

थे। लगभग हर जगह वे लोग मुझसे उनका परिचय कराते थे। उनकी सुघड़ताका तो कहना ही क्या? यह सब देखकर इन मित्रोंके लिए मेरे मनमें जो आदर था, वह और बढ़ गया। इन नौकरोंका वेतन बहुत अच्छा था, इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात है ही नहीं। हमें स्वीकार करना चाहिए कि अपने नौकरोंके साथ हम जो व्यवहार करते हैं, वह व्यवहार इस कोटिका नहीं होता। मुझे तो ऐसा ही लगता है। तुम्हारी भी यही राय है न? साम्ययोग इसीको कहेंगे। अर्जुनने भगवानसे इस योगकी कठिनाई बताई और भगवानने कहा कि यह कठिन तो है किन्तु अभ्यास और वैराग्यसे साधा जा सकता है। हम भी इसे साधें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८९२८ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

९८. पत्र: गंगाबहन वैद्यको

५ फरवरी, १९३२

चि० गंगाबहन (बड़ी),

तुम्हारा पत्र मिला। तुम ठीक काममें लग गई हो। जहाँ हो, वहींसे मुझे लिखते रहना। ईश्वर तो चींटीकी भी रक्षा करता है; वह हमें छोड़ थोड़े ही देगा। वही तो कर्त्ता, हर्त्ता व भर्त्ता है। इसीसे तो पैदा करते हुए या मारते हुए भी वह रक्षा ही करता है।

हमारा तो पूछना ही क्या? खाते, सोते, घूमते तो हैं ही। बीचमें पढ़ाई और कताई, आदि भी चलती है।

जहाँ रहो, प्रार्थना न भूलना। और कुछ न हो तो रामधुन तो है ही।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६: गं० स्व० गंगाबहेनने, पृष्ठ, ६३। सी० डब्ल्यू० ८७९० से भी; सौजन्य: गंगाबहन वैद्य।

९९. एक पत्र

५ फरवरी, १९३२

चि०,

लगता है, जैसे तेरी सारी जिन्दगी बीमारीमें ही कटनेवाली है। ऐसा होना तो नहीं चाहिए। तूने इसकी चिन्ता छोड़ दी लगती है। एक तरहसे यह अच्छा ही है। मगर चिन्ता छोड़नेका यह अर्थ नहीं है कि इलाज ही न कराओ। रोज दवा लेना सही इलाज नहीं है। खुराकमें फेरफार और व्यायाम करनेसे कब्ज तो अवश्य चला जाता है। कैसी खुराक और कैसी कसरत ठीक रहेगी, यह तुझे ढूंढ़ निकालना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९३०) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१००. पत्र: प्रेमाबहन कंटकको

५ फरवरी, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। सरदारने सचमुच चाय छोड़ दी है। सुबहकी तो छोड़ ही दी थी, यह मैं जानता था। फिर दस बजे पीते थे। अब वह भी छोड़ दी है। यह मुझे उनके छोड़ देनेके बाद मालूम हुआ। मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने अपनी इच्छासे ही छोड़ी है।

बच्चोंको विलायतके खिलौने भेजे हैं, ऐसा लिखनेका मेरा इरादा नहीं था। ऐसा अर्थ निकलता है, तो लिखनेमें मुझसे भूल हुई। लिखनेका आशय तो यह था कि मैं खिलौने लाया हूँ। वे कब दिये जा सकेंगे, मैं नहीं जानता। मीराबहनने सँभालकर रखे थे। शायद उसे याद हो कि वे कहाँ हैं।

पुस्तकोंकी पेटी है। उसके बारेमें या तो मीराको या प्यारेलालको मालूम होगा। पेटी खोले बिना ही उसके वजनकी जाँच करनेसे पता चल जायेगा कि उसमें पुस्तकें हैं या और कुछ? शायद महादेवको मालूम हो।

विरोधाभासकी बात ऐसी है। मेरे या आश्रमके जीवनमें जहाँ विरोधका आभास है, वहाँ मेल बताया जा सकता है। सर्दीमें ओढ़नेवाले और गर्मीमें खुला शरीर रखनेवाले मनुष्यके जीवनमें विरोधका आभासमात्र ही है। वह एक ही नियमके

वशीभूत होकर कपड़े पहनता या छोड़ता है। ऐसे विरोधके आभासोंमें से बहुतोंका मेल बैठाया जा सकता है। दूसरी असंगतियाँ तो असंगतियाँ ही हैं। उनका कारण आश्रमकी या मेरी कमजोरी है। इन असंगतियोंको दोष ही माना जायेगा, और उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। कौन-सी असंगतियाँ वास्तवमें असंगतियाँ होनेके कारण दोष हैं या कौन-सी आभासमात्र हैं, यह तो सबको एक-एककर जाँचने बैठें, तभी पता चल सकता है। तुझे जो असंगतियाँ मालूम हुई हों, उनके बारेमें पूछना हो तो पूछना।

मनुष्य अकारण द्वेष नहीं करता। इसलिए यदि कोई द्वेषका कारण उपस्थित करे, तो भी द्वेष न करते हुए उससे प्रेम करना, उसपर दया करना, उसकी सेवा करना ही अहिंसा है। प्रेमीके प्रति किये जानेवाले प्रेममें अहिंसा नहीं है; वह तो व्यवहार है। अहिंसाको दान कहेंगे? प्रेमके बदले प्रेम करना, यह फर्ज अदा करनेके बराबर है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७१) से। सी० डब्ल्यू० ६७१९ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

१०१. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

५ फरवरी, १९३२

चि० पुष्पा,

बहुत दिनोंके बाद तूने पत्र लिखनेकी फुरसत निकाली, इसके लिए मुझे यहाँसे ही तेरी नाक खींचनी चाहिए। यह खींच रहा हूँ। शुक्रवारकी रात है और आठ बजे हैं। नाक खिची या नहीं, सो लिखना। तेरे हिसाबसे तेरी लिखावट अच्छी ही कही जायेगी। अभी और सुधारना। 'गीताजी'में कितनी प्रगति की?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९७८) से।

१०२. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

६ फरवरी, १९३२

प्रिय रामानन्द बाबू,

'मॉडर्न रिव्यू'[1] के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। 'गोल्डन बुक ऑफ टैगोर' कृपया जरूर भेजिए। उसकी अनुमति मिल जायेगी। जब आप गुरुदेवको मिलें, मेरा स्नेह कहें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत रामानन्द चटर्जी
'मॉडर्न रिव्यू'
अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९५०१) से; सौजन्य : शान्तादेवी।

१०३. पत्र : एफ० मेरी बारको

६ फरवरी, १९३२

प्रिय मेरी,[2]

आपका पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। हाँ, मुझे आपके पत्र-जैसे गैर-राजनीतिक पत्र लिखने और पानेकी इजाजत है।

जिस कागजपर[3] आपने पत्र लिखा है, वह मेरे लिए कोई नई चीज नहीं है। अहमदाबाद तो ऐसे कागजोंका घर हुआ करता था। वहाँ अब भी यह तैयार किया जाता है, लेकिन बहुत कम परिमाणमें। भारतमें ऐसे कई स्थान हैं।

'गीता'के द्वितीय अध्यायको समझनेमें कई लोगोंको कठिनाई महसूस हुई है। मैं आपको 'गीता' पर अपनी प्रस्तावना[4] पढ़नेकी सलाह दूँगा। उस प्रस्तावनामें मैंने उक्त कठिनाईको सुलझाया है। अगर आपने उसे नहीं पढ़ा है तो उसकी एक प्रति आश्रमसे प्राप्त कर लीजिए। वह 'यंग इंडिया' में छपी थी। प्रथम तो यह

१. देखिए "पत्र : रामानन्द चटर्जीको", २२-१-१९३२।

२. हैदराबादके समीप मिशन बोर्डिंग स्कूलसे सम्बद्ध, मेरीबहन नामसे मशहूर। गोलमेज-परिषदके समय १९३१ में इंग्लैंडमें जब वे वहाँ अपनी छुट्टियाँ बिता रही थीं, गांधीजी के भाषणों और लेखोंमें दिलचस्पी लेने लगी थीं। वे भारत लौटते समय जहाजपर गांधीजी से परिचित हो गई थीं।

३. हाथका बना।

४. देखिए खण्ड ४१ पृष्ठ ९२-९।

भूल जाइए कि 'गीता' के जरिए ईश्वर बोल रहा है। ईश्वर जब कभी बोलता है, सदोष मानवीय माध्यमके द्वारा ही बोलता है। दूसरे यह, कि 'गीता' को एक ऐतिहासिक पुस्तक नहीं मानना चाहिए। तीसरी बात यह है कि यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी गई है जिसके समयमें युद्ध [प्रचलित धार्मिक मान्यताओंके अनुसार] निषिद्ध नहीं था और वह अहिंसाके साथ असंगत नहीं माना जाता था; जैसे कि आज भी सामान्य तौरपर भोजनके लिए या आत्मरक्षणके लिए जानवरोंको मारना अहिंसासे असंगत नहीं समझा जाता; यद्यपि वास्तवमें वह है अहिंसासे असंगत ही। इसलिए 'गीता' के लेखकने अपना उपदेश हृदयंगम करानेके लिए एक ऐसा दृष्टान्त चुना है जिसे दोषपूर्ण माननेका हमें हक है। खुद मुझे 'गीता' का द्वितीय अध्याय समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। 'गीता' की मूल शिक्षा, बाइबिलकी भाषामें कहें तो, यह है कि किसी भी वस्तुके विषयमें निरर्थक चिन्ता मत करो, फल हमारे बसकी बात नहीं है। कर्त्तव्य-पथको पहचान लेनेपर परिणामकी तनिक भी परवाह न करते हुए उसपर बढ़ते ही जाना चाहिए। अर्जुनका तर्क दोषपूर्ण था और सांसारिक नातोंके प्रति आसक्तिसे पैदा हुआ था। वह युद्धको गलत नहीं मानता था। केवल वह सम्बन्धियोंसे युद्ध नहीं करना चाहता था। धर्मकी ओरसे इस आसक्तिका उत्तर यही होगा, कि न कोई आत्मीय है और न कोई अनात्मीय। या तो यह सारी सृष्टि हमारी आत्मीय है या फिर कोई आत्मीय नहीं है। इसलिए यदि युद्ध करना न्यायसंगत ही है तो इस बातसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह सम्बन्धियोंके विरुद्ध है या अपरिचितोंके विरुद्ध। लेकिन यह स्थूल, बाह्य युद्ध उस युद्धकी छाया मात्र है जो भीतर चल रहा है, — ईश्वर और शैतानके बीच, बुराई और अच्छाईकी शक्तियोंके बीच। और क्या हमारे अन्दर हमेशा ही कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यकी ऐसी कठिन और नाजुक समस्याएँ नहीं उठती रहतीं हैं जिनका सम्बन्ध हमारी अन्तरात्मासे होता है? 'गीता' कहती है, "सब-कुछ ईश्वरपर छोड़ दो। वही तुम्हारी और तुम्हारी शंकाओंकी चिन्ता करेगा; किसी भी बातके लिए अपने-आपको परेशान मत करो, बल्कि जो भी सेवा-कार्य सामने आता है, उसे ईश्वरके नामपर और ईश्वरके लिए करो। परम आत्मत्यागकी भावना पैदा करो और सब ठीक हो जायेगा।" आत्मत्यागकी भावनासे प्रेरित इस अनासक्तिके परिणामरूपमें चरम सत्य और अहिंसा ही फलित होने चाहिए। इस प्रकार पढ़ें, तो मेरी रायमें द्वितीय अध्याय कठिनाई पैदा करनेके बजाय सहायक बन जाता है। यदि इससे आपको सन्तोष नहीं हो और आप इस विषयपर और चर्चा करना चाहें तो कृपया लिखनेमें संकोच न कीजिएगा।

हम लोग [प्रार्थनाके लिए] ब्राह्ममुहूर्त्तके नियमका पालन कर रहे हैं। मेरा मतलब है कि सरदार वल्लभभाई और मैं।

मुझे खुशी है कि आपको आश्रममें अपना अल्पकालीन निवास पसन्द आया। निश्चय ही जब भी आप ऐसा चाहें, वहाँ जायें।

पुस्तकोंको भेजनेकी बातके लिए धन्यवाद। मेरे पास काफी पुस्तकें हैं, मित्र और अपरिचित ऐसी पुस्तकें भेजते रहते हैं जो उनकी समझमें मुझे पढ़ लेनी चाहिए।

'गीता' की कठिनाईके अलावा भी जब चाहो, जरूर पत्र लिखो।[1]

आपका,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९८१) से। सी० डब्ल्यू० ३३०९ से भी; सौजन्य : मेरी बार।

१०४. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

६ फरवरी, १९३२

चि० जयसुखलाल,

तुम मिलकर तो गये, पर बात नहीं हो सकी। वेणीलाल[2] में मन रखा हुआ था, इसलिए एक बार बा को लेकर उससे मिल आया था। अब उसका क्या हाल है? मुझे तफसीलसे लिखना। उमिया[3] कहाँ है, कैसी है? और लड़कियाँ कैसी हैं? कसुंबी[4] के साथ कैसी निभ रही है? कामके बारेमें तो लिखना ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३) से।

१. अपनी पुस्तक, 'बापू-कन्वर्सेशन्स ऐंड कॉरिस्पोंडेंस विद महात्मा गांधी' में मेरी बार लिखती है: "मैंने इस पत्रका जवाब दिया और उसके बाद उनकी तरफसे लम्बा मौन रहा। मुझे उनका कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे विश्वास था कि यदि उन्हें मेरा पत्र मिला होता तो वे जरूर उत्तर देते। इसलिए मैंने फिर लिखा, मात्र एक पोस्टकार्ड, यह पूछते हुए, कि क्या उन्हें मेरा दूसरा पत्र मिला था। उनका जवाब भी उतना ही संक्षिप्त और साफ था"। देखिए खण्ड ५०, "पत्र : एफ० मेरी बारको", १६-८-१९३२।

२. वेणीलाल गांधी।

३. जयसुखलालकी बेटी।

४. जयसुखलालकी पत्नी।

१०५. पत्र : मंगला शं० पटेलको

६ फरवरी, १९३२

चि० मंगला,

अब तो फांस निकल गई होगी ? अध्यायका[1] पाठ करते हुए जहाँ भूल होती हो, वहाँ सुधार लेना। श्लोकोंका अर्थ तो आता है न? कुछ संस्कृत सीखी है या नहीं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७४) से। सी० डब्ल्यू० ३८ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन ब० देसाई।

१०६. पत्र : मथुरी ना० खरेको

६ फरवरी, १९३२

चि० मथुरी,

तू जल्दी उठती है, यह तो मुझे अच्छा ही लगता है, किन्तु तुझ-जैसी दुर्बल लड़कीको तो जब जी करे, तभी सोनेकी छूट है। तुझे तो उतना ही काम करना है, जितना तू थके या उकताये बिना कर सके।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६१) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१०७. पत्र : शिवाभाई गो० पटेलको

६ फरवरी, १९३२

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। प्रार्थनाको तो नहीं भूलना चाहिए। जिस तरह शरीर खुराक माँग लेता है, उसे भूलता नहीं है, उसी तरह आत्माको प्रार्थनाकी लगन होनी चाहिए। [प्रार्थनामें] चाहे सिर्फ रामनाम ही हो, लेकिन उसे भुलायें नहीं। भूल जाते हैं तो मानना चाहिए कि वह उतनी हदतक बाहरकी चीज हो गई; जब कि वह हमारे अन्तरकी वस्तु हो जानी चाहिए और सो भी इस हदतक, कि हर साँसके

१. गीताके।

साथ मुँहसे रामनाम ही निकले। जिस तरह पलकें अपना काम करती रहती हैं, उसी तरह हर श्वास राम-रटन करेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५०७) से। सी० डब्ल्यू० ४२३ से भी; सौजन्य : शिवाभाई गो० पटेल।

१०८. पत्र : वनमाला न० परीखको

६ फरवरी, १९३२

चि० वनमाला,

किसी बच्चेको लिखना न आये तो वह मन्दबुद्धि माना जायेगा। तू मन्दबुद्धि थोड़े ही है। जिस दिन पत्र लिखने बैठे, उसी दिनकी घटनाएँ ही लिख दे, तो भी पत्र भर जाये। इसका जवाब लिखते समय ऐसा ही करके देखना। फौरन लिखने लायक बातें मिल जायेंगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६३) से। सी० डब्ल्यू० २९८६ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

१०९. पत्र : रामजी जी० बधियाको

६ फरवरी, १९३२

भाईश्री रामजी,

आपका पत्र पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई है। शंकरलालभाई जैसा कहें, वैसा करनेका निर्णय बहुत अच्छा है। मुझे तो आपसे बहुत आशा है। जीवनलालका स्वास्थ्य ठीक है, यह जानकर चिन्ता दूर हो गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३) से।

११०. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

६ फरवरी, १९३२

चि० निर्मला,

तूने विलायती कपड़ेके बारेमें जो सवाल पूछा है, उसका जवाब यहाँसे नहीं दे सकता क्योंकि उसका सम्बन्ध राजनीतिसे है। इसलिए यह सवाल तू नारणदास-भाईसे पूछना और उनके जवाबसे सन्तोष न हो, तो जब हम मिलेंगे, तब पूछना।

महादेवसे कहना कि इस तरह वजन कम होते जाना ठीक नहीं। . . .[1] के लिए जैसी खुराककी आवश्यकता हो, वैसी लें। आजकल महादेव क्या पढ़ रहा है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६४) से।

१११. पत्र : रैहाना तैयबजीको

७ फरवरी, १९३२

चि० रैहाना,

तुम्हारा खत पाकर बहुत खुशी हासिल हुई। मैं गलतियाँ तो बहुत करता हूँ। धीरज रखना। जब तुमको थकान आवे तब दुरस्त करनेका छोड़ दो। मैं तो हर हफ्ते लिखनेकी कोशिश करूँगा। शुरू किया है उसे नहीं छोड़ूँगा। मेरी उस्तादनीकी उम्र खुदा दराज करे। बाबाजानसे कहो, हम दोनों दिनमें बहुत दफा उनको याद करते हैं। उनसे कहो, नौजवान होकर जेल महलमें से निकलना है। रविशंकर उनकी सेवामें है, यह अच्छी बात है। हमीदा और दूसरी लड़कियों और बहनोंको मेरे आशीर्वाद।[2]

फिलहाल आजके लिए इतना काफी है न? तुझे भी कितनी तकलीफ दूँ। यदि मुझे उर्दू नहीं आती तो गलती गुरुकी मानी जायेगी। शिष्य बेचारा क्या करे?

अम्माजानको हम दोनोंकी ओरसे बहुत-बहुत सलाम, वन्देमातरम् और प्यार, सुहैलाको आशीर्वाद, बच्चेको बोसा और तुझे चपत। अपने दर्दका खयाल न करना। जिन्हें ईश्वरकी लौ लगी है, उन्हें दर्दकी या दूसरी कोई चिन्ता क्यों होनी चाहिए? 'मैं तो हरिगुण गावत नाचूँगी' — यह भजन जानती है न? मैंने तो इसे उमा नेहरूकी

१. मूल पत्र यहाँ कटा हुआ है। सम्भवत: 'स्वास्थ्य' के आशयका कोई शब्द रहा होगा।

२. पत्रका यह अनुच्छेद उर्दूमें है।

बेटीसे, जो वकील बन गई है, सुना था। वह अच्छा गाती है। किन्तु तुझसे भजनकी बात क्या करना है? तू तो स्वयं उनकी खान है।

बापूकी बहुत-सी दुआएँ

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६३७) से।

११२. पत्र : नारणदास गांधीको

बुधवार ३/८ फरवरी, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा खरीता ठीक आज शामको मिला।

दोपहरको लेडी विट्ठलदास, भाई त्रिवेदी, विद्या हिंगोरानी और दामोदर आकर मिल गये। चप्पलके लिए चमड़ा मिल गया है। रामदास, छगनलाल, सुरेन्द्र, सोमभाई, आदि १९० व्यक्ति यहाँ आ गये हैं, ऐसी खबर मिली है। बहुत करके तो इनमें से कुछसे मुलाकात होगी।

अपनी खुजलीके लिए तुम्हें हरे पत्तोंकी सब्जी और टमाटरका सेवन करना चाहिए। [पोटाशियम] परमेगनेटका स्नान तो ठीक है ही।

सी० पी० स्कॉटके बच्चेके पत्रके नीचे तुमने लिखा है कि स्व० स्कॉटका जीवनचरित्र तुमने बुकपोस्टसे भेजा है। वह यहाँ मिला नहीं लगता। याद हो तो फिर लिखना जिससे यहाँ तलाश की जा सके।

'आश्रम समाचार' में मेरे दो दिनमें ५०० तार सूचित किये गये हैं। मैं दो दिनोंमें ५०० तार नहीं कातता — ५०० गज कातता हूँ। दो दिनोंमें ३३५ तार होते हैं। रोज इतने करनेकी अभिलाषा है। लेकिन जितनी जल्दी सोचता था, यह उतनी जल्दी होते नहीं दिखता।

रात, ६ फरवरी, १९३२

तिलकमका पत्र है। लगता है, उसे खुराक माफिक नहीं आई। उसके नामका पत्र पढ़ जाना। अगर वह मान जाये तो पत्रके अनुसार अमल करना। जिसे माँसाहारकी आदत हो, उसे दाल लागू नहीं होती। दूधसे शुरू करें तो कोई भी नुकसान नहीं होता। वे रोटी आदि तो मांसके साथ ही खाते हैं। मांसके बदले वे दालें लेते हैं; मगर मांसके अभ्यासी पेटको दालें हजम नहीं होतीं। मूँगफली आदि तो लेनी ही नहीं चाहिए। दूध-दही सात्विक माँसाहार ही है।

इसके साथ ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें हिन्दी-लेख है। यह 'यंग इंडिया' के एक लेख[1] के एक भागका अनुवाद है। इतना हिस्सा मैंने ग्रामोफोनके लिए बोल दिया था[2]।

१. देखिए, खण्ड ३७, पृष्ठ ३६१-५।

२. १७ अक्टूबर, १९३१ को; देखिए खण्ड ४८, पृष्ठ ५०८।

८ फरवरी, १९३२

ग्रामोफोनवाले इस रिकार्डको बेचते हैं। उसे आनन्द[1] ने सुना और उसे लिखकर उसका अनुवाद करनेके लिए मुझे प्रति भेजी। यह हिन्दी-लेख उस प्रतिका अनुवाद है। अभी इस अनुवादको छापना नहीं है। आनन्द सिन्धीमें अनुवादकी सहूलियत के लिए हिन्दी रूप चाहता है; यह उसे भेज देना और लिख देना कि इसे वह प्रकाशित न कराये। आश्रमवासी पढ़ सकते हैं। 'आश्रम-पत्रिका' में शायद दे भी सकते हैं। यदि छापो तो मूल लेखके रूपमें छापना। परसराम हिन्दी ठीक कर दें। पत्रिकामें छापने न छापनेकी बात तुमपर छोड़ता हूँ। उसका अनर्थ हो या कोई पत्रिकामें से लेकर अन्यत्र छाप दे, ऐसी सम्भावना हो तो पत्रिकामें देनेकी बात भी छोड़ देना। वहाँ रहनेवाले आश्रमवासी पढ़ें, विचारें, समझें — इतना बस है।

आश्रममें थोड़ी जब्ती करनेका समाचार अखबारोंमें पढ़ा। तुम्हारी ओरसे तफसील मिलेगी।

आज थोड़ा समय है, इसलिए थोड़ी बात यहाँकी लिखता हूँ।

हम दोनों ३.४० पर उठ जाते हैं। दातुन करके तुरन्त प्रार्थना। फिर दोनों गरम पानीमें शहद-नींबू लेते हैं और पाँचका घंटा बजनेतक पढ़ते हैं। पाँचसे छः बजेतक घूमते हैं। छः बजे हाजत हुई तो उससे निपटकर कोई बीस मिनिट सो जाता हूँ। जेलके कैदियोंको खोलनेकी घंटी बजते-बजते यानी ६.४५ के आसपास उठ बैठता हूँ और सात बजेतक पढ़ता हूँ। सरदार शौचसे निवृत्त होकर घूमते रहते हैं और दूध आ जानेपर नाश्तेके लिए बैठते हैं। इस बीच अखबार आ जाता है। वह भी पढ़कर सुनाते हैं। दिनमें मैं पढ़ता, लिखता और कातता हूँ। बीचमें दो बार सो लेता हूँ। सरदार मेरे मुकाबलेमें बहुत ज्यादा घूमते हैं। जो अखबार आता है, उसका ज्यादातर भाग सरदार मुझे पढ़कर सुनाते हैं। मैं दो बार खाता हूँ। सरदार कभी-कभी १२ बजे सलाद या ऐसी कोई चीज लेते हैं। मैं इस समय फिर शहद और गरम पानी लेता हूँ। शहद चुक जाता है तो गुड़ तथा नींबू लेता हूँ। एक बार बात करते-करते मैं यह कह बैठा कि मीराबहन या प्यारेलाल मेरे लिए फल वगैरा तैयार करते थे। तबसे वह सरदारका इजारा हो गया है। अब खजूर, टमाटर वगैरा मेरे लिए वे ही तैयार करते हैं और उसमें अपना सारा स्नेह उँडेल देते हैं। मैंने कोई भी आनाकानी किये बिना यह प्रेमप्रसादी स्वीकार कर ली है। एक बार मीराबहन और प्यारेलालकी बात कह देनेपर इस सेवासे इनकार करना निरर्थक था। सरदार सुबह दूध और डबल रोटी लेते हैं। शामको ४ बजे रोटी, दही, सब्जी और ज्यादातर सलाद। मैं सवेरे दूध और खजूर, टमाटर और लेडी ठाकरसी या प्रो० त्रिवेदीके भेजे हुए फलोंमें से सन्तरे, चीकू लेता था। आजकल खजूर और टमाटर और सवेरे आधा पौण्ड दूध; शामको इतना ही दूध। लेकिन देखता हूँ, मुझे अब दूध

१. आनन्द हिंगोरानी, जिसने इसे सिन्धी भाषामें 'ईश्वर आहे? हा, आहे'–शीर्षकसे बादमें प्रकाशित करा दिया है।

कम करना चाहिए। यह तो जानते हो न, कि मेरा वजन बढ़ गया है? इस तरह लगता है, मुझे ज्यादा पौष्टिक आहारकी आवश्यकता नहीं है — और वह भी जब एकान्तमें और दौड़-धूपके बिना रह रहा हूँ। पिछले वर्ष यह अनुभव कर लिया था। दूधके बिना काम चलाते रहकर वजन टिकाये रह सका था। जेलमें से निकलनेके बाद दूधके बिना वजन एकदम खो बैठा था और दूध लेने लगा था। विलायतमें शक्ति दूधके बलपर ही बनी रही थी। यहाँ कदाचित् दूधकी जरूरत नहीं पड़ेगी। इतना ही नहीं, यह भी सम्भव है कि लूँ तो मुझे नुकसान हो। जबर्दस्ती नहीं करनी है। दूधके प्रति हिचक तो बनी ही है। मगर शरीर माँगेगा तो दूँगा। इसलिए यह पढ़कर किसीको चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है। सरदार एक काम और करते हैं; वह भी बता दूँ। तुम जो लिफाफे भेजते हो, उन्हें सँभालने-संवारनेवाले भी सरदार ही हैं। ऐसी तो बहुत-सी मधुर बातें हैं। लेकिन इतनी ही काफी हैं न? जिस तरह ५ से ६ बजेतक हम घूमते हैं, उसी तरह शामको ५–६ के बीचका समय घूमनेमें लगाते हैं। ६ से ७ तक मैं पढ़ता हूँ। सरदार मेरे लिए खजूर, दातुन, वगैरह तैयार करते हैं और फिर कोठरीमें आ जाते हैं। ७ बजे प्रार्थना शुरू हो जाती है। प्रार्थनाके बाद फिर ८.३० तक पढ़ना-लिखना होता है। रातके ९ बजे दोनों बिस्तरोंमें पहुँच जाते हैं। दोनों खुलेमें आकाशके नीचे सोते हैं। अखबारोंमें 'टाइम्स' [ऑफ इंडिया], [बॉम्बे] 'क्रॉनिकल,' 'ट्रिब्यून,' 'हिन्दू,' और 'लीडर' मिलते हैं। साप्ताहिकोंमें 'सोशल रिफॉर्मर', मासिकोंमें 'मॉडर्न रिव्यू'। पुस्तकें बाहरसे आती रहती हैं और थोड़ी मैं साथ ले आया था। उनसे हम दोनोंकी गुजर हो रही है।

मैं इतना पढ़ चुका हूँ: ड्यूरंट कृत 'इंडिया,'[1] क्रोजियर कृत 'मुझसे दो बोल'[2] ब्रेइल्सफोर्ड कृत 'हिन्दुस्तान,'[3] अल हज़ सालमीन कृत 'इमाम हुसैन' और 'खलीफा अली', सेम्युअल होर कृत 'फोर्थ सील', रैम्ज़े० मैक्डॉनल्ड कृत यात्रा-वर्णन 'दि सर्वे ऑफ मातर तालुका,'[4] रामनाथन कृत 'खादीपर भाषण,'[5] विल हे कृत 'हिन्दू धर्मका निचोड़'[6], रस्किन कृत 'सेंट जॉर्ज्स गिल्ड', शाह कृत 'फेडरल फाइनेन्स', राथनस्टाइन कृत 'इजिप्टका नाश,'[7] हेज कृत 'गौ का गुह्यार्थ,'[8] ए० ई० कृत 'केन्डल ऑफ विज़न,' किनले कृत 'मनी' और 'शंख अने कौड़ी' (गुजराती)। इस समय मैं एण्ड्रयूज कृत मुन्शी जकाउल्लाकी जीवनी और शाह कृत 'भारतके साथ वर्षके

१. द केस फॉर इंडिया।
२. ए वर्ड टु गांधी।
३. रैबल इंडिया।
४. जे. सी. कुमारप्पा द्वारा लिखित।
५. स्पीच ऑन खादी।
६. इसेन्स ऑफ हिन्दूइज्म।
७. रुइन ऑफ इजिप्ट।
८. दि बुक ऑफ दि काऊ।

आर्थिक प्रशासनका इतिहास"[1] पढ़ रहा हूँ। सरदार होर और मैक्डॉनल्डकी पुस्तकें पढ़ चुके हैं और अब इजिप्ट-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ रहे ह। सरदार अखबारोंको पर्याप्त समय देते हैं। मैंने उनके जो दो घंटे घूमनेकी बात पहले कही, उसके सिवा वे दो घंटे और चलने-फिरनेमें लगाते हैं।

तुम्हारे पत्रके सिवा ३६ पत्र और हैं।

बापूके आशीर्वाद[2]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२०७ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

११३. पत्र: अगाथा हैरीसनको

८ फरवरी, १९३२

प्रिय अगाथा,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे क्या हाल-चाल होंगे, यही मैं सोच रहा था। इसलिए तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। अपना स्नेह भेजनेके सिवाय मैं कुछ और नहीं कहना चाहूँगा। सरदार वल्लभभाई मेरे साथ हैं और हम दोनों ठीक हैं।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

कुमारी अगाथा हैरीसन
२ क्रेनबोर्न कोर्ट
अल्बर्ट ब्रिज रोड
लन्दन, एस० डब्ल्यू० ११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४५०) से।

१. सिक्सटी इयर्स ऑफ इकोनॉमिक एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इंडिया।

२. साधन-सूत्रमें इसके आगे **भगवद्‌गीताके** १६ वें अध्यायका सारांश है; देखिए "गीता-पत्रावली", २१-२-१९३२।

११४. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

८ फरवरी, १९३२

चि० पण्डितजी,

तुम्हारे दो पत्र मेरे सामने हैं। 'नाम हसुदे' की पहेली समझमें आ गई है। नारायणरावने अपनी पूजा करानेका अच्छा मार्ग निकाला है। मुफ्तमें तो रावसाहब नहीं बना।

गजाननने किसे पूछा था? यहाँके किसी भी जिम्मेदार व्यक्तिको मालूम नहीं है। दिन और समय भी लिखना। मैंने तो उसकी बहुत बाट देखी।

जिस समय 'सत्य ही परमेश्वर' सूझा, उस समय 'हिरण्मयेन'[1] वाला मन्त्र मेरे सामने था या नहीं, इसकी कुछ याद नहीं है। जब ऐसी बातें सूझती हैं, तब वे जाने कैसे इस तरह हृदयसे निकलती हैं मानो मौलिक ही हों। मेरे लिए तो यह बात एक अनुभवसिद्ध बात ही कही जा सकती है।

गजानन यहीं कहीं हो और अभी कोई यहाँ आनेवाला हो तो उसके साथ आये। नारायणके आनेके बारेमें मैंने सबके लिए लिखे गये पत्रमें लिखा है। 'भजनावली' के बारेमें कोई जल्दी तो नहीं है न? कोई सुझाव देने हैं?

क्या तुम्हें लगता है कि रामभाऊने काफी प्रगति की है? आजकल मन लगाकर संगीत सीखनेवालोंमें कौन-कौन हैं?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२६) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

११५. पत्र : पुरुषोत्तम दा० सरैयाको

१० फरवरी, १९३२

चि० काकू,

तेरा सुन्दर अक्षरोंमें लिखा हुआ पत्र मिला। तेरे पास लिखनेको तो बहुत-सी बातें हैं। तू पिछले बारह महीनोंका हाल भी लिखे, तो लिखनेको बहुत मिल जायेगा। कताईको यज्ञ समझकर नियमपूर्वक कताई करते रहना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८०७) से; सौजन्य : पुरुषोत्तमदास दामोदर सरैया।

[1] ईशोपनिषद्–१५, देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३९७।

११६. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

१० फरवरी, १९३२

भाईश्री वालजी,

तुम्हारी भिजवाई वस्तु मिल गई। जब कभी समय मिलेगा, अनुवाद तो देख ही लूँगा; फिर पूरा देख लेनेपर लिखूँगा। तुम्हारे पिछले पत्रका उत्तर[1] तो दे चुका हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४१९)से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

११७. पत्र : वनमाला न० परीखको

१० फरवरी, १९३२

चि० वनमाला,

तुझे लिखाईके लिए पाँच नम्बर। यदि तू शब्दोंको अलग-अलग लिखे और अच्छी कलमसे लिखे तो आठ नम्बर मिल सकते हैं। मनुष्यका मूल क्यों नहीं है? मनुष्य अपना मूल अपने साथ लिए घूमता है। वृक्षका मूल जमीनमें होता है क्योंकि वह जमीनमें उगता है। मनुष्य माँके पेटसे जन्म लेता है और वहींसे वह मूल अपने साथ लेकर निकलता है। कह सकते हैं कि उसका मूल उसकी नाभि है। इससे समझमें न आया हो, तो यह पत्र प्रेमाबहनको दिखाकर उससे पूछना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६४) से। सी० डब्ल्यू० २९८७ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

१. देखिए "पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको", ३-२-१९३२।

११८. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

१० फरवरी, १९३२

चि० पण्डितजी,

बर्वेकी पुस्तक मिल गई है। अवकाश मिलनेपर उसमें डुबकी लगाऊँगा।

पहली शंकाके विषयमें तुम्हारा समाधान ठीक ही है। मुझे भी सत्रहवें अध्याय की ध्वनि ऐसी ही लगी है। अन्तमें मनुष्यको श्रद्धासे ही काम लेना पड़ता है। जो एकको सत्य लगता है, वह बहुत बार दूसरेको वैसा नहीं लगता, यह बात हम समय-समयपर देखते रहते हैं। किन्तु जो व्यक्ति इस तरह अपने माने हुए सत्यके अनुसार चलता है, उसे तलवारकी धारपर चलना पड़ता है। वह जागृत रहे और यम-नियमोंका कठोरतासे पालन करे। आलसी, व्यभिचारी, पाखण्डी, आदिको अपनी मतिके अनुसार चलनेका अधिकार बिलकुल नहीं है। यह अधिकार तो केवल साधक और सत्यार्थीको प्राप्त है।

दूसरी शंकाके बारेमें मुझे लगता है कि सत्यशोधक इस चक्करमें नहीं पड़ेगा कि अमुक कार्यसे समाजका कल्याण होगा या नहीं। वह तो कहेगा कि मैं कल्याण-अकल्याणकी बातमें नहीं पड़ता; सत्यमें ही सबका कल्याण है; क्योंकि सत्य ही साक्षात, पूर्ण पुरुषोत्तम है। ईश्वरके दूसरे नाम उसके किसी एक अंशके बोधक हैं। सत्य उसका पूर्ण स्वरूप बताता है। इसलिए जो चीज सत्यके विरुद्ध है, उससे किसीका कल्याण नहीं हो सकता। सत्यके पालनके लिए वाणी, विचार और कर्मका ऐक्य जरूरी है। अर्थात्, हमें जो सत्य लगे, वही बोलना चाहिए, उसीपर आचरण और विचार करना चाहिए। किन्तु एक बहुत बड़ा भ्रम हमारे बीच प्रचलित है। हमसे कोई व्यक्ति कुछ प्रश्न पूछे तो हम हमेशा उसका उत्तर देनेके लिए बाध्य नहीं हैं। इसलिए हम उत्तर न दें तो उसमें असत्य नहीं है। जब उत्तर देना हमारा कर्त्तव्य हो, तब हम न बोलें तो यह झूठ बोलनेके बराबर है। जैसे कि यदि मुझसे पिता पूछे कि तुमने अमुक प्रमाणमें सोना चुराया है या नहीं? — तो इसका जवाब देना मेरा कर्त्तव्य है। किन्तु यदि पिता यह पूछें कि अमुक भाईने चोरी की है, तो इसका उत्तर देना मेरे लिए जरूरी नहीं है। इसलिए मैं जवाब न दूँ तो मैं झूठ नहीं बोलता। मुझे 'गीता-रहस्य'[1] का प्रकरण याद है, मुझे वह खटका था। अन्य गति न होनेपर झूठ बोलना सत्यका प्रयोग नहीं है। ऐसा प्रसंग कभी नहीं आता कि झूठ बोलना मनुष्यके लिए अनिवार्य हो जाये। आता हो, तो सत्य बोलने और तदनुसार ही आचरण करनेका सिद्धान्त अपूर्ण ठहरे। सिद्धान्तका अपवाद हो ही नहीं सकता। इसलिए जो झूठ जान-बूझकर बोला गया हो, उसका तो प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। या यही हो सकता है कि आइन्दा झूठ न बोलें। प्रायश्चित्त तभी हो सकता है, जब

१. बाल गंगाधर तिलक-द्वारा लिखित गीताकी मीमांसा।

अनजानमें कोई दोष हो जाये। मुझे लगता है कि अब तुम्हें अपनी दूसरी शंकाका उत्तर भी पूरी तरह मिल गया है। अब भी कुछ रह गया हो, तो पूछना।

इसे दुबारा नहीं पढ़ा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२२)से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

११९. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

१० फरवरी, १९३२

चि० शारदा,

तूने तो ऐसी बात लिखी है जैसे तुझे पकौड़े खाना तो अच्छा लगता है और चपाती खाना नहीं। जिसका शरीर ऐसी माँग करने लगे, वह रोगी माना जाता है। निरोगी मनुष्यका पेट पकौड़ोंसे नहीं भरता। वह तो रोटी ही माँगेगा। ठीक यही बात 'गीता' के बारेमें समझ। हृदयके पट खुल जानेपर तो 'गीता' अवश्य अच्छी लगती है। जबतक 'गीता' अच्छी नहीं लगती, तबतक यह समझ कि कहीं कुछ कमी है। लेकिन इसमें मुझ रसोइयेका भी दोष है। मैंने जो 'गीता' भेजी, वह कच्ची है, इसलिए वह तुझे पचती नहीं है। तो फिर बात कैसे बने?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९४४)से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला।

१२०. पत्र : मीराबहनको

११ फरवरी, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। तसल्ली हुई। ईश्वरके पथ-प्रदर्शनमें जिनका विश्वास है, वे वही करते हैं जो अच्छे-से-अच्छा हो सकता है, और फिर चिन्ता नहीं रखते। सूर्यको कभी अधिक परिश्रमसे थकावट नहीं होती और सूर्यके बराबर अद्वितीय नियमितताके साथ कौन बेगार करता है? और हम यह क्यों समझें कि सूर्य जड़ पदार्थ है? उसके और हमारे बीच यह अन्तर हो सकता है कि उसे आजादी नहीं है और हमें थोड़ी-बहुत है, भले ही वह कितनी ही अनिश्चित हो। लेकिन इस तरहकी अटकलोंमें क्या धरा है? हमारे लिए इतना काफी है कि अथक शक्तिके रूपमें हमारे सामने उसका उज्ज्वल उदाहरण मौजूद है। अगर हम अपनेको पूरी तरह

उसकी[1] मर्जीपर छोड़ दें और सचमुच शून्य बन जायें तो हम स्वेच्छासे चुनावका अपना अधिकार छोड़ देते हैं और फिर हमें थकनेकी और, शक्तिका क्षय करनेकी जरूरत नहीं रहती।

मैंने अभी दूधके बजाय बादामकी लुगदी शुरू की है। मैं रोज दूधकी मात्रा घटा रहा था, क्योंकि वह अनुकूल नहीं पड़ रही थी। सम्भव है, जबतक मैं आराम कर रहा हूँ, तबतक मुझे प्राणिज प्रोटीनकी आवश्यकता न हो। मैं सिर्फ प्रयोग कर रहा हूँ। इसलिए हमारे पास लन्दनमें बादामकी लुगदीकी जो बोतलें थीं, उनमें से तुम्हारे पास बची हों तो साथ लेती आना। अभी तो २४ घंटेमें दो बार नींबू और शहदके पानीके साथ खजूर, टमाटर और बादामकी लुगदीसे खूब अच्छी तरह काम चल रहा है। अभी यह कहना, कि दूधके बिना मेरा क्या हाल होगा, जल्दबाजी होगी। यद्यपि दूध कतई छोड़ देना मुझे बहुत अच्छा लगेगा, मगर अपने स्वास्थ्यको हानि पहुँचानेवाला कोई काम जान-बूझकर नहीं करूँगा।

जब तुम आओगी, तब शायद तुम्हें बतानेका वक्त न मिले, इसलिए मुझे पत्र द्वारा ही बता दो कि ऊनी कम्बलोंको तुमने कैसे धोया था? ठंडे पानीमें भिगोया था या गरममें, और कितनी देर? कितना लक्स साबुन इस्तेमाल किया और कितने पानीमें? मेरा विचार 'अपना साबुन' का चूरा इस्तेमाल करनेका है। मुझे जल्दी नहीं है।

मैंने मान रखा है कि तुम मेरे पत्र आश्रमको सुनाती होगी और जानने लायक अन्य बातें तुम्हें आश्रमके पत्रोंसे मिल जाती होंगी?

मुझे प्रिवा-दम्पतीसे सीधा एक पत्र मिला है। लगता है कि उन्हें यहाँ ठहरना खूब अच्छा लगा और मुझे इस बातकी खुशी है।

क्या तुम कभी हमारे मेजबान मणिलाल और उनकी पत्नीसे मिलती हो?

यदि तुम प्यारेलालसे मिलो तो उससे कह देना या फिर किसीसे कहला देना कि और खजूर न भेजे। मुझे जेराजाणीसे लगभग २० पौंड मिल गये हैं। इसके अलावा प्यारेअलीको मिलनेवाले खजूर पुराने हैं और इसलिए घुन-खाये हैं।

दामोदरदास और उसके घरके लोगोंको मेरा प्यार।

हम दोनोंकी तरफसे प्यार,

बापू

[पुनश्च:]

साथका पत्र नरगिसके लिए है। मुझे अगाथा हैरीसनका पत्र मिला है। वह कहती है कि परसी बर्टलेट, हियाम और विश्वविद्यालयकी एक लड़की आ रही है[2]। मैं उसका नाम भूल गया हूँ। लेकिन तुम्हें भी शायद उसका पत्र मिला होगा। देवी वेस्टका बा के नाम पत्र मुझे मिला है।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५०४)से; सौजन्य : मीराबहन।

१. ईश्वरकी।

२. ये तीनों सोसाइटी ऑफ फ्रैंड्सके सदस्य थे और 'मैत्रीके मिशन' पर स्वतन्त्र रूपसे भारत आनेवाले थे।

१२१. पत्र : मनु गांधीको

११ फरवरी, १९३२

चि० मनुड़ी,[1]

तेरा पत्र मिला। तुझे मौसीकी तो सेवा करनी चाहिए। अब तुझे बच्चा नहीं कहा जा सकता। तू तो सयानी हो गई है। मौसीने तो तेरी बहुत सेवा की है और तुझसे लाड़ भी बहुत किया है। मुझे तो ऐसा लाड़ भी नहीं करना आता। अपने [स्वास्थ्य]का ध्यान रखकर ज्ञान भी खूब बढ़ा। तेरे लिए तस्वीरवाले कार्डोंका ढेर बढ़ता जा रहा है। मुझे पत्र लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५१०)से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला।

१२२. पत्र : मानशंकर ज० त्रिवेदीको

११ फरवरी, १९३२

चि० मनु,

तुझे पत्र लिखनेका विचार तो मनमें काफी पहले आया था। पर मैं तो यहाँ भी काम ले बैठता हूँ। इसलिए जिस कामको छोड़ा जा सके, उसे छोड़ देता हूँ।

तू तो सोच-विचारके भँवरमें पड़ गया होगा। लेकिन विचारमें पड़नेकी कोई बात नहीं है। फिलहाल तेरा कर्त्तव्य वहाँका काम पूरा करनेका है। स्वास्थ्यका ध्यान रखते हुए जितना सीख सके, उतना सीखना। हंसकी गति अपनाना। तुलसीदास [की रामायण] पढ़ते हो क्या? उसे पढ़नेका अभ्यास बनाये रखना बहुत अच्छा है। उसमें यह दोहा है:

जड़चेतन गुणदोषमय
विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय
परिहरि वारि विकार।।

इस तरह तू भी वहाँके गुणोंको ग्रहण करना और दोषोंसे बचे रहना। और इसी तरह वहाँ तो तू देशका प्रतिनिधि माना जायेगा, इसलिए देशकी जो अच्छी

१. हरिलाल गांधीकी बेटी।

बातें हैं, वहाँ उन्हींका प्रतिनिधि बनना। देशकी बुरी बातें वहाँकी ही खातिर छोड़े रहना। जबसे तुझे सैसून अस्पतालमें मिला हूँ, तबसे, तुझमें कुछ बुराई हो सकती है, इसकी तो मैंने कल्पना भी नहीं की।

अब तो जर्मन भाषा अच्छी तरह सीख ली होगी? अपने अध्ययन, अपने स्वास्थ्य और अपने साथियोंके बारेमें लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

सरदार मेरे साथ हैं, यह तो तुझे मालूम ही होगा। उनका आशीर्वाद।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १००४)से।

१२३. पत्र : नारणदास गांधीको

११ फरवरी, १९३२

चि० नारणदास,

चम्पा मुझसे मिलनेके लिए व्याकुल है। चाहे तो वह अगले सप्ताहमें आ जाये। रतिलाल आड़े तो नहीं आयेगा?

तुम्हारी डाक कल मिली। 'आश्रम समाचार' उसमें नहीं है। और तुम्हारे पत्रके दूसरे पन्नेका निचला भाग फाड़ा हुआ था। वह यहाँ तो नहीं फाड़ा गया। खयाल हो तो बताना। रणछोड़भाईका अलगसे पत्र भी दिखाई नहीं दिया।

समझमें नहीं आया कि चंचलबहनको लिखा गया पत्र और उस विधवा बहनके नामका पत्र अर्थात्, पत्र संख्या १ और २२ तुम्हें क्यों नहीं मिले। वे मेरे पास तो नहीं हैं। सम्भव है, यहाँ दफ्तरमें जाँच-पड़तालके वक्त वे दो खिसक गये हों और गुम हो गये हों। आगेसे मैं नाम और संख्या दोनोंकी सूची देनेकी कोशिश करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह लिख चुकनेके बाद तुम्हारी दूसरी डाक मिली। चम्पाका मन शान्त है और इसलिए, न आना चाहे तो न आये।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२०९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१२४. पत्र : रामचन्द्र ना० खरेको

११ फरवरी, १९३२

चि० रामभाऊ उर्फ रामचन्द्र खरे,

वाह! तूने अच्छा हिसाब लगाया है। सब लिखते हैं, इसलिए तू क्यों लिखे। ऐसा सभी सोच लें, तो किसीका पत्र न आये। इस तरहका हिसाब मैं भी तो लगा सकता हूँ। सही हिसाब यह है कि हम अपने कर्त्तव्यका पालन करते रहें तो सभी, आज नहीं तो कल, किसी-न-किसी दिन तो उसका पालन करेंगे ही। इसके बारेमें कहावत है: 'आप भले तो जग भला'।

क्या अब झूठ बोलनेकी आदत बिलकुल छोड़ दी है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९०)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१२५. पत्र : जयशंकर पी० त्रिवेदीको

११ फरवरी, १९३२

भाई त्रिवेदी,

मनुको पत्र[1] तो पहले ही लिखना चाहता था पर नहीं लिख सका। जब जी में आये, तब मिलनेके लिए नियत दिनोंमें कभी आ जाना। तुम्हें तो शामिल किया ही जा सकेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १००३) से।

१. देखिए "पत्र: मानशंकर ज० त्रिवेदीको", ११-२-१९३२।

१२६. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको[1]

११ फरवरी १९३२

चि० पुष्पा,

तुमारा खत मिला। तुमको पहचान नहिं सका हुं। पूरा परिचय दो। उम्मर भी बताना।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९७९)से।

१२७. पत्र : मणिबहन न० परीखको

१२ फरवरी, १९३२

चि० मणिबहन (परीख),

कानका दर्द इतना बढ़ गया है तो क्या उसे किसीको दिखाया था? मुझे लगता है कि एक बार दिखा देना चाहिए। हरिभाईको देखनेपर समझ न आये, तो एक चक्कर बम्बईका लगा आओ। वहाँ कानके एक-दो अच्छे डाक्टर हैं। डॉ० जीवराज[2] वहाँ ले जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९६४)से। सी० डब्ल्यू० ३२८१ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई।

१. गांधीजी को इन्हें पहचाननेमें गलती हो गई थी। इन्हें लिखे गये तारीख ५ मार्च, १९३२के पत्रसे स्पष्ट है कि यह वास्तवमें पुष्पा शंकरभाई पटेल थी। गलतफहमीका कारण यह था कि इनका पत्र असाधारण रूपसे अच्छी हिन्दीमें लिखा हुआ था।

२. डॉ० जीवराज मेहता।

१२८. पत्र : मंगला शं० पटेलको

१२ फरवरी, १९३२

चि० मंगला (लाड़की),[1]

तेरा पत्र मिला। 'गीताजी' [के पाठ] में कहीं-कहीं भूल होती है तो उसे भी सुधारना चाहिए। नहीं तो लाड़की न रहकर, सिर्फ लाकड़ी ही रह जायेगी।[2]

कमू[3] कहाँ रहती है? उसका स्वास्थ्य कैसा रहता है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७५) से। सी० डब्ल्यू० ३९ से भी; सौजन्य: मंगलाबहन ब० देसाई।

१२९. पत्र : मथुरी ना० खरेको

१२ फरवरी, १९३२

चि० मथुरी,

तेरा सब-कुछ माफ किया जाता है, लेकिन यदि अक्षर अच्छे न लिखे तो माफ नहीं कर सकता। अक्षर चित्रकी तरह सुन्दर बना। गजानन तो तेरे पास है ही। उसे कहेगी तो वह बतायेगा कि अक्षर किस तरह सुन्दर बनाये जा सकते हैं। यह तो खेल है। इसपर ज्यादा समय मत लगाना। रोज थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करना। त्रिपाठी भाईका[4] मनु[5] चारपाईपर पड़ा-पड़ा चित्र बनाया करता था। उसे एक वर्षतक चारपाईपर पड़े रहना पड़ा था।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६३) से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१. अर्थात्, लाडली।

२. देखिए "पत्र: मंगला शं० पटेलको", ३०-१-१९३२।

३. शायद मंगलाकी बड़ी बहन कमलाबहन पटेलका नाम।

४. 'त्रिवेदी भाई' की जगह भूलसे लिखा गया जान पड़ता है।

५. जयशंकर त्रिवेदीका पुत्र मानशंकर त्रिवेदी; १९३० में बीमार था।

१३०. पत्र : शान्ता शं० पटेलको

१२ फरवरी, १९३२

चि० शान्ता,

सरदार यहाँ हैं, इसमें शर्मानेकी क्या बात है? वे सरदार हैं, इसलिए या पटेल हैं, इसलिए? सरदारसे शर्म करके कहाँ जा सकते हैं? और पटेल तो वे रहे ही नहीं। जो भंगीका साथी बन जाये, वह सभी जातियोंका हो जाता है।

तूने काफी समाचार लिख भेजे हैं। जो मनमें आये, सो लिखते रहना। बीमार न पड़ना। सब-कुछ ईश्वरपर छोड़ देगी तो बीमार नहीं पड़ेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०६४) से। सी० डब्ल्यू० १५ से भी; सौजन्य : शान्ताबहन पटेल।

१३१. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

१२ फरवरी, १९३२

चि० परसराम,

तुमारा खत मिला। विमलके[1] बाल लोचन[2] हुए सो मुझको तो अच्छा हि लगता है। हिंदी शिक्षाके बारेमें कुछ भी सुचना देने जैसी तुमने रखा है ऐसा यहां से तो मालुम नहिं होता है। रामायणका शोख सबको हो जावे तो एक पंथ और दो काज सो होगा।

बापुके आशीर्वाद

मूल हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ४९६७)से; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा। जी० एन० ७४९०से भी।

१. परशुराम मेहरोत्राका छोटा पुत्र।

२. सम्भवत; गांधीजी हिन्दुओंमें बालकोंके मुण्डन-संस्कारकी बात कर रहे थे।

१३२. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

१३ फरवरी, १९३२

बालको और बालिकाओ,

मैंने इंग्लैंडके बच्चोंमें एक बात देखी जो आश्रममें नहीं दिखाई देती। तुममें से बहुतोंको यह समझ नहीं आता कि पत्रमें क्या लिखें। यह ठीक नहीं है। विलायतके बच्चे इस मामलेमें तेज हैं। आश्रमसे बाहर रहनेवाले बच्चे भी तुम्हारे-जैसे ही हैं या नहीं, यह मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। तुम्हें यह दोष दूर करना चाहिए।

तुम्हारे आस-पास रोज कितनी ही बातें होती हैं। यदि तुम उनपर ध्यान दो, तो इतना लिख सको कि पन्नोंपर-पन्ने भर जायें। तब मुझे पत्र लिखते समय तुम्हें कोई बात क्यों नहीं सूझती? दिन-भरमें क्या किया, क्या देखा, क्या सोचा, —यह सब लिख सकते हो। कोई दिन आनन्दपूर्वक बीता, तो किस तरह और कोई दिन दुःखमें बीता, तो किस तरह? किसी दिन मनमें अच्छे खयाल आये और किसी दिन बुरे, इसका पूरा वर्णन किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि यह सब पत्रमें लिखा जा सकता है या नहीं, इसके बारेमें तुम्हें शंका हो तो तुम्हें मालूम होना चाहिए कि ऐसी शंकाका कोई कारण ही नहीं है। तुम इस तरह पत्र लिख सकते हो, मानो मुझसे बात कर रहे हो। अब मैं देखूँगा कि अगले सप्ताह तुम कितनी प्रगति करते हो। पत्र लिखना भी एक कला है। हमारी सभी कलाएँ सत्यकी पूजासे आरम्भ होती हैं। मुझे पत्र लिखना है और उसमें सत्य ही लिखना है और उसमें प्रेम उँड़ेल देना है, ऐसा सोचकर लिखने बैठोगे तो सुन्दर पत्र ही लिखोगे। क्योंकि सत्य ही ईश्वर है और सत्यको साक्षी मानकर और उसकी आराधना करते हुए हम जो-कुछ भी कहते या करते या लिखते हैं, वह सहज ही कलात्मक बन जाता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८९३६ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१३३. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

१३ फरवरी, १९३२

बहनो,

इस समयतक तो तुम्हारा घोंसला लगभग उजड़ गया है। फिर भी मुझे जो-जो बातें लिखने-जैसी लगी हैं और जो याद आ जाती हैं, उन्हें लिख दिया करता हूँ। ये पत्र जमा कर लिये जाते हैं इसलिए सम्भव है, भविष्यमें जब तुम लोग फिर इकट्ठा होओगी, तब इनका कुछ उपयोग होगा।

श्री रोलाँका नाम तो तुमने सुना है। वे यूरोपके महान लेखक हैं और साधु पुरुष हैं। मैं उनसे मिलने गया था। उनकी एक बहन हैं। वे भी अब, रोलाँकी तरह, बूढ़ी ही कही जायेंगी। वे कुमारी रही हैं और यह केवल अपने भाईकी मदद करनेके विचारसे। भाई-बहनकी भाषा फ्रेंच है। रोलाँ अंग्रेजी नहीं जानते। बहन जानती है। अगर कहें कि बहन भाईमें विलीन हो गई है तो यह ठीक ही माना जायेगा। वह रोलाँकी पूरी सार-सँभाल करती है। उनके सचिवका काम भी करती है। अंग्रेज मिलने आते हैं तब वे दुभाषियेका काम करती हैं। रोलाँका शरीर कमजोर है। बहन उसकी देख-रेख भी करती हैं। जगतमें त्यागके ऐसे उदाहरण विरले ही देखनेमें आते हैं। फिर भी पश्चिममें मिलते हैं। हमारे यहाँ ऐसे उदाहरण हों तो मुझे उनका ध्यान नहीं है। हमने ब्रह्मचर्यको मोक्षसे जोड़ दिया है। इस तरह उसे हमने दुर्लभ बना दिया है और इसके कारण वह कठिन भी हो गया है। पश्चिममें माता-पिता या भाईके लिए महिलाएँ स्वेच्छासे ब्रह्मचर्य पालन करती हैं और उनके लिए तब वह सरल भी होता है। मैं इसमें से तुम लोगोंके लिए दो सार निकालना चाहता हूँ। एक तो यह कि किसी भी पारमार्थिक कारणसे ब्रह्मचर्य-पालन उचित है और दूसरा यह, कि वह ऐसे किसी भी व्यक्तिके लिए सरल है जिसके सामने रोलाँकी बहनकी तरह कोई प्रत्यक्ष कारण है। उसे अपने चुने हुए कामके कारण अवकाश ही नहीं मिलता। इस उदाहरणसे बहनोंको जो खास बात सीखनी है, वह तो इसके अतिरिक्त ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८९३५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१३४. एक पत्र

१३ फरवरी, १९३२

चि०,

मुझे ईश्वरका स्मरण प्रति क्षण बना रहता है, इसका अर्थ यह है कि अपनी जाग्रत अवस्थामें भी ऐसा समय नहीं होता जब मुझे इस बातका भान न हो कि ईश्वर मुझमें है और वह सब देख रहा है। यह भान मेरी बुद्धिका है और यह अभ्याससे प्राप्त हुआ है। हृदयको भी उसका भान है, ऐसा मैं नहीं कहता। कारण, मैं अपनेको भय-मुक्त नहीं मानता। सर्प आदिका भय तो मुझे लगता ही है। मृत्युको मैं मित्र समझता हूँ किन्तु भीतर-ही-भीतर मेरे मनमें जीनेकी इच्छा भी मौजूद है, यह मैं देखता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि जीवन मुझे प्रिय है और साथ ही मैं मृत्युको भेंटनेके लिए भी तैयार हूँ। इन दोनों भावनाओंका एक-साथ होना विचित्र है। अपनी इस कमजोरीके कारण मैं यह नहीं कह सकता कि ईश्वरका वास मेरे हृदयमें हो गया है। यह अलग बात है कि मेरी बुद्धि यह स्वीकार करती है कि ईश्वर हृदयमें निवास कर रहा है। ईश्वर हृदयमें निवास कर रहा है, इसका जिन्हें ठीक अनुभव होता है, वे देहके विषयमें अत्यन्त अनासक्त होते हैं। मैं देखता हूँ कि मैं अभी उस अवस्थाको नहीं पहुँचा हूँ। तथापि, बुद्धिने तो इस विचारको स्वीकार किया ही है और उसका यह स्वीकार इतना दृढ़ है कि वह हृदयमें भी उतरता जा रहा है। इस . . . . से[1] आगे मैं अभी नहीं जा सकता।

आहारके विषयमें अब तुम्हारा कोई आग्रह तो नहीं है? दूधके साथ फल लेना आवश्यक है। फल ताजे हों तो अच्छा है। थोड़ी कच्ची पत्ता-भाजी भी लेनी चाहिए। टमाटर और सलाद नामकी भाजीके पत्ते अच्छे माने जाते हैं। आहारका भी एक विज्ञान तो है ही। उसकी अवज्ञा करना ठीक नहीं। आहार सात्विक होना चाहिए, यह हम जानते हैं। सात्विक आहार किसे कहा जाये, यह अनुभवसे सीखना चाहिए। 'गीता' ने सात्विक आहारके सम्बन्धमें जिन विशेषणोंका उपयोग किया है[2], वे सब लागू होने ही चाहिए, ऐसी बात नहीं है। यह तो हम अनुभवसे देख ही सकते हैं कि आगकी जरूरत बहुत ही कम है। मेरा मन तो कहता है कि अन्नको सूर्य जिस हदतक पकाता है, उतना काफी है। मुझे तो तुमसे इतना ही कहना है कि शरीरको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, हम उसे वह वस्तु अपने लिए स्वीकार्य चीजोंमें से चुन कर दें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९३८) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें कुछ छूटा हुआ है।
२. देखिए खण्ड ३२, पृष्ठ ३२५-६।

१३५. एक पत्र

१३ फरवरी, १९३२

चि०,

रामराज्यका अर्थ है प्रजाका राज्य। राम-जैसे मनुष्यको राज करनेकी इच्छा नहीं होती। ईश्वरने अपना नाम दासानुदास रखा है।

कसरत करते समय, खाना बनाते समय और अन्य कई काम करते समय जाँघिया और कुरता पहना जा सकता है। क्या मालिश करती हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९६४) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१३६. पत्र: प्रेमाबहन कंटकको

१३ फरवरी, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। जब भी मेरा पत्र देरसे मिले, तव उसके ऊपरकी छाप देखकर मुझे तारीख लिख भेजनी चाहिए।

किसनको कितनी सजा हुई? उसे कहाँ रखा गया है?

पेटियाँ तू जरूर खोल सकती है। उनमें पुस्तकें हों, तब तो उनकी व्यवस्था होनी चाहिए; और दूसरा कोई सामान हो तो उसकी सूची वनाकर उसे यथास्थान रखा जाना चाहिए। उस सामानका क्या करना है, यह समझमें न आये तो लिख भेजना, जिससे मैं बता सकूँ कि क्या करना है। पुस्तकें दूसरोंकी हों तो भी कोई हर्ज नहीं है। उनके नाम पुस्तकोंपर हों, तब तो वे सरलतासे अलग रखी जा सकती हैं। अगर नाम न हों तो उनपर आश्रमकी मुहर लगानेमें कोई हानि नहीं। इसके बावजूद उनके कोई मालिक हुए, तो वे उन्हें ले जायेंगे। हमें तो जो पुस्तकें हमारे कब्जेमें हों, उन्हें यथासम्भव सँभालकर रखनेकी व्यवस्था कर देनी चाहिए।

आश्रमका पढ़ाईके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है, यह मेरे किस वाक्यसे तूने समझ लिया? मेरे मनमें जो विचार है, वह यह है: अक्षरज्ञान — बाहरी पढ़ाईका आश्रममें गौण स्थान है। इसलिए वह विद्यापीठ नहीं बन सका। लेकिन बाहरी शिक्षाकी उपयोगिता आवश्यक तो है ही; इसीलिए विद्यापीठकी स्थापना हुई। दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। इस तरह क्षेत्रोंकी मर्यादा होनेके कारण आश्रमके पुस्तक-संग्रहकी

भी मर्यादा[1] होनी चाहिए। इस सम्बन्धमें विद्यापीठकी कोई मर्यादा हो ही नहीं सकती। उसकी मर्यादा आन्तरिक प्रयोगोंके बारेमें जरूर है। आश्रमका नाम प्रसिद्ध हो गया है। उसके बारेमें कई अतिशयोक्तिकी हदतक पहुँचनेवाली मान्यताएँ बन गई हैं; इसलिए वहाँ अनेक प्रकारकी और अनेक भाषाओंकी पुस्तकें आती हैं। उन सबको सँभालकर रखनेकी जगह विद्यापीठ ही हो सकती है। फिर भी आश्रममें जो पढ़ाई हम करते हैं, उससे सम्बन्धित पुस्तकें जरूर होनी चाहिए। ये पुस्तकें कौन-सी हों, यह तो तुम और अन्य लोग सरलतासे तय कर सकते हैं। कोई परेशानी खड़ी हो तो मुझसे पूछा जा सकता है। लेकिन मेरी दृष्टिसे तो परेशानीका सवाल ही नहीं है। इतने वर्षोंके आश्रमके अस्तित्वके बाद हम आसानीसे इतना कह सकते हैं कि सामान्य रूपसे हमें किन पुस्तकोंकी जरूरत होती है। उसके बाद अगर और पुस्तकोंकी जरूरत महसूस हो तो हम विद्यापीठके भण्डारका आश्रय ले सकते हैं। दोनों संस्थाएँ अलग हैं, यह मानना ही नहीं चाहिए। दोनोंके क्षेत्र अलग हैं, लेकिन दोनोंमें समानता भी बहुत है और दोनोंमें समानता और अधिक होती जायेगी।

अभी इसमें कुछ और समझना बाकी हो तो मुझसे फिर पूछना।

किसीके बारेमें मेरे विचार बन जानेपर भी उसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं सुनूँ या देखूँ, ऐसा जान-बूझकर तो मैं नहीं ही करता[2]। सुनता हमेशा हूँ, लेकिन उससे विचार हमेशा नहीं बदलते। अवलोकनके बाद बने हुए विचार जल्दी ही बदल जायें, इसे मैं दोष मानता हूँ। कभी बदलें ही नहीं, यह हठ माना जायेगा। इसलिए यह भी दोष है। विचारोंके बदलनेके लिए सबल कारण चाहिए। बहुत बार तो मुझे प्रत्यक्ष प्रमाणकी जरूरत पड़ती है। इस स्वभावकी मैं रक्षा करता हूँ। और वैसा करनेसे मैं बहुत-से भयोंसे बच गया हूँ और दूसरोंके साथ मेरा सहवास निर्मल रह सका है।

इसलिए तुझे पूछना हो, बेधड़क होकर पूछना। ऐसा मौका फिर नहीं मिलनेवाला है।

तूने जो भेद किया है[3], वह सही है। 'यंग इंडिया' का लेखक एक व्यक्ति है; आश्रममें सबके परिचयमें आनेवाला व्यक्ति दूसरा है। 'यंग इंडिया' में तो मैं पाण्डव बनकर बैठ सकता हूँ। लेकिन आश्रममें जैसा हूँ, वैसा दिखे बिना कैसे रह सकता हूँ? उसपर, मैं सत्यका पुजारी हूँ, अतः जान-बूझकर दोष छिपानेका तो प्रयत्न भी मुझसे नहीं हो सकेगा। इसलिए मुझमें रहनेवाले कौरव जहाँ-तहाँसे निकल ही पड़ते हैं। मेरे भीतर देवासुर-संग्राम चलता ही रहता है, यह तो तूने कहा ही है न? लेकिन ऐसा दीखता है कि कौरवोंकी हार हुआ करती है। लेकिन इस बारेमें अभी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह तो सोलन[4] के कथनानुसार मृत्युके बाद ही

१. प्रेमाबहन कंटकने पुस्तकें विद्यापीठमें ले जानेपर आपत्ति की थी क्योंकि इससे आश्रमको बड़ी हानि होती।

२. प्रेमाबहन कंटकने गांधीजी पर यह आरोप लगाया था।

३. **यंग इंडियाके** लिए लेखन-कार्य करनेवाले गांधीजी, मानव गांधीजी से, जिनकी मानवीय सीमाएँ हैं, कहीं ज्यादा ऊँचे व्यक्ति लगते हैं।

४. प्राचीन ग्रीक-तत्वज्ञानी।

कहा जा सकता है। मैंने करोड़ोंकी कीमत रखनेवालोंको क्षण-भरमें कौड़ीकी कीमतका बनते हुए देखा है। इसलिए मुझे किसी तरहका घमण्ड नहीं है। घमण्ड है भी किस कामकी चीज?

पत्र फिरसे नहीं पढ़ता हूँ, यह ध्यानमें रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७२) से। सी० डब्ल्यू० ६७२० से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

१३७. पत्र : दुर्गा देसाईको[1]

१४ फरवरी, १९३२

चि०,

महादेवसे कहना कि 'सी' श्रेणी भाग्यवानको ही मिलती है। और जिनका नसीब खोटा हो, उन्हें 'सी' माँगनेपर भी 'ए' श्रेणी मिलती है। किन्तु हमें तो जो मिले, उसमें ही सन्तोष मानना है; उससे जो-कुछ सीख सकते हों, वह सीख लें। 'ए' और 'सी'का झमेला उनके लिए है जिन्हें भोगकी चिन्ता है। जिनके लिए त्यागमें ही भोग है, उनको हर स्थितिमें त्यागका अवसर खोजना है और त्यागके लिए तो असीम क्षेत्र है। पर, त्याग ऐसा नहीं होना चाहिए कि कमर ही टूट जाये। ऐसा त्याग त्याज्य है।

"अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः"।

[और] "कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः"।

ये दोनों श्लोकांश[2] याद रखें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९३४) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए "पत्र : निर्मला देसाईको", १८-२-१९३२।

२. *गीता*, अध्याय १७, श्लोक ५ व ६।

१३८. पत्र : पद्माको

१४ फरवरी, १९३२

चि० पद्मा,

तेरा पत्र मिला। जहाँ तू रहती है, वहाँसे भुवालीका सेनिटोरियम पास है। वहाँ अपनी जाँच करा ले तो अच्छा है। वहाँ कोई सहायक है या नहीं? जोशीजी[१] हैं? वहाँ 'गीता' पढ़ानेवाला नहीं मिलता, यह आश्चर्यकी बात है। क्या शान्तिलाल वहाँ है? उसे तो इसका ज्ञान होना चाहिए। लेकिन, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। तुझे भी नहीं करनी है। तुझे पहले तो अपने शरीरको स्वस्थ बना डालना है।

मैत्री और दुर्गी थोड़े दिनोंके लिए दार्जिलिंग गई हैं, यह तो तुझे मालूम ही होगा। सरोजिनीदेवीको तो तेरे पास ही रहना चाहिए। ऐसा करना ठीक ही है। अब तो शीला खूब बड़ी हो रही होगी। क्या तू उसका ध्यान रखती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१२९)से। सी० डब्ल्यू० ३४८१ से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी।

१३९. पत्र : नारणदास गांधीको

रात, ११/१५ फरवरी, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारे दोनों बड़े लिफाफे मिले। रामजी को सूत नहीं मिलता, इसका यही अर्थ हुआ न, कि हमारे पास उसकी कमी है? दूसरी जगहोंमें भी क्या ऐसा ही हाल होगा? इसका समाधान तो तुम्हींको करना है।

मदनमोहन बोहरा यहाँ 'दर्शन' करने आना चाहता है। लगता है, तुम यह जानते हो। उसको भेजा मेरा उत्तर देख लेना।

बुधाभाई और पार्वतीकी समस्या कठिन लगती है। मुझे तो लगता है कि अभी उन्हें अलग-अलग रहना चाहिए। यदि तुम्हें यह सलाह ठीक लगती हो तो इस दिशामें कदम उठाना। और कुछ सूझे तो मुझे लिखना। पार्वती आश्रममें तो ठीक रहती है? नियमोंका पालन करती है?

लगता है, तुम्हारी खासी कसौटी हो रही है।

१. सम्भवत: छगनलाल जोशी; वे कुछ दिनोंके लिए अलमोड़ा गये थे।

१२ फरवरी, १९३२

तुम्हें दुग्धालयका काफी काम देखना पड़ता है। तुम समर्थ हो और सारा बोझ सत्यनारायणपर डाल देते हो, इसलिए मैं निश्चिन्त रहता हूँ। पारनेरकर शान्त भावसे रह सके तो काफी है। उसे जो ठीक लगे, सो करे।

फूल-पौधोंके बारेमें मेरे विचार किसी अनुभवहीनके विचार समझना। इसलिए जबतक कोई विशेषज्ञ समर्थन न करे, तबतक उन्हें साबरमती नदीमें फेंक देने लायक मानना।

प्रभुदासके समाचार प्राप्त करना। आवश्यक जान पड़े तो उसे जहाँ सजा सुनाई गई थी, वहाँ उसके अभिभावकके नाते पूछताछ करना कि वह किस जेलमें है। वह जिस जेलमें हो, वहाँ उसके स्वास्थ्यके बारेमें डॉ० तलवलकरका पत्र भिजवाना।

मीराबहनने सीधे ही पत्र लिखा था; वह मिला था और उसका उत्तर[1] भी मैंने सीधे ही दे दिया। वह पत्र तुम्हारे पास भेज देनेको लिखा है।

तोतारामजीके अर्शके कष्टकी जाँच हरिभाईसे करवाना जरूरी है। उन्हें बद्धकोष्ठ तो नहीं रहता न?

धीरूको पालनपुरमें किसके पास रखेंगे? विमलाका क्या हाल है?

जीवनजी[2] को सूचित करके जापानी लेखकको 'यंग इंडिया' के लेखोंके अनुवादकी अनुमति भेज देना।

जयरामदासके पत्रमें कोई आपत्तिजनक बात न हो तो वह जरूर भेज सकते हो।

तीसरा पहर, १५ फरवरी, १९३२

मैं हर पत्रमें सरदारके आशीर्वाद या यथायोग्य नहीं लिखता। लेकिन वे तो सबके प्रति रहते ही हैं, ऐसा समझना चाहिए। तुम्हारे नाम पत्र और 'गीता' पर लेखके सिवा ६८ पत्र हैं। उनकी तफसील साथ रख रहा हूँ। इससे कोई पत्र न मिला तो कौन-सा नहीं मिला, यह तुम्हें और मुझे मालूम हो जायेगा।

बापूके आशीर्वाद[3]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२०३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए पृष्ठ ८०-१।

२. जीवनजी डाह्याभाई देसाई, **नवजीवन**के मुद्रक व प्रकाशक।

३. साधन-सूत्रमें इसके आगे **भगवद्गीता**के १७ वें अध्यायका सारांश है; देखिए "गीता-पत्रावली" २१-२-१९३२।

१४०. पत्र : फिलिप हार्टोगको

१५ फरवरी, १९३२

प्रिय मित्र,

मुझे खेद है कि अपने वशके बाहरकी कुछ परिस्थितियोंके कारण मैं अपना वह वायदा पूरा नहीं कर सका जो मैंने ब्रिटिशकालसे पहले भारतमें प्राथमिक शिक्षाकी हालतके सम्बन्धमें अपने वक्तव्य[1] के बारेमें आपसे किया था। भारतमें उतरनेके तुरन्त बाद ही मैंने तत्सम्बन्धी शोधका काम बम्बई विश्वविद्यालय सीनेटके एक सदस्य एडवोकेट मुंशी तथा शिक्षासे सम्बद्ध दो अन्य शिक्षाविद् मित्रोंको सौंप दिया था। परन्तु वे खुद भी मेरी तरह सत्याग्रही बन्दी हो गये हैं। मने एडवोकेट मुंशीसे कहा था कि आपसे सीधा सम्पर्क स्थापित कर लें। परन्तु मेरी गिरफ्तारीके बाद वे इतनी जल्दी गिरफ्तार हो गये कि मेरी समझमें, उन्हें शायद आपसे पत्र-व्यवहारका अवसर ही नहीं मिला। चूँकि मुझे गैर-राजनीतिक पत्र-व्यवहार जारी रखनेकी इजाजत है, मैंने अब प्रोफेसर शाहसे अपने वक्तव्यकी जाँच करने और आपको अपनी जाँचका परिणाम देनेको कहा है। आप मुझे एक सत्यशोधक सहयोगी जान पड़े थे; इसलिए मेरी बड़ी इच्छा थी कि आपको अपने वक्तव्यका पुष्टीकरण देकर या फिर उसे मैंने जिस तरह सार्वजनिक रूपसे दिया था, उसी तरह वापस लेकर आपको सन्तोष दूँ। मैंने सोचा कि अपने वायदेको पूरा करनेकी दिशामें मैंने क्या किया, सो तो आपको वता ही दूँ।

चूँकि आपका निजी पता मेरे पास नहीं है, मैं यह पत्र इंडिया ऑफिसकी मारफत भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४१०) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी।

१. २० अक्टूबर, १९३१ को रायल इंस्टीटयूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्समें गांधीजी ने कहा था कि भारतमें पिछले ५० से १०० वर्षोंके बीच साक्षरता घटी है। देखिए खण्ड ४८, पृष्ठ २२०

१४१. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

मौनवार [१५ फरवरी, १९३२ या उसके पश्चात्][1]

चि० निर्मला (बुआ),

तू कैसी लड़की है, खुद तो खत नहीं लिखती और मेरा खत न मिलनेकी शिकायत करती है। दुर्गाने मेरा सन्देश महादेवको दिया था या नहीं? दुर्गा कैसी है? उसे कहना, पत्र लिखे। बबलो[2] कैसा है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६१) से।

१४२. पत्र : आर० वी० मार्टिनको

१६ फरवरी, १९३२

प्रिय मेजर मार्टिन,

मेजर भण्डारीको लिखे पत्रके[3] सिलसिलेमें, और आजकी अपनी बातचीतकी पुष्टि करते हुए मैं निवेदन करता हूँ कि मैं अपने उन सहयोगियोंसे जो राजनीतिक दृष्टिसे विख्यात नहीं हैं और जो यहाँ यरवदा-जेलमें लाये गये हैं, सहज मानवीय सम्पर्क रखना चाहता हूँ। मेरे ध्यानमें विशेष रूपसे सर्वश्री छगनलाल जोशी, सुरेन्द्रनाथ, सोमभाई और मेरा पुत्र रामदास हैं। मेरी जानकारीके अनुसार वे यरवदा लाये गये बंदियोंकी पहली टोलीमें हैं। मुझे यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मैं उनसे कोई राजनीतिक बात नहीं करना चाहता। जेल-अनुशासनमें दखल देनेका भी मेरा कतई कोई इरादा नहीं हो सकता।

चूँकि यह मामला काफी दिनोंसे लटका हुआ है, इसपर जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी निर्णय करवानेकी कृपा करें। आभार मानूँगा।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]
गृह विभाग, बम्बई सरकार, आई० जी० पी० फाईल सं०–९

१. पत्रमें दुर्गा-द्वारा महादेवको सन्देश दिये जानेके उल्लेखसे जान पड़ता है कि वह १४-२-१९३२ को लिखित "पत्र : दुर्गा देसाईको", के बाद पड़नेवाले मौनवारको लिखा गया होगा।

२. महादेव देसाईका पुत्र, नारायण देसाई।

३. देखिए पृष्ठ ६१।

१४३. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

१६ फरवरी, १९३२

प्रिय रामानन्द बाबू,

मुझे 'गोल्डन बुक'[१] यथासमय मिल गई है। इसमें आपने प्रेमकी कैसी मूल्यवान निधियाँ संजोई हैं? मैं इसे तुरन्त पढ़ने बैठ गया और दो घंटेतक पढ़ता रहा। इसे मेरे पास यहाँ भेजनेकी बात सोचनेके लिए आपको धन्यवाद। यदि यह मुझे [जेलके] बाहर मिली होती तो मैं इसे खोलने, और फिर एक साँस खींचकर रख देनेके सिवाय अधिक कुछ न कर पाता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९५०२)से; सौजन्य : शान्ता देवी।

१४४. पत्र : त्रिवेणी ज० मेहताको

१८ फरवरी, १९३२

चि० त्रिवेणी,

तुम्हारा पत्र मिला। शिक्षाकी अपनी कोई निश्चित पद्धति नहीं होती। वह तो शुद्ध प्रेममें निहित होती है। माँ अपने बालकको अपना समझकर बिगाड़ लेती है। अपना न मानकर ईश्वर-द्वारा सौंपी हुई धरोहर समझकर उसका पालन करे, तो वह सहज सुधर जाये। आज बहनोंके पत्रमें इसी विषयपर लिख रहा हूँ। इसे पढ़कर विचार करना। दूसरोंके दोषोंको न देखकर हम स्वयं अच्छा बननेका प्रयत्न करें।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती त्रिवेणी[२] जगजीवनदास मेहता
साबरमती

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०)से। सी० डब्ल्यू० ८९४१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. 'गोल्डन बुक ऑफ टेगोर'; देखिए "पत्र : रामानन्द चटर्जीको", ६-२-१९३२।

२. डॉ० प्राणजीवन मेहताके भाई जगजीवनदासकी पत्नी।

१४५. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

१८ फरवरी, १९३२

बहनो,

बहनें चाहे जितनी कम रह गई हों फिर भी तुममें से किसीको उत्तरदायित्व लेकर अपने मण्डलको ठीक चलाते रहना चाहिए। प्रार्थना [का दैनिक क्रम] अटूट रहना चाहिए। मुझे बहनोंकी ओरसे पत्र मिलते रहने चाहिए। नहीं तो आखिरकार मैं भी सुस्त हो जाऊँगा न? मेरे पत्र कौन रखता-सँभालता है?

आज मैं एक ऐसी शालाकी बात लिखता हूँ जो मुझे अद्भुत लगी थी। एक-दो भाई और एक-दो बहनें इसे मिलकर चलाते हैं। उनकी मान्यता यह है कि जड़-से-जड़ बालक भी प्रेमके नियमको मानने लगते हैं। इसलिए उन्होंने मातृपितृ-विहीन परित्यक्त और एकदम मूढ़-जैसे हो चुके बच्चोंके शिक्षा-कार्यको हाथमें लिया है। शिक्षकोंने प्रेमके प्रयोगोंके आधारपर कुछ नियम खोज निकाले हैं। यह शाला उन्हींके अनुसार चलाई जाती है। उक्त भाइयों और बहनोंने अपना सब-कुछ इन बालकोंको अर्पित कर रखा है। बच्चे जानते भी नहीं हैं कि वे अनाथ या बिना माँ-बापके हैं। खुले और फैले मैदानमें बनी इमारतमें वे रहते हैं और मुक्त हवा और प्रकाशमें उनका पालन-पोषण होता है। उन्हें मुख्यतः संगीत-द्वारा सुधारा जाता है। संगीतकी तालपर बच्चे आहिस्ता-आहिस्ता कुछ मुद्राएँ साधते हैं और संगीतकी लयमें डूबेतक रहते हैं। वे बहनें बच्चोंको इस प्रकार रखती हैं मानो वे उनके ही बच्चे हों, उन्हींके साथ खाती-पीती हैं। वे उन्हें हर समय आनन्द और खेल-कूदमें लगाये रखती हैं और धीरे-धीरे इस तरह वे अपनी मूढ़तासे छुटकारा पा जाते हैं। ये परोपकारी भाई-बहन इस प्रयोगको दो-चार बरसोंसे ही कर रहे हैं। जहाँ श्री होरेस अलेक्जेंडर रहते हैं, यह अद्भुत पाठशाला उसी जगहके नजदीक है। यह देखकर मेरा सिर अपने-आप झुक गया और मैंने देखा कि प्रेम क्या नहीं कर सकता — वह गूँगेको वाणी देता है और उसके बलपर पंगु गिरिवर चढ़ जाता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८९४७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१४६. पत्र : मंगला शं० पटेलको

१८ फरवरी, १९३२

चि० मंगला,

तेरा पत्र मिला। कोई भी परीक्षक पूरे नम्बर नहीं देता इसलिए चाहे तुझे पूरे नम्बर न दूँ, लेकिन मेरे हिसाबसे तुझे मिलने तो चाहिए। मुझे तुझसे सीखना चाहिए। हमेशा इतने ही सुन्दर अक्षर लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७६) से। सी० डब्ल्यू० ४० से भी; सौजन्य: मंगलाबहन व० देसाई।

१४७. पत्र : मथुरी ना० खरेको

१८ फरवरी, १९३२

चि० मथुरी,

तेरे पत्र तो नियमपूर्वक मिलते रहते हैं। किन्तु मेरी माँग स्वीकार करेगी न? गजाननसे अक्षर ठीक बनाना सीख ले और फिर सुन्दर अक्षरोंमें मुझे पत्र लिख। इतना करेगी न?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६२)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१४८. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

१८ फरवरी, १९३२

चि० पुष्पा,

तेरा पत्र मिला। तूने भी अपने अक्षर काफी सुधार लिये हैं। और अब हारमोनियम बजाने लगी है। क्या मुझे सुननेके लिए आना पड़ेगा? किन्तु सुनने लायक बजा सकनेके लिए तो कौन जाने कितने वर्ष लगेंगे? तबतक क्या हम दोनोंको यहीं पड़ा रहना है?

क्या बिचार है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८०) से। सी० डब्ल्यू० २६ से भी; सौजन्य: पुष्पाबहन ना० नायक।

१४९. पत्र : वनमाला न० परीखको

१८ फरवरी, १९३२

चि० वनमाला,

ले, तेरी ही पर्चीपर तुझे पत्र लिख रहा हूँ। सीधी लकीरोंवाला कागज न हो तो लकीरें अपने हाथसे खींच लेनी चाहिए।

नरहरिको मिलना, तब कहना कि 'सी' श्रेणी माँगी और मिल गई, यह अच्छा हुआ। किन्तु यही शर्त है कि वह स्वास्थ्यका ध्यान बनाये रखे। फिर बीमार न पड़े। देख, तुझे अब ठीक पत्र लिखना सीख लेना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६५)से। सी० डब्ल्यू० २९८८ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई।

१५०. पत्र : विद्या रा० पटेलको

१८ फरवरी, १९३२

चि० विद्या,

तेरा पत्र मिला। पत्रमें क्या लिखें, यह समझ न आये तो प्रेमाबहनसे पूछना। कुछ ही दिनोंमें सुन्दर पत्र लिखना सीख जायेगी। तुझे वह जगह पसन्द आ गई है, यह तो बहुत अच्छा हुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२१)से; सौजन्य: रवीन्द्र रा० पटेल।

१५१. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

१८ फरवरी, १९३२

चि० शारदा,

तूने ठीक सवाल पूछा है। तू मानती है कि मारने-पीटनेमें हिंसा है ही, लेकिन बात ठीक ऐसी नहीं है। मान लो कि साँप के काटनेसे कोई मूर्च्छित हो गया हो तो उसे मूर्छासे जगानेके लिए मारना जरूरी हो जाता है। यह हिंसा नहीं है क्योंकि यह मारना प्रेमका है और रोगीके भलेके लिए है। अगर मेरे मनमें तेरे प्रति जहर भरा हुआ है मगर अवसर न मिलनेके कारण मैं तेरी पिटाई नहीं करता, तो मनका यह भाव हिंसा ही है। हिंसाका मूल हमारे मनमें है।

यदि तूने मछलीका तेल कभी न खाया हो तो भी उसकी मालिश तो करवाई ही जा सकती है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९४५) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला।

१५२. पत्र : कपिलराय मेहताको

१९ फरवरी, १९३२

चि० कपिल,

अच्छा किया, तुमने पत्र लिखा। मैं तो सोच ही रहा था कि तुम कहाँ हो। मेरी तो यही सलाह है कि तुम जरा भी उतावली न करो, पूरी तरह आराम करके स्वास्थ्य सुधार लो। अभी अनाज खानेकी जल्दी न करना और दूध, दही और फलसे निबाहते रहना। साथमें थोड़ा कच्चा सलाद और टमाटर लेना। टमाटर बिना पकाये लो, मगर वे हरे न हों। बिना राँधे हुए तो लेने हैं, पर (डालपर) अच्छी तरह पके हुए होने चाहिए। मुझे पत्र लिखते रहना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

नानाभाईसे[1] कहना कि उन्हें तथा दक्षिणामूर्ति[2] के लोगोंको बहुत बार याद करता हूँ।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९७७) से। सी० डब्ल्यू० १५९८ से भी; सौजन्य : कपिलराय मेहता।

१. दक्षिणामूर्तिके आचार्य नृसिंहप्रसाद कालीदास भट्ट।

२. भावनगरमें स्थित शैक्षणिक संस्था।

१५३. पत्र : लक्ष्मीबहन ना० खरेको

१९ फरवरी, १९३२

चि० लक्ष्मीबहन,

मैं बहनोंको पत्र तो लिखता रहता हूँ; किन्तु अब यह काम[1] कौन सँभालता है? तुम क्यों नहीं लिखतीं? जो कक्षा शुरू की गई है, उसे बन्द नहीं किया जाना चाहिए। वहाँ जो बहनें रह गई हैं, वे मिलकर निर्णय कर लें और फिर मुझे लिखें। यह बोझ तो तुम्हें उठाना ही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७९–ए) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१५४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ फरवरी, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र अच्छा है। निस्संकोच होकर लिखा, यह ठीक ही किया।

तूने जो आलोचना[2] की है, उसका यह उत्तर है : मुझे सम्बन्धित व्यक्तियोंकी बात सुननी चाहिए। उसके बाद ही मैं उन मामलोंके बारेमें कुछ कह सकता हूँ। लेकिन सामान्य रूपसे कह सकता हूँ कि जिन-जिनको छूट दी गई है, उनको विशेष सुविधा देनेका खयाल नहीं था, बल्कि उसमें ध्यान उनकी आवश्यकताका रहा है। मुझपर ऐसी छाप पड़ी है कि जो लोग सुविधाएँ लेते हैं, वे आलस्यकी वजहसे नहीं, बल्कि इसलिए लेते हैं कि उनके शरीरको उन सुविधाओंकी जरूरत है; या यों कहो कि उनके स्वभावके कारण वे जरूरी हैं। हम किसीके काजी नहीं बन सकते। हो सकता है कि उनके प्रयत्नोंका हमें पता न हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनमें अपूर्णता नहीं है। अपूर्णता न हो, तो वे आश्रममें आयें ही क्यों? वे ढोंगी नहीं हैं। मैं जो-कुछ करता हूँ, सो दूसरोंको भी करना ही चाहिए या सब उसे कर सकते हैं, यह मानना ही महादोष है। जो बोझा हरियोमल[3] उठाता है,

१. पत्रका सब बहनोंकी ओरसे उत्तर देनेका काम। देखिए "पत्र : आश्रमके बालक और बालिकाओं-को", २१-२-१९३२।

२. आश्रमवासियोंको आश्रमके किसी-न-किसी नियमसे छूट मिल जाती है, इसके बारेमें।

३. सिन्धसे आये हुए एक बलिष्ठ आश्रमवासी जो आश्रमके फार्मपर काम करते थे।

वह मैं उठाने जाऊँ, तो मेरे प्राण-पखेरू उसी क्षण उड़ जायें। और हरियोमल अगर मेरी निर्बलतासे द्वेष करे, तो यह गलत ही कहा जायेगा।

बहुतोंने यह आरोप लगाया है कि लोग मुझे धोखा देते हैं। कोई भी धोखा नहीं देता, ऐसा नहीं है; लेकिन अधिकतर लोग मुझे धोखा नहीं देते। मैंने अनुभव किया है कि बहुत-से लोग मेरे सामने जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा मेरे पीछे नहीं कर पाते। इस वजहसे कुछ लोग मुझे छोड़ भी देते हैं। ऐसा अक्सर होता है, इसीलिए मुझपर आकर्षण-शक्तिका आरोपण किया जाता है।

लेकिन इतना कह देनेसे तुझे या दूसरोंको सन्तोष होनेकी सम्भावना कम ही है। यह मैंने बचावके लिए लिखा भी नहीं है। अपनी मनोदशा बताई है। लेकिन सच बात यह है और मैं इसे वर्षोंसे मानता आया हूँ कि आश्रमकी त्रुटियाँ मेरी त्रुटियोंका प्रतिबिम्ब हैं। मैंने अनेक लोगोंसे कहा है कि मुझसे मिलकर मुझे नहीं पहचाना जा सकता। मिलनेपर मैं अच्छा भी दिखाई दे सकता हूँ। जो वस्तु मुझमें न हो, उसका भी लोग मुझपर आरोपण कर सकते हैं। कारण, मैं सत्यका पुजारी हूँ, मेरी यह सत्य-पूजा दूसरोंको क्षण-भर विमुग्ध भी कर सकती है। मुझे पहचाननेके लिए मेरी गैर-हाजिरीमें आश्रमको देखना चाहिए। उसमें दिखाई देनेवाले सारे दोष मेरे दोषोंके प्रतिबिम्ब हैं, ऐसा मानना कोई भूलकी बात नहीं होगी, मेरे प्रति अन्याय नहीं होगा। जो समुदाय आश्रममें इकट्ठा हुआ है, उसे मैं खींच लाया हूँ, ऐसा ही कहा जायेगा। और आश्रममें रहकर भी वे दोषोंको दूर न कर सके हों, या कुल मिलाकर उनके दोषोंमें वृद्धि हुई हो, तो उसमें उनका दोष नहीं, मेरा दोष है। उसमें मेरी साधनाकी कमी है। इन कमियोंको मैं जानता या देखता नहीं, ऐसा भी नहीं है। सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि जो कमियाँ हैं, वे प्रयत्न करनेके बावजूद हैं। और क्योंकि मैं प्रयत्नशील हूँ, इसलिए कुल मिलाकर आश्रमका पतन नहीं हुआ, ऐसा मेरा विश्वास है। मुझे खुदको इससे आश्वासन मिलता है कि तीन जगह आश्रम बनाये और तीनों स्थानोंपर उनके तात्कालिक हेतु सफल हुए दिखाई दिये हैं। लेकिन इस आश्वासनसे भी मैं अपनेको या दूसरोंको धोखा नहीं देता। मुझे तो बहुत दूर जाना है। मार्गमें घाटियाँ और पहाड़ खड़े हैं। फिर भी यात्रा तो करनी ही है। और सत्यकी शोधमें असफलताके लिए अवकाश ही नहीं है, इस ज्ञानसे मैं निश्चिन्त रहता हूँ।

विद्वत्समाजको आश्रम आकर्षित नहीं कर सका, यह बिलकुल सच है। क्योंकि मैं अपनेको विद्वान नहीं मानता। इसके सिवा जो मुट्ठी-भर विद्वान आश्रमके प्रति खिंचे हैं, वे विद्वत्ताका पोषण करनेके लिए नहीं, बल्कि दूसरा ही कुछ लेने और उसका पोषण करनेके लिए इकट्ठे हुए हैं। वे सत्य-शोधक हैं। और सत्यकी खोज तो अपढ़ कर सकता है, बच्चा कर सकता है, स्त्री कर सकती है, पुरुष कर सकता है। अक्षर-ज्ञान कभी-कभी हिरण्मय मात्रका काम करता है और सत्यका मुँह ढँक देता है। यह कहकर मैं अक्षरज्ञानकी निन्दा नहीं करता, लेकिन उसे उसके उचित स्थानपर रखता हूँ। अनेक साधनोंमें यह भी एक साधन है।

आश्रममें मुख्यतः संस्कृत-प्रार्थना पसन्द की गई है, क्योंकि उसमें मुख्य रूपसे हिन्दू समुदाय ही आया है। दूसरी प्रार्थनाओंसे द्रोह नहीं है। कभी-कभी हम दूसरी प्रार्थनाएँ करते भी हैं न? अगर हिन्दुओंके बजाय मुसलमान अधिक आ जायें, तो कुरान शरीफ रोज पढ़ा जायेगा और उसमें मैं भी भाग लूँगा।

इतनेसे तुझे कुछ उत्तर मिलता है? सन्तोष होता है? उत्तर न मिले, सन्तोष न हो, तो बार-बार पूछना। मैं नहीं थकूँगा। तुझे सन्तोष देना चाहता हूँ। तू थकना मत।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७३) से। सी० डब्ल्यू० ६७२१ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

१५५. पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको

२० फरवरी, १९३२

चि० मथुरादास[1],

अच्छा हुआ, तुम आ गये। मैंने कमुको तो यह बहुत साल पहले लिखा ही था। डॉक्टरोंकी भी यही राय बनती जा रही है कि सभी बीमारियोंकी एक ही जड़ होती है और इसलिए उनका मुख्य इलाज भी एक ही है। इस इलाजमें जो फेरफार होते रहने चाहिए, यदि कोई उन्हें न भी करे तो इससे ज्यादा क्या, कम नुकसान भी नहीं होता। ऐसा भले ही कहा जाये कि बीमारी गयी नहीं, पर बीमारी चली भी जाये तो उससे क्या होता है? शरीरको अमरताका वरदान तो नहीं मिल जाता। इसलिए यदि कोई श्रद्धापूर्वक एक ही इलाज करता रहे, तो वह कोई पाप नहीं करता।

यही हाल आध्यात्मिक रोगोंका है। मूल एक ही है और वह है अभिमान। दवा भी सबकी एक ही है। अभिमान त्याग दें और शून्य बन जायें। शून्य किस तरह चोरी कर सकता है, किस तरह झूठ बोल सकता है या दुराचार कर सकता है? तुमने जिस प्रकारके प्रश्न पूछे हैं, उनमें तुम्हारा अज्ञान दिखाई देता है। एक ही उदाहरण लें। सामान्य प्रकारकी चोरी तुम नहीं करते, पर तुम अखाद्य खाते हो और तुम्हारा यह मानना ठीक है कि यह चोरी ही है। इस चोरी और सामान्य चोरीका उपाय तो एक ही है कि चोरी न करें अर्थात् निषिद्ध चीज न खायें। किन्तु निषिद्ध भोजन कौन करता है? अभिमानी जीव। जिसमें अहंभाव नहीं रहा, उसके लिए शरीरमें रहनेवाला जीव खाते हुए भी नहीं खाता, क्योंकि वह तो शरीरको केवल अपने रहनेका किराया-भर चुका देगा। फिर तो स्वादकी जड़ ही काट दी गई। यह

१. मथुरादास पु० आसर, आश्रमके कुशल धुनिया व खादी-कार्यकर्त्ता।

सब तुम्हारी बुद्धि शायद स्वीकार कर लेगी। किन्तु जब हृदयमें बैठ जायेगा, तभी इसका कुछ अर्थ होगा। इसे हृदयमें बैठानेके लिए ही हम आश्रममें रहकर सत्संग खोजते रहते हैं। रोज भजन आदि करते हैं। ऐसा करते-करते किसी दिन जो हम चाहते हैं, वह हमें मिल जायेगा और हमारा 'मैं' का रोग शान्त हो जायेगा। न समझ सको तो इस स्पष्टीकरणसे तुम अपनी सारी शंकाओंके उत्तर निकाल सकते हो। न निकाल सको तो मैं चाहे जितना लिखूँ, तो भी तुम किनारे नहीं लग पाओगे। जबतक तुम्हारी शंकाओंका निवारण न हो, तबतक बार-बार पूछते रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७५३) से।

१५६. पत्र : हरिइच्छा पी० कामदारको

२० फरवरी, १९३२

चि० हरिइच्छा,

तेरा पत्र मिला। तूने अपने अक्षर खराब कर लिये हैं। ऐसा मत कर। विवाह हो गया है इसलिए पहले सीखी हुई बातें भूल मत, बल्कि आगे बढ़। अरविन्द[1] का शोक करना छोड़ दे। ऐसे वियोग तो शरीरके साथ जुड़े हैं और उन्हें सहन करना चाहिए।

तू जब चाहे पत्र लिख सकती है। और जबतक मुझे किसीसे भी मिलनेकी अनुमति है, तबतक तू मुझसे मिलनेके लिए अवश्य आ सकती है। आ जाना। यह अनुमति कबतक रहने देंगे, यह मैं नहीं जानता।

हम दोनोंका आशीर्वाद। दोनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४६९) से। सी० डब्ल्यू० ४९१५ से भी; सौजन्य : हरिइच्छा पी० कामदार।

१. हरिइच्छाका बेटा जो चल बसा था।

१५७. पत्र : शिवाभाई गो० पटेलको

२० फरवरी, १९३२

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला।

हमारे साथ रहनेवाले असत्य बोलें या असत्य आचरण करें और हम उसे प्रोत्साहन दें या उल्टे-सीधे ढंगसे उसका लाभ उठायें तो हम भी उस असत्यके भागीदार बन जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसीलिए तुलसीदासने सत्संग खोजनेका उपदेश दिया है। किन्तु संसारमें हम सदा आदर्शतक नहीं पहुँच पाते हैं। साथियोंको सहन करना ही पड़ता है। तब यही हो सकता है कि हम प्रत्येक स्थितिपर विचार करें और फिर यथाशक्ति कदम उठायें। जहाँ जान-बूझकर असत्य आचरण किया जा रहा हो, वहाँ हम उसमें भाग न लें। किन्तु कभी ऐसी स्थिति भी आ जाती है जिसमें से हठात् निकला भी न जा सकता हो। जहाँ स्थिति ही असत्यपूर्ण हो, वहाँ असहयोगका शस्त्र तो है ही। ऐसा तो है नहीं कि आश्रममें कोई असत्य आचरण करनेवाला ही नहीं है। फिर भी हम आश्रम बन्द नहीं करते और असत्य भी सहन नहीं करते। साथियोंको सहन करते हैं और रोज आगे बढ़नेके लिए प्रयत्न करते हैं। संसारमें कोई भी व्यक्ति इससे ज्यादा नहीं कर सकता।

क्या तकलीसे कातनेका नया तरीका तुम्हें मालूम हो गया है? वह वर्धामें प्रचलित है, उसे अपनानेपर आधे घंटेमें १६० तार कात सकते हैं। अपनी दैनन्दिनीमें तुम्हें दैनिक कार्यक्रमके अलावा और कुछ लिखनेकी क्या जरूरत है? उसे भी छोड़ना पड़े तो छोड़ा जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५०८) से। सी० डब्ल्यू० ४२४ से भी; सौजन्य : शिवाभाई गो० पटेल।

१५८. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

२० फरवरी, १९३२

भाई विट्ठलदास,

तुम्हारा पत्र मिला। अपने स्वास्थ्यको पूरी तरह सुधरनेका समय देना। तनिक भी जल्दी न करना। इस बार खादीकी बिक्री कम हुई है, इसका कारण दीपकके प्रकाशकी तरह स्पष्ट है। किन्तु उसकी चिन्ता छोड़ दो। "जगन्नियंताको जो अच्छा लगता है, उसके लिए शोक करना बेकार है।"[1]

सरदार मजेमें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७७८) से। सी० डब्ल्यू० २८०८ से भी; सौजन्य : पुरुषोत्तम दा० सरैया।

१५९. पत्र : लक्ष्मी जेराजाणीको[2]

२० फरवरी, १९३२

चि० लक्ष्मी,

तेरे अक्षर तो सुन्दर हैं। स्याहीसे क्यों नहीं लिखती? विट्ठलदासकी जो सेवा कर रही है, वह तो तेरे भविष्यके लिए उत्तम तैयारी है।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत विट्ठलदास जेराजाणी
सासवड
जिला अलीबाग

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७७८) से। सी० डब्ल्यू० २८०९ से भी; सौजन्य : पुरुषोत्तम दा० सरैया।

१. गुजरातीमें "जे गमे जगत-गुरु देवने, ते तणो खरखरो फोक करवो"। देखिए **आश्रम भजनावली**, खण्ड, ४४ पृष्ठ ४६१।

२. यह पत्र विट्ठलदास जेराजाणीको लिखे गये पोस्टकार्डपर लिखा हुआ है। देखिए पिछला शीर्षक।

१६०. पत्र : रामेश्वरलाल बजाजको

[२१ फरवरी, १९३२ के पूर्व][1]

भाई रामेश्वरलाल,[2]

आपका पत्र मिला है। मेरी उमेद है कि मैंने मिस लेस्टरके मार्फत जो खत भेजा वह मिला होगा।

मेरा स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा है। आजकल दूध नहिं लेता हुं। बदाम पीसी हुई, खजुर, टमाटां प्राय: लेता हुं। कोई वखत पपीटा लेता हुं। जेलमें खानेकी कोई मर्यादा सरकारके तरफसे नहिं रखी गई है। मेरा वजन १०९ रतल है। ऐसा हि बाहर था। वहांसे कोई चीज भेजनेकी आव [श्यकता] नहिं है। बादाम बहोत अच्छी मिलती है। म[धु] महाब[लिश्वरका] मिलता है। जब दिल चाहे तब लिखा करो।

मेरा समय कातनेमें और पढ़नेमें जाता है। आश्रमवासियोंको खत लिखनेकी इजाजत है इसलिए खत लिखनेमें भी ठीक समय जाता है। दिनमें काफी सोता भी हुं। दो घण्टा टहलता हुं। मेरे साथमें सरदार वल्लभभाई है।

रुक्मिणीके[3] खत मिलते होंगे। वह और बालक अच्छे हैं। अब वापिस कब आओगे ?

आपका प्रेम हमेशा याद आता है।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ९४४६) से; सौजन्य : बनारसीलाल बजाज।

१. पत्रमें गांधीजी की खुराकके बारेमें दिये गये विवरणसे स्पष्ट है कि यह पत्र २१ फरवरी, १९३२ से पूर्व लिखा गया था। गांधीजी ने इस तिथिसे ही पपीतेके स्थानपर सब्जियाँ खाना शुरू किया था; देखिए "दैनन्दिनी, १९३२"।

२. बनारसीलाल बजाजके पिता जो उस वक्त ब्रिटेनमें थे।

३. मगनलाल गांधीकी पुत्री, रुक्मिणी बनारसीलाल बजाज।

१६१. गीता-पत्रावली[1]

(२१ फरवरी, १९३२)

प्रस्तावना[2]

मंगलप्रभात, ११ नवम्बर, १९३०

'गीता' महाभारतका एक छोटा-सा हिस्सा है। महाभारत ऐतिहासिक ग्रन्थ माना जाता है, लेकिन हम महाभारत और रामायण दोनोंको ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं, धर्म-ग्रन्थ मानते हैं। अथवा उन्हें इतिहास कहें ही तो वे आत्माके इतिहास हैं। उनमें हजारों वर्ष पहले क्या हुआ था, इस बातका नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्यके अन्तरमें आज क्या हो रहा है, इसका वर्णन है। महाभारत और रामायण दोनोंमें देव और असुर, राम और रावणमें रोज चल रही लड़ाईका वर्णन है। 'गीता'में कृष्ण और अर्जुन का संवाद ऐसा ही एक वर्णन है। इसका वर्णन संजय धृतराष्ट्रके सामने करता है। 'गीता' शब्दका अर्थ है 'गाई हुई'। यहाँ उपनिषद् शब्द जोड़ लेना चाहिए। दोनों शब्दोंका सम्मिलित शाब्दिक अर्थ हुआ 'गाई हुई उपनिषद्'। 'उपनिषद्' शब्दका अर्थ है 'ज्ञान' या 'बोध।' इसलिए 'गीता'का अर्थ हुआ श्रीकृष्ण-द्वारा अर्जुनको दिया हुआ बोध। हमें 'गीता' यह समझकर पढ़नी चाहिए कि हमारे हृदयमें अन्तर्यामी भगवान

१. ये पत्र गांधीजी ने यरवदा सेन्ट्रल जेलमें कैदके दौरान १९३० और १९३२ में लिखे थे। ये प्रति सप्ताह नारणदास गांधीको पत्रोंके साथ भेजे जाते थे ताकि ये आश्रमकी प्रार्थना-सभाओंमें पढ़े जायें। गांधीजी ने यह पत्रावली अध्याय १२ के साथ शुरू की थी; देखिए खण्ड, ४४ पृष्ठ २७४। अगले सप्ताह गांधीजी ने पहला अध्याय भेजा जिसमें **गीता**पर प्रस्तावनात्मक टिप्पणी भी थी।

सब अध्याय यहाँ २१ फरवरी, १९३२ तारीखके अन्तर्गत दिये गये हैं। यह तारीख नारणदास गांधीको पत्र भेजने की है जिसमें अठारहवें अध्यायपर प्रवचन था। पत्रावली यहीं समाप्त हो जाती है। देखिए अगला शीर्षक।

गांधीजी का **गीता**का गुजराती अनुवाद १२ मार्च, १९३० को प्रकाशित हुआ था। यह साबरमतीसे दाँडी-यात्राके लिए प्रस्थानका अविस्मरणीय दिन है। आश्रमके एक सदस्यने इसे पढ़नेपर देखा कि इसे समझ पाना बड़ा कठिन है। उन्होंने इस आशयकी शिकायत गांधीजी से की। गांधीजी उन दिनों यरवदा-जेलमें थे। इसपर गांधीजी ने यह पत्रावली लिखकर आश्रमको भेजी जिसमें **गीता**के प्रत्येक अध्यायपर उन्होंने एक पत्र लिखा।

१९२६ में प्रार्थना-सभाओंमें **गीता**पर गांधीजी ने जो प्रवचन दिये उनके लिए देखिए खण्ड ३२, पृष्ठ १००-३६९। १९२९ में लिखे गए गांधीजी के **गीता** के गुजराती अनुवादके लिए देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ९२-१६७।

२. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", ११-११-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४४ पृष्ठ २९१–२।

श्रीकृष्ण सदा विराजमान हैं और हम जब भी धर्म-संकटमें अर्जुनकी भाँति जिज्ञासु बनकर इस अन्तर्यामी भगवानकी शरण लेते हैं, तो वह हमेशा हमें शरण देनेको तैयार रहता है। हम सो रहे हैं, अन्तर्यामी नित्य जाग रहा है। वह हमेशा इस बातकी राह देखता है कि हममें जिज्ञासा जाग्रत हो। पर हमें प्रश्न पूछना नहीं आता, प्रश्न करनेका मन भी नहीं होता। इसलिए हम प्रतिदिन 'गीता'-जैसी पुस्तकका मनन करते हैं। उसका मनन करते हुए हम अपनेमें धर्म-जिज्ञासा पैदा करना चाहते हैं, सवाल पूछना चाहते हैं। और जब-जब हम संकटमें होते हैं, तब-तब अपने संकट-निवारणके लिए 'गीता' के पास दौड़े जाते हैं और उससे आश्वासन प्राप्त करते हैं। हमें 'गीता' इसी दृष्टिसे पढ़नी है। 'गीता' हमारे लिए सद्गुरु-रूप है, माता-रूप है और हमें यह विश्वास होना चाहिए कि उसकी गोदमें सिर रखनेसे हम हमेशा सुरक्षित रहेंगे। 'गीता' हमारी सारी धार्मिक उलझनें सुलझायेगी। जो रोज इस तरह गीता'का मनन करेगा, उसे उसमें से रोज नया आनन्द मिलेगा, नये-नये अर्थ मिलेंगे। ऐसी कोई धार्मिक उलझन नहीं है जिसे 'गीता' न सुलझा सके। अपनी अपर्याप्त श्रद्धाके कारण हम उसे ठीक तरहसे पढ़ना और समझना न जानें, यह दूसरी बात है। हमारी श्रद्धा लगातार बढ़ती रहे और हम जाग्रत बनें, इसीलिए हम प्रतिदिन 'गीता'का पारायण करते हैं। इस तरह 'गीता'का मनन करते हुए मुझे जो अर्थ मिले हैं और आज भी मिल रहे हैं, उनका सार आश्रमवासियोंकी मददके लिए मैं यहाँ देता हूँ।

पहला अध्याय

पाण्डव और कौरव अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें खड़े होते हैं, उस समय दुर्योधन द्रोणाचार्यके समक्ष दोनों पक्षोंके मुख्य योद्धाओंका वर्णन करता है। दोनों सेनाएँ लड़ाईके लिए तैयार होती हैं, दोनों पक्षोंके योद्धा अपने शंख बजाते हैं और श्रीकृष्ण भगवान, जो अर्जुनके सारथी हैं, अपना रथ दोनों सेनाओंके मध्यमें ले जाते हैं। यह देखकर अर्जुन घबराता है और श्रीकृष्णसे कहता है: "इनके साथ मैं कैसे लड़ सकता हूँ? कोई दूसरे होते तो मैं अभी लड़ लेता। लेकिन ये तो स्वजन हैं, मेरे ही हैं। कौरवों और पाण्डवोंमें आखिर क्या फर्क है? हम सब, चचेरे ही सही, पर भाई-भाई हैं। हम साथ ही पलकर बड़े हुए हैं। द्रोण केवल कौरवोंके नहीं, हमारे भी आचार्य हैं। हमें भी सारी विद्या उन्होंने ही सिखाई है। भीष्म हमारे सारे परिवारके प्रमुख हैं। उनके साथ लड़ाई कैसी? यह सच है कि कौरव आततायी हैं, उन्होंने अनेक दुष्ट-कर्म किये हैं, अन्याय किये हैं; पाण्डवोंकी जमीन छीन ली है, द्रौपदी-जैसी महासतीका अपमान किया है। ये सब दोष उन्होंने किये हैं, लेकिन उन्हें मारनेसे क्या लाभ? वे तो मूढ़ हैं। मैं क्यों उन जैसा बनूँ? मुझे कुछ ज्ञान है, सारासारका विवेक है। इसलिए मुझे जानना चाहिए कि अपने सगे-सम्बन्धियोंसे लड़नेमें पाप है। वे पाण्डवोंका भाग पचा गये हैं तो इससे क्या हुआ? भले वे हमें मार डालें, लेकिन हम अपना हाथ उनके खिलाफ कैसे उठा सकते

हैं? हे कृष्ण, मैं अपने इन स्वजनोंसे नहीं लड़ूँगा।"—ऐसा कहकर अर्जुन लड़खड़ाकर रथमें बैठ गया।

इस तरह यह पहला अध्याय पूरा होता है। इसका नाम अर्जुन-विषाद योग है। विषाद यानी दुःख। जैसा दुःख अर्जुनने अनुभव किया, वैसा हम सबको अनुभव होना चाहिए। आध्यात्मिक व्याकुलता और आध्यात्मिक जिज्ञासाके बिना ज्ञान नहीं मिल सकता। क्या अच्छा है और क्या बुरा है, यह जाननेकी इच्छा भी जिसे नहीं होती, उसके लिए धर्म-चर्चाका क्या मूल्य हो सकता है? कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिका उल्लेख तो प्रसंगवश हुआ समझना चाहिए। सच्चा कुरुक्षेत्र हमारा अपना शरीर है। वह कुरुक्षेत्र भी है और धर्मक्षेत्र भी है। यदि हम उसे ईश्वरका निवास-स्थान मानें और वैसा बनायें तो वह धर्मक्षेत्र है। इस युद्धभूमिमें हमारे सामने रोज एक-न-एक लड़ाई खड़ी ही रहती है और इनमें से अधिकांश लड़ाइयाँ 'यह मेरा और यह तेरा' के विचारोंसे ही पैदा होती हैं। स्वजन और परजनके भेदसे ही ऐसी लड़ाइयाँ उपजती हैं। इसीलिए आगे चलकर भगवान कृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि अधर्म मात्रका मूल राग-द्वेषमें है। किसी वस्तुको 'मेरी' मानते ही राग उत्पन्न होता है और उसे 'पराई—दूसरेकी' मानते ही द्वेष उत्पन्न होता है, वैरभाव उत्पन्न होता है। 'गीता' और दुनियाके दूसरे धर्मग्रन्थ हमें पुकार-पुकारकर कहते हैं कि मेरे और तेरेका भेद भूलना चाहिए, अथवा राग और द्वेष छोड़ना चाहिए। यह कहना एक बात है और करना दूसरी बात। 'गीता' हमें वैसा करनेके लिए कहती है। सो कैसे, आगे हम इसे समझनेका प्रयत्न करेंगे।

दूसरा अध्याय

सोमप्रभात, १७ नवम्बर, १९३०

अर्जुनको जब चेत हुआ तो भगवानने उसे उलाहना दिया और कहा कि यह मोह तुझे कहाँसे आ गया? तेरे-जैसे वीर पुरुषको यह शोभा नहीं देता। पर अर्जुनका मोह यों टलनेवाला नहीं था। वह लड़नेसे इनकार करके बोला, "इन सगे-सम्बन्धियों और गुरुजनोंको मारकर, मुझे राजपाट तो दरकिनार, स्वर्गका सुख भी नहीं चाहिए। मैं कर्त्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ। इस स्थितिमें धर्म क्या है, यह मुझे नहीं सूझता। मैं आपकी शरण हूँ, मुझे धर्म बतलाइए।"

इस भाँति अर्जुनको बहुत व्याकुल और जिज्ञासु देखकर भगवानको दया आई। वे उसे समझाने लगे: तू व्यर्थ दुखी होता है और बेसमझे-बूझे ज्ञानकी बातें करता है। जान पड़ता है कि तू देह और देहमें रहनेवाले आत्माका भेद ही भूल गया है। देह मरती है, आत्मा नहीं मरती। देह तो जन्मसे ही नाशवान है, देहमें जैसे जवानी और बुढ़ापा आता है वैसे ही उसका नाश भी होता है। देहका नाश होनेपर देहीका नाश कभी नहीं होता। देहका जन्म है, आत्माका जन्म नहीं है। वह तो अजन्मा है। उसे घट-बढ़ नहीं है। वह तो सदैव थी, आज है और आगे भी रहनेवाली है।

फिर तू काहेका शोक करता है? तेरा शोक तेरे मोहका कारण है। इन कौरव आदिको तू अपना मानता है, इसलिए तुझे ममता हो गई है। पर तुझे समझना चाहिए कि जिस देहसे तुझे ममता है, वह तो नाशवान ही है। उसमें रहनेवाले जीवका विचार करनेपर तत्काल तेरी समझमें आ जायेगा कि उसका नाश तो कोई कर ही नहीं सकता। उसे न अग्नि जला सकती है, न वह पानीमें डूब सकता है, न वायु उसे सुखा सकती है। इसके सिवा, तू अपने धर्मको तो सोच! तू तो क्षत्रिय है। तेरे पीछे यह सेना इकट्ठी हुई है। अब अगर तू कायर बन जाये तो तू जो चाहता है, उससे उल्टा नतीजा होगा और तेरी हँसी होगी। आजतक तेरी गिनती बहादुरोंमें हुई है। अब यदि तू अधबीचमें लड़ाई छोड़ देगा तो लोग कहेंगे कि अर्जुन कायर होकर भाग गया। यदि भागनेमें धर्म होता तो लोक-निन्दाकी कोई परवाह न थी। पर यहाँ तो यदि तू भागे तो अधर्म होगा और लोक-निन्दा उचित समझी जायेगी, यह दोहरा दोष होगा।

यह तो मैंने तेरे सामने बुद्धिकी दलील रखी, आत्मा और देहका भेद बताया और तेरे कुल-धर्मका तुझे भान कराया। पर अब तुझे मैं कर्मयोगकी बात समझाता हूँ। इस योगपर अमल करनेवालेको कभी नुकसान नहीं होता। इसमें तर्ककी बात नहीं है, आचरणकी है, करके अनुभव पानेकी बात है। और यह तो प्रसिद्ध अनुभव है कि हजारों मन तर्ककी अपेक्षा तोला-भर आचरणकी कीमत अधिक है। इस आचरणमें भी यदि अच्छे-बुरे परिणामका तर्क आ घुसे तो फिर वह दूषित हो जाता है। परिणामके विचारसे ही बुद्धि मलिन हो जाती है। वेदवादी लोग कर्मकांडमें पड़कर अनेक प्रकारके फल पानेकी इच्छासे अनेक क्रियाएँ आरम्भ कर बैठते हैं। एकसे फल न मिलनेपर दूसरीके पीछे दौड़ते हैं। फिर कोई तीसरी बात बता देता है तो उसके पीछे हैरान होते हैं, और ऐसा करनेमें उनकी मति भ्रममें पड़ जाती है। वास्तवमें मनुष्यका धर्म फलका विचार छोड़कर कर्त्तव्य-कर्म करते रहना है। इस समय यह युद्ध तेरा कर्त्तव्य है, इसे पूरा करना तेरा धर्म है। लाभ-हानि, हार-जीत तेरे हाथमें नहीं है। तू गाड़ीके नीचे चलनेवाले कुत्तेकी भाँति इसका बोझ क्यों ढोता है? हार-जीत, सरदी-गरमी, सुख-दुःख देहके साथ लगे हुए हैं, उन्हें मनुष्यको सहना चाहिए। जो भी नतीजा हो, उसके विषयमें निश्चिन्त रहकर तथा समता रखकर मनुष्यको अपने कर्त्तव्यमें तन्मय रहना चाहिए। इसका नाम योग है और इसीमें कर्म-कुशलता है। कार्यकी सिद्धि कार्यके करनेमें छिपी है, उसके परिणाममें नहीं। तू स्वस्थ हो, फलका अभिमान छोड़ और कर्त्तव्यका पालन कर।

यह सुनकर अर्जुन पूछता है: यह तो मेरे बूतेके बाहर जान पड़ता है। हार-जीतका विचार छोड़ना, परिणामका विचार ही न करना, ऐसी समता, ऐसी स्थिरबुद्धि कैसे आ सकती है? मुझे समझाइए कि ऐसी स्थिर बुद्धिवाले कैसे होते हैं, उन्हें कैसे पहचाना जा सकता है?

तब भगवानने जवाब दिया:

हे अर्जुन! जिस मनुष्यने अपनी कामना-मात्रका त्याग किया है और जो अपने अन्तरमें से ही सन्तोष प्राप्त करता है, वह स्थिरचित्त, स्थितप्रज्ञ, स्थिरबद्धि या समाधिस्थ

कहलाता है। ऐसा मनुष्य न दुःखसे दुखी होता है, न सुखसे फूल उठता है। सुख-दुःखादि पाँच इन्द्रियोंके विषय हैं। इसलिए ऐसा बुद्धिमान मनुष्य कछुएकी भाँति अपनी इन्द्रियोंको समेट लेता है; पर कछुआ तो जब किसी दुश्मनको देखता है तब अपने अंगोंको ढालके नीचे समेटता है; लेकिन मनुष्यकी इन्द्रियोंपर तो विषय नित्य चढ़ाई करनेको खड़े ही हैं, अतः उसे तो हमेशा इन्द्रियोंको समेटे रखना और स्वयं ढालरूप होकर विषयोंके मुकाबलेमें लड़ना है। यह असली युद्ध है। कोई तो विषयोंसे बचनेके लिए देह-दमन करता है, उपवास करता है। यह ठीक है कि उपवास-कालमें इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर नहीं दौड़तीं; अकेले उपवाससे रस नहीं सूख जाता। उपवास छोड़नेपर वह और भी बढ़ जाता है। रसको दूर करनेके लिए तो ईश्वरका प्रसाद चाहिए। इन्द्रियाँ तो ऐसी बलवान हैं कि वे मनुष्यको उसके सावधान न रहनेपर जबरदस्ती घसीट ले जाती हैं। इसलिए मनुष्यको इन्द्रियोंको हमेशा अपने वशमें रखना चाहिए। यह तब हो सकता है जब वह ईश्वरका ध्यान धरे, अन्तर्मुख हो, हृदयमें रहनेवाले अन्तर्यामीको पहचाने और उसकी भक्ति करे। इस प्रकार जो मनुष्य ईश्वरपरायण रहकर अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह स्थिरबुद्धि योगी कहलाता है। इससे विपरीत करनेवालेके हाल भी मुझसे सुन। जिसकी इन्द्रियाँ स्वच्छन्द रूपसे बरतती हैं, वह नित्य विषयोंका ध्यान करता है। तब उनमें उसका मन फँस जाता है। उनके सिवा उसे और कुछ सूझता ही नहीं। ऐसी आसक्तिमें से काम पैदा होता है। बादको उसकी पूर्ति न होनेपर उसे क्रोध आता है। क्रोधातुर तो बावला-सा हो ही जाता है, आपेमें नहीं रह जाता। अतः स्मृतिभ्रंशके कारण जो-सो बकता और करता है। ऐसे व्यक्तिका अन्तमें नाशके सिवा और क्या होगा? जिसकी इन्द्रियाँ यों भटकती फिरती हैं उसकी हालत पतवारहीन नावकी-सी हो जाती है। चाहे जो हवा नावको जिधर-तिधर घसीट ले जाती है और अन्तमें किसी चट्टानसे टकराकर नांव चूर-चूर हो जाती है। जिसकी इन्द्रियाँ भटका करती हैं, उसके ये हाल होते हैं। अतः मनुष्यको कामनाओंको छोड़ना और इन्द्रियोंपर काबू रखना चाहिए। इससे इन्द्रियाँ न करने योग्य कार्य नहीं करेंगी, आँखें सीधी रहेंगी, पवित्र वस्तुको ही देखेंगी, कान भगवद्भजन सुनेंगे, या दुःखीकी आवाज सुनेंगे। हाथ-पाँव सेवा-कार्यमें लगे रहेंगे और ये सब इन्द्रियाँ मनुष्यके कर्त्तव्य-कर्ममें ही लगी रहेंगी और उसमें से उन्हें ईश्वरकी प्रसादी मिलेगी। वह प्रसादी मिली कि सारे दुःख गये समझो। सूर्यके तेजसे जैसे बर्फ पिघल जाती है, वैसे ईश्वर-प्रसादीके तेजसे सारे दुःख भाग जाते हैं और ऐसे मनुष्यको स्थिरबुद्धि कहते हैं। पर जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है, उसमें अच्छी भावना कहाँसे आयेगी? जिसमें अच्छी भावना नहीं, उसमें शान्ति कहाँ? जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँ? स्थिरबुद्धि-मनुष्यको जहाँ दीपककी भाँति साफ दिखाई देता है वहाँ अस्थिर मनवाले दुनियाकी गड़बड़में पड़े रहते हैं और देख ही नहीं सकते। और ऐसी गड़बड़वालोंको जो स्पष्ट लगता है, वह समाधिस्थ योगीको स्पष्ट रूपसे मलिन लगता है और वह उधर नजरतक नहीं डालता। ऐसे योगीकी तो ऐसी स्थिति होती है कि नदी-नालोंका पानी जैसे समुद्रमें समा जाता है, वैसे विषयमात्र इस

समुद्ररूपी योगीमें समा जाते हैं। और ऐसा मनुष्य समुद्रकी भाँति हमेशा शान्त रहता है। इससे जो मनुष्य सब कामनाएँ तजकर, निरहंकार होकर, ममता छोड़कर, तटस्थ रूपसे बरतता है, वह शान्ति पाता है। यह ईश्वरप्राप्तिकी स्थिति है और ऐसी स्थिति मृत्युतक बनाये रखनेवाला मोक्ष पाता है।

तीसरा अध्याय[1]

सोमप्रभात, २४ नवम्बर, १९३०

स्थितप्रज्ञके लक्षण सुनकर अर्जुनको ऐसा लगा कि मनुष्यको शान्त होकर बैठे रहना चाहिए। उसके लक्षणोंमें कर्मका तो नामतक उसने नहीं सुना। इसलिए भगवानसे पूछा — "आपके वचनोंसे तो लगता है कि ज्ञान, कर्मसे बढ़कर है। इससे मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है। यदि ज्ञान अच्छा हो तो फिर मुझे घोर कर्ममें क्यों उतार रहे हैं? मुझे साफ कहिए कि मेरा भला किसमें है?"

तब भगवानने उत्तर दिया :

"हे पाप-रहित अर्जुन! आरम्भसे ही इस जगतमें दो मार्ग चलते आये हैं: एकमें ज्ञानकी प्रधानता है और दूसरेमें कर्मकी। पर तू स्वयं देख ले कि कर्मके बिना मनुष्य अकर्मी नहीं हो सकता, बिना कर्मके ज्ञान आता ही नहीं। सब छोड़कर बैठ जानेवाला मनुष्य सिद्ध पुरुष नहीं कहला सकता।

तू देखता है कि प्रत्येक मनुष्य कुछ-न-कुछ तो करता ही है। उसका स्वभाव ही उससे कुछ करायेगा। जगतका यह नियम होनेपर भी जो मनुष्य हाथ-पाँव ढीले करके बैठा रहता है और मनमें तरह-तरहके मनसूबे बाँधता रहता है, वह मूर्ख कहा जायेगा और वह मिथ्याचारी भी गिना जायेगा। क्या इससे यह अच्छा नहीं है कि इन्द्रियोंको वशमें रखकर, राग-द्वेष छोड़कर, शोर-गुलके बिना, आसक्तिके बिना, अर्थात् अनासक्तभावसे मनुष्य हाथ-पाँवोंसे कुछ कर्म करे, कर्मयोग का आचरण करे? तू नियत कर्म, अपने हिस्सेमें आया हुआ सेवा-कार्य इन्द्रियोंको वशमें रखकर करता रह। आलसीकी भाँति बैठे रहनेसे यह कहीं अच्छा है। आलसी होकर बैठे रहनेवालेके शरीरका अन्तमें पतन हो जाता है; पर कर्म करते हुए इतना याद रखना चाहिए कि यज्ञ-कार्यके सिवा सारे कर्म लोगोंको बन्धनमें रखते हैं।

यज्ञके मानी हैं, अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरेके लिए, परोपकारके लिए किया हुआ श्रम अर्थात् संक्षेपमें 'सेवा'। और जहाँ सेवाके निमित्त ही सेवा की जायेगी वहाँ आसक्ति, राग-द्वेष नहीं होगा। ऐसी सेवा तू करता रह। ब्रह्माने जगत उपजानेके साथ-ही-साथ यज्ञ भी उपजाया; मानो हमारे कानमें यह मन्त्र फूँका कि पृथ्वीपर जाओ, एक-दूसरेकी सेवा करो और फूलो-फलो, जीवमात्रको देवतारूप जानो। इन देवोंकी सेवा करके तुम उन्हें प्रसन्न रखो, वे तुम्हें प्रसन्न रखेंगे। प्रसन्न हुए देव तुम्हें

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २१/२५-११-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३१३-७।

बिना माँगे मनोवांछित फल देंगे। इसलिए यह समझना चाहिए कि लोक-सेवा किये बिना, उनका हिस्सा उन्हें पहले दिये बिना जो खाता है, वह चोर है और जो लोगोंका, जीवमात्रका भाग उन्हें पहुँचानेके बाद खाता है या कुछ भोगता है, उसे वह भोगनेका अधिकार है अर्थात्, वह पापमुक्त हो जाता है। इससे उलटा, जो अपने लिए ही कमाता है — मजदूरी करता है — वह पापी है और पापका अन्न खाता है। सृष्टिका नियम ही यह है कि अन्नसे जीवोंका निर्वाह होता है। अन्न वर्षासे पैदा होता है और वर्षा यज्ञसे अर्थात् जीवमात्रकी मेहनतसे उत्पन्न होती है। जहाँ जीव नहीं है वहाँ वर्षा नहीं पाई जाती, जहाँ जीव है वहाँ वर्षा अवश्य है। जीवमात्र श्रमजीवी है। कोई पड़े-पड़े खा नहीं सकता। और मूढ़ जीवोंके लिए जब यह सत्य है तो मनुष्यके लिए यह कितने अधिक अंशमें लागू होना चाहिए? इससे भगवानने कहा, कर्मको ब्रह्माने पैदा किया। ब्रह्माकी उत्पत्ति अक्षर-ब्रह्मसे हुई, इसलिए यह समझना चाहिए कि यज्ञमात्रमें — सेवामात्रमें — अक्षर-ब्रह्म, परमेश्वर विराजता है। ऐसी इस प्रणालीका जो मनुष्य अनुसरण नहीं करता, वह पापी है और व्यर्थ जीता है।

मंगलप्रभात

यह कह सकते हैं कि जो मनुष्य आन्तरिक शान्ति भोगता है और सन्तुष्ट रहता है, उसका कोई कर्त्तव्य नहीं है, उसे कर्म करनेसे कोई फायदा नहीं, न करनेसे हानि नहीं है। किसीके सम्बन्धमें उसका कोई स्वार्थ न होनेपर भी यज्ञ-कार्यको वह छोड़ नहीं सकता। इससे तू तो कर्त्तव्य-कर्म नित्य करता रह, पर उसमें राग-द्वेष न रख, उसमें आसक्ति न रख। जो अनासक्तिपूर्वक कर्मका आचरण करता है वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। फिर जनक-जैसे निःस्पृही राजा भी कर्म करते-करते सिद्धिको प्राप्त हुए, क्योंकि वे लोकहितके लिए कर्म करते थे। तो तू कैसे इसके विपरीत बरताव कर सकता है? नियम यही है कि जैसा अच्छे और बड़े माने जानेवाले मनुष्य आचरण करते हैं, उसका अनुकरण साधारण लोग करते हैं। मुझे देख, मुझे काम करके क्या स्वार्थ साधना था? पर मैं चौबीसों घंटे बिना थके कर्म करता ही रहता हूँ और इससे लोग भी उसके अनुसार अल्पाधिक प्रमाणमें बरतते हैं। पर यदि मैं आलस्य कर जाऊँ तो जगतका क्या होगा?

तू समझ सकता है कि सूर्य, चन्द्र, तारे, इत्यादि स्थिर हो जायें तो जगतका नाश हो जाये। और इन सबको गति देनेवाला, नियममें रखनेवाला तो मैं ही ठहरा। किन्तु लोगोंमें और मुझमें इतना फर्क जरूर है कि मुझे आसक्ति नहीं है, लोग आसक्त हैं, वे स्वार्थमें फँसकर भागते रहते हैं। यदि तुझ-जैसा बुद्धिमान कर्म छोड़े तो लोग भी वही करेंगे और बुद्धिभ्रष्ट हो जायेंगे। तुझे तो आसक्तिरहित होकर कर्त्तव्य करना चाहिए, जिससे लोग कर्म-भ्रष्ट न हों और धीरे-धीरे अनासक्त होना सीखें। मनुष्य अपनेमें मौजूद स्वाभाविक गुणोंके वश होकर काम तो करता ही रहेगा। जो मूर्ख होता है, वही मानता है कि 'मैं करता हूँ।' साँस लेना–यह जीवनमात्रकी प्रकृति है, स्वभाव है। आँखपर किसी मक्खी आदिके बैठते ही तुरन्त मनुष्य स्वभावतः

ही पलकें हिलाता है; उस समय वह नहीं कहता कि मैं साँस लेता हूँ, पलक हिलाता हूँ: इस तरह जितने कर्म किये जायें, सब स्वाभाविक गुणोंके अनुसार क्यों न किये जायें? उनके लिए अहंकार क्या? और यों ममत्वरहित सहज कर्म करनेका सुवर्ण मार्ग है सब कर्म मुझे अर्पण करना और ममत्व हटाकर मेरे निमित्त करना। ऐसा करते-करते जब मनुष्यमें से अहंकार-वृत्ति और स्वार्थका नाश हो जाता है तब उसके सारे कर्म स्वाभाविक और निर्दोष हो जाते हैं। वह बहुत-से जंजालोंसे छूट जाता है। उसके लिए फिर कर्म-बन्धन-जैसा कुछ नहीं है और जहाँ स्वभावके अनुसार कर्म हों, वहाँ बलात्कारसे न करनेका दावा करनेमें ही अहंकार समाया हुआ है। ऐसा बलात्कार करनेवाला बाहरसे चाहे कर्म न करता जान पड़े, पर भीतर-भीतर तो उसका मन प्रपंच रचता ही रहता है। बाहरी कर्मकी अपेक्षा यह बुरा है, अधिक बन्धनकारक है।

वस्तुतः इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंमें राग-द्वेष विद्यमान है। कानोंको यह सुनना रुचता है, वह नहीं; नाकको गुलाबके फूलकी सुगन्ध भाती है, मल वगैरहकी दुर्गन्ध नहीं। सभी इन्द्रियोंके सम्बन्धमें यही बात है। इसलिए मनुष्यको इन राग-द्वेषरूपी दो ठगोंसे बचना चाहिए। और इन्हें मार भगाना हो तो कर्मोंकी श्रृंखलामें न पड़े। आज यह किया, कल दूसरा काम हाथमें लिया, परसों तीसरा, यों भटकता न फिरे। बल्कि अपने हिस्सेमें जो सेवा आ जाये, उसे ईश्वर-प्रीत्यर्थ करनेको तैयार रहे। तब यह भावना उत्पन्न होगी कि जो हम करते हैं, वह ईश्वर ही कराता है। यह ज्ञान उत्पन्न होगा और अहंभाव चला जायेगा। इसे स्वधर्म कहते हैं। स्वधर्मसे चिपटे रहना चाहिए, क्योंकि अपने लिए तो वही अच्छा है। देखनेमें परधर्म अच्छा दिखाई दे तो भी उसे भयानक समझना चाहिए। स्वधर्मपर चलते हुए मृत्यु होनेमें मोक्ष है।

राग-द्वेषरहित होकर किये जानेवाले कर्मको यज्ञरूप बतलानेपर अर्जुनने भगवानसे पूछा, "मनुष्य किसकी प्रेरणासे पाप-कर्म करता है? अक्सर तो ऐसा लगता है कि पाप-कर्मकी ओर कोई जबर्दस्ती ढकेल ले जाता है।"

भगवान बोले, "मनुष्यको पाप कर्मकी ओर ढकेल ले जानेवाला काम है और क्रोध है। दोनों सगे भाईकी भाँति हैं। कामकी पूर्तिके पहले ही क्रोध आ धमकता है। काम-क्रोधवाला रजोगुणी कहलाता है। मनुष्यके महान शत्रु यही हैं। इनसे नित्य लड़ना है। जैसे मैल चढ़नेसे दर्पण धुँधला हो जाता है, या अग्नि धुएँके कारण ठीक नहीं जल पाती और गर्भ झिल्लीमें पड़े रहनेतक घुटता रहता है, उसी प्रकार काम-क्रोध ज्ञानीके ज्ञानको प्रज्वलित नहीं होने देते, फीका कर देते हैं या दबा देते हैं। काम अग्निके समान विकराल है और इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सबपर काबू करके मनुष्यको पछाड़ देता है। इसलिए तू इन्द्रियोंसे पहले निपट, फिर मनको जीत, तो बुद्धि तेरे अधीन रहेगी, क्योंकि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि यद्यपि क्रमशः एक-दूसरेसे बढ़-चढ़ कर हैं तथापि आत्मा उन सबसे बढ़-चढ़कर है। मनुष्यको आत्माकी अपनी शक्तिका पता नहीं है, इसीलिए वह मानता है कि इन्द्रियाँ वशमें नहीं रहतीं, मन

वशमें नहीं रहता या बुद्धि काम नहीं करती। आत्माकी शक्तिका विश्वास होते ही बाकी सब आसान हो जाता है। इन्द्रियोंको, मन और बुद्धिको ठिकाने रखनेवालेका काम, क्रोध या उनकी असंख्य सेना कुछ नहीं कर सकती।"[१]

चौथा अध्याय[२]

सोमप्रभात [१ दिसम्बर, १९३०]

भगवानने अर्जुनसे कहा कि मैंने जो निष्काम कर्मयोग तुझे बतलाया है, वह बहुत प्राचीन कालसे चला आता है, नया नहीं है। तू प्रिय भक्त है और इस समय धर्मसंकटमें है इसलिए, उससे मुक्त करनेके लिए, मैंने तेरे सामने इसे रखा है। जब-जब धर्मकी निन्दा होती है और अधर्म फैलता है तब-तब मैं अवतार लेता हूँ और भक्तोंकी रक्षा करता हूँ, पापियोंका संहार करता हूँ। जो मेरी इस मायाको जाननेवाला है, वह विश्वास रखता है कि अधर्मका लोप अवश्य होगा, साधु पुरुषका रक्षक ईश्वर है। ऐसे मनुष्य धर्मका त्याग नहीं करते और अन्तमें मुझे पाते हैं; क्योंकि वे मेरा ध्यान धरनेवाले, मेरा आश्रय लेनेवाले होनेके कारण काम-क्रोधादिसे मुक्त रहते हैं और तप तथा ज्ञानसे शुद्ध बने रहते हैं। मनुष्य जैसा करता है, वैसा फल पाता है। मेरे नियमोंसे बाहर कोई रह नहीं सकता। गुण-कर्म-भेदसे मैंने चार वर्ण पैदा किये हैं। फिर भी मुझे उनका कर्त्ता मत समझ; क्योंकि मुझे इस कर्ममें से किसी फलकी आकांक्षा नहीं है, न इसका पाप-पुण्य मुझे होता है। यह ईश्वरकी माया समझने योग्य है। जगतमें जितनी प्रवृत्तियाँ हैं, सब ईश्वरी नियमोंके अधीन होती हैं, फिर भी ईश्वर उनसे अलिप्त रहता है, इसलिए वह उनका कर्त्ता है और अकर्त्ता भी। यों अलिप्त रहकर, अछूता रहकर, फलेच्छा-रहित होकर जैसे ईश्वर चलता है, वैसे मनुष्य भी निष्काम रहकर चले तो अवश्य मोक्ष पा जाये। ऐसा मनुष्य कर्ममें अकर्म देखता है और ऐसे मनुष्यको न करने योग्य कर्मका भी तुरन्त पता चल जाता है। कामनासे सम्बन्धित कर्म, जो कामनाके बिना हो ही नहीं सकते, वे सब न करने योग्य कर्म कहलाते हैं — उदाहरणके लिए चोरी, व्यभिचार, आदि कर्म कोई अलिप्त रहकर नहीं कर सकता। इसलिए जो कामना और संकल्प छोड़कर कर्त्तव्य-कर्म करता है उसके बारेमें कहा जाता है कि उसने अपनी ज्ञानरूपी अग्नि-द्वारा अपने कर्मोंको जला डाला है। यों कर्मफलका संग छोड़नेवाला मनुष्य सदा सन्तुष्ट रहता है, सदा स्वतन्त्र होता है। उसका मन ठिकाने होता है, वह किसी संग्रहमें नहीं पड़ता और जैसे आरोग्यवान पुरुषकी शारीरिक क्रियाएँ अपने-आप चलती रहती हैं, उसी प्रकार ऐसे मनुष्यकी प्रवृत्तियाँ अपने-आप चला करती हैं।

१. इसके बाद गांधीजी-द्वारा लिखित एक टिप्पणी है जो, २४-११-१९३० के अन्तर्गत पहले ही प्रकाशित हो चुकी है; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३३३-४।

२. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २७-११/३-१२-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३४७-९।

उनको चलानका उसे अभिमान नहीं होता, भानतक नहीं होता। वह स्वयं निमित्त-मात्र रहता है—सफलता मिली तो भी 'वाह-वाह', न मिली तो भी। सफलतासे वह फूल नहीं उठता, विफलतासे घबराता नहीं। उसके सब कर्म यज्ञरूप सेवाके लिए होते हैं। वह सारी क्रियाओंमें ईश्वरको ही देखता है और अन्तमें उसीको पाता है।

यज्ञ तो अनेक प्रकारके कहे गये हैं। उन सबके मूलमें शुद्धि और सेवा होती है। इन्द्रियदमन एक प्रकारका यज्ञ है; किसीको दान देना दूसरे प्रकारका। प्राणायामादि भी शुद्धिके लिए आरम्भ किये जानेवाले यज्ञ हैं। इनका ज्ञान किसी ज्ञाता गुरुसे प्राप्त किया जा सकता है। वह विनय, लगन और सेवासे ही सम्भव है। यदि सब लोग बिना समझे-बूझे यज्ञके नामपर अनेक प्रवृत्तियाँ करने लग जायें तो अज्ञानके निमित्त होनेके कारण, भलेके बदले बुरा नतीजा भी हो सकता है। इसलिए हरेक काम ज्ञानपूर्वक होनेकी पूरी आवश्यकता है। यहाँ ज्ञानसे मतलब अक्षर-ज्ञान नहीं है। उस ज्ञानमें शंकाकी कोई गुंजाइश नहीं रहती। उसका आरम्भ श्रद्धासे होता है और अन्तमें उसका अनुभव आता है। ऐसे ज्ञानसे मनुष्य सब जीवोंको अपनेमें देखता है और अपनेको ईश्वरमें देखता है, यहाँतक कि यह सब प्रत्यक्षकी भाँति उसे ईश्वरमय लगता है। ऐसा ज्ञान पापी-से-पापीको भी तार देता है। यह ज्ञान मनुष्यको कर्मबन्धनसे मुक्त करता है। अर्थात् कर्मका फल उसे स्पर्श नहीं करता। इसके समान पवित्र इस जगत्में दूसरा कुछ नहीं है। इसलिए तू श्रद्धा रखकर, ईश्वरपरायण होकर, इन्द्रियोंको वशमें रखकर ऐसा ज्ञान पानेका प्रयत्न कर; उससे तुझे परम शान्ति मिलेगी।[1]

पाँचवाँ अध्याय[2]

९ दिसम्बर, १९३०

अर्जुन कहता है, "आप ज्ञानको [कर्मसे] विशेष बतलाते हैं, तब मैं समझता हूँ कि कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है; संन्यास ही अच्छा है। फिर आप कर्मकी स्तुति करते हैं; और तब यह लगता है कि योग अच्छा है। इन दोनोंमें अधिक अच्छा क्या है, यह मुझे निश्चयपूर्वक बताइए। तभी मुझे कुछ शान्ति मिल सकती है।"

यह सुनकर भगवान बोले, "संन्यास अर्थात् ज्ञान और कर्मयोग अर्थात् निष्कामकर्म, ये दोनों अच्छे हैं। पर यदि चुनाव ही करना है तो मैं कहता हूँ कि योग अर्थात् अनासक्तिपूर्वक किया गया कर्म अधिक अच्छा है। जो मनुष्य किसी वस्तु या

१. इसके बाद गांधीजी-द्वारा लिखित एक टिप्पणी है जो १-१२-१९३० के अन्तर्गत पहले ही प्रकाशित हो चुकी है; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३३९।

२. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", ४/९-१२-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३६५-८।

मनुष्यसे न द्वेष करता है, न कोई इच्छा रखता है और सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, इत्यादि द्वंद्वोंसे परे रहता है, वह संन्यासी ही है। फिर वह कर्म करता हो या न करता हो। ऐसा मनुष्य सहज बन्धनमुक्त हो जाता है। अज्ञानी ज्ञान और योगमें भेद करता है, ज्ञानी नहीं। दोनोंका परिणाम एक ही होता है अर्थात्, दोनोंसे वही स्थान मिलता है। इसलिए सच्चा जाननेवाला वही है जो दोनोंको एक ही समझता है; क्योंकि शुद्ध ज्ञानवालेकी कार्यसिद्धि संकल्प-भरसे हो जाती है; अर्थात् बाहरी कर्म करनेकी उसे जरूरत नहीं रहती। जब जनकपुरी जल रही थी तब दूसरोंका धर्म था कि जाकर आग बुझायें। जनकके संकल्पसे ही उनका आग बुझानेका कर्त्तव्य पूरा हो रहा था; क्योंकि उनके सेवक उनके अधीन थे। यदि वे घड़ा-भर पानी लेकर दौड़ते तो सब चौपट कर देते। दूसरे लोग उनकी ओर ताकते रहते और अपना कर्त्तव्य भूल जाते। और विशेष भलमनसी दिखाते तो हक्का-बक्का होकर जनककी रक्षा करने दौड़ पड़ते। पर सब एकदम जनक नहीं बन सकते। जनककी स्थिति पाना बड़ा दुर्लभ है। करोड़ोंमें से किसीको अनेक जन्मोंकी सेवासे वह प्राप्त हो सकती है। यह भी नहीं है कि यह कोई सुखकी सेज हो। उत्तरोत्तर निष्काम कर्म करते हुए मनुष्यका संकल्प-बल बढ़ता जाता है और बाहरी कर्म कम होते जाते हैं। कहा जा सकता है कि वास्तवमें देखनेपर उसे इसका पता भी नहीं चलता। इसके लिए उसका प्रयत्न भी नहीं होता। वह तो सेवा-कार्यमें ही डूबा रहता है। उससे उसकी सेवा-शक्ति इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसे सेवासे कोई थकान आती नहीं जान पड़ती। इससे अन्तमें उसके संकल्पमें ही सेवा आ जाती है, वैसे ही, जैसे बहुत जोरसे गति करती हुई वस्तु स्थिर-सी लगती है। ऐसा मनुष्य कुछ करता नहीं है, यह कहना प्रत्यक्ष रूपसे अयुक्त है। पर ऐसी स्थिति साधारणतः कल्पनाकी ही वस्तु है, अनुभवमें नहीं आती। इसलिए मैंने कर्मयोगको विशेष कहा है। करोड़ों निष्काम कर्मसे ही संन्यासका फल प्राप्त करते हैं। वे संन्यासी होने जायें तो इधर या उधर कहींके न रहेंगे। संन्यासी होने गये तो मिथ्याचारी हो जानेकी पूरी सम्भावना है, और कर्मसे तो गये ही; मतलब, सब खोया। पर जो मनुष्य अनासक्तिसहित कर्म करता हुआ शुद्धता प्राप्त करता है, जिसने अपने मनको जीता है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखा है, जिसने सब जीवोंके साथ अपनी एकता साधी है और सबको अपने समान ही मानता है, वह कर्म करते हुए भी उससे अलग रहता है अर्थात् बन्धनमें नहीं पड़ता। ऐसे मनुष्यके बोलने-चालने आदिकी क्रियाएँ करते हुए भी ऐसा लगता है कि इन क्रियाओंको इन्द्रियाँ अपने धर्मानुसार कर रही हैं। स्वयं वह कुछ नहीं करता। शरीरसे आरोग्यवान मनुष्यकी क्रियाएँ स्वाभाविक होती हैं। उसके जठर आदि अपने-आप काम करते हैं, उनकी ओर उसे खयाल नहीं दौड़ाना पड़ता। वैसे ही जिसकी आत्मा आरोग्यवान है, उसके लिए कहा जा सकता है कि वह शरीरमें रहते हुए भी स्वयं अलिप्त है, कुछ नहीं करता। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि सब कर्म ब्रह्मार्पण करे, ब्रह्मके ही निमित्त करे। तब वह करते हुए भी पाप-पुण्यका पुंज नहीं रचेगा। पानीमें कमल की भाँति कोरा-का-कोरा ही रहेगा।

मंगलप्रभात

इसलिए जिसने अनासक्तिका अभ्यास कर लिया है, वह योगी कायासे, मनसे, बुद्धिसे कार्य करते हुए भी, संगरहित होकर, अहंकार तजकर बरतता है, जिससे शुद्ध हो जाता है और शान्ति पाता है। दूसरा अयोगी जो परिणाममें फँसा हुआ है, कैदीकी भाँति अपनी कामनाओंमें बंधा रहता है। इस नौ दरवाजेवाले देहरूपी नगरमें सब कर्मोंका मनसे त्याग करके स्वयं कुछ न करता-कराता हुआ योगी सुखपूर्वक रहता है। संस्कारवान संशुद्ध आत्मा न पाप करता है, न पुण्य। जिसने कर्ममें आसक्ति नहीं रखी, अहंभाव नष्ट कर दिया, फलका त्याग किया, वह जड़की भाँति बरतता है, निमित्तमात्र बना रहता है। भला उसे पाप-पुण्य कैसे छू सकते हैं? इसके विपरीत, जो अज्ञानमें फँसा है वह हिसाब लगाता है, इतना पुण्य किया, इतना पाप किया और इससे वह नित्य नीचेको गिरता जाता है और अन्तमें उसके पल्ले पाप ही रह जाता है। ज्ञानसे अपने अज्ञानका नित्य नाश करते जानेवालेके कर्ममें नित्य निर्मलता बढ़ती जाती है, संसारकी दृष्टिमें उसके कर्मोंमें पूर्णता और पुण्यता होती है। उसके सब कर्म स्वाभाविक जान पड़ते हैं। वह समदर्शी होता है। उसकी नजरोंमें विद्या और विनयवाला ब्रह्मज्ञाता ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता, विवेकहीन—पशुसे भी गया बीता—मनुष्य सब समान हैं। मतलब यह है कि सबकी वह समानभावसे सेवा करेगा—यह नहीं कि किसीको बड़ा मानकर उसका मान करेगा और दूसरेको तुच्छ समझकर उसका तिरस्कार करेगा। अनासक्त मनुष्य अपनेको सबका देनदार मानेगा, सबको उनका लेना चुकायेगा और पूरा न्याय करेगा। उसने जीते-जी जगतको जीत लिया है, वह ब्रह्ममय है। अपना प्रिय करनेवालेपर वह रीझता नहीं, गाली देनेवालेपर खीझता नहीं। आसक्तिवान सुखको बाहर ढूँढ़ता है, अनासक्त निरन्तर भीतरसे शान्ति पाता है, क्योंकि उसने बाहरसे जीवको समेट लिया है। इन्द्रियजन्य सारे भोग दुःखके कारण हैं। मनुष्यको काम-क्रोध आदिके वेग सहन करने चाहिए। अनासक्त योगी सब प्राणियोंके हितमें ही लगा रहता है। वह शंकाओंसे पीड़ित नहीं होता। ऐसा योगी बाहरी जगतसे अलग रहता है, प्राणायामादिके प्रयोगोंसे अन्तर्मुखताका यत्न करता रहता है और इच्छा, भय, क्रोध, आदिसे पृथक् रहता है। वह मुझे ही सबका महेश्वर, मित्र, यज्ञादिका भोक्ता जानता है और शान्ति प्राप्त करता है।

छठा अध्याय[1]

मंगलप्रभात, १६ दिसम्बर, १९३०

श्री भगवानने कहा: कर्मफल त्यागकर कर्त्तव्य-कर्म करनेवाला मनुष्य संन्यासी कहलाता है और योगी भी कहलाता है। जो क्रियामात्रका त्याग कर बैठता है,

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", १३/१६-१२-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३४७-९।

वह आलसी है। असली बात तो है मनके घोड़े दौड़ाना छोड़नेकी। योग अर्थात् समत्वको जो साधना चाहता है, उसकी कर्म किये बिना गुजर ही नहीं है। देखा गया है कि समत्व प्राप्त व्यक्ति शान्त हो जाता है। तात्पर्य, उसके विचारको ही कर्मका बल प्राप्त हो चुकता है। जब मनुष्य इन्द्रियोंके विषयोंमें या कर्ममें आसक्त न हो और मनकी सारी तरंगोंको छोड़ दे, तब कहना चाहिए कि उसने योग साध लिया है, वह योगारूढ़ हो चुका है।

आत्माका उद्धार आत्मासे ही होता है। तब कह सकते हैं कि आत्मा स्वयं ही अपना शत्रु बनता है और मित्र बनता है। जिसने मनको जीत लिया है उसकी आत्मा [उसके लिए] मित्र है, जिसने नहीं जीता है उसकी आत्मा [उसके लिए] शत्रु है। जीतनेवालेकी पहचान यह है कि उसके लिए सरदी-गरमी, सुख-दुःख, मान-अपमान, सब एक समान होते हैं। योगी उसका नाम है जिसे ज्ञान है, अनुभव है, जो अविचल है, जिसने इन्द्रियोंपर विजय पाई है और जिसके लिए सोना, मिट्टी या पत्थर समान हैं। वह शत्रु-मित्र, साधु-असाधु, इत्यादिके प्रति समभाव रखता है। ऐसी स्थितिको पहुँचनेके लिए मनको स्थिर करना, वासनाएँ त्यागना और एकान्तमें बैठ कर परमात्माका ध्यान करना चाहिए। केवल आसन आदि ही बस नहीं हैं। समत्व-प्राप्तिके इच्छुकोंको ब्रह्मचर्यादि महाव्रतोंका भली प्रकार पालन करना चाहिए। जो इस प्रकार आसनबद्ध हो चुका है, यम-नियमोंका पालन करनेवाले ऐसे मनुष्यको अपना मन परमात्मामें स्थिर करनेसे परम शान्ति प्राप्त होती है।

यह समत्व ठूँस-ठूँसकर खानेवाला तो पा नहीं सकता; यह एकदम उपवास करते रहनेवालेको भी नहीं मिलता, यह बहुत सोनेवालेको भी नहीं मिलता और इसी प्रकार बहुत जागनेसे भी हाथ नहीं आता। समत्व प्राप्तिके इच्छुकको तो सबमें — खानेमें, पीनेमें, सोने-जागनेमें भी मर्यादाकी रक्षा करनी चाहिए। एक दिन खूब खाया और दूसरे दिन उपवास किया, एक दिन खूब सोये और दूसरे दिन जागरण कर बैठे, एक दिन खूब काम किया और दूसरा दिन आलस्यमें बिता दिया, यह योगकी निशानी नहीं है। योगी तो सदैव स्थिरचित्त होता है और वह कामना-मात्रका अनायास त्याग किये रहता है। ऐसे योगीकी स्थिति निर्वात स्थानमें दीपककी भाँति स्थिर रहती है। उसे जगके खेल अथवा अपने मनमें उठनेवाले विचारोंकी लहरें डाँवाडोल नहीं कर सकतीं। धीरे-धीरे किन्तु दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करनेसे यह योग सध सकता है। मन चंचल है, इससे इधर-उधर दौड़ता है, उसे धीरे-धीरे स्थिर करना चाहिए। उसके स्थिर होनेसे ही शान्ति मिलती है। इस तरह मनकी स्थिरताके लिए निरन्तर आत्मचिन्तन आवश्यक है। ऐसा मनुष्य सब जीवोंको अपनेमें और अपनेको सबमें देखता है, क्योंकि वह मुझे सबमें और सबको मुझमें देखता है। जो मुझमें लीन है, मुझे सर्वत्र देखता है, वह स्वयं नहीं रह गया है, इसलिए सब-कुछ करता हुआ भी मुझमें पिरोया हुआ रहता है। उसके हाथसे कभी कुछ अकरणीय नहीं हो सकता।

अर्जुनको यह योग कठिन लगा। वह बोला, "यह आत्मस्थिरता कैसे प्राप्त हो? मन तो बन्दरके समान है। मनको रोकना हवाको रोकनेके समान है। ऐसा मन कब और कैसे वशमें आता है?"

भगवानने उत्तर दिया, "तेरा कहना सच है; पर राग-द्वेषको जीतने और प्रयत्न करनेसे कठिनको आसान किया जा सकता है। निस्सन्देह मनको जीते बिना योग नहीं साधा जा सकता।"

तब फिर अर्जुन पूछता है, "मान लीजिए कि मनुष्यमें श्रद्धा है, पर उसका प्रयत्न मन्द होनेसे वह सफल नहीं होता। ऐसे मनुष्यकी क्या गति होती है? वह बिखरे बादलकी तरह नष्ट तो नहीं हो जाता?"

भगवान बोले, "ऐसे श्रद्धालुका नाश तो होता ही नहीं। कल्याणमार्गीकी अवनति नहीं होती। ऐसा मनुष्य मरनेपर कर्मानुसार पुण्यलोकमें बसनेके बाद पृथ्वी पर लौट आता है और पवित्र घरमें जन्म लेता है। ऐसा जन्म लोकोंमें दुर्लभ है। ऐसे घरमें जन्म लेनेपर पहलेके उसके शुभ संस्कारोंका उदय होता है। अब प्रयत्नमें तेजी आती है और अन्तमें उसे सिद्धि मिलती है। यों प्रयत्न करते-करते कोई जल्दी और कोई अनेक जन्मोंके बाद अपनी श्रद्धा और प्रयत्नके बलके अनुसार समत्वको पाता है। तप, ज्ञान, कर्मकाण्ड-सम्बन्धी कर्म — इन सबसे समत्व विशेष है, क्योंकि तपादिका अन्तिम परिणाम भी समता ही होना चाहिए। इसलिए तू समत्व लाभ कर और योगी हो। जो अपना सर्वस्व मुझे अर्पण कर श्रद्धापूर्वक मेरी ही आराधना करते हैं, उन्हें श्रेष्ठ समझ।"[1]

सातवाँ अध्याय[2]

मंगलप्रभात, [२३ दिसम्बर, १९३०]

भगवान बोले, हे पार्थ! अब मैं तुम्हें बतलाऊँगा कि मुझमें चित्त लगाकर और मेरा आश्रय लेकर कर्मयोगका आचरण करता हुआ मनुष्य निश्चयपूर्वक मुझे सम्पूर्ण रीतिसे कैसे पहचान सकता है। इस अनुभवयुक्त ज्ञानके बाद फिर और-कुछ जाननेको बाकी नहीं रहेगा। हजारोंमें कोई बिरला ही इसकी प्राप्तिका प्रयत्न करता है और प्रयत्न करनेवालोंमें कोई ही सफल होता है।

पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु तथा मन, बुद्धि और अहंकारयुक्त आठ प्रकारकी मेरी प्रकृति है। इसे 'अपरा' प्रकृति और दूसरीको 'परा' प्रकृति कहते हैं, जो जीवरूप है। इन दो प्रकृतियोंसे अर्थात् देह और जीवके सम्बन्धसे सारा जगत् है। इसलिए समस्त सृष्टि और नाशका कारण मैं ही हूँ। जैसे मालाके आधारपर उसके मनके रहते हैं, वैसे जगत मेरे आधारपर विद्यमान है। तात्पर्य: जलमें रस मैं हूँ, सूर्य-चन्द्रका तेज मैं हूँ, वेदोंका ओंकार मैं हूँ, आकाशका शब्द मैं हूँ, पुरुषोंका पराक्रम मैं हूँ, मिट्टीमें सुगन्ध मैं हूँ, अग्निका तेज मैं हूँ, प्राणीमात्रका जीवन मैं हूँ, तपस्वीका तप मैं हूँ, बुद्धिमानकी बुद्धि मैं हूँ, बलवानका शुद्ध बल मैं हूँ, जीवमात्रमें विद्यमान धर्मकी अविरोधी कामना मैं हूँ, संक्षेपमें सत्व, रजस् और

१. इसके बाद गांधीजी-द्वारा लिखित एक टिप्पणी है जो १६-१२-१९३० के अन्तर्गत पहले ही प्रकाशित हो चुकी है; देखिए खण्ड ४५, पृष्ठ २।

२. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", १८/२३-१२-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४५, पृष्ठ २०-५।

तमस्से उत्पन्न होनेवाले सब भावोंको मुझसे उत्पन्न हुआ जान; उनकी स्थिति मेरे आधारपर ही है। मेरी त्रिगुणी मायाके कारण इन तीन भावों या गुणोंमें रचे-पचे लोग मुझ अविनाशीको पहचान नहीं सकते। उसे तर जाना कठिन है। पर मेरी शरण लेनेवाले इस मायाको अर्थात् तीन गुणोंको लाँघ सकते हैं।

पर ऐसे मूढ़ लोग मेरी शरण कैसे ले सकते हैं जिनके आचार-विचारका कोई ठिकाना नहीं है? वे तो मायामें पड़े अंधकारमें ही चक्कर काटा करते हैं और ज्ञानसे वंचित रहते हैं; पर श्रेष्ठ आचारवाले मुझे भजते हैं। इनमें कोई अपना दुःख दूर करनेको मुझे भजता है, कोई मुझे पहचाननेकी इच्छासे भजता है और कोई कर्त्तव्य समझकर ज्ञानपूर्वक मुझे भजता है। मुझे भजनेका अर्थ है, मेरे जगत्की सेवा करना। उसमें कोई दुःखके मारे, कोई कुछ लाभ-प्राप्तिकी इच्छासे, कोई इस खयालसे कि चलो देखा जाये, क्या होता है और कोई समझ-बूझकर इसलिए कि उसके बिना उनसे रहा ही नहीं जाता, सेवापरायण रहते हैं। ये अन्तिम मेरे ज्ञानी भक्त हैं, और मैं कहूँगा कि मुझे ये सबसे अधिक प्यारे हैं, या यह समझो कि ये मुझे अधिकसे-अधिक पहचानते हैं और मेरे निकट-से-निकट हैं। अनेक जन्मोंके बाद ही मनुष्य ऐसा ज्ञान पाता है और उसे पानेपर इस जगत्में मुझ वासुदेवके सिवा और कुछ नहीं देखता। पर कामनावाले मनुष्य भिन्न-भिन्न देवताओंको भजते हैं और जिसकी जैसी भक्ति, उसका वैसा फल देनेवाला मैं ही हूँ। उन ओछी समझवालोंको मिलनेवाला फल भी वैसा ही ओछा होता है और उतनेसे ही उनको सन्तोष भी रहता है। वे अपनी कमअक्लीसे मानते हैं कि मुझे वे इन्द्रियों-द्वारा पहचान सकते हैं। वे नहीं समझते कि मेरा अविनाशी और अनुपम स्वरुप इन्द्रियोंसे परे है तथा हाथ, कान, नाक, आँख, इत्यादि द्वारा पहचाना नहीं जा सकता। इसे मेरी योगमाया समझ कि इस प्रकार सारी चीजोंका विधाता होनेपर भी अज्ञानी लोग मुझे पहचान नहीं सकते। राग-द्वेषके द्वारा सुख-दुःख आते ही रहते हैं और उसके कारण जगत् मोहग्रस्त रहता है; पर जो उससे छूट गये हैं और जिनके आचार-विचार निर्मल हो गये हैं, वे तो अपने व्रतमें निश्चल रहकर निरन्तर मुझे ही भजते हैं। वे मेरे पूर्ण ब्रह्मरूपको, सब प्राणियोंमें भिन्न-भिन्न प्रतीत होनेवाले जीवरूपको और मेरे कर्मको जानते हैं। यों जो मुझे अधिभूत, अधिदेव और अधियज्ञ रूपसे पहचानते हैं और इससे जिन्होंने समत्व प्राप्त किया है, वे मृत्युके अनन्तर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि इतना जान लेनेपर उनका मन अन्यत्र नहीं भटकता और सारे जगत्को ईश्वरमय देखते हुए वे ईश्वरमें ही समा जाते हैं।

आठवाँ अध्याय[1]

सोमप्रभात २९, दिसम्बर, १९३०

अर्जुन पूछता है, "आपने पूर्णब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदेव, अधियज्ञका नाम लिया; पर इन सबका अर्थ मैंने समझा नहीं। फिर आप कहते हैं कि आपको

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २७/३०-१२-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४५, पृष्ठ ३७-९।

अधिभूत रूपसे जानकर समत्वको प्राप्त हुए लोग मृत्युके समय पहचानते हैं; यह सब मुझे समझाइए।"

भगवानने उत्तर दिया, "जो सर्वोत्तम नाशरहित स्वरूप है, वह पूर्णब्रह्म है और जो प्राणीमात्रमें कर्त्ता-भोक्तारूपसे देह धारण किये हुए है, वह अध्यात्म है। प्राणीमात्रकी उत्पत्ति जिस क्रियासे होती है, उसका नाम कर्म है। अतः यह भी कह सकते हैं कि जिस क्रियासे उत्पत्तिमात्र होती है, वह कर्म है। मेरा नाशवान देहस्वरूप अधिभूत है और यज्ञ द्वारा शुद्ध हुआ अध्यात्मस्वरूप अधियज्ञ है। यों देहरूपमें, मूर्छित जीवरूपमें, शुद्ध जीवरूपमें और पूर्ण ब्रह्मरूपमें सर्वत्र मैं ही हूँ और ऐसा जो मैं हूँ, उसका मृत्युके समय जो ध्यान करता है, अपनेको बिसार देता है, किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करता, इच्छा नहीं करता, वह निस्सन्देह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है। मनुष्य जिस स्वरूपका नित्य ध्यान करता है, अन्त कालमें भी उसीका ध्यान रहे तो उस स्वरूपको वह पाता है। और इसीलिए तू नित्य मेरा ही स्मरण कर। मुझमें ही मन-बुद्धि लगाये रख। तब मुझे ही पावेगा। तू इस प्रकार चित्त स्थिर न होनेकी बात कहेगा, परन्तु मेरा कहना है कि नित्यके अभ्याससे, नित्यके प्रयत्नसे इस प्रकार मनुष्य एकाग्रचित्त अवश्य हो जाता है; क्योंकि मैं तुझसे कह चुका हूँ कि मूलकी दृष्टिसे विचारनेपर तो देहधारी भी मेरा ही स्वरूप है। इसलिए मनुष्यको पहलेसे ही तैयारी करनी चाहिए कि मृत्युके समय मन चलायमान न हो, भक्तिमें लीन रहे, प्राणको स्थिर रखे और सर्वज्ञ, पुरातन, नियन्ता, सूक्ष्म होते हुए भी सबके पालनकी शक्ति रखनेवाले, चिन्तन द्वारा तत्काल न पहचाने जा सकनेवाले, सूर्यके समान अन्धकार-अज्ञान मिटानेवाले परमात्माका ही स्मरण करे।

इस परम पदको वेद अक्षर-ब्रह्म नामसे पहचानते हैं, राग-द्वेषादिसे परे, त्यागी मुनि ही इसे पाते हैं और इस पदकी प्राप्तिके सब इच्छुक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। तात्पर्य: काया, वाणी और मनको अंकुशमें रखते हैं, विषयमात्रका तीनों प्रकारसे त्याग करते हैं। इन्द्रियोंको समेटकर ॐ का उच्चारण करते हुए तथा मेरा ही चिन्तन करते हुए देह छोड़नेवाले स्त्री-पुरुष परम-पद पाते हैं। ऐसोंका चित्त कहीं अन्यत्र नहीं भटकता और यों मुझे पाकर दुःखोंका घर—यह जन्म फिर नहीं लेना पड़ता। इस जन्म-मरणके चक्करसे छूटनेका उपाय मेरी प्राप्ति ही है।

अपने सौ वर्षके जीवन-कालसे मनुष्य कालका अनुमान लगाता है और उतने समयमें हजारों जाल फैलाता है; पर काल तो अनन्त है। हजारों युगोंको ब्रह्माके एक दिनके बराबर समझ। इसमें मनुष्यके एक दिनकी या सौ वर्षकी क्या बिसात है? इस तनिकसे समयको लेकर इतनी व्यर्थकी दौड़-धूप क्यों? जिस अनन्त कालके चक्रमें मनुष्यका जीवन क्षणमात्रके समान है, उसमें तो ईश्वरका ध्यान ही शोभा देता है, क्षणिक भोगोंके पीछे दौड़ना नहीं। ब्रह्माके रात-दिनमें उत्पत्ति और नाश चलता ही रहता है और चलता रहेगा।

उत्पत्ति-नाश करनेवाला ब्रह्मा भी मेरा ही भाव है। वह अव्यक्त है, इन्द्रियोंसे नहीं जाना जा सकता। उससे भी परे मेरा अन्य अव्यक्त स्वरूप है जिसका कुछ

वर्णन मैंने तुझसे किया है। उसे पानेवाला जन्म-मरणसे छूट जाता है; क्योंकि उस स्वरूपके लिए रात-दिनवाला द्वन्द्व नहीं है, वह केवल शान्त अचल स्वरूप है। उसके दर्शन अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं। उसीके आधारपर सारा जगत है और वह स्वरूप सर्वत्र व्याप्त है।

कहते हैं कि उत्तरायणके शुक्लपक्षके दिनोंमें मरनेवाला उपर्युक्त प्रकारसे स्मरण करता हुआ मुझे पाता है और दक्षिणायनमें, कृष्णपक्षकी रात्रिमें मृत्यु पानेवालेके पुनर्जन्मके चक्कर बाकी रह जाते हैं। इसका अर्थ यों किया जा सकता है कि उत्तरायण और शुक्लपक्ष, यह निष्काम सेवा मार्ग है और दक्षिणायन और कृष्णपक्ष स्वार्थमार्ग है। सेवामार्ग अर्थात् ज्ञानमार्ग, स्वार्थमार्ग अर्थात् अज्ञानमार्ग। ज्ञानमार्गसे चलनेवालेको मोक्ष है और अज्ञानमार्गसे चलनेवालेको बन्धन। इन दोनों मार्गोंको जान लेनेपर कौन मोहमें रहकर अज्ञानमार्गको पसन्द करेगा? इतना जाननेपर मनुष्यमात्रको सब पुण्य-फल छोड़कर, अनासक्त रहकर, कर्त्तव्यपरायण रहकर, मैंने जो कहा है, वही उत्तम स्थान पानेका प्रयत्न करना चाहिए।

नवाँ अध्याय[1]

सोमप्रभात [५ जनवरी, १९३१]

गत अध्यायके अन्तिम श्लोकमें योगीका उच्च स्थान बतला देनेपर भगवानके लिए अब भक्तिकी महिमा बतलाना ही बाकी रह जाता है; क्योंकि 'गीता'का योगी शुष्क ज्ञानी नहीं है, न विह्वल भक्त ही है। 'गीता'का योगी ज्ञान और भक्तिमय अनासक्त कर्म करनेवाला है। अतः भगवान कहते हैं—तुझमें द्वेष नहीं है, इससे तुझे मैं वह गुह्य ज्ञान बताता हूँ जिसे पाकर तेरा कल्याण होगा। यह ज्ञान सर्वोपरि है, पवित्र है और अनायास आचारमें लाया जा सकता है। जिसे इसमें श्रद्धा नहीं है, वह मुझे नहीं पा सकता। मेरे स्वरूपको मनुष्यप्राणी इन्द्रियों-द्वारा नहीं पहचान सकते; तथापि वह इस जगतमें व्याप्त है। जगत उसके आधारपर स्थित है। वह जगतके आधारपर स्थित नहीं है। फिर यों भी कहा जाता है कि वे प्राणी मुझमें नहीं हैं और मैं उनमें नहीं हूँ, यद्यपि मैं उनकी उत्पत्तिका कारण हूँ और उनका पोषणकर्त्ता हूँ। वे मुझमें नहीं हैं और मैं उनमें नहीं हूँ, क्योंकि वे अज्ञानमें रहनेके कारण मुझे जानते नहीं, उनमें भक्ति नहीं है। तू समझ कि यह मेरा चमत्कार है।

यद्यपि मैं प्राणियोंमें नहीं हूँ ऐसा जान पड़ता है, तथापि वायुकी भाँति मैं सर्वत्र फैला हुआ हूँ।—सारे जीव युगका अन्त होनेपर लय हो जाते हैं और आरम्भ होनेपर फिर जन्मते हैं। इन कर्मोंका कर्त्ता होनेपर भी ये मेरे लिए बन्धनकारक नहीं हैं; क्योंकि उनमें मुझे आसक्ति नहीं है, उनके बारेमें मैं उदासीन हूँ। वे कर्म होते रहते हैं; क्योंकि यह मेरी प्रकृति है, मेरा स्वभाव है। पर लोग मुझे इस रूपमें न

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", १/६-१-१९३१ के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४५, पृष्ठ ६३-६।

पहचाननेके कारण नास्तिक बने रहते हैं। वे मेरे अस्तित्वसे ही इनकार करते हैं। ऐसे लोग भ्रमके हवाई महल बनाते रहते हैं। उनके कर्म भी व्यर्थ होते हैं और वे अज्ञानसे भरपूर होनेके कारण आसुरी वृत्तिवाले होते हैं। दैवी वृत्तिवाले मुझे अविनाशी और सरजनहार जानकर भजते हैं। वे दृढ़निश्चयी होते हैं, नित्य प्रयत्नशील रहते हैं, मेरा भजन-कीर्तन करते और मेरा ध्यान धरते हैं। इसके सिवा कितने ही मुझे एक ही माननेवाले हैं। कितने ही मुझे बहुरूप मानते हैं। मेरे अनन्त गुण होनेके कारण बहुरूप माननेवाले भिन्न गुणोंको भिन्न रूपसे देखते हैं। पर इन सबको तू भक्त जान।

यज्ञका संकल्प मैं, यज्ञ मैं, पितरोंका आधार मैं, यज्ञकी वनस्पति मैं, मन्त्र मैं, आहुति मैं, हविष्य मैं, अग्नि मैं और जगतका पिता मैं, माता मैं, जगतको धारण करनेवाला मैं, पितामह मैं, जानने योग्य भी मैं, ओंकार-मन्त्र मैं, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद मैं, गति मैं, पोषण मैं, प्रभु मैं, साक्षी मैं, आश्रय मैं, कल्याण चाहनेवाला भी मैं, उत्पत्ति और नाश मैं, सर्दी-गर्मी मैं, सत् और असत् भी मैं हूँ।

वेदमें वर्णित क्रियाएँ फल-प्राप्तिके लिए होती हैं। अतः उन्हें करनेवाले चाहे स्वर्ग क्यों न पायें, पर वे जन्म-मरणके चक्करसे नहीं छूटते। जो अनन्य भावसे मेरा चिन्तन करते रहते हैं और मुझे ही भजते हैं, उनका सारा भार मैं उठाता हूँ। उनकी आवश्यकताएँ मैं पूरी करता हूँ और उनकी मैं ही सँभाल करता हूँ।

अन्य कुछ, दूसरे देवताओंमें श्रद्धा रखकर उन्हें भजते हैं, इसमें अज्ञान है तथापि अन्तमें तो वे मुझे ही भजनेवाले माने जायेंगे; क्योंकि यज्ञमात्रका मैं ही स्वामी हूँ। वे मेरी इस व्यापकताको न जानकर अन्तिम स्थितिको पहुँच नहीं सकते। देवताओंको पूजनेवाले देवलोक, पितरोंको पूजनेवाले पितृलोक, भूत-प्रेतोंको पूजनेवाले भूत-प्रेतोंके लोकको और ज्ञानपूर्वक मुझे भजनेवाले मुझको प्राप्त होते हैं, जो मुझे एक पत्ता भी भक्तिपूर्वक अर्पण करते हैं, उन प्रयत्नशील मनुष्योंकी भक्तिको मैं स्वीकार करता हूँ। इसलिए जो-कुछ तू करे, वह सब मुझे अर्पण करके ही करना। तब शुभ-अशुभ फलका उत्तरदायित्व तेरा नहीं रहेगा। जब तूने फलमात्रका त्याग कर दिया तब तेरे लिए जन्म-मरणके चक्कर नहीं रह गये। मेरे लिए सब प्राणी समान हैं। एक प्रिय और दूसरा अप्रिय हो, यह नहीं है। पर जो मुझे भक्तिपूर्वक भजते हैं, वे तो मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ। इसमें पक्षपात नहीं है; बल्कि यह उन्होंने अपनी भक्तिका फल पाया है। इस भक्तिका चमत्कार ऐसा है कि जो अन्यय भावसे मुझे भजते हैं, वे दुराचारी हों तो भी साधु बन जाते हैं। सूर्यके सामने जैसे अंधेरा नहीं ठहरता, वैसे मेरे पास आते ही मनुष्यके दुराचारोंका नाश हो जाता है। इसलिए तू निश्चय समझ ले कि मेरी भक्ति करनेवाले कभी नाशको प्राप्त नहीं होते। वे तो धर्मात्मा होते हैं और शान्ति भोगते हैं। इस भक्तिकी महिमा ऐसी है कि जो पापयोनिमें जन्मे माने जाते हैं, वे तक मुझे पाते हैं, फिर पुण्यकर्म करनेवाले ब्राह्मण-क्षत्रियोंका तो कहना ही क्या? जो भक्ति करता है, उसे उसका फल मिलता है। इसलिए तू जब असार संसारमें आ गया है तो मुझे भजकर उसे तर जा। अपना मन मुझमें पिरो दे, मेरा ही भक्त रह, अपने यज्ञ भी मेरे लिए कर, अपने नमस्कार भी मुझे ही पहुँचा।

इस भाँति यदि तू मत्परायण होगा और अपनी आत्माको मुझमें होमकर शून्यवत् हो जायेगा तो तू मुझे ही पायेगा।

मंगलप्रभात [६ जनवरी १९३१]

टिप्पणी: इसमें से हम पाते हैं कि भक्तिका तात्पर्य है, ईश्वरमें आसक्ति। अनासक्तिके अभ्यासका भी यह सरल-से-सरल उपाय है। इसीलिए अध्यायके आरम्भमें प्रतिज्ञा की है कि भक्ति राजयोग है और सरल मार्ग है। हृदयमें जो बैठ जाये वह सरल है, जो न बैठे वह विकट है। इसीसे इसे 'सिरका सौदा' भी माना गया है; पर यह ऐसा है कि दूरसे देखनेवाले तापका अनुभव करते हैं। इसमें डूबे हुए महासुख मानते हैं। कवि लिखता है कि सुधन्वा[1] उबलते तेलकी कड़ाहीमें हँसता था और जो लोग बाहर खड़े थे, वे काँपते थे। कथा है कि नन्द[2] अन्त्यजकी जब अग्नि-परीक्षा हुई तब वह अग्निमें नाचता था। इन सबकी सचाईकी ऐतिहासिकताकी खोजकी जरूरत नहीं है। जो किसी भी चीजमें लीन हो जाता है उसकी ऐसी ही स्थिति बन जाती है। वह अपनेपनको भूल जाता है; पर प्रभुको छोड़कर दूसरेमें लीन कौन होगा? 'शक्कर गन्नेके स्वादको छोड़कर कड़वे नीमको मत घोल रे' 'सूरज चाँदके प्रकाशको तजकर, जुगनूसे मन मत जोड़ रे।'

अतः नवाँ अध्याय बतलाता है कि प्रभुमें आसक्ति अर्थात्, भक्तिके बिना फलमें अनासक्ति असम्भव है। अन्तिम श्लोक सारे अध्यायका निचोड़ है और हमारी भाषामें उसका अर्थ है—"तू मुझमें समा जा"।

दसवाँ अध्याय[3]

सोमप्रभात, १२ जनवरी, १९३१

भगवान कहते हैं: दोबारा भक्तोंके हितके लिए जो कहता हूँ, सो सुन। देव और महर्षिगणतक मेरी उत्पत्ति नहीं जानते हैं, क्योंकि मैं उत्पन्न ही नहीं होता। मैं उनकी और अन्य सबकी उत्पत्तिका कारण हूँ। जो ज्ञानी मुझे अजन्मा और अनादि रूपमें पहचानते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; क्योंकि परमेश्वरको इस रूपमें जानने और अपनेको उसकी प्रजा अथवा उसके अंशकी भाँति पहचाननेपर मनुष्यमें पापवृत्ति नहीं रह सकती। निज सम्बन्धी अज्ञान पापवृत्तिका मूल है ही।

१. यह कहानी महाभारतमें आती है। उसको उसके नास्तिक पिताकी अपनी आज्ञा न माननेपर खौलते तेलकी कड़ाहीमें डाल दिया था, किन्तु वह उसमें से हँसता हुआ निकल आया था।

२. ये तमिलनाडुके एक उच्चकोटिके हरिजन भक्त थे। मन्दिरमें प्रवेश करनेपर इनके शरीरसे स्वयं अग्निकी ज्वालाएँ उठीं और ये अन्तर्ध्यान हो गये।

३. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", १२-१-१९३१ के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४५, पृष्ठ ८५-६।

जैसे प्राणी मुझसे पैदा हुए हैं, वैसे उनके भिन्न-भिन्न भाव, जैसे क्षमा, सत्य, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, भय-अभय, आदि भी मुझसे उत्पन्न हुए हैं। ये सब मेरी विभूतियाँ हैं। जो यह जान लेते हैं उनमें सहज ही समता उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि वे अहंताको छोड़ देते हैं। उनका चित्त मुझमें ही रमा रहता है, वे मुझे अपना सब-कुछ अर्पण करते हैं, परस्पर मेरे विषयमें ही वार्तालाप करते हैं, मेरा ही कीर्तन करते हैं और सन्तोष तथा आनन्दसे रहते हैं। इस प्रकार जो मुझे प्रेमपूर्वक भजते हैं और मुझमें ही जिनका मन रहता है, उन्हें मैं ज्ञान देता हूँ और उसके द्वारा वे मुझे पाते हैं।

तब अर्जुनने स्तुति की: आप ही परब्रह्म हैं, परमधाम हैं, पवित्र हैं, ऋषि आदि आपको आदिदेव, अजन्मा, ईश्वररूपसे भजते हैं, ऐसा आप हीं कहते हैं। हे स्वामी, हे पिता, आपका स्वरूप कोई नहीं जानता, आप ही अपनेको जानते हैं। अब मुझसे अपनी विभूतियाँ कहिये और साथ ही यह बताइये कि आपका चिन्तन करते हुए मैं आपको कैसे पहचान सकता हूँ।

भगवानने जवाब दिया: मेरी विभूतियाँ अनन्त हैं, उनमें से कुछ खास-खास तुझे बता देता हूँ। सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला आत्मा मैं हूँ। मैं ही उनकी उत्पत्ति, उनका मध्य और उनका अन्त हूँ। आदित्य मैं, विष्णु मैं, प्रकाशित वस्तुओंमें प्रकाश देनेवाला सूर्य मैं, वायुओंमें मरीचि मैं, नक्षत्रोंमें चन्द्र मैं, वेदोंमें सामवेद मैं, इन्द्रियोंमें मन मैं, प्राणियोंमें चेतन-शक्ति मैं, रूद्रोंमें शंकर मैं, यक्ष-राक्षसोंमें कुबेर मैं, दैत्योंमें प्रह्लाद मैं, पशुओंमें सिंह मैं, पक्षियोंमें गरुड़ मैं और छल करनेवालोंमें द्यूत (जुआ) भी मुझे ही जान। इस जगतमें जो-कुछ होता है, वह मेरी मर्जीके बिना हो ही नहीं सकता। अच्छा और बुरा भी मैं ही होने देता हूँ, तभी होता है। यह जानकर मनुष्यको अभिमान छोड़ना चाहिए और बुराईसे बचना चाहिए, क्योंकि भले-बुरेका फल देनेवाला भी मैं हूँ। तू इतना जान कि यह सारा जगत मेरी विभूतिके एक अंश-मात्रसे स्थित है।

ग्यारहवाँ अध्याय[१]

सोमप्रभात और अपराह्ण, १९ जनवरी, १९३१

अर्जुनने विनय की, "भगवन्! आपने मुझे आत्माके विषयमें जो वचन कहे, उनसे मेरा मोह दूर हो गया है। आप ही सब हैं, आप ही कर्त्ता हैं, आप ही संहर्ता हैं, आप अविनाशी हैं। यदि सम्भव हो तो अपने ईश्वरीय रूपका दर्शन मुझे कराइये।"

भगवान बोले, "मेरे रूप हजारों हैं और अनेक रंगवाले हैं। मुझमें आदित्य, वसु, रुद्र, इत्यादि समाये हुए हैं। मुझमें सारा जगत — चर और अचर — समाया

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", १४/१९-१-१९३१ के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४५, पृष्ठ १०२-५।

हुआ है। यह रूप तू अपने चर्म-चक्षुओंसे नहीं देख सकता। अतः मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ, उनके द्वारा तू देख।"

संजयने धृतराष्ट्रसे कहा, हे राजन्! भगवानने अर्जुनको यह कहकर अपना जो अद्‌भुत रूप दिखाया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम लोग नित्य एक सूर्य देखते हैं, पर खयाल कीजिए कि ऐसे हजारों सूर्य नित्य उगें तो उनका तेज जैसा होगा, उससे भी अधिक वह तेज चकाचौंध पैदा करनेवाला था। उसके आभूषण और वस्त्र भी ऐसे ही दिव्य थे। उसके दर्शन करके अर्जुनके रोएँ खड़े हो गये, उसका सिर चकराने लगा और काँपते-काँपते वह स्तुति करने लगा:

हे देव! आपकी इस विशाल देहमें मैं तो सब-कुछ और सब किसीको देख रहा हूँ। ब्रह्मा इसमें हैं, महादेव इसमें हैं, इसमें ऋषि हैं, सर्प हैं, आपके हाथ-मुँहका गिनना कठिन है। आपका आदि नहीं है, अन्त नहीं है, मध्य नहीं है। आपका रूप मानो तेजका सुमेरू है। देखते ही आँखें चौंधिया जाती हैं, सुलगते हुए अंगारोंकी भाँति आप जगमगा रहे हैं और तप रहे हैं। आप ही जगतके आधार हैं, आप ही पुराण पुरुष हैं, आप ही धर्मके रक्षक हैं। जहाँ देखता हूँ वहाँ आपके अवयव दिखाई दे रहे हैं। सूर्य-चन्द्र तो आपकी आँखों-सरीखे जान पड़ते हैं। आप ही इस पृथ्वी और आकाशमें व्याप्त हो रहे हैं। आपका तेज सारे जगतको तपा रहा है। यह जगत थरथरा रहा है। देव, ऋषि, सिद्ध, इत्यादि सब हाथ जोड़कर काँपते हुए आपकी स्तुति कर रहे हैं। यह विराट रूप और यह तेज देखकर मैं तो व्याकुल हो गया हूँ, शान्ति और धैर्य छूटा जा रहा है। हे देव! प्रसन्न होइये। आपकी दाढ़ें विकराल हैं; जैसे दीपकपर पतंगे गिरते हैं, वैसे इन लोगोंको आपके मुँहमें गिरते देख रहा हूँ और आप इनको चूर-चूर कर रहे हैं। उग्ररूप यह आप कौन हैं? आपकी प्रवृत्तिको मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।

भगवान बोले: लोगोंका नाश करनेवाला मैं काल हूँ। तू चाहे लड़ या न लड़, इन सबका नाश समझ, तू तो निमित्तमात्र है।

अर्जुन बोला: हे देव! हे जगन्निवास! आप अक्षर हैं, सत् हैं, असत् हैं और उससे जो परे है, वह भी आप ही हैं। आप आदि देव हैं, आप पुराण पुरुष हैं, आप इस जगतके आश्रय हैं। आप ही जानने योग्य हैं। वायु, यम, अग्नि, प्रजापति आप ही हैं। आपको हजारों नमस्कार पहुँचे। अब अपना मूल रूप धारण कीजिए।

इसपर भगवानने कहा: तेरे ऊपर प्रसन्न होकर मैंने तुझे अपना विराट रूप दिखाया है। वेदाभ्याससे, यज्ञसे, अन्य शास्त्रोंके अभ्याससे, दानसे, तपसे भी यह रूप नहीं देखा जा सकता, जो तूने आज देखा है। इसे देखकर तू परेशान मत हो। भय त्यागकर शान्त हो और मेरा परिचित रूप देख। मेरे यह दर्शन देवोंको भी दुर्लभ हैं। यह दर्शन केवल शुद्ध भक्तिसे ही हो सकते हैं। जो अपने सब कर्म मुझे समर्पण करता है, मत्परायण रहता है, मेरा भक्त बनता है, आसक्तिमात्रको छोड़ता है और प्राणीमात्रके विषयमें प्रेममय रहता है, वही मुझे पाता है।

टिप्पणी : दसवेंकी भाँति इस अध्यायको भी मैंने जान-बूझकर संक्षिप्त किया है। यह अध्याय काव्यमय है। इसलिए या तो मूलमें अथवा अनुवाद-रूपमें जैसा है, वैसा ही बारम्बार पढ़ने योग्य है। इसमें भक्तिका रस उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। वह रस पैदा हुआ है या नहीं, यह जाननेकी कसौटी अन्तिम श्लोक है। सर्वार्पणके बिना और सर्वव्यापक प्रेमके बिना भक्ति नहीं है। ईश्वरके कालरूपका मनन करनेसे, उसके मुखमें सृष्टिमात्रको समा जाना है, प्रति क्षण कालका यह काम चलता ही रहता है—इस सत्यका भान हो जानेसे सर्वार्पण और जीवमात्रके साथ ऐक्य अनायास हो जाता है। चाहें या न चाहें, पर इस मुखमें हम अकल्पित क्षणमें पड़नेवाले ही हैं। वहाँ छोटे-बड़ेका, नीच-ऊँचका, स्त्री-पुरुषका, मनुष्य-मनुष्येतरका भेद नहीं रहता है। सब कालेश्वरके एक कौर हैं, यह जानकर हम क्यों दीन, शून्यवत् न बनें, क्यों सबके साथ मैत्री न करें? ऐसा करनेवालेको वह काल-स्वरूप भयंकर नहीं, बल्कि शान्ति-स्थल लगेगा।

बारहवाँ अध्याय[१]

मंगलप्रभात, ४ नवम्बर, १९३०

अर्जुनने भगवानसे पूछा : साकार और निराकारको पूजनेवाले भक्तोंमें अधिक श्रेष्ठ कौन है?

भगवानने उत्तर दिया : जो मेरे साकार रूपका श्रद्धापूर्वक मनन करते हैं, उसमें लीन होते हैं, वे श्रद्धालु मेरे भक्त हैं। पर जो निराकार तत्त्वको भजते हैं और उसे भजनेके लिए समस्त इन्द्रियोंका संयम करते हैं, सब जीवोंके प्रति समभाव रखते हैं, उनकी सेवा करते हैं, किसीको ऊँच-नीच नहीं गिनते, वे भी मुझे पाते हैं। इसलिए यह नहीं कह सकते कि दोनोंमें अमुक श्रेष्ठ है; पर निराकारकी भक्ति शरीरधारी-द्वारा सम्पूर्ण रूपसे होना अशक्य माना जाता है, निराकार निर्गुण है, अतः मनुष्यकी कल्पनासे परे है। अतः सब देहधारी जाने-अनजाने साकारके ही भक्त हैं। इसलिए तू तो मेरे साकार विश्वरूपमें ही अपना मन लगा। सब उसे सौंप दे। यह न कर सकता हो तो चित्तके विकारोंको रोकनेका अभ्यास कर, यानी यम-नियम आदिका पालन करके प्राणायाम, आसन, आदिकी मदद लेकर मनको वशमें कर। ऐसा भी न कर सकता हो, तो जो-कुछ करता है सो मेरे ही लिए करता है, इस धारणासे अपने सब काम करेगा, तो तेरा मोह, तेरी ममता क्षीण होती जायेगी और त्यों-त्यों तू निर्मल—शुद्ध होता जायेगा और तुझमें भक्तिरस आ जायेगा। यह भी न हो सकता हो तो कर्म मात्रके फलका त्याग कर दे, यानी फलकी इच्छा छोड़ दे। तेरे हिस्से जो काम आ पड़े, उसे करता रह। फलका मालिक मनुष्य हो ही नहीं सकता। बहुतेरी बातोंके एकत्र होनेपर फल निकलता है, अतः तू तो केवल

१. यह सबसे पहले लिखा गया था और "पत्र : नारणदास गांधीको", ३०-१०/४-११-१९३० के साथ भेजा गया था; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ २६२-४।

निमित्तमात्र हो जा। जो चार रीतियाँ मैंने बताई हैं, उनमें किसीको कम-ज्यादा मत मानना। इनमें जो तुझे अनुकूल हो, उससे तू भक्तिका रस ले ले। ऐसा लगता है कि ऊपर जो यम-नियम, प्राणायाम, आसन, आदिका मार्ग बता आये हैं, उसकी अपेक्षा श्रवण-मनन आदिका ज्ञान-मार्ग सरल है। उसकी अपेक्षा उपासनारूप ध्यान सरल है और ध्यानकी अपेक्षा कर्मफल-त्याग सरल है। सबके लिए एक ही वस्तु समान भावसे सरल नहीं होती और किसी-किसीको सभी मार्ग लेने पड़ते हैं। वे एक-दूसरेके साथ मिले-जुले तो हैं ही। चाहे जिस मार्गसे हो, तुझे तो भक्त होना है। जिस मार्गसे भक्ति सधे, उसी मार्गसे उसे साध।

मैं तुझे भक्तके लक्षण बताता हूँ: भक्त किसीसे द्वेष न करे, किसीके प्रति वैर-भाव न रखे, जीवमात्रसे मैत्री रखे, जीवमात्रके प्रति करुणाका अभ्यास करे, ऐसा करनेके लिए ममता छोड़े, अपनेको मिटाकर शून्यवत् हो जाये, दुःख-सुखको समान माने। कोई द्वेष करे, तो उसे क्षमा करे, (यह जानकर कि स्वयं अपने दोषोंके लिए वह संसारसे क्षमाका भूखा है) सन्तोषी रहे, अपने शुभ निश्चयोंसे कभी विचलित न हो। मन-बुद्धिसहित सर्वस्व मेरे अर्पण करे। लोगोंको उससे उद्वेग नहीं होना चाहिए, न उससे लोग डरें; वह स्वयं लोगोंसे न दुःख माने, न डरे। मेरा भक्त हर्ष, शोक, भय, आदिसे मुक्त होता है। उसे किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती, वह पवित्र होता है, कुशल होता है, वह बड़े-बड़े आरम्भको[1] त्यागे हुए होता है। निश्चयमें दृढ़ होते हुए भी शुभ और अशुभ परिणाम, दोनोंका वह त्याग करता है, अर्थात् उसके बारेमें निश्चिन्त रहता है। उसके लिए शत्रु कौन और मित्र कौन? उसे मान क्या, अपमान क्या? वह तो मौन धारण करके जो मिल जाये, उससे सन्तोष रखकर एकाकीकी भाँति विचरता हुआ सब स्थितियोंमें स्थिर होकर रहता है। इस भाँति श्रद्धालु होकर चलनेवाला मेरा प्रिय भक्त है।[2]

तेरहवाँ अध्याय

सोमप्रभात, [२५ जनवरी, १९३२]

श्री भगवान बोले: इस शरीरका दूसरा नाम क्षेत्र है और उसके जाननेवालोंको क्षेत्रज्ञ कहते हैं। सब शरीरोंमें मौजूद जो मैं (भगवान) हूँ, उसे क्षेत्रज्ञ समझ, और वास्तविक ज्ञान वह है जिससे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद जाना जाये। पंच महाभूत — पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु, अहंभाव, बुद्धि, प्रकृति, दस इन्द्रियाँ — पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ — एक मन, पाँच विषय, इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, संघात (शरीर जिनसे बना हुआ है उनकी एक होकर रहनेकी शक्ति), चेतन शक्ति, शरीरके परमाणुओंमें संयुक्त बने रहनेका गुण,

१. इसकी व्याख्या "पत्र: नारणदास गांधीको", १३/१७-११-१९३० में की है। देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३१३-४।

२. इसके बादके अध्याय एम० एम० यू०/२ से लिये गये हैं।

यह सब मिलकर विकारोंवाला क्षेत्र बना। इस शरीरको और इसके विकारोंको जानना चाहिए, क्योंकि इनको त्यागना है। इस त्यागके लिए ज्ञान चाहिए। यह ज्ञान अर्थात् अभिमानका त्याग, दम्भका त्याग, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरुसेवा, शुद्धता, स्थिरता, विषयोंपर अंकुश, विषयोंमें वैराग्य, अहंकारका त्याग, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और उसके सिलसिलेमें रहनेवाले रोगसमूह, दुःखसमूह और नित्य होनेवाले दोषोंका पूरा भान, स्त्री, पुत्र, घर, द्वार, सगे-सम्बन्धी, इत्यादिकी ओरसे मनको खींच लेना और ममता छोड़ना, कोई बात मनोनुकूल हो या मनके प्रतिकूल—उसमें समता रखना, ईश्वरकी अनन्य भक्ति, एकान्तसेवन, लोगोंमें मिलकर भोग भोगनेकी ओर अरुचि, आत्माके विषयमें ज्ञानकी प्यास और अन्तमें आत्मदर्शन। इससे विपरीतका नाम अज्ञान है। इस ज्ञानके साधनसे जो जाननेकी चीज है—ज्ञेय है और जिसे जाननेसे मोक्ष मिलता है, उसके विषयमें थोड़ा सुन। यह ज्ञेय अनादि परब्रह्म है। अनादि है—अर्थात् उसका जन्म नहीं होता—जब कुछ नहीं था, तब भी वह परब्रह्म तो था। वह सत् नहीं है और असत् भी नहीं है। उससे भी परे है। अन्य दृष्टिसे उसे सत् कह सकते हैं, क्योंकि वह नित्य है। तथापि उसकी नित्यताको भी मनुष्य नहीं पहचान सकता, इससे उसे सत्से भी परे कहा, कुछ भी उसके बिना नहीं है। उसे हजारों हाथ-पाँवोंवाला कह सकते हैं और इस प्रकार उसके हाथ-पैर आदि हैं, यह जान पड़ते हुए भी वह इन्द्रियरहित है। उसे इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए वह अलिप्त है। इन्द्रियाँ तो आज हैं और कल नहीं हैं। परब्रह्म तो नित्य है ही। और यद्यपि वह सबमें व्याप्त है और सबको धारण किये हुए है, इसलिए गुणोंका भोक्ता कहा जा सकता है, तथापि जो उसे नहीं पहचानते, उनके हिसाबसे तो वह बाहर ही है। प्राणियोंके अन्दर तो वह है ही, क्योंकि सर्वव्यापक है। वैसे ही वह गति करता है और स्थिर भी है। सूक्ष्म है, इसलिए वह ऐसा भी है कि न जान पड़े। दूर भी है और नजदीक भी है। नाम-रूपका नाश होता है, तथापि वह तो सदा है ही, इस प्रकार अविभक्त है। पर वह असंख्य प्राणियोंमें है—यह भी कहते हैं, इससे वह विभक्त रूपसे भी भासित होता है। वह उत्पन्न करता है, पालता है और वही मारता है। वह तेजोंका तेज है, अन्धकारसे परे है, ज्ञानकी सीमा है। सबमें मौजूद परब्रह्म ही जानने योग्य अर्थात् ज्ञेय है। ज्ञानमात्रकी प्राप्ति केवल उसकी प्राप्तिके लिए ही है।

प्रभु और उसकी माया, दोनों अनादिकालसे चलते आये हैं। मायामें से विकार पैदा होते हैं, और उनसे अनेक प्रकारके कर्म पैदा होते हैं, मायाके कारण जीव सुख-दुःख, पाप-पुण्यका भोगनेवाला बनता है। यह जानकर जो अलिप्त रहकर कर्त्तव्य-कर्म करता है, वह कर्म करता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता; क्योंकि वह सर्वत्र ईश्वरको ही देखता है; और उसकी प्रेरणाके बिना एक पत्तातक नहीं हिल सकता, यह जानकर वह अपने बारेमें अहंताको नहीं मानता और अपनेको शरीरसे अलग देखता है, और समझता है कि जैसे आकाश सर्वत्र होते हुए भी निर्लिप्त ही रहता है, वैसे जीव शरीरमें रहते हुए भी ज्ञान-द्वारा निर्लिप्त रह सकता है।

दो बजे रातको समाप्त किया।

दुबारा नहीं पढ़ा है।

चौदहवाँ अध्याय[1]

मौनवार, २५ जनवरी, १९३२

श्री भगवान बोले: जिस उत्तम ज्ञानको पाकर ऋषि-मुनियोंने परम सिद्धि पाई है वह मैं तुझसे फिर कहता हूँ। उस ज्ञानके पाने और उसके अनुसार धर्मका आचरण करनेसे लोग जन्म-मरणके चक्करसे बच जाते हैं। हे अर्जुन, यह समझ कि मैं जीव-मात्रका माता-पिता हूँ। प्रकृति-जन्य तीन गुण — सत्व, रजस् और तमस् — देहीको बाँधनेवाले हैं। इन गुणोंको उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भी कह सकते हैं। इनमें सत्वगुण निर्मल और निर्दोष है, प्रकाश देनेवाला है और इस कारण उसका संग सुखद होता है। रजस् राग और तृष्णासे पैदा होता है और वह मनुष्यको झंझटोंमें डालता है। तमस्का मूल अज्ञान है, मोह है और उससे मनुष्य प्रमादी और आलसी बनता है। अतः संक्षेपमें कहा जाये तो सत्वमें से सुख, रजस्में से तृष्णादि और तमस्में से आलस्य पैदा होता है। रजस् और तमस्को दबाकर सत्व जय प्राप्त करता है; सत्व और तमस्को दबाकर रजस् जय प्राप्त करता है; और सत्व और रजस्को दबाकर तमस् जय पाता है। देहके सब कामोंमें जब ज्ञानका अनुभव देखनेमें आये तब यह जानना कि अब सत्वगुण प्रधान रूपसे काम कर रहा है। जब लोभ, दौड़धूप, अशान्ति, प्रतिद्वंद्विता दिखाई दे तब रजस्की वृद्धि जानो और जब अज्ञान, आलस्य, मोहका अनुभव हो तब समझो कि तमस्का राज्य है। जिसके जीवनमें सत्वगुण प्रधान होता है, वह मृत्युके अन्तमें ज्ञानमय निर्दोष लोकमें जन्म पाता है, जो रजस्-प्रधान होता है, वह कर्मकी आसक्तिवाले लोकमें जाता है और तमस्-प्रधान व्यक्ति मूढ़ योनिमें जन्मता है। सात्त्विक कर्मका फल निर्मल, राजसका दुःखमय और तामसका अज्ञानमय होता है। सात्त्विक लोककी उच्च गति, राजसकी मध्यम और तामसकी अधोगति होती है। मनुष्य जब गुणोंके सिवा दूसरेको कर्त्ता नहीं समझता और गुणोंसे परे जो मैं हूँ, उसे जानता है तब वह मेरे भावको पाता है। देहमें विद्यमान इन तीन गुणोंको जो देही पार कर जाता है, वह जन्म, जरा और मृत्युके दुःखोंसे छूटकर अमृतमय मोक्षको प्राप्त होता है।

अर्जुन पूछता है: गुणातीतकी ऐसी सुन्दर गति होती है तो बतलाइये कि उसके लक्षण कैसे हैं, उसका आचरण कैसा है और तीनों गुणोंको किस प्रकार पार किया जाये?

भगवान् उत्तर देते हैं: जो मनुष्य अपनेपर जो आ पड़े, फिर भले ही प्रकाश हो या प्रवृत्ति हो, या मोह हो, ज्ञान हो, झंझट हो या अज्ञान, उसका अतिशय दुःख या सुख न माने या कोई इच्छा न करे; जो गुणोंके बारेमें तटस्थ रहकर विचलित

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २३/२५-१-१९३२ के साथ भेजा गया था।

नहीं होता, गुण अपने गुणानुसार बरतते हैं, यह समझ कर जो स्थिर रहता है, जो सुख-दुःखको सम मानता है, जिसे लोहा, पत्थर या सोना समान है, जिसके मनमें प्रिय-अप्रियकी बात नहीं है, जिसपर स्तुति या निन्दा कोई प्रभाव नहीं डाल सकती, जिसके लिए मान-अपमान समान है, जो शत्रु-मित्रके प्रति समभाव रखता है, जिसने सब आरम्भोंका त्याग किया है, वह गुणातीत कहलाता है। मेरे बताये इन लक्षणोंसे परेशान होनेकी जरूरत नहीं है, न आलसी होकर सिरपर हाथ रखकर बैठ जानेकी। मैंने तो सिद्ध की दशा बतलाई है। उसतक पहुँचनेका मार्ग यह है—व्यभिचार-रहित [अविचलित भावसे] भक्तियोग द्वारा मेरी सेवा कर। (तीसरे अध्यायसे लगाकर) तुझे बताया है कि कर्मके बिना, प्रवृत्तिके बिना कोई साँसतक नहीं ले सकता, अतः कर्म तो देहीमात्रके साथ लगे हुए हैं ही। जो गुणोंको पार कर जाना चाहता है, वह साधक सब कर्म मुझे अर्पण करे और फलकी इच्छातक भी न करे। ऐसा करनेमें उसके कर्म उसे विघ्नरूप नहीं होंगे; क्योंकि ब्रह्म मैं हूँ, मोक्ष मैं हूँ, सनातन धर्म मैं हूँ, अनन्त सुख मैं हूँ, जो कहो वह मैं हूँ। मनुष्य शून्यवत् हो जाए तो मुझे ही सर्वत्र देखे। इसे गुणातीत कहेंगे।

पन्द्रहवाँ अध्याय[1]

रात, ३१ जनवरी, १९३२[2]

श्रीभगवान बोले: इस संसारको दो तरहसे देखा जा सकता है—एक इस तरह जिसकी जड़ ऊपर है, जिसकी शाखा नीचे है और जिसके वेदरूपी पत्ते हैं; जो संसारको ऐसे पीपलके रूपमें देखता है वह वेदको जाननेवाला ज्ञानी है। दूसरी रीति यह है कि संसाररूपी वृक्षकी शाखाएँ ऊपर-नीचे फैली हुई हैं। उसके तीन गुणोंसे फूटे हुए विषयरूपी अंकुर हैं और वे विषय जीवको मनुष्यलोकमें कर्मके बन्धनमें डालते हैं। उस वृक्षका स्वरूप नहीं जाना जा सकता, उसका आरम्भ नहीं है, न अन्त है, न कोई ठिकाना।

वह दूसरे प्रकारका संसार-वृक्ष है। उसने यद्यपि जड़ गहरी पकड़ी है, तथापि उसे असहकाररूपी शस्त्रसे काटना चाहिए जिससे कि आत्माको वह लोक प्राप्त हो सके जहाँसे उसे वापस चक्कर न लगाना पड़े। ऐसा करनेके लिए वह निरन्तर उस आदि पुरुषको भजे जिसकी मायासे यह पुरानी प्रवृत्ति फैली हुई है। जिन्होंने मान-मोहको छोड़ दिया है, जिन्होंने संग-दोषको जीत लिया है, जो आत्मामें लीन हैं, जो विषयोंसे अलग हो गये हैं, जिन्हें सुख-दुःख समान है, वे ज्ञानी उस अव्यय पदको पाते हैं।

उस जगह सूर्यको या चन्द्रको या अग्निको तेज पहुँचानेकी जरूरत नहीं पड़ती। जहाँ जानेके बाद लौटना नहीं रह जाता, वह मेरा परम धाम है।

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २८-१/१-२-१९३२ के साथ भेजा गया था।
२. साधन-सूत्रमें '१९३१' है।

जीवलोकमें मेरा सनातन अंश जीवरूपमें प्रकृतिमें विद्यमान मनसहित छः इन्द्रियोंको आकर्षित करता है। जब जीव देह धारण करता है, और तजता है तब, जैसे वायु अपने स्थलसे गंधको साथ लिये चलता है, वैसे ही यह जीव भी इन्द्रियोंको साथ लिये हुए विचरता है। कान, आँख, त्वचा, जीभ और नाक तथा मन, इतनोंका सहारा लेकर जीव विषयोंका सेवन करता है। गति करते हुए, स्थिर रहते हुए या भोग भोगते हुए गुणोंसे युक्त इस जीवको मोहमें पड़े हुए अज्ञानी पहचानते नहीं, ज्ञानी पहचानते हैं। यत्न करनेवाले योगी अपनेमें विद्यमान इस जीवको पहचानते हैं; पर जिसने समभावरूपी योगको नहीं साधा है, वह यत्न करता हुआ भी इसे पहचानता नहीं है।

सूर्यका जो तेज जगतको प्रकाशित करता है, जो चन्द्रमामें है, जो अग्निमें है, उन सारे तेजोंको मेरा तेज जान। अपनी शक्ति-द्वारा शरीरमें प्रवेश करके मैं जीवोंको धारण करता हूँ। रस उत्पन्न करनेवाला सोम बनकर औषधमात्रका पोषण करता हूँ। प्राणियोंकी देहमें रहकर, जठराग्नि बनकर प्राण और अपान वायुको समान करके, चार प्रकारका अन्न पचाता हूँ। मैं सबके हृदयके भीतर विद्यमान हूँ। मेरे द्वारा ही स्मृति है, ज्ञान है, उसका अभाव है, सब वेदोंके द्वारा जानने योग्य जो है, वह मैं हूँ। वेदान्त भी मैं हूँ, वेदको जाननेवाला भी मैं हूँ।

कहा जाता है कि इस लोकमें दो प्रकारके पुरुष हैं — क्षर और अक्षर अथवा नाशवान और नाशरहित। इनमें जीव क्षर कहलाते हैं, उनमें स्थिर हुआ मैं अक्षर हूँ और उससे भी परे जो उत्तम पुरुष है वह परमात्मा कहलाता है। वह अव्यय ईश्वर तीनों लोकमें प्रवेश करके उसका पालन करता है, वह भी मैं हूँ। इस तरह मैं क्षर और अक्षरसे भी उत्तम हूँ, और लोकमें, वेदमें पुरुषोत्तमरूपसे प्रसिद्ध हूँ। इस प्रकार जो ज्ञानी मुझे पुरुषोत्तमरूपसे पहचानता है वह सब जानता है और मुझे सब भावों द्वारा भजता है।

हे निष्पाप अर्जुन, यह अति गुह्य शास्त्र मैंने तुझे कहा है। इसे जानकर मनुष्य बुद्धिमान बनता है और अपने ध्येयको पहुँचता है।

सोलहवाँ अध्याय[1]

७ फरवरी, १९३२

श्रीभगवान कहते हैं: अब मैं तुझे धर्मवृत्ति और अधर्मवृत्तिका भेद बतलाता हूँ। धर्मवृत्तिके बारेमें तो मैं पहले बहुत कह गया हूँ, तो भी उसके लक्षण कहता हूँ। जिसमें धर्मवृत्ति होती है, उसमें निर्भयता, अन्तःकरणकी शुद्धि, ज्ञान, समता, इन्द्रिय-दमन, दान, यज्ञ शास्त्रोंका अभ्यास, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, किसीकी चुगली न खाना अर्थात्, अपिशुनता, भूतमात्रके प्रति दया, अलोलुपता,

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", ३/८-२-१९३२ के साथ भेजा गया था।

कोमलता, मर्यादा, अचंचलता, तेज, क्षमा, धीरज, अन्तर और बाहरकी स्वच्छता, अद्रोह और निरभिमानता होती है।

अधर्मवृत्तिवालेमें दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान देखनेमें आता है।

धर्मवृत्ति मनुष्यको मोक्षकी ओर ले जाती है। अधर्मवृत्ति बन्धनमें डालती है। हे अर्जुन, तू तो धर्मवृत्ति लेकर ही जन्मा है।

अधर्मवृत्तिका थोड़ा विस्तार कह देता हूँ जिससे लोग उसका त्याग सहजमें कर सकें।

अधर्मवृत्तिवाला प्रवृत्ति और निवृत्तिका भेद नहीं जानता, उसे शुद्ध-अशुद्धका या सत्यासत्यका भान नहीं होता, तो फिर उसके बर्तावका तो ठिकाना ही कैसे होगा ? उसके लेखे जगत झूठा और निराधार है, जगतका कोई नियंता नहीं है; स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध ही उसका जगत है, अतः उसे इसमें विषय-भोगके सिवा दूसरा विचार नहीं मिलता।

ऐसी वृत्तिवालोंके कार्य भयानक होते हैं, उनकी मति मन्द होती है, ऐसे लोग अपने दुष्ट विचारोंको पकड़े रहते हैं और जगतके नाशके लिए ही उनकी सब प्रवृत्तियाँ होती हैं। उनकी कामनाओंका अन्त ही नहीं होता। वे दम्भ, मान, मदमें फूले रहते हैं। उनकी चिन्ताका भी पार नहीं होता। उन्हें नित्य नये भोग चाहिए। सैकड़ों आशाओंके महल बनाते रहते हैं और अपनी कामनाके पोषणके लिए द्रव्य एकत्र करनेमें न्याय-अन्यायका भेद बिलकुल छोड़ देते हैं।

'आज यह पाया और कल वह और प्राप्त करूँगा, इस शत्रुको आज मारा फिर दूसरेको मारूँगा, मैं बलवान हूँ, मेरे पास ऋद्धि-सिद्धि है, मेरे समान दूसरा कौन है, कीर्ति-प्राप्तिके लिए यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और चैनकी बंशी बजाऊँगा', यों मन-ही-मन मानता हुआ वह खुश होता रहता है और अन्तमें मोह-जालमें फँस कर नरकवास पाता है।

आसुरीवृत्तिवाले प्राणी अपने घमण्डमें भूले रहकर परनिन्दा करते हुए सर्वव्यापक ईश्वरका द्वेष करते हैं और इससे वे बारम्बार आसुरी योनिमें जन्मते हैं।

नरकके, आत्माको नाश करनेवाले, ये तीन दरवाजे हैं — काम, क्रोध और लोभ। सबको इन तीनोंका त्याग करना चाहिए, इनका त्याग करनेवाले कल्याणमार्गके पथिक होते हैं और वे परम गतिको पाते हैं।

जो अनादि सिद्धान्तरूपी शास्त्रोंका त्याग करके स्वेच्छासे भोगमें पड़े रहते हैं, वे न सुख पाते हैं और न कल्याणमार्गमें रहकर शान्ति पाते हैं। इसलिए कार्य-अकार्यका निर्णय करनेमें अनुभवियोंसे अटल सिद्धान्त जान लेने चाहिए और उनका अनुसरण करके आचार-विचारका निश्चय करना चाहिए।

सत्रहवाँ अध्याय[1]

१४ फरवरी, १९३२

अर्जुन पूछता है : जो शिष्टाचार छोड़कर भी श्रद्धापूर्वक सेवा करते हैं, उनकी गति कैसी होती है ?

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", ११/१५-२-१९३२ के साथ भेजा गया था।

भगवान उत्तर देते हैं: श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है – सात्विकी, राजसी और तामसी। मनुष्य अपनी श्रद्धाके अनुसार होता है।

सात्विक मनुष्य ईश्वरको, राजस यक्ष-राक्षसोंको और तामस भूत-प्रेतोंको भजता है।

पर किसीकी श्रद्धा कैसी है, यह एकाएक नहीं जाना जा सकता। उसका आहार कैसा है, उसका तप कैसा है, यज्ञ कैसा है, दान कैसा है, यह जानना चाहिए और इन सबके भी तीन-तीन प्रकार हैं; मैं तुझे इन्हें बतलाता हूँ।

जिस आहारसे आयु, निर्मलता, बल, आरोग्य, सुख और रुचि बढ़ती है, वह आहार सात्विक कहलाता है। जो तीखा, खट्टा, चरपरा और गरम होता है वह राजस है। उससे दुःख और रोग उत्पन्न होते हैं। जो राँधा हुआ आहार बासी हो, बदबू करता हो, जूठा हो और अन्य प्रकारसे अपवित्र हो, उसे तामस जानना।

जिस यज्ञके करनेमें फलकी इच्छा नहीं है, जो कर्त्तव्यरूपसे तन्मयतासे होता है, वह सात्विक माना जाता है। जिसमें फलकी आशा है और दम्भ भी है, उसे राजस यज्ञ जानना। जिसमें कोई विधि नहीं है, न अन्न अथवा कोई दूसरा दान है, न कोई मन्त्र है, न कोई त्याग है, वह यज्ञ तामस है।

जिसमें सन्तोंकी पूजा है, पवित्रता है, ब्रह्मचर्य है, अहिंसा है, वह शारीरिक तप है। सत्य, प्रिय, हितकर वचन और धर्मग्रन्थका अभ्यास वाचिक तप है। मनकी प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, संयम, शुद्ध भावना, यह मानसिक तप कहलाता है। ऐसा शारीरिक, वाचिक और मानसिक तप जो समभावसे फलेच्छाका त्याग करके किया जाता है वह सात्विक तप कहलाता है। जो तप मानकी आशासे, दम्भपूर्वक किया जाता है उसे राजस जानना और जो तप पीड़ित होकर और दुराग्रहसे या दूसरेके नाशके लिए किया जाये, जिसमें शरीरस्थ आत्माको क्लेश हो, वह तप तामस है।

कर्त्तव्य-बद्धिसे दिया गया, बिना फलेच्छाके देश, काल, पात्र देखकर दिया गया दान सात्विक है। जिसमें बदलेकी आशा है और जिसे देते हुए संकोच है, वह दान राजस है और देश-कालादिका विचार किये बिना तिरस्कृत भावसे या सम्मानके बिना दिया हुआ दान तामस है।

वेदोंने ब्रह्मका वर्णन ॐ तत्सत् रूपसे किया है, अतः श्रद्धालुको चाहिए कि यज्ञ, दान, तप, आदि क्रिया इसका उच्चारण करके करे। ॐ अर्थात् एकाक्षरी ब्रह्म। तत् अर्थात् वह। सत् अर्थात् सत्य, कल्याणरूप। मतलब कि ईश्वर एक है, वही है, वही सत्य है, वही कल्याण करनेवाला है, ऐसी भावना रखकर और ईश्वरार्पण बुद्धिसे जो यज्ञादि करते हैं, उनकी श्रद्धा सात्विक है और वे शिष्टाचारको न जाननेके कारण अथवा जानते हुए भी, ईश्वरार्पण बुद्धिसे उससे कुछ भिन्न करते हैं, तथापि वह दोषरहित है।

पर जो क्रिया ईश्वरार्पण बुद्धिके बिना होती है, वह बिना श्रद्धाकी मानी जाती है। वह असत् है।

अठारहवाँ अध्याय[1]

२१ फरवरी, १९३२

पिछले अध्यायोंके मननके बाद भी अर्जुनके मनमें शंका बनी रह जाती है; क्योंकि 'गीता' का संन्यास उसे प्रचलित संन्याससे भिन्न लगता है। उसे लगता है, कहीं त्याग और संन्यास दो अलग-अलग चीजें तो नहीं हैं।

इस शंकाका निवारण करते हुए भगवान इस अन्तिम अध्यायमें गीता-शिक्षणका सार दे देते हैं।

कितने ही कर्मोंमें कामना भरी होती है; अनेक प्रकारकी इच्छाओंकी पूर्तिके लिए मनुष्य अनेक उद्यम रचता है। यह काम्य कर्म है। अन्य आवश्यक और स्वाभाविक कर्म हैं, जैसे साँस लेना, देहकी रक्षा-भरको खाना, पीना, पहनना, ओढ़ना, सोना, इत्यादि। और तीसरा कर्म पारमार्थिक है। इनमें से काम्य कर्मका त्याग 'गीता' का संन्यास है; और कर्ममात्रके फलका त्याग गीता-मान्य त्याग है।

कह सकते हैं कि कर्ममात्रमें कुछ दोष तो अवश्य हैं ही, तथापि यज्ञार्थ अर्थात् परोपकारार्थ कर्मका त्याग विहित नहीं है। यज्ञमें दान और तप आ जाते हैं; पर परमार्थमें भी आसक्ति, मोह नहीं होना चाहिए, अन्यथा उसमें बुराईके प्रवेश कर जानेकी सम्भावना है।

मोहवश नियत कर्मका त्याग तामस त्याग है। देहके कष्टके विचारसे किया हुआ त्याग राजस है; पर सेवाकार्य करनेकी भावनासे, बिना फलकी इच्छाका त्याग सच्चा सात्विक त्याग है। अतः यहाँ कर्ममात्रका त्याग नहीं है, बल्कि कर्त्तव्य कर्मके फलका त्याग है और दूसरे अर्थात् काम्य कर्मका त्याग तो है ही। ऐसे त्यागीको शंकाएँ नहीं उठतीं। उसकी भावना शुद्ध होती है और वह सुविधा-असुविधाका विचार नहीं करता।

जो कर्म-फलका त्याग नहीं करते हैं, उन्हें तो अच्छे-बुरेके फल भोगने ही पड़ते हैं। इससे वे बन्धनमें पड़े रहते हैं। फल-त्यागी बन्धनमुक्त हो जाता है।

और कर्मके विषयमें मोह क्या? अपने कर्त्तापनका अभिमान मिथ्या है। कर्म-मात्रकी सिद्धिमें पाँच कारण होते हैं—स्थान, कर्त्ता, साधन, क्रियाएँ और यह सब होनेपर भी अन्तिम दैव है।

यह समझकर मनुष्यको अभिमानका त्याग करना चाहिए। अहंभावको छोड़कर कुछ भी करनेवालेके बारेमें कहा जा सकता है कि वह करते हुए भी नहीं करता: क्योंकि उसके लिए वह कर्म बन्धनकारक नहीं होता। ऐसे निरभिमान, शून्यवत् बने हुए मनुष्यके विषयमें कह सकते हैं कि वह मारते हुए भी नहीं मारता। इसका यह अर्थ नहीं होता कि कोई मनुष्य शून्यवत् होते हुए भी हिंसा करता है और अलिप्त रहता है। निरभिमानीको हिंसा करनेका प्रयोजन ही क्या है।

कर्मकी प्रेरणामें तीन वस्तुएँ होती हैं—ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता। और उसके तीन अंग होते हैं—इन्द्रियाँ क्रिया और कर्त्ता। जो करना है, वह ज्ञेय है। जो उसकी

[1] यह "पत्र : नारणदास गांधीको", १९/२१-२-१९३२ के साथ भेजा गया था। देखिए पृष्ठ १४२-३।

रीति है वह ज्ञान है और जाननेवाला परिज्ञाता है। इस प्रकार प्रेरणा होनेके बाद कर्म होता है। उसमें इन्द्रियाँ कारण होती हैं, जो करनेको है वह क्रिया और उसका करनेवाला कर्त्ता। इस प्रकार विचारमें से आचार होता है। जिसके द्वारा हम प्राणीमात्रमें एक ही भाव देखें अर्थात् सब-कुछ भिन्न-भिन्न लगते हुए भी गहराईमें उतरनेपर एक ही भासित हो तो वह सात्विक ज्ञान है।

इससे उलटा, जो भिन्न दिखाई देता है, वह भिन्न ही भासित हो तो वह राजस ज्ञान है।

और जहाँ कुछ पता ही नहीं लगता और सब बिना कारणके गड़बड़ लगता है वह तामस ज्ञान है।

ज्ञानके विभागकी भाँति कर्मके भी विभाग हैं। जहाँ फलेच्छा नहीं है, राग-द्वेष नहीं है, वह कर्म सात्विक है। जहाँ भोगकी इच्छा है, जहाँ 'मैं करता हूँ'—यह अभिमान है और इससे जहाँ भाग-दौड़ है, वह राजस कर्म है। जहाँ परिणामकी, हानिकी या हिंसाकी, शक्तिकी परवाह नहीं है और जो मोहके वश होकर होता है, वह तामस कर्म है।

कर्मकी भाँति कर्त्ता भी तीन तरहके समझने चाहिए। सात्विक कर्त्ता वह है जिसे राग नहीं है, अहंकार नहीं है तथापि जिसमें दृढ़ता है, साहस है, और जिसे अच्छे-बुरे फलसे हर्ष-शोक नहीं है। राजस कर्त्तामें राग होता है, लोभ होता है, हिंसा होती है, हर्ष-शोक तो जरूर होता ही है, तो फिर कर्म-फलकी इच्छाका तो कहना ही क्या? और तामस कर्त्ता अव्यवस्थित, दीर्घसूत्री, हठी, शठ, आलसी, संक्षेपमें कहा जाये तो संस्काररहित होता है।

बुद्धि, धृति और सुखके भी भिन्न-भिन्न प्रकार जानने योग्य हैं।

सात्विक बुद्धि प्रवृत्ति-निवृत्ति, कार्य-अकार्य, भय-अभय और बंधन-मोक्ष, आदिका सही भेद करती और जानती है। राजसी बुद्धि यह भेद करने तो चलती है, पर गलत या विपरीत कर लेती है और तामसी बुद्धि तो धर्मको अधर्म मानती है। सब उलटा ही निहारती है।

धृति अर्थात् धारणा, कुछ भी ग्रहण करके उससे लगे रहनेकी शक्ति, यह शक्ति अल्पाधिक प्रमाणमें सबमें है। यदि यह न हो तो जगत एक क्षण भी न टिक सके। अब जिसमें मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाकी समता है, समानता है और एकनिष्ठा है, वहाँ धृति सात्विकी है और जिसके द्वारा मनुष्य धर्म, काम और अर्थको आसक्तिपूर्वक धारण करता है, वह धृति राजसी है। जो धृति मनुष्यको निन्दा, भय, शोक, निराशा, मद वगैरह नहीं छोड़ने देती, वह तामसी है।

सात्विक सुख वह है जिसमें दुःखका अनुभव नहीं है, जिसमें आत्मा प्रसन्न रहती है, जो शुरूमें जहर-सा लगनेपर भी परिणाममें अमृतके समान है। विषय-भोगमें, जो शुरूमें मधुर लगता है, पर बादको जहरके समान हो जाता है, वह राजस सुख है, और जिसमें केवल मूर्च्छा, आलस्य, निद्रा ही है वह तामस सुख है।

इस प्रकार सब वस्तुओंके तीन हिस्से किये जा सकते हैं। ब्राह्मणादि चार वर्ण भी इन तीन गुणोंके अल्पाधिक्यके कारण हुए हैं। ब्राह्मणके कर्ममें शम, दम, तप,

शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, अनुभव, आस्तिकता होनी चाहिए। क्षत्रियोंमें शौर्य, तेज, धृति, क्षमा, युद्धमें पीछे न हटना, दान, राज्य चलानेकी शक्ति होनी चाहिए। खेती, गोरक्षा और व्यापार वैश्यका कर्म है और शूद्रका सेवा। इसका यह मतलब नहीं कि एकके गुण दूसरेमें नहीं होते अथवा इन गुणोंको हासिल करनेका उसे हक नहीं है; पर उपर्युक्त भाँतिके गुण या कर्मसे विशिष्ट वर्णकी पहचान हो सकती है। यदि हरएक वर्णके गुण-कर्म पहचाने जायें तो परस्पर द्वेषभाव न हो, स्पर्धा न हो। ऊँच-नीचकी भावनाकी यहाँ कोई गुंजाइश नहीं है; बल्कि सब अपने स्वभावके अनुसार निष्काम भावसे अपने कर्म करते रहें तो उन कर्मोंको करते हुए वे मोक्षके अधिकारी हो जाते हैं। इसलिए कहा है कि परधर्म चाहे सरल लगता हो, स्वधर्म चाहे खोखला लगता हो तो भी स्वधर्म अच्छा है। स्वभाव-जन्य कर्ममें पाप न होनेकी सम्भावना है, क्योंकि उसीमें निष्कामताकी पाबन्दी हो सकती है, दूसरा-कुछ करनेकी इच्छामें ही कामना आ जाती है। बाकी तो जैसे अग्निमात्रमें धुँआ है वैसे कर्ममात्रमें दोष अवश्य है; पर सहजप्राप्त कर्म फलकी इच्छाके बिना होते हैं, इसलिए कर्मका दोष नहीं लगता।

जो इस प्रकार स्वधर्मका पालन करता हुआ शुद्ध हो गया है, जिसने मनको वशमें कर रखा है, जिसने पाँच विषयोंको छोड़ दिया है, जिसने राग-द्वेषको जीत लिया है, जो एकान्तसेवी अर्थात् अन्तरध्यानी रह सकता है, जो अल्पाहार करके मन, वचन, कायाको अंकुशमें रखता है, ईश्वरका ध्यान जिसे बराबर बना रहता है, जिसने अहंकार, काम, क्रोध, परिग्रह, इत्यादि तज दिये हैं, वह शान्त योगी ब्रह्मभावको पाने योग्य है। ऐसा मनुष्य सबके प्रति समभाव रखता है और हर्ष-शोक नहीं करता, ऐसा भक्त ईश्वर-तत्त्वको यथार्थ जानता है और ईश्वरमें लीन हो जाता है। इस प्रकार जो भगवानका आश्रय लेता है वह अमृतपद पाता है। इसलिए भगवान कहते हैं, "सब मुझे अर्पण कर, मत्परायण हो और विवेक बुद्धिका आश्रय लेकर मुझमें चित्त रमा दे। ऐसा करेगा तो सारी विडम्बनाओंसे छूट जायेगा; पर जो अहंकार रखकर मेरी नहीं सुनेगा तो विनाशको प्राप्त होगा। सौ बातकी एक बात तो यह है कि सभी प्रपंचोंको त्यागकर मेरी ही शरण ले तो तू पापमुक्त हो जायेगा। जो तपस्वी नहीं है, भक्त नहीं है, जिसे सुननेकी इच्छा नहीं है और जो मुझसे द्वेष करता है उससे यह ज्ञान मत कहना; पर यह परम गुह्यज्ञान जो मेरे भक्तोंको देगा, वह मेरी भक्ति करनेके कारण अवश्य मुझे पायेगा।"

अन्तमें संजय धृतराष्ट्रसे कहता है: जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धारी पार्थ हैं, वहाँ श्री है, विजय है, वैभव है और अविचल नीति है।

[टिप्पणी] यहाँ कृष्णको 'योगेश्वर' विशेषण दिया गया है, इससे उसका शाश्वत अर्थ, शुद्ध अनुभव ज्ञान किया गया है, और धनुर्धारी पार्थ कहकर यह बतलाया गया है कि जहाँ ऐसे अनुभवसिद्ध ज्ञानको अनुसरण करनेवाली क्रिया है, वहाँ परम नीतिकी अविरोधिनी मनोकामना सिद्ध होती है।

गुजरातीकी माईक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१ व २) से।

१६२. पत्र : नारणदास गांधीको

अपराह्न, १९/२१ फरवरी, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक यथासमय मिली। भाई वालजीसे कहना कि आज उनका अनुवाद[1] देखना शुरू कर दिया है।

जो जेल गये हैं और वहीं [साबरमती-जेलमें] हैं, उनकी खोज-खबर तो तुम रखोगे ही; इसके सिवा दूसरे लोग कहाँ-कहाँ हैं, यह भी देखते रहना। लीलावती आकर मिल गई। यह ठीक हुआ।

चम्पाके नाम मेरा पत्र पढ़ लेना। वह इस परिस्थितिको बर्दाश्त करके रतिलालके साथ रह सके तो ठीक ही है। लेकिन रहनेको तैयार न हो तो जबर्दस्ती नहीं रख सकते, ऐसा मुझे लगता है। रतिलालको फिरसे पागलखानेमें रख सकते हैं। यह पूरा सवाल कठिन ही है। जो ठीक लगे सो करना। डॉक्टरको[2] तो खबर देते ही रहना।

चिमनलालके लिए आराम किए बिना चारा नहीं है। उसका शरीर काम दे ही नहीं पाता और कोई रोगका निदान भी नहीं कर पा रहा है।

कृष्णमय्यादेवी कलकत्ता रुक गईं, यह अच्छा नहीं हुआ। तुमने उन्हें लिखकर ठीक किया। लक्ष्मीकी[3] सूजन किसीको दिखलाई थी? क्या उसका मासिक धर्म रुक गया है? यह सूजनका कारण हो सकता है। तुम उससे या लक्ष्मीबहनसे पूछकर मालूम कर लेना।

यज्ञका अर्थ परोपकारके लिए किया जानेवाला कर्म ही नहीं है। यज्ञका अर्थ शरीर-श्रम भी है। अगर लोग शरीर-श्रम न करें, अर्थात् खेती न करें तो बरसात न हो। मेरी अपनी ऐसी मान्यता है कि प्राकृतिक घटनाओंका नैतिक आचारसे सम्बन्ध है। इसे सिद्ध करनेके साधन मेरे पास नहीं हैं। श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धासे हानि तो कदापि नहीं होती। ऐसी बातोंकी शोध आजकल तो क्वचित् ही होती है और प्राचीन पुस्तकोंमें ऐसा लिखा मिले तो उसे अन्धश्रद्धा मानते हैं। यह ठीक है कि उनमें बहुत-सी भ्रमपूर्ण बातें लिखी हैं। उनमें से सचको कौन छानकर निकाले? इसलिए चोरोंके समुदायमें साहूकार भी चोर ही गिन लिया जाता है। ऐसी स्थितिमें यज्ञके अर्थको संकुचित न रखकर उसके जो भी सम्भाव्य और सात्विक अर्थ निकलें, वे सब हम कायम रखें और फिर यज्ञके साथ वर्षाका सम्बन्ध जोड़ें। क्या 'गीता' में और क्या

१. देखिए पृष्ठ ४२ पाद-टिप्पणी १।

२. प्राणजीवनदास मेहता, रतिलालके पिता।

३. लक्ष्मीदास आसरकी पुत्री।

अन्य ऐसी पुस्तकोंमें, एक ही शब्दका अनेक अर्थोंमें उपयोग देखा जाता है। कोई भी यज्ञकार्य क्यों न हो, उसके मूलमें परोपकारकी वृत्ति तो होनी ही चाहिए। इतना भाई जीवरामको भेज देना।

शाम, २१ फरवरी, १९३२

अभी-अभी १८वाँ अध्याय पूरा किया। तुम देखोगे कि मैंने इसमें अधिक-से-अधिक छूट ली है। आजतक ज्यादातर सरल अनुवाद ही देता रहा हूँ; पर उससे मुझे सन्तोष नहीं होता था। इस बार बात अधिक समझमें आ सके इसलिए थोड़ी टीकाके साथ भावार्थ दिया है। कुछ श्लोकोंको देना जरूरी नहीं था; उन्हें छोड़ भी दिया है। फिर भी कोई उपयोगी बात छोड़ देनेका आभास नहीं हुआ। ईश्वरकी इच्छा हुई तो फिर ऐसी दूसरी रीतिसे भावार्थ देनेका प्रयत्न करूँगा कि बच्चे उसे समझ जायें।

मुलाकातोंके बारेमें फिर परिस्थिति अनिश्चित हो गई लगती है। जो हो सो ठीक।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

इस पत्र और 'गीता' के सारांशके अलावा ३२ पत्र हैं। सूची भी साथ है। बेवदासका मुकदमा शुरू हुआ? क्या उसके पत्र आते हैं? मेरे पास तो नहीं आते।[1]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२१० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१६३. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

२१ फरवरी, १९३२

बालको और बालिकाओ,

मणिके पत्रसे यह मालूम होता है कि तुम सबकी ओरसे कोई भी मुझे पत्र नहीं लिखता। यह कैसा अन्धेर है? और जो पत्र मैं सभी बच्चोंको लिखता हूँ, उसकी जिम्मेदारी कोई न उठायें, कोई उसकी पहुँच भी न लिखें तो मेरे पत्र लिखनेसे फायदा क्या है? इसलिए अब मुझे लिखो कि तुम मुझसे ऐसा पत्र चाहते हो या नहीं? चाहते हो, तो क्या हर सप्ताह उसका जवाब दोगे? क्या डोरिसबहनकी कक्षा[2] की बात याद है? वहाँ बच्चे आठ वर्षसे कम आयुके हैं किन्तु वे सब अपनी जिम्मेदारीपर कितना काम करते हैं। उममें से कुछ तो सोलह वर्षतकके हैं; इतने बड़े होनेपर

१. साधन-सूत्रमें इसके बाद **भगवद्गीताके** १८ वें अध्यायका सारांश है। देखिए पृष्ठ १३९

२. देखिए पृष्ठ ३५ और ६२–३।

भी वे बच्चोंमें गिने जाते हैं। ऐसे बच्चोंको तो बहुत-सी जिम्मेदारियाँ उठा लेनी चाहिए। फीनिक्समें देवदास और प्रभुदास बारह वर्षके थे। वहाँ वे दूसरे बालकोंको साथ लेकर बहुत-सा काम सँभालते थे। वे ही डाक ले आते थे; डाक देने भी वे ही जाते थे। उन्हें जंगलसे होकर तीन मील दूर जाना पड़ता था, पर वे साहसपूर्वक जाते थे। छापाखानेके काममें भी वे कई तरहकी मदद पहुँचाते थे। झरनेसे पानी भरकर लाते थे।

संक्षेपमें, एक बार मगनलालके पास मददके लिए लगभग ये ही बालक रह गये थे। किन्तु ये सभी कामोंको निपटा सके; क्योंकि सब बालक एक होकर तनमनसे काम करते थे। तब तुमसे मुझे कितनी ज्यादा आशा होगी? इसका जवाब देना और अपना तन्त्र चलाते रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

१६४. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

[२१ फरवरी, १९३२][1]

बहनो,

तुम जीत गईं और मैं पूरी तरह हार गया। तुम जीतो और मैं हारूँ, यह तो मुझे सदा अच्छा लगेगा। लेकिन इस बारकी हार बड़ी दुस्सह मालूम होती है क्योंकि इससे आश्रमकी नींव कमजोर हुई। तथापि, मेरी हारमें सत्यकी विजय हुई है। और सत्यके लिए हजारों आश्रम बलि हो जायें तो भी क्या?

तुम्हारी जीत इस तरह हुई कि बहुत-सी बहनें ऐसा मानती थीं कि . . .[2] और . . .[3] का संग निर्मल नहीं है। मैंने बहनोंकी बातकी उपेक्षा की, इसके विपरीत माना और उन दोनोंका बचाव किया। बहनोंकी धारणा सच्ची और मेरी झूठी सिद्ध हुई। तुम लोगोंकी बातपर कान देता तो मामला जल्दी निपट जाता। किन्तु आदमियोंको परखनेकी मेरी शक्तिकी परीक्षा भी तो होनी थी। उसमें मेरा, तुम्हारा और आश्रमका हित था। मेरा अभिमान टूटे, यह भी जरूरी था। हम आशा करें कि वह चूर-चूर हो गया है। तुम्हारी उदारताको जानते हुए मुझे तुम्हारी चेतावनीपर ध्यान देना था; किन्तु मैंने ध्यान नहीं दिया और तुमने वह भी सह लिया। तुमने मेरे-जैसे मूर्खका साथ नहीं छोड़ा। मैं मानता हूँ कि इससे तुम कुछ नहीं खोतीं। मेरी मूर्खताके पीछे सत्य, निर्मल प्रेम और विश्वास था। इसलिए ईश्वर मेरी भूल

१. कदाचित् पत्र पिछले शीर्षककी तिथिमें ही लिखा गया था।

२. और ३. नाम छोड़ दिये गये हैं।

सुधार लेगा। किन्तु आजसे तुम्हारी चेतावनीकी अवगणना नहीं करूँगा। दूधका जला छाछ फूँकेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१६५. पत्र : मैथिलीशरण गुप्तको

२०/२२ फरवरी, १९३२

भाई मैथिलीशरणजी,

आपने जो प्रसादी भेजी[1] मिल गई है। उसे मैं रसपूर्वक पढुंगा। पुस्तकका विषय भी मुझे प्रिय है इस लिए पढ़नेमें आनंद होगा।

आपका

मोहनदास गांधी

२२ फरवरी, १९३२

[पुनश्च :]

पंचवटी[2] पढ़ लिया, अच्छा लगा। साकेत[3] शुरू किया है।

मोहनदास

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ९४५४) से; सौजन्य : भारत कला भवन।

१६६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२२ फरवरी, १९३२

भाई घनश्यामदास,

तुमारे पत्रकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। हां मेरा स्वास्थ्य अच्छा है और सरदार का भी। प्रातःकाल मैं ४-३० बजे मध,[4] गरम पानी और आधा लींबु पीता हुं, ७ बजे १।। तोला भुजी हुई बादाम पीसकर, ३० खजूर टमाटेके रसमें। १२ बजे फिर मध लींबु गरम पानी, ४ बजे कुछ भाजी टमाटर १५ खजूर, और १ तोला बादाम। भाजी दो दिनसे हि शुरू की है। उससे पहले ३० खजूर लेता था। कोई

१. हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्तने गांधीजी को अध्ययनके लिए दूसरी तीन पुस्तकोंके साथ **साकेत** भेजा था।

२. मैथिलीशरण गुप्त-द्वारा रचित एक खण्ड-काव्य।

३. मैथिलिशरण गुप्त-द्वारा रचित महाकाव्य।

४. अर्थात् शहद।

रोज ४ बजे पपीता लेता रहा। अब नहिं ले सकता हुँ क्योंकि भाजी पांचवी चीज होती है। पपीतेकी कोई आवश्यकता भी नहिं है। इस तरह करीब १५ रोजसे चल रहा है। इसके पहले आधा रतल दूध फजरमें और आधा रतल दही शामको लेता रहा। परंतु दूध कुछ भारी सा लगा। और कुछ भी बहानेसे छूट जाय तो मुझे आनंद होता है इसलिए अब तो दूध छुट गया है। कहां तक छुट रहेगा मैं नहिं जानता। मेरा वजन कायम रहा है। १०६ रतल है। खजुर भेजा। मेरे पास तो अच्छी खजुर है। जेराजाणीने भेजी है नई है अच्छी है।

मुझको मिलनेके लिये तो दिल्ही या मुंबई लिखना होगा। केवल मित्रभावसे हि मिलनेका प्रयोजन बतानेसे इजाजत मिले तो भले। यहाँसे कुछ नहिं हो सकता।

करंसीके बारेमें थोड़े पुस्तक तो इकट्ठे किये हैं। हां अवश्य जो चाहे सो भेजो। मैं इस शास्त्रका यथासंभव यथाशक्ति अभ्यास तो कर लेना चाहता हुं। कुछ लिखकर भी भेजोगे तो मैं पढ़ लुंगा।

अमेरिकाका अनुभव लिखो। शरीर कैसे रहा, कहां २ घूमे, बटलक्री[१] में क्या देखा? होम्स[२] से मिले थे?

बापुके आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ७८९५)से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला।

१६७. पत्र : मीराबहनको[३]

२५ फरवरी, १९३२

चि० मीरा,

आज सुबह तुम्हारा सुखद पत्र मिला। मैं उसकी बाट देख रहा था। हम दोनोंको हर्ष हुआ कि तुम वहाँ सुखी हो। जब अधिक परिश्रमसे तुम्हारा स्वास्थ्य

१. मिचिगनमें, 'दी हेल्थ सिटी' नामसे विख्यात कस्बा।

२. डॉ० जॉन हेन्स होम्स।

३. "चूँकि मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलनके सम्बन्धमें अधिकृत समाचारोंका साप्ताहिक बुलेटिन विदेशोंको भेजती थी, इसलिए मुझे बम्बई छोड़ देनेका नोटिस दिया गया था। और चूँकि मैंने उसे माननेसे इनकार कर दिया, इसलिए मुझे बाकायदा गिरफ्तार करके मुकदमा चलाया गया और तीन महीनेकी 'ए' श्रेणीमें सादी कैदकी सजा दे दी गई तथा बम्बईके आर्थर रोडके जनाने जेलमें भेज दिया गया। दीवानी जेलमें, जिसे अस्थायी रूपमें स्त्री राजनैतिक कैदियोंकी जेल बना दिया गया था, 'ए' श्रेणीकी जगह न होनेके कारण मुझे पहली दो रातोंके लिए 'सी' श्रेणीके कैदियोंके साथ रखा गया। इसके बाद जेलके चौकमें बने एक छोटे-से रसोईघरको पर्दे लगाकर मेरी कोठरीका रूप दे दिया गया। लेकिन चूँकि वहांकी सारी जगह चूल्होंकी कतारने घेर रखी थी, इसलिए भीतर मेरे सोनेके लिए कोई जगह नहीं बचती थी। यह सौभाग्य ही था क्योंकि इस कारण मुझे दिनमें चौकमें दूसरे कैदियोंके बीच घूमने-फिरनेकी और रातको

टूटने ही वाला था, ठीक उसी समय तुम वहाँ पहुँच गईं। मेरे खयालसे डेढ़ पाव[1] दूध तुम्हारे लिए काफी नहीं होगा। तुम्हें तीन पाव लेना चाहिए। लेकिन यह सम्भव है कि शक्ति पहलेसे कम खर्च होनेके कारण तुम्हारे लिए डेढ़ पाव ही पर्याप्त हो। मैं तुम्हें सिर्फ सावधान कर देता हूँ कि झूठी किफायत न करना। अगर तुम इधर-उधर और भी घूम नहीं लेती हो तो मुझे तुम्हारा व्यायाम काफी प्रतीत नहीं होता।

मुझे खुशी है कि तुम्हारे साथ इतने लोग हैं। अगर साथवालोंके बारेमें लिखने की इजाजत हो तो लिख भेजना।

जिन पुस्तकोंकी सिफारिश करनेका विचार होता है, वे सिस्टर निवेदिताकी हैं। मैं चाहूँगा कि तुम महाभारत और रामायणके दत्त[2] कृत संक्षिप्त पद्यानुवाद पढ़ लो और आर्नाल्ड की 'इंडियन आइडिल्स' और 'पर्ल्स ऑफ द फेथ' भी।

अगर तुम्हारे साथियोंको इस तरहके कामके लिए वक्त दिया गया है तो उन्हें कताई और पिंजाई करनेके लिए प्रेरित करो।

वहाँ तुम्हें काफी हिन्दी सीख लेनी चाहिए। लेकिन किसी भी कारणसे हदसे ज्यादा परिश्रम न करना। तुम्हें यह बहुमूल्य और अयाचित अवकाश मिल गया है। इस अवकाशका तुम ऐसा उपयोग करना जिससे तुम्हारे खयालमें तुम्हारा उत्थान हो।

बादामके मेरे प्रयोगसे अभीतक सन्तोष मिल रहा है। और वजन अब भी १०६ पौंड है, जो बहुत अच्छा है। इसलिए इस बारेमें तुम्हें कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए।

हम दोनोंकी तरफसे प्यार।

बापू

श्रीमती मीराबाई
द्वारा सुपरिन्टेंडेंट
आर्थर रोड जेल
बम्बई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५०५)से; सौजन्य : मीराबहन।

जब और लोग बैरकोंमें बन्द कर दिये जाते थे, खुलेमें सोनेकी इजाजत देनी पड़ी। 'सी' श्रेणीकी राजनैतिक कैदिनें ज्यादातर सुशिक्षित महिलाएँ थीं; उनका रहन-सहन ऊँचे दर्जेका और आश्रमसे तो अवश्य ही ऊँचे दर्जेका था। लेकिन बम्बई सरकार अपने वर्गीकरणमें खास तौरपर सख्त थी। जहाँतक मुझे याद है, प्रान्त-भरमें बा, श्रीमती नायडू और मुझे ही स्त्रियोंमें 'ए' श्रेणी दी गई थी। कुछको 'बी' श्रेणी और बाकी सबको 'सी' श्रेणी दी गई थी। इस वर्गीकरणमें सबसे महत्त्वपूर्ण भेद भोजनका था।" — मीराबहन

१. "डेढ़ पाव दूध 'ए' श्रेणीवालोंको मिलता था।" — मीराबहन

२. रमेशचन्द्र दत्त।

१६८. पत्र : मंगला शं० पटेलको

२५ फरवरी, १९३२

चि० मंगला,

तेरा सुन्दर अक्षरोंमें लिखा हुआ पत्र मिला।

'गीता'के अध्याय अच्छी तरह याद कर लेना। अर्थ भी समझ ले तो और अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७७) से। सी० डब्ल्यू० ४१ से भी; सौजन्य: मंगलाबहन बी० देसाई।

१६९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२५ फरवरी, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला।

तू मुझसे हृदयको हिलानेवाले सूत्ररूप वचन माँगती है। अगर मेरे पास तिजौरी होती तो उसे खोलकर उसमें से हर हफ्ते तुझे भेजता जाता। लेकिन मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है। जो वचन निकलते हैं, वे अपने-आप निकलते हैं। और जो इस तरह निकलें, वे ही वचन सच्चे हैं क्योंकि वे जीवित वचन कहे जायेंगे। दूसरे तो कृत्रिम होंगे। अच्छे लगनेपर भी उनका असर स्थायी नहीं होता, ऐसा मुझे लगता है। मुझसे कृत्रिम कुछ हो ही नहीं सकता। विलायतमें पढ़ते समय मैंने दो बार ऐसा प्रयत्न किया और दोनों बार असफल रहा।[1] उसके बाद ऐसा प्रयत्न किया ही नहीं।

और जैसा मेरे वचनोंके बारेमें है, वैसा ही जो अनुभव तूने मेरे बारेमें उद्धृत किये हैं, उनके बारेमें भी समझना। मीराबहनके[2] बारेमें हमारी जो बात हुई थी, यह मुझे याद है। उस समय मुझे जैसा सूझा, वैसा उत्तर मैंने दिया होगा। तेरे ऊपर उसकी अच्छी छाप नहीं पड़ी, यह मैं समझ सकता हूँ। मेरी अहिंसामें उतनी

१. लिखित भाषण पढ़नेका; देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ ३५ और ५२-४।

२. मीराबहनने रास्ता रोक लिया हैं, इस बातकी शिकायत करनेपर गांधीजी ने प्रेमाबहन कंटकको झिड़क दिया था। बादमें प्रेमाबहनने इस घटनाको इस बातके प्रमाणके रूपमें प्रस्तुत किया कि गांधीजी जिनपर विश्वास करते हैं, उनके खिलाफ शिकायत सुनना पसंद नहीं करते।

कमी है। मैंने वही कहा होगा जो मुझे उस समय ठीक लगा होगा, लेकिन उसमें डंक तूने देखा होगा। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' यह व्यावहारिक वचन नहीं, सिद्धान्त है। 'प्रियम्' का अर्थ है अहिंसक। मैंने तुझे जो बात आवेशमें कही होगी, वही अगर मैं नम्रतासे कहता, तो जो कड़वा असर रह गया वह न रहता। अहिंसक सत्यके बारेमें ऐसा हो सकता है कि बोलते समय वह कठोर लगे, परन्तु परिणाममें वह अमृतमय लगना ही चाहिए। यह अहिंसाकी अनिवार्य कसौटी है। यह जो मैं लिखता हूँ, वह अपने विषयमें अपने कड़वे अनुभवोंके आधारपर ही लिख रहा हूँ। मीराबहनके बारेमें मैंने उसके पक्षमें तो तुझसे बहुत जोर देकर कहा होगा। लेकिन उसे मैंने जितना रुलाया है, उतना किसी और भाई या बहनको नहीं रुलाया। और इसमें कारण मेरी कठोरता, अधीरता और मोह थे। मीराबहनका त्याग मैं अवर्णनीय मानता हूँ और इसलिए उसे मैं पूर्ण देखना चाहता हूँ। उसमें जरा भी कमी दिखाई देती है, तो मोहके कारण मैं अधीर हो जाता हूँ, और इसलिए मैं उससे कुछ खीझकर बोलता हूँ। परिणाम अश्रुधाराके रूपमें आता है। मैं इन अनुभवोंसे अपने अन्दर भरी हुई हिंसाको पहचान सका और अपने पिछले संस्मरणोंको याद करके खुदको सुधारनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। इसलिए तेरे पत्र मुझे अच्छे लगते हैं। उत्तरमें तुझे कुछ दे सकूँगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता। लेकिन मैं स्वयं तो ले ही रहा हूँ। इस बातका — अपनी कठोरताका — विशेष भान मुझे इंग्लैंडमें हुआ। मेरी सेवाके लिए मुख्यतः तो मीरा ही थी। वहाँ भी उसे रुलानेमें मैंने कोई कसर नहीं छोड़ी। लेकिन उससे मैं सीख गया। किसी भी मामलेमें ईश्वरने मेरी जड़ताको लम्बे समयतक टिकने ही नहीं दिया। राजनीतिमें भी मैंने जब-जब भूल की, तब-तब ईश्वरने मुझे तुरन्त सुधारा है। तेरे पत्र इस जागृतिमें सहायक ही हैं।

लेकिन अब तू मेरे पिछले पत्रको ज्यादा समझ सकेगी। अपूर्णमें से पूर्णकी आशा कैसे रखी जा सकती है? अन्धेने अन्धोंका संघ एकत्रित किया है। लेकिन अन्धा अपने अन्धेपनको जानता है। उसका इलाज भी जानता है। इसलिए अन्धोंको साथ रखते हुए भी वह विश्वास रखता है कि उन्हें कुएँमें नहीं गिरायेगा, न स्वयं गिरेगा। वह साथमें लकड़ी लेकर चलता है। लकड़ीके सहारे आगेका रास्ता वह मालूम करता जाता है और कदम उठाता है। इससे कुल मिलाकर आजतक तो सब कुशल ही रही है। लकड़ीके उपयोगके बावजूद कभी वह रास्तेसे थोड़ा-बहुत भटक भी गया है तो उसे तुरन्त मालूम हो गया है और वह वापस लौट आया है। साथियोंको भी उसने लौटाया है। जबतक मेरा अन्धापन बना रहेगा, तबतक तेरे-जैसी मधुर स्वभाववालीको आलोचना करनेके कारण मिलते ही रहेंगे। अन्धापन चला जायेगा, तब आलोचनाके कारण सर्वथा असम्भव हो जायेंगे। इस बीच हम सब अन्धे सत्यार्थी होनेके कारण हाथीको जैसा देखें वैसा उसका वर्णन करें। हम सबके वर्णन भिन्न होंगे, फिर भी उतने अंशमें बिलकुल सच्चे ही होंगे। और आखिरकार स्पर्श तो हम सबने हाथीका ही किया होगा। जब हमारी आँख खुलेगी, तब सब साथ-साथ नाचेंगे और पुकार उठेंगे : 'हम कैसे अन्धे हैं! यह तो वह हाथी है जिसके बारेमें हमने 'गीता' में पढ़ा था। हमारी

आँख पहले खुली होती तो कितना अच्छा होता!' लेकिन देरसे खुले तो भी उसकी चिन्ता क्या है? ईश्वरके यहाँ समयका नाप ही नहीं है, या भिन्न प्रकारका नाप है। इसलिए ज्ञानमें अज्ञान लुप्त हो जायेगा।

अब तो तू जो-जो दोष तूने मुझमें देखे होंगे, उन सबका उत्तर इसमें पा लेगी न? इसका यह अर्थ नहीं है कि अब तू अपनी समस्याएँ मेरे सामने रखे ही नहीं। तू रखती रहना और मैं उत्तर देता रहूँगा।

सुशीला और किसनको मेरे आशीर्वाद भेजना। और धुरन्धरको लिख सकती हो तो उसे भी। जमनादासकी तबीयत कैसी थी? उसकी शालाका क्या हुआ?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७४) से। सी० डब्ल्यू० ६७२२ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

१७०. पत्र: रणछोड़जी दयालजीको

२५ फरवरी, १९३२

भाई रणछोड़भाई,

तुम्हारा पत्र पाकर अच्छा लगा। मैं तुम्हारे कुटुम्बको भाग्यवान मानता हूँ। धन तो आने-जानेवाली क्षणिक वस्तु है। क्या कुँवरजीका स्वास्थ्य ठीक रहता है? कल्याणजीको तो स्वास्थ्यके बारेमें कोई शिकायत है ही नहीं। तीनों भाई साथ हैं?

गंगाबहनको हिम्मत बाँधे रहनेके लिए हम दोनोंका आदर दीजिए। नेपोलियन[१] का क्या हाल है? उसे पत्र लिखनेके लिए कहना।

हम दोनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६९५) से।

१. कुँवरजी मेहताका बेटा।

१७१. पत्र : शिवाभाई गो० पटेलको

२५ फरवरी, १९३२

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला।

हर प्राणीसे भूल हो सकती है। किन्तु भूलका भान हो जानेपर जो उसे सुधारनेका प्रयत्न करता है, उसका कल्याण ही होता है। क्योंकि अन्ततः वह भूल करनेसे बच जाता है। इसके मूलमें सत्यकी पूजा है। यदि ऐसा हो जाये, तो फिर भूल करनेवाला अपने-आपको या संसारको धोखा नहीं देता।

यदि टॉल्स्टॉयने वैसा मत व्यक्त किया हो, जैसा तुमने लिखा है तो मैं उसे भ्रान्तिपूर्ण मानता हूँ। ऐसे भूल-भरे विचार उन्होंने कई बार व्यक्त किये हैं। लेकिन उनकी यह विशेषता थी कि भूल होनेपर जैसे ही उन्हें उसका भान हो जाता था वैसे ही वे उसे तुरन्त सुधारते और कबूल कर लेते थे। इसके सिवा उनकी जिन्दगीमें इतने ज्यादा फेरफार हुए थे कि ये विचार उन्होंने कब व्यक्त किये, इसका भी ध्यान रखना चाहिए। चाहे जो हो, पति-पत्नीके बारेमें मेरा यही दृढ़ मत है कि साथ रहनेके विषयमें दोनोंकी सम्मतिकी जरूरत है, अलग रहनेके लिए नहीं। ऐसा न हो तो सामान्य तौरपर दोनों ही गिरे रहें। दोनों एक-साथ जाग्रत हों और जाग्रत बने रहें, ऐसा तो कम ही होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५०९) से। सी० डब्ल्यू० ४२५ से भी; सौजन्य : शिवाभाई गो० पटेल।

१७२. पत्र : शकरीबहन चि० शाहको

२५ फरवरी, १९३२

चि० शकरीबहन,

आखिरकार तुम्हारा पत्र मिला तो सही। मेरे लिए ही है ऐसा कह दोगी तो वहाँसे बिना पढ़े भेज देंगे। यहाँ जेलवाले उसे पढ़ भी लें तो क्या हानि है? इसलिए मेरी तो यही सलाह है कि मुझे निस्संकोच पत्र लिखा करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० ३०) से।

१७३. पत्र : वनमाला न० परीखको

२५ फरवरी, १९३२

चि० वनमाला,

मनुष्य बढ़ता-घटता है न? जो चीज बढ़ती है उसका मूल तो होता ही है न? अन्यथा वह बढ़ेगी कैसे? यदि हम पेटको मनुष्यका मूल कहें तो ठीक होगा न? वृक्षको खुराक कहाँसे मिलती है? क्या मूलसे ही नहीं मिलती? हमें खुराक पेटसे मिलती है, वहाँ तैयार हुए रसको हम हजम करते हैं, और उससे शरीरका पोषण होता है। इसलिए यदि मनुष्यका मूल उसके पेटको कहें तो क्या ठीक नहीं होगा?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६६) से। सी० डब्ल्यू० २९८९ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई।

१७४. पत्र : विद्या रा० पटेलको

२५ फरवरी, १९३२

चि० विद्या,

तेरा पत्र मिला। अक्षर सुन्दर हैं। तेरा कार्यक्रम भी अच्छा जान पड़ता है। इसी तरह आगे बढ़ती रह।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२२) से; सौजन्य: रवीन्द्र रा० पटेल।

१७५. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

२५ फरवरी, १९३२

चि० शारदा,

तेरा पत्र मिला। आश्रममें कोई किसीको गाली नहीं दे सकता। लेकिन कभी-कभी गाली न होनेपर भी बात गाली-जैसी लगती है। इसलिए तू गाली किसे कहते हैं, सो लिखना और यह भी लिखना कि वह व्यक्ति कौन है। आश्रममें रहनेवाले व्यक्तिको भयको तो भूल ही जाना चाहिए। हमें भला किसका भय है? बड़ोंके आगे भी कहना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९४६) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला।

१७६. एक पत्र

२६ फरवरी, १९३२

चि०,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने दूध छोड़ दिया है, उसका मुख्य कारण तो स्वास्थ्य ही है। इसलिए स्वास्थ्य बना रहा तो ही उसे छोड़े रखूँगा। अभीतक तो वजन और शक्ति कायम ही है।

खादीपर भी मुसीबत तो आनी ही थी। इस समय बच भी जायें तो भी क्या? ठीकसे समझें तो हर आपत्ति एक तरहकी कसौटी ही है और कसौटीका अर्थ है तपस्या। उससे तप करनेवालेकी शुद्धि तो होती ही है, साथ ही जिस उद्देश्यके लिए तप किया जाये, उसकी भी शुद्धि होती है। इस नियमका अपवाद नहीं है। इसलिए मैं तो आनन्दमें ही डूबा रहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ८९५०) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१७७. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

२६ फरवरी, १९३२

चि० भगवानजी,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने जवाब तो दिया ही है . . .[1] ज्ञानेन्द्रियोंपर अवश्य ही काबू पाया जा सकता है। यह कठिन है, शास्त्र ऐसा उच्च स्वरसे कहते हैं; किन्तु शास्त्र लिखे इसी उद्देश्यसे गये हैं कि मनुष्य यह काबू प्राप्त कर सके। अभ्यास और वैराग्यसे इनपर काबू पाया जाता है। अन्तर-विकास और आत्मदर्शन साथ-साथ चलनेवाली वस्तुएँ हैं। तुम्हारी अशान्तिका उपाय तुम्हारे भीतर ही है। विश्रान्ति भी भीतर ही है। जेलमें बहुतोंको कोई काम नहीं है, किन्तु वे सब बेचैन लगते हैं। शारीरिक विश्रान्ति विश्रान्ति नहीं है। सूर्य एक क्षण भी विश्रान्ति नहीं लेता फिर भी नित्य ताजा रहता है। भगवान कहते हैं कि मैं बिना विश्रान्ति लिये निरन्तर काम करता हूँ, आलस्यहीन होकर काम करता हूँ, फिर भी विश्रान्तिका धाम हूँ। इसलिए सभी कुछ अपने भीतरसे ही खोजकर निकालना। आज तुम्हें आश्रममें 'खरा खेल' खेलनेका[2] मौका मिला है; और तुम्हें वह नीरस लग रहा है। आश्रममें असंख्य दोष होते हुए भी वहाँ 'खरा खेल' इसलिए है कि वह व्यापारकी नहीं, परमार्थ साधनेकी जगह है और उस दिशामें वहाँ यथाशक्ति प्रयत्न हो रहा है। इसलिए आश्रमकी प्रवृत्तियाँ जो समझे, उसके लिए निवृत्तिरूप हैं।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३४५) से; सौजन्य : भगवानजी पु० पण्ड्या।

१७८. पत्र : कुसुम देसाईको

२६ फरवरी, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरा पत्र बहुत प्रतीक्षा करानेके बाद आया। छोटूभाईसे[1] कहना कि हम दोनों उन्हें अक्सर याद करते हैं। प्यारेलालका कोई समाचार मिलता है? चन्दूभाईकी तबीयत कैसी रहती है? डॉ० सुमन्त कहाँ हैं? कैसे हैं? मैं ठीक हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८२८) से।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. अर्थात्, सच्चाई और वीरताका जीवन जीनेका।

१. छोटूभाई पुराणी।

१७९. पत्र : लक्ष्मीबहन ना० खरेको

२६ फरवरी, १९३२

चि० लक्ष्मीवहन,

आखिर तुम्हारा पत्र आया तो सही। मुझे पत्र लिखनेमें शर्म किस बातकी? मेरे पिछले पत्रका[1] उत्तर दोगी, यह आशा किये बैठा हूँ। आशा है, मुझे निराश नहीं करोगी।

बुनाईका काम सीख रही हो, यह मुझे बहुत अच्छा लगा है। रामभाऊका अल्मोड़ा जाना सफल हुआ है, ऐसा कह सकते हैं न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८०)से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१८०. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

२६ फरवरी, १९३२

चि० पुष्पा,

इतनी ज्यादा बड़ी चोंच हो गई है इसलिए तुझे कैसे पहचानूँ, भले ही तू मेरी 'लाकड़ी' ही हो। इतनी सुन्दर हिन्दीके लिए धन्यवाद तुझे दूँ कि परशुरामजी[2] को? उनके साथ सलाह करके मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८१)से। सी० डब्ल्यू० २७ से भी; सौजन्य : पुष्पाबहन ना० नायक।

१. १९ फरवरीका।

२. परशुराम मेहरोत्रा।

१८१. पत्र : महावीर गिरिको

२७ फरवरी, १९३२

चि० महावीर,

तेरा पत्र मिला। वहाँ तेरा स्वास्थ्य ठीक रहता है, यह सन्तोषकी बात है। तू दार्जिलिंग जानेके लिए आश्रमसे गया था, इसलिए अच्छा तो यही होता कि वहीं चला जाता। भले ही वहाँ ठंड पड़ती है फिर भी यह मौसम उत्तम माना जाता है। इस मौसममें बीमार भी वहाँ जाते हैं। क्या वहाँ रहनेवाले गुजरातियोंसे मिलते हो?

खूब सोच-विचारकर खर्च करना और हिसाब रखना। मुझे पत्र लिखते रहना। तू और अन्य बहनें अपना अध्ययन न छोड़ देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२३४) से।

१८२. पत्र : एस्थर मेननको

२८ फरवरी, १९३२

रानी बिटिया,

फिर तुम्हारा पत्र पाकर और टेढ़े-मेढ़े अक्षरोंमें लिखी नैनीकी[1] अप्रत्याशित पंक्तियाँ देखकर बड़ी खुशी हुई।

देखता हूँ कि तुम्हारे साथियोंमें सब देशोंके लोग हैं।[2] मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि इससे तुमपर जितना तुम्हारा स्वास्थ्य गवारा कर सकता है, उससे कहीं ज्यादा भार न पड़े।

नहीं, 'गीता' कुछ अलग शिक्षा नहीं देती। वह जो शिक्षा देती है सो यह है कि हमारे सब कार्य स्वाभाविक और स्वतःस्फूर्त होने चाहिए, अनजानेमें हों, तब भी। उनके इस प्रकारका होनेपर पुरस्कार या परिणामका कोई विचार नहीं आता। इसलिए शुद्ध प्रेममें न देना है, न लेना है। दूसरे ढंगसे कहें तो धरतीपर बिना लिये कुछ देना नहीं होता। प्रेम देता है, क्योंकि उसे देना ही है, देना उसका स्वभाव है। इसलिए प्रेममें यह विचार नहीं होता कि जितना दे रहे हैं, उतना मिल भी रहा है या नहीं। उसे देनेका भान नहीं होता और लेनेका तो और भी नहीं। प्रेम स्वयं अपना

१. एस्थर मेननकी बेटी।

२. "सेली ओकमें मेननका घर हमेशा एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बना रहता था।" (**माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ८८**)

पुरस्कार है। जब ऐसा विशुद्ध प्रेम होता है तो जो आनन्द प्राप्त होता है, वह उन सभी कथित आनन्दोंसे बढ़कर होता है जिन्हें हमें बाहरी परिस्थितियोंमें पानेका आभास होता है। मैं चाहता हूँ कि तुम यही आनन्द प्राप्त करो। एक समय था जब मैं समझता था कि तुम्हें लगता है, वह आनन्द तुम्हारे पास है। लेकिन उस समय तुम आगमें से नहीं गुजरी थीं। आनन्द तो तुम्हें एक दिन प्राप्त होगा ही; किन्तु वह होगा उस आगके विशुद्ध करनेवाले गुणके द्वारा। जब वह आनन्द आयेगा, तुमपर चुपचाप छा जायेगा। ईश्वर करे, वह शीघ्र प्राप्त हो।

हम दोनों ठीक हैं।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सं० १०८)से; सौजन्य : भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ८८–९ से भी।

१८३. पत्र : नैनी मेननको

२८ फरवरी, १९३२

प्यारी नैनी,

मुझे पत्र लिखनेकी तुम्हारी कोशिश बहुत अच्छी थी। और तुमने कैसा अच्छा बारहसिंगा भेजा है। कितने प्यारे सींग हैं। मुझे खेद है कि मैं बकरियोंके साथ खेल नहीं रहा हूँ; हालाँकि वे रोज मेरे सामने दो बार दूध दुहनेके लिए लाई जाती हैं। मैं उनके साथ खेलता इसलिए नहीं हूँ कि जब वे आती हैं, मैं हमेशा कुछ ऐसा काम कर रहा होता हूँ जिसे मैं छोड़ नहीं सकता। हाँ, कुछ फूल हैं; लेकिन खास कहने लायक नहीं। जमीन पथरीली है; और जेलोंमें फूलोंकी क्यारियाँ लगाना उन्हें पुसा नहीं सकता। तुम फिरसे पत्र जरूर लिखना।

तुम दोनोंको चुम्बन,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ११७

१८४. पत्र : अब्बासको

२८ फरवरी, १९३२

चि० अब्बास,

मनुष्य प्रयत्न करनेपर भी विकारवश हो जाता है, क्योंकि विकारोंको नष्ट करनेके लिए घोर प्रयत्नकी आवश्यकता होती है। किसी कामके लिए कम प्रयत्न और किसी काममें सफलताके लिए ज्यादा प्रयत्न करना पड़ता है। हम कम प्रयत्न करके दस-बीस नम्बरका सूत कात लेते हैं। किन्तु [हममें से] २०० नम्बरका सूत तो कोई कात ही नहीं पाता है। उसके लिए बहुत ही अच्छी सामग्री और बहुत ही अधिक प्रयत्न करना जरूरी है। हम यह भी जानते हैं कि सौ वर्ष पहले बंगालमें २०० नम्बरका सूत काता जाता था। यदि इस तरह सूत-जैसी मामूली चीजके लिए प्रयत्नमें मात्राका ऐसा अन्तर हो सकता है तो निर्विकार बननेके लिए तो होगा ही। यह जानकर हमें चाहिए कि हम जितने असफल हों, उतना ही अधिक प्रयत्न करें। कितने ही यात्री हिमालयकी चोटीपर पहुँचनेका प्रयत्न कर रहे हैं। अभीतक तो कोई सफल नहीं हुआ। यह प्रयत्न तो उसके मुकाबलेमें बहुत श्रेयस्कर है और इसमें असफलता तो है ही नहीं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३१५) से। सी० डब्ल्यू० ८९५१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१८५. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

२८ फरवरी, १९३२

बालको और बालिकाओ,

मैं अपने पत्रके[1] जवाबकी राह देख रहा हूँ। इस बीच तुममें से जिन्होंने रसोईमें मदद करनेका काम अपने जिम्मे लिया है, उन्हें मैं बधाई देता हूँ। तुममें से कुछ अब इस उम्रके हैं कि यदि चाहें तो पूरी जिम्मेदारी उठा सकते हैं। खासकर रसोईमें हमारे सामने कठिनाइयाँ आती हैं; इसका कारण केवल हमारी त्रुटियाँ ही हैं। इस सम्बन्धमें जो नियम रहे हैं, उन्हें तुम्हारी जानकारीके लिए नीचे दे रहा हूँ। इनपर अमल करो तो देखोगे कि रसोईका काम तनिक भी कठिन नहीं है।

१. २१ फरवरीका।

१. चाहे जो हो, कुछ बिगड़ जाये या टूट जाये तो भी अपना सन्तुलन न खोयें, अधीर न हों और चिन्तित न हों, बल्कि कारण मालूम करके उसे दूर करें।

२. साथी अपना पूरा काम न करे या आलस्य करे तो उसपर खीझें नहीं, बल्कि उतना और बोझ खुद उठा लें।

३. जो-कुछ करें, अच्छी तरह करें और जहाँतक हो सके, पूर्ण रूपसे करें।

४. रसोईघरमें कभी खेलें-कूदें नहीं। वहाँ मजाकमें भी एक-दूसरेको मारें नहीं।

५. बिना काम किसीसे न बोलना तो सबसे अच्छी बात है। किन्तु यदि बात-चीत किये बिना न रहा जाये तो बहुत ही धीमे स्वरमें सीधी-सादी विनोदपूर्ण बात-चीत करें। किन्तु क्रमशः न बोलनेकी ही आदत डालें।

६. बात करनी ही हो तो उसमें एक-दूसरेकी चुगली अथवा किसीकी निन्दा कदापि न करें।

७. लड़के रसोईमें लाँग पीछे खोंसकर सिर्फ धोती ही पहनें, तो काफी है। लड़कियाँ भी कछौटा मारकर बैठें और कुरती-मात्र पहनें। रसोईमें ओढ़नीकी आवश्यकता नहीं है। इससे कपड़ोंकी बचत होती है और जलनेका भय भी कम हो जाता है। कोई कुरता पहने ही, तो उसकी बाहें कोहनीतक चढ़ा ले।

८. किसीको छींक आये तो रुमाल मुँहपर रखकर छींके ताकि थूकके छींटे उसीमें रहें, उड़ें नहीं। नाक साफ करनी हो तब भी रुमाल इस्तेमाल करें। पसीना आये तो पोंछ डालें। उसकी बूँदें किसी चीजमें न पड़ने दें। इसका अर्थ यह हुआ कि सबके पास रुमाल होना ही चाहिए।

९. बरतन आदि पोंछनेका कपड़ा तो रसोईघरमें अलग होना ही चाहिए और वह रोज साबुनसे धोया जाना चाहिए।

१०. रसोईमें काम करनेवाले अपने नाखून साफ रखनेका विशेष ध्यान रखें। समय-समयपर काटते रहनेपर भी उसमें मैल भर जाये तो सलाईकी नोकसे उसे निकाल दें।

११. स्वादकी खातिर रसोईघरसे कोई चीज न खानेके लिए लेनी चाहिए और न चखनेके लिए।

१२. सब्जी आदिमें नमक कम है या ज्यादा, यह देखनेकी खातिर वहाँ जो प्रधान हो, वह चम्मचसे थोड़ा-सा लेकर चखे और चखनेके बाद फौरन चम्मचको धोकर रख दे।

१३. बीमारोंके लिए या जो व्रतके कारण विशेष भोजन लेते हैं, उनके लिए खास रसोई करना आवश्यक हो तो उसे बोझ न मानें और खुशी-खुशी बनायें। अनुभवसे मालूम होगा कि सभी कामोंमें समयका ध्यान रखा जाये तो बोझका अनुभव ही नहीं होगा।

१४. कामके लिए हाजिर होनेके समय ही हाजिर हो जाना चाहिए। हर क्षण कीमती है, ऐसा मानें। इसलिए चाहे दो मिनट जल्दी आ जायें, देरसे कभी न आयें।

१५. जिन्हें रसोईघरमें कोई काम नहीं है, वे बातें करने या अकारण काम देखनेके लिए भी न खड़े हों।

१६. रसोईघर हर समय साफ रहना चाहिए। हर चीज अपने सही ठिकाने पर होनी चाहिए। जिसका काम समाप्त हो, वह सब-कुछ साफ-सुथरा करके रख दे और चला जाये।

इसके अलावा तुम्हें कुछ दूसरी बातें भी सूझेंगी, उन्हें भी इनमें जोड़ लेना। मैंने जो बातें लिखी हैं उनमें से कुछ छोड़ देने लायक लगें, तो गुरुजनोंसे सलाह करके छोड़ देना। किन्तु जो भी नियम बनाओ, उनका ठीक तरहसे पालन करना। सब लोग निश्चित किये हुए नियमोंकी प्रति बनाकर अपने-अपने पास रखें।

मुझे अक्सर ऐसा लगा है कि रसोई इस बातको मापनेका यन्त्र है कि हम 'गीता' की शिक्षापर किस हदतक अमल करते हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

आज बहनोंको अलग पत्र नहीं लिख रहा हूँ, क्योंकि यह पत्र जितना सोचा था, उससे ज्यादा लम्बा हो गया है। फिर यह पत्र उनके लिए भी तो हो सकता है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८९५५ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१८६. पत्र : महेन्द्र वा० देसाईको

२८ फरवरी, १९३२

चि० मनु,

कह सकते हैं कि तूने पत्र अच्छा लिखा है। अक्षरोंमें अब भी काफी सुधार की गुंजाइश है। नानु[1] विमल शाह बन गया है तो अब उसके लिए हाथी कहाँसे लायें? या वह लकड़ीका हाथी बनाकर उसपर सवारी करेगा? अथवा पहले विमल शाह[2]-जैसा पराक्रम करके हाथीपर चढ़नेके लायक बनेगा?

आबूके बारेमें तो तूने लिखा था। अब अल्मोड़ाके बारेमें लिखना।

दूधीबहनसे कहना, पत्र लिखें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२०) से; सौजन्य: वालजी गोविन्दजी देसाई।

१. महेन्द्रका छोटा भाई विमलचन्द्र।

२. आबूके प्रसिद्ध जैन मन्दिरोंमें से एकके निर्माता।

१८७. मृत्युमित्र[1]

२९ फरवरी, १९३२

साक्रेटिस एथेंसका एक बुद्धिमान पुरुष हो गया है। उसके नये, पर नीतिपूर्ण विचार सत्ताधारियोंको नहीं रुचे इसलिए उसे मौतकी सजा मिली। उस समय उस देशमें विषपान करके मर जानेकी सजा भी दी जाती थी। साक्रेटिसको मीराबाईकी तरह जहरका प्याला पीना था। उसपर मुकदमा चलाया गया था। उस वक्त साक्रेटिसने जो अन्तिम वचन कहे. उनके सारपर यहाँ विचार करना है। उसके वे शब्द हम सबके लिए शिक्षा लेने लायक हैं। साक्रेटिसको हम सुक्रत कहेंगे। अरब उसे सुकरात कहते थे।

सुक्रतने कहा: "मेरा दृढ़ विश्वास है कि भले आदमीका इस लोक या पर-लोकमें अहित होता ही नहीं। भले आदमियों और उनके साथियोंका ईश्वर कभी त्याग नहीं करता। फिर, मैं तो यह भी मानता हूँ कि मेरी या किसीकी भी मौत अचानक नहीं आती। मृत्युदण्ड मेरे लिए सजा नहीं है। मेरे मरने और सांसारिक प्रपंचसे मुक्त होनेका समय आ गया है। इसीलिए आपने मुझे जहरका प्याला दिया है। इसीमें मेरा कल्याण होगा, अतः मुझपर अभियोग लगानेवालों या मुझे सजा देनेवालोंके प्रति मेरे मनमें क्रोध नहीं है। उन्होंने भले ही मेरा भला न चाहा हो, पर वे मेरा अहित नहीं कर सकते।

"पंचोंसे मेरी एक विनती है। मेरे बेटे अगर भलाईका रास्ता छोड़कर कुमार्गमें जायें और धनके लोभी हो जायें तो जिस तरह आप मुझे सजा दे रहे हैं, उसी तरह उन्हें भी दें। वे दंभी हो जायें, जैसे न हों वैसे दिखनेकी कोशिश करें, तो भी उनको दण्ड दें। आप ऐसा करेंगे तो मैं और मेरे बेटे मानेंगे कि आपने शुद्ध न्याय किया।"

अपनी सन्तानके विषयमें सुक्रतकी यह माँग अद्भुत है। जो पंच न्याय करनेको बैठे थे, वे अहिंसा धर्मको तो जानते ही न थे। इसलिए सुक्रतने अपनी सन्तानके बारेमें उपर्युक्त प्रार्थना की, अपनी सन्तानको चेतावनी दी और यह भी बताया कि उसने उनसे क्या आशा रखी थी। उसने पंचोंको मीठी फटकार भी सुनाई, क्योंकि उन्होंने उसे उसकी सज्जनताके लिए सजा दी थी। सुक्रतने अपने बेटोंको अपने रास्तेपर चलनेकी सलाह देकर यह बताया कि जो रास्ता उसने एथेंसके नागरिकोंको बताया, वह उसके लड़कोंके लिए भी है; और वह यहाँतक कि, अगर वे उस रास्तेपर न चलें तो वे दण्डके योग्य समझे जायें।

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २४/२९-२-१९३२के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

मैंने यह हफ्ता कोरा ही जाने देनेका निश्चय कर लिया था। मगर फिर मुझसे रहा नहीं गया। किताबोंपर दृष्टि डाली तो मुझे सुकृतका भाषण दिखा। इसीमें से कुछ भेज दूँ, ऐसा सोचकर पुस्तक खोलते ही उसका जगत-प्रसिद्ध यह अंश मिला और मैंने इसका यह सार लिख डाला।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१ और २)से।

१८८. पत्र : नारणदास गांधीको

२४/२९ फरवरी, १९३२
शाम, २४ फरवरी, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा बड़ा लिफाफा मिला। भेंटका मामला फिलहाल तो उलझ गया है। पिछली बारकी सूचनाके अनुसार तुम्हारी तरफसे भी मिलनेकी माँग आयी नहीं लगती।

इस बारकी डाकमें लक्ष्मी बड़ीकी शिकायत है कि उसके पत्र पढ़ लिये जाते हैं। मेरी समझमें प्रार्थनाके समय सबसे पूछ लिया जाये और जिसे अपने पत्र पढ़े जानेपर आपत्ति हो, वह वैसा कह दे। कोई 'ना' कह दे तो उपयोगी होनेपर भी उसका पत्र न पढ़ा जाये अथवा जब वह स्वीकृति दे दे तभी पढ़ा जाये। तुम्हारा पत्र बड़ा होता है, इसमें कोई हर्ज नहीं है। जो समाचार दिया जा सकता हो उसका दिया जाना उचित ही है।

कताई अधिक करनेके विषयमें शंकरलालसे[1] सलाह करना।

पारनेरकरका प्रकरण दुःखद है। जितना प्रेम उंडेल सकते हो, उंडेलो।

गिरि-कुटुम्बके बारेमें समझ गया। जो बने करना।

पद्माका खर्च ६० रु० प्रति माह आयेगा। तीन जन हैं; तिसपर पद्मा बीमार है।

भेंटोंके विषयमें जो परिपाटी चली आ रही थी, वह यदि टूटी नहीं तो पाँच-सात लोग भी मिलने आ सकते हैं। लेकिन जहाँतक बने, हम पाँचसे आगे न जायें।

लॉर्ड इर्विनके पत्रकी नकल भेजना।

अगर मुक्ता[2] और दूसरी बहनोंसे मिलना सम्भव हुआ तो मैं चूकूँगा नहीं।

क्या डॉ० जीवराजको खबर दे दी है कि त्रिवेणी[3] बीमार रहती है?

क्या कुसुम अपनी हठके कारण ही मेरा बताया उपाय काममें नहीं ला रही है? रेवाशंकरभाईके धीरूकी सड़ी हड्डी सूर्यस्नानसे अच्छी हो गई थी। अनगिनत लोगोंने इस उपचारसे लाभ उठाया है।

१. शंकरलाल बैंकर।
२. अमरेलीके जगजीवनदास ना० मेहताकी बेटी।
३. जगजीवनदास ना० मेहताकी पत्नी।

मैथ्यूके साथ ठीक बात हुई। और खुशीकी बात यह है कि वह कातता है और थोड़ा दूसरा काम भी करता है।

अपराह्न २९ फरवरी, १९३२

'बाल गीता'[1] अभी शुरू नहीं कर पाया हूँ। दूसरा क्या भेजूँ, यह भी तय नहीं कर पाया हूँ; इसलिए इस हफ्ते कोई खास चीज नहीं भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

आखिर शामको कुछ लिखे बिना नहीं रह सका।[2] भेंटकी बात अभी तो घिसट रही है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२११से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१८९. पत्र : भगवानजी अ० मेहताको

२९ फरवरी, १९३२

भाईश्री भगवानजी,

आपका पत्र मिला। हमारा कोई कुटुम्बी या स्नेही कुछ दे नहीं या कुछ ले जाये तो उसके लिए शोक क्यों? हमारा उनपर कुछ भी अधिकार नहीं है, इतना सोच सकें तो सब ठीक हो जाता है, ऐसा मेरा अनुभव है। मैंने देखा है कि और बहुत-से लोगोंका भी यही अनुभव है। आपने बहुत कमाया है, कई तरहके मीठे-कड़वे अनुभव हुए हैं। अब जो है, उसीसे सन्तोष करके सिर्फ सेवा-कार्यमें मन-धन अर्पित क्यों नहीं कर देते?

मोहनदासके वन्देमातरम्

भगवानजी अनूपचन्द वकील
सदर
राजकोट
काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५८१४)से। सी० डब्ल्यू० ३०३७ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. बादमें **रामदास-गीता** कहलाई।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

१९०. पत्र : कृष्णा मा० कापडियाको

२९ फरवरी, १९३२

चि० कृष्णा,

तुम्हारा पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई।

हालमें कोई मुझसे मिलने नहीं आ सका, इसीलिए समाचारपत्रोंमें कुछ देखा नहीं। मेरी तबीयत अच्छी है। सरदार मेरे साथ हैं। आ सको और मिलनेकी अनुमति मिले तो दोनों ही आ जाना। बा तो अब छूट गई होगी।

धनका लोभ न छोड़ा हो तो छोड़ देना। धन तो किसीके साथ नहीं जाता; हमारे पुण्य कर्म हमारे साथ जाते हैं। इसलिए जितनी बने, उतनी सेवा कर डालनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

१९१. पत्र : आर० वी० मार्टिनको

१ मार्च, १९३२

प्रिय मेजर मार्टिन,

जैसा कि आप जानते हैं, करीब दो हफ्तोंसे मुझसे कोई भेंट करने नहीं आया है। पता लगा है कि इन मुलाकातोंपर इसलिए रोक लगा दी गई है कि इस सम्बन्ध में जो निर्देश अभीतक लागू थे, सरकार उनमें संशोधन कर रही है। अनिश्चित प्रतीक्षा की यह अवस्था मेरे लिए कष्टकर है और उन लोगोंके लिए असुविधाजनक है जो मुझसे मुलाकात करना चाहते हैं। इसलिए मैं चाहूँगा कि इस विषयमें शीघ्र ही निर्णय कर दिया जाये।

मेरे जो साथी इस जेलमें लाये गये हैं, उनसे मिलनेका सवाल[1] मेरे लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है। इस सवालके बारेमें मैंने पन्द्रह दिन पूर्व आपको लिखा भी था। जैसा कि मैंने कहा है, यदा-कदा अपने कुछ साथियोंसे मिलना मेरे लिए इनसानियतका एक ऐसा तकाजा है जिससे मैं अपनेको अपने सम्पूर्ण मानसिक तन्त्रको झिंझोड़े और तोड़े बिना वंचित नहीं कर सकता। मुझे आशा थी कि आप जल्दी

१. देखिए पृष्ठ ९७।

निर्णय करवा सकेंगे क्योंकि मैंने दुबारा केवल उसी चीजकी माँग की थी जिसे पिछले वर्ष सरकारने उचित समझा था।[1] मैं शीघ्र उत्तरका आग्रह करता हूँ।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

१९२. पत्र : प्रेमलीला ठाकरसीको

१ मार्च, १९३२

प्रिय बहन,

आजकल शहदके लिए तुम्हारे ऊपर मानो डाका ही डाल रहा हूँ। हम दोनोंको गर्म पानीके साथ शहद काफी मात्रामें पीना पड़ता है। इसलिए दो बोतलें नौ-दस दिनमें समाप्त हो जाती हैं। यदि शहद प्राप्त करनेमें कठिनाई होती हो तो लिखना। जो शहद मिल रहा है, वह कई बार गन्दा होता है और कई बार उसमें कार्कके टुकड़े दिखते हैं। इससे मुझे शक होता है कि वह जंगली शहद है। यदि ऐसा हो तो मैं उसे अपने उपयोगके लिए ठीक नहीं मानता। क्योंकि शहदको इस तरह इकट्ठा करनेमें बहुत-सी मक्खियोंकी हत्या होती है। और फिर वह कभी शुद्ध नहीं होता। इसलिए मैं तो वही शहद लेता हूँ जो शास्त्रीय रीतिसे तैयार किया जाता है। ऐसा शहद अब हिन्दुस्तानमें भी तैयार होने लगा है। अपने द्वारा भेजे जानेवाले शहदके बारेमें जाँच करना और मुझे लिखना।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दायाँ हाथ थक गया है इसलिए बायेंसे लिखा है।

इसके नीचेका अंश[2] भूलसे जवाबी कार्डपर उसी तारीखको लिख दिया था। बादमें इसे सँभालकर रख लिया था। आज काममें ला रहा हूँ।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८२१–ए) से; सौजन्य : प्रेमलीला ठाकरसी।

१. देखिए खण्ड ४४।

२. यहाँपर २ फरवरी, १९३२ को लिखे पत्रके इन वाक्योंका उल्लेख है : "तुमने मुसाफरीको लिए जो शहद भेजा था, उसे बहुत दिनतक खाया था। बहुत शुद्ध था।"

१९३. पत्र : बनारसीलाल बजाजको

१ मार्च, १९३२

चि० बनारसी,

अभीतक मुझे पत्र क्यों नहीं लिखा? आजकल क्या चल रहा है? मन:स्थिति कैसी है? तुम्हारे पितासे कई बार भेंट हुई। उन्होंने बहुत प्रेमसे मेरी सेवा की थी। लगभग रोज मिलते थे। महादेव, देवदास, आदिके पास तो वे बने ही रहते थे। मैंने उनसे देश आ जानेका बहुत आग्रह किया, किन्तु उन्हें मनानेमें सफल नहीं हुआ। उनमें त्यागवृत्ति तो बहुत है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४३८)से; सौजन्य : बनारसीलाल बजाज।

१९४. पत्र : रुक्मिणी बजाजको

१ मार्च, १९३२

चि० रुक्मिणी,

तेरा पत्र मिला। बालकोंमें हम जैसा गुण चाहते हैं, उनका वैसा ही नाम रखनेकी मेरी इच्छा रहती है। इसलिए मेरी सलाह है कि बच्चेका नाम गोपाल (लाल या दास) अथवा माधव (लाल या दास) रखो। दोनों भगवानके नाम हैं। उनका लाल या दास बनना या किसीको बनाना मुझे अच्छा लगता है। फिर गोपालके दो सुन्दर अर्थ हैं। गो का अर्थ गाय या इन्द्रिय है, इसलिए उसका अर्थ गायका पालन करनेवाला, या इन्द्रियका पालन अर्थात् उन्हें वशमें करनेवाला भी हुआ। माधवका भी बहुत-कुछ ऐसा ही अर्थ है। हमारे शरीरमें मधुरूपी जो राक्षस, जो शैतान रहता है, उसका हनन करनेवाला माधव। इन दोनोंमें से कोई नाम चुनना कठिन लगे, तो चिट्ठी डालना। दोनोंमें मुझसे ही पसन्द करवाना चाहो, तो मैं गोपाल पसन्द करूँगा। किन्तु रमेश ज्यादा अच्छा लगता हो, तो वह रखनेमें भी कोई हानि नहीं। सन्तोक मुझे पत्र लिखे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०६०)से।

१९५. पत्र : चिमनलाल एन० शाहको

३ मार्च, १९३२

चि० चिमनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है, यह जानकर बहुत खुशी हुई।

फादर एलविनको लिखना कि मुझे पत्र अवश्य लिखें। शामराव भी लिखे।

चम्पाका दुःख जितना दूर कर सको, करना।

पत्नीको पतिके समान ही अधिकार हैं, ऐसा मानकर सब निर्णय करना।

चम्पा समझकर प्रसन्नतापूर्वक जितना करे उतना ही काफी है।

अब्बासने चरखेका जो वर्णन भेजा है, उसके बारेमें मुझे जो-कुछ कहना है सो सब लिख चुका हूँ। वह पत्र न मिला हो, तो लिखना। फिरसे लिख भेजूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० ३६) से।

१९६. पत्र : कुसुम देसाईको

३ मार्च, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरा कार्ड और पत्र मिले। तू बच्चोंकी तरह यह लिखती है कि लिखनेके लिए कुछ नहीं है। यह ठीक नहीं है। तू अपने अनुभव लिखे तो भी पन्ने भर जायें। सोचकर लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८२९) से।

१९७. पत्र : मंगला शं० पटेलको

३ मार्च, १९३२

चि० मंगला,

कह सकते हैं कि इस बार तूने अच्छा लिखा है।

मजाकमें भी झूठ न बोलें और बोल ही दिया हो, तो उसे फौरन सुधार लें।

क्या प्रश्न पूछनेमें भी कुछ सीखनेकी जरूरत है? जो खुद न आये और लगता हो कि दूसरे व्यक्तिको आता है, वह उससे पूछ लें।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

परीक्षामें पहला नम्बर लिया, उसके लिए बहुत-बहुत शाबाशी।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७८) से। सी० डब्ल्यू० ४२ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन ब० देसाई।

१९८. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

४ मार्च, १९३२

चि० परसराम,

तुमारा खत मिला। जो लडकियां हिंदीमें लिखती हैं बहोत अच्छे खत लिखती हैं। हरेक प्रार्थनापर भगवानको रीझना हि क्यों चाहिये और वह कब रीझता है और कब रूठता है इसका हमें कया पता। प्रार्थना हि प्रार्थनाका फल या बदला है।

सत्यमें सत्य ही सबसे बड़ी युक्ति पोलिसि[1] है। वही टेकट[2] है वही डेलिकसि[3] है। टेकटका[4] तर्जुमा मृदुता कहा जाय। इस जगतमें शुद्ध सत्यसे बडके न कोई पोलिसी है, न टेकट है न हि डेलिकसि है।

बापूके आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ४९६८) से; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा। जी० एन० ७४९१ से भी।

१. २. ३. तथा ४. अंग्रजीके शब्द हैं।

१९९. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

५ मार्च, १९३२

चि० शारदा,

चूँकि तूने लम्बे पत्रकी फरमाइश की है इसलिए मैंने दोगुना बड़ा कागज लिया है। तुझे १६वाँ वर्ष लग गया, इसलिए अब तू जिम्मेदार हो गई है। अपने शरीरको सुधारकर अखण्ड सेविका बन। और ऐसा बननेके लिए मनसे आश्रमके नियमोंका पालन कर।

अब तेरे प्रश्नोंके उत्तर :

आश्रममें हम मूर्ति नहीं रखते क्योंकि हमारे सम्मुख [ईश्वरकी] जगतरूपी मूर्ति पड़ी ही है। हम ईश्वरको उसीके द्वारा जानें-पहचानें। आकाशकी ओर देखें तो वहाँ भी अगणित मूर्तियाँ हैं। उनमें से जिसका मनन करना हो, उसका मनन करें और वहाँ ईश्वर है, ऐसा मनमें विचार करें। इमाम साहब अथवा अमीनाको हम जिसे मूर्ति कहते हैं, वैसी मूर्तिकी जरूरत नहीं पड़ती; यह भी विचारणीय है।

मुझे अभी नदियों और घाटियोंको पार करना है। तात्पर्य यह, कि मुझे अभी ईश्वरतक पहुँचनेके लिए बहुत लम्बा रास्ता तय करना है।

जो जान-बूझकर असत्य भाषण करता है, वह चाहे कितना भी प्रायश्चित्त क्यों न करे लेकिन उसे माफी नहीं मिलती। जो भूलसे झूठ बोलता है, केवल उसे ही प्रायश्चित्त करनेपर माफी मिलती है। समझमें आया? न समझमें आया हो तो फिर पूछना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९४८) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला।

२००. पत्र : ईश्वरभाई पटेलको

५ मार्च, १९३२

चि० ईश्वर,

तेरा पत्र मिला। हम दोनोंको प्रसन्नता हुई। कभी नेपोलियनसे भी पत्र लिखवाना। तू तो लिखते ही रहना। सब कुशल होंगे।

हम दोनोंका आशीर्वाद।

चि० ईश्वरभाई पटेल
द्वारा गंगाबहन कुँवरजी
वांज
बरास्ता सचीन

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६९६)से।

२०१. पत्र : कुसुम देसाईको

५ मार्च, १९३२

चि० कुसुम,

तू भी खूब है। एक कार्ड और एक पत्र भेजा, पर उनमें कुछ भी लिख नहीं सकी। इन सब महीनोंमें तूने क्या पढ़ा, क्या विचार किया, कितना काता, शरीर कैसा रहा, कहाँ-कहाँ घूमी, वगैरह चाहे तो बहुत-कुछ लिख सकती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३०)से।

२०२. पत्र : नानाभाई आई० मशरूवालाको

५ मार्च, १९३२

भाई नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तारा[1] के जानेकी बात मैंने समाचारपत्रोंमें पढ़ी थी। विजयलक्ष्मीके मनपर इसका खासा बोझ पड़ेगा। किन्तु इसीमें तो हमारी परीक्षा है।

मुझे भी मणिलाल और सुशीलाका पत्र मिला था। मैंने लिख दिया था कि वहाँ पूरी व्यवस्था किये बिना न आयें। शायद अगले सप्ताह आ जायेगा। तुमने अपने स्वास्थ्यके बारेमें कुछ नहीं लिखा। अब लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५१९)से। सी० डब्ल्यू० ४९९५ से भी; सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला।

२०३. पत्र : नारणदास गांधीको

५ मार्च, १९३२

चि० नारणदास,

खुशालभाईको आश्वासन देनेके लिए मैंने परसों राजकोट तार किया था। इनके जैसे भाग्यशाली थोड़े ही देखे हैं। जितने दिन उनकी हमपर छाया रहे, उतने दिन हमें तो सुखका अनुभव होगा। लेकिन आज भी देह छूट जाये तो इसमें लौकिक दृष्टिसे भी दुःख माननेकी बात नहीं है। लेकिन तुम्हारी ओरसे फिर कोई खबर नहीं आई, इसलिए मानता हूँ कि बादल बिखर गये हैं।

मुलाकातोंकी समस्या आधी सुलझ गई है। आश्रमवासियोंमें से जो आना चाहें, आ सकते हैं। उनमें भी जो 'पॉलिटिकल' माने जा सकते हैं, वे नहीं आ सकते। लेकिन ऐसा तो फिलहाल कोई है नहीं। खींच-तानकर वालजीको वैसोंमें गिनना चाहें तो वे ही एक वैसे हैं। इसलिए अगर अगले हफ्ते कोई आना चाहे तो आ सकता है। सुपरिन्टेन्डेन्टको पहलेसे खबर दे रखें। मुझे भी खबर दे रखना ठीक होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से; सी० डब्ल्यू० ८२१२ से भी। सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. तारा मशरूवाला; सुशीला गांधीकी छोटी बहन।

२०४. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

५ मार्च, १९३२

चि० पुष्पा,

तेरा हिन्दीका पत्र आया था, तब तो मैंने सोचा था कि कोई दूसरी पुष्पा[1] होगी। तेरा वह पत्र इतना बढ़िया था। इस बार अक्षर अच्छे नहीं माने जा सकते। तीन नम्बर मिलेंगे। अक्षर तो चित्रकी तरह सुन्दर बनाने चाहिए। देख, मंगला कितने सुन्दर अक्षर लिखती है। लेकिन इस बार लिखाई पहलेसे तो अच्छी ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८२) से। सी० डब्ल्यू० २८ से भी; सौजन्य : पुष्पाबहन ना० नायक।

२०५. पत्र : वनमाला न० परीखको

५ मार्च, १९३२

चि० वनमाला,

तुझे अपने अक्षर सुधारने चाहिए। तू लिखते वक्त ध्यान तो रखती है; फिर भी अक्षर जैसे होने चाहिए, वैसे नहीं होते।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

नरहरिकी कुछ खबर है?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६७) से। सी० डब्ल्यू० २९९० से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

१. देखिए "पत्र : पुष्पा शं० पटेलको", ११-२-१९३२।

२०६. 'यरवदा मन्दिरसे' की प्रस्तावना

६ मार्च, १९३२

१९३० में अपने कारावासके दौरान यरवदा सेन्ट्रल जेलसे मैं सत्याग्रह आश्रमको 'साप्ताहिक चिट्ठी' लिखता रहा। उनमें प्रमुख आश्रम-नियमोंका सरसरी तौरपर निरीक्षण किया गया था[1]। चूँकि आश्रमका प्रभाव अपनी भौगोलिक सीमाओंको पहले ही पार कर गया था, इसलिए बाँटनेके लिए पत्रोंकी प्रतियोंमें वृद्धि कर दी गई थी। पत्र गुजरातीमें लिखे गये थे। हिन्दी और दूसरी भाषाओं तथा अंग्रेजीमें भी उनका अनुवाद करनेकी माँग थी। श्री वालजी देसाईने अंग्रेजीमें काफी अच्छा अनुवाद[2] किया। परन्तु उन्होंने देखा कि अपने लगातार कारावासके दौरान मेरे पास काफी फुर्सत है तो उन्होंने अपना अनुवाद संशोधनके लिए मेरे पास भेज दिया। मैंने इसे ध्यानसे पढ़ा है; कई-एक स्थलोंपर मैंने थोड़ा परिवर्तन किया है जिससे मेरी रुचिके अनुरूप अर्थ प्रकट हो जाये। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यदि अंग्रेजी पाठकके लिए फिरसे लिखना होता तो मैं बिलकुल नई चीज लिखता। परन्तु ऐसा करना अपने अधिकार-क्षेत्रका ही उल्लंघन हो जाता। सम्भवतः यह भी ठीक ही है कि अंग्रेजी पाठक भी मेरे विचार-प्रवाहको उसी रूपमें देखें जैसा कि वह आश्रमवासियोंके प्रति १९३० में प्रकट किया गया है। इसलिए मैंने मूल तर्कमें फेरफार करनेमें रत्ती-भर भी स्वतन्त्रता नहीं बरती है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
फ्रॉम यरवदा मन्दिर

२०७. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

६ मार्च, १९३२

प्रिय मेजर भण्डारी,

आपने मुझे कृपा करके साप्ताहिक मुलाकातोंके बारेमें सरकार-द्वारा जारी किये गये ताजा निर्देशोंकी एक नकल दी है।

आश्रमके अन्तेवासियोंमें से 'राजनीतिक' किसे माना जायेगा, इस बातके निर्णयके सम्बन्धमें मुझपर जो विश्वास रखा गया है, उसकी मैं कद्र करता हूँ। मैं हृदयसे उस विश्वासके प्रति सच्चा रहना चाहता हूँ। लेकिन मैं ऐसा कर सकूँ, इसके लिए पहले सरकार और मेरे बीच 'राजनीतिक' विशेषणकी दोनों पक्षोंको स्वीकार्य

१. देखिए पृष्ठ ४२, पाद टिप्पणी क्रमांक १।
२. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ७-३-१९३२

एक परिभाषा तय हो जानी चाहिए। मैं 'राजनीतिक' का अर्थ मानता हूँ – वे लोग जिनका झुकाव राजनीतिकी ओर है और जो वास्तवमें सविनय प्रतिरोधके अलावा भी राजनीतिमें हिस्सा ले रहे हैं। क्योंकि यदि 'राजनीतिक' से अभिप्राय उन लोगोंका है जो इसके पहले सत्याग्रहीके रूपमें बन्दी रह चुके हैं या जो सत्याग्रहके सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं तब तो फिर आश्रमका कोई भी अन्तेवासी गैर-राजनीतिक नहीं है। किन्तु यदि 'राजनीतिक' का अर्थ वही है जो मैंने माना है, तो केवल तीन अन्तेवासी राजनीतिक हैं। मेरा मतलब है – श्रीयुत महादेव देसाई, प्यारेलाल और देवदास गांधी। लेकिन यदि मैं पहले दोसे न मिल सकूँ, तो मैं देवदास गांधीसे भी न मिल सकूँगा; क्योंकि वे दोनों मेरे लिए देवदासके समान हैं। आज परिस्थिति यह है कि वे सब ही बन्दी हैं। मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ कि इस समय वहाँ केवल लड़के-लड़कियाँ और कुछ वयस्क लोग हैं जो खासकर अल्पवयस्क लोगों तथा आश्रमके विविध औद्योगिक कार्योंकी देखभालके लिए छोड़ दिये हैं।

मेरे लिए आश्रमवासी मित्रोंके सिवा अन्य मित्रोंकी सूची देना भी तबतक कठिन है जबतक मुझे यह न मालूम हो जाये कि सरकारके विचारमें 'राजनीतिक' शब्दकी क्या परिभाषा है। आपकी स्वीकृतिके लिए एक पूरी-सी सूची भेजनेके पहले मैं इस बातके उत्तरकी प्रतीक्षा करूँगा। परन्तु तबतक नीचे उदाहरणके रूपमें मैं उन मित्रोंके नाम दे रहा हूँ जिन्हें मैं गैर-राजनीतिक मानता हूँ और जिन्हें मैं अपने रिश्तेदारोंकी-जैसी श्रेणीमें रखूँगा।

लेडी ठाकरसी, निवास — यरवदा हिल। वे एक समाज-सेविका हैं। १९३२ में जब मैं सैसून अस्पतालमें बीमार था, उन्होंने गम्भीर बीमारीके दौरान मेरी मदद की थी।

कृषि कालेज, पूनाके प्रोफेसर त्रिवेदी। उनका मेरे साथ वैसा ही घनिष्ठ सम्पर्क है जैसा कि लेडी ठाकरसीका।

यशवन्तप्रसाद देसाई, मिल-मालिक, जो माटुंगामें रहते हैं; उन्होंने उसी बीमारीके दौरान मेरी परिचर्या की थी और मेरी मदद करनेके लिए पूनामें रहे थे।

प्यारे अली और उनकी पत्नी जो निवृत्त होकर थानाके पास एक विश्रामावासमें रहते हैं। उन्होंने कुछ मुसलमान अनाथोंको वहाँ रखा है। वे लगभग एक साल आश्रममें रहे हैं। वे बहुत ही धार्मिक दम्पती हैं।

ये मित्र किसी भी प्रकारसे राजनीतिक नहीं हैं।

इस पत्रका उत्तर आये, उस बीच मैंने आश्रमके प्रबन्धकको उन अन्तेवासियोंको भेज देनेको लिखा है,[१] जो मुझसे मिलना चाहें।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५५४) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, गृह विभाग, विशेष शाखा, फाइल सं० ८०० (४०), भाग-१, पृष्ठ १३१-३ से भी।

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", ५-३-१९३२।

२०८. इमाम साहब–१[1]

७ मार्च, १९३२

मैं अभीतक 'बाल गीता' के अध्याय लिख भेजनेके लिए तैयार नहीं हो पाया हूँ। यह विचार करते हुए कि इस समय क्या भेजूँ, मुझे लगा कि मैं इमाम साहबके संस्मरण आश्रमवासियोंके सामने रखूँ, और मुझे इस पुण्य-कार्य में ढील नहीं करनी चाहिए। इसलिए मैं जितने संस्मरण लिख सकूँ, लिख डालना चाहता हूँ।

मैं जिस वर्ष (१८९३में) दक्षिण आफ्रिका गया, लगभग उसी वर्ष इमाम साहब भी वहाँ गये। उनका नाम तो अब्दुल कादिर बावाजीर था। लेकिन उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें इमामत की, इसलिए उन्हें अधिकांश लोग इमाम साहबके नामसे ही जानते थे। मैंने तो उन्हें किसी दूसरे नामसे कभी पुकारा ही नहीं।

इमाम साहबके वालिद बम्बईकी प्रसिद्ध जुमा मस्जिदके मुअज्जिन थे और जीवनपर्यन्त रहे। उनकादे हान्त इमाम साहबके यहाँ आ जानेके बाद हुआ। वे जब अजान देनेके लिए वजू कर रहे थे तभी उनकी साँस रुक गई। इस प्रकारकी मृत्यु बहुत शुभ मानी जाती है। इमाम साहबके पूर्वज अरब थे। वे बहुत वर्षों पहले कोंकणमें आ बसे थे और इसलिए इमाम साहब कोंकणी बोली भी जानते थे। उनकी मातृभाषा तो गुजराती ही थी, किन्तु वे पाठशालामें थोड़ा ही पढ़े थे। कुरान शरीफका अच्छी तरह उच्चारण कर सकने योग्य अरबी भी उन्हें आती थी। ऐसा नहीं कह सकते कि उन्हें कुरान शरीफका सम्पूर्ण अर्थ लगा सकने योग्य अरबीका ज्ञान था। इमाम साहबने अनुभवसे अंग्रेजी, डच और क्रियोल फ्रेंच जान ली थी; उर्दू तो वे जानते ही थे। अपना काम चलाने लायक जुलू भी उन्हें आती थी। उनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि यदि उन्होंने नियमपूर्वक शालाओंमें जाकर पढ़ा होता तो वे बड़े विद्वान बनते और माने जाते। वकील न होते हुए भी वे कानूनकी बारीकियोंको अनुभवके आधारपर जानने लगे थे।

इमाम साहब दक्षिण आफ्रिका व्यापारके लिए गये थे। उन्होंने खासी कमाई भी की। जब उन्होंने व्यापार करना बन्द किया तो वे भाड़ेपर दी जानेवाली घोड़ा-गाड़ियाँ रखने लगे और उनसे उन्हें पर्याप्त आमदनी हो जाती थी। वे स्वतन्त्र विचारके व्यक्ति थे, इसलिए बड़े व्यापारमें कभी नहीं पड़े। उनकी आवाज मीठी थी। उनके वालिद मुअज्जिन थे इसलिए वे जोहानिसबर्गकी मस्जिदमें बीच-बीचमें इमामत करते थे किन्तु इस कामके बदलेमें उन्होंने कभी कुछ लिया नहीं।

इमाम साहबने दो विवाह किये। दोनों पत्नियाँ मलायी थीं। पहली पत्नीके साथ ठीक नहीं निभी इसलिए उन्होंने, जिन्हें हम उनकी पत्नीकी तरह जानते थे उनसे, दूसरा विवाह किया। इस विवाहसे इमाम साहबको बहुत सुख मिला। वे और

१. यह "पत्र : नारणदास गांधीको" ७-३-१९३२के साथ भेजा गया था। देखिए अगला शीर्षक।

हाजी साहिबा एक-दूसरेका बहुत ध्यान रखते थे। वे सच्चे मित्र थे। जहाँतक मैं समझा हूँ, इमाम साहबके विवाह-विषयक विचार बादमें बहुत बदल गये थे और वे एकपत्नीव्रतके हिमायती हो गये थे।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

२०९. पत्र: नारणदास गांधीको

७ मार्च, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारे दूसरे कार्डपर से मानता हूँ कि तुम आश्रममें लौट आये होगे। मेरा कल भेजा हुआ कार्ड[1] मिला होगा।

किसी आने-जानेवालेके हाथ तलेका चमड़ा भेजना। देखता हूँ, हर महीने तला दुरुस्त कराना पड़ता है। जल्दी बिलकुल नहीं है। दो चप्पलोंमें अभी-अभी तला लगवाया है अर्थात्, दो महीनेतक तो बेफिक्री है ही। तलेका चमड़ा पासमें पड़ा हो तो वक्त पड़नेपर काममें आ सकता है, इसीलिए इतनी जल्दी भेजनेकी बात लिख दी।

ऐसे सब आश्रमवासियोंको जो अराजनीतिक कहे जा सकें, [मुझसे] मुलाकात की अनुमति मिल गई है। राजनीतिक किसे कहना है, यह निर्णय मुझपर छोड़ दिया गया है। लेकिन सरकार किसे राजनीतिक व्यक्ति कहेगी, इसका पता तो वह इसकी परिभाषा करे, तब लगे। इसलिए मैंने व्याख्या करनेको कहा है[2]। इस बीच चूंकि मेरी दृष्टिमें वहाँ कोई राजनीतिक व्यक्ति नहीं है, इसलिए जिसे आना हो और तुम जिसे अनुमति देना चाहो, वह आये। कोई न आना चाहे तो मेरे सन्तोषके विचारसे किसीका आना जरूरी नहीं है। हाँ, जो आना चाहे उसे 'ना' नहीं है। आश्रमके बाहरके अराजनीतिक लोगोंकी मुझसे सूची[3] माँगी है। वह सूची परिभाषा मिलनेपर बनाऊँगा।

क्या प्रभावतीकी कोई खबर आती है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

भाई वालजीसे कहना कि उनका आश्रम-व्रतों-सम्बन्धी अनुवाद मैंने सुधार दिया है। प्रस्तावना[4] भी लिख डाली है। अब उसे सँभालकर रखूँगा।

१. देखिए पृष्ठ १७१।

२. देखिए "पत्र: एम० जी० भण्डारीको", ६-३-१९३२।

३. १९३० में यरवदा जेलमें लिखित; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ११-३।

४. देखिए पृष्ठ १७३।

मणिलालको इस हफ्ते आना चाहिए। सम्भव हो तो दोनों[1] मिल जायें।

३७ पत्र हैं। इनके सिवा तुम्हें लिखा यह पत्र और इमामसाहबके संस्मरण[2] हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८२१३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२१०. पत्र : काका कालेलकरको[3]

[७ मार्च, १९३२][4]

प्रिय काका,

कैसे हो? भोजनमें क्या मिलता है? तुम्हारे साथ कितने लोग हैं और कौन-कौन? प्रभुदास कैसा है? उसे भोजनमें क्या मिलता है? अपना और प्रभुदासका वजन लिखना। इस आशंकासे कि शायद यह पत्र तुम्हें न मिले, इसी तरहके प्रश्न मैंने श्री क्विनसे पूछे हैं। तुम क्या पढ़ रहे हो? हम दोनों यहाँ बिलकुल ठीक हैं। फिलहाल मैं छुहारे, नींबूका रस, हरी सब्जियाँ, और बादामकी रोटी लेता हूँ। मुझे कब्ज नहीं रहता। यदि मेरा वजन गिरा तो मैं फिरसे दूध लेने लगूँगा। मैं 'बाल-गीता' लिखनेकी सोच रहा हूँ; 'इमामसाहबकी सीरत'[5] लिखना शुरू कर दिया है। मैं नक्षत्रोंकी स्थितिका अध्ययन कर रहा हूँ और उसके लिए मैं उस गुजराती पुस्तकसे सहायता लेता हूँ जो मराठीसे अनूदित है; और 'वीकली टाइम्स' में दिये नक्शोंको भी देखता हूँ। मैं रातमें उठता हूँ और नक्षत्रोंकी स्थितियाँ देखता हूँ। इस दफा मैं पुस्तकें बहुत कम मँगा रहा हूँ। लेकिन मुझे अमेरिकासे कुछ पुस्तकें मिलती रहती हैं। लगता है, मैं इस बार मराठी नहीं सीख पाऊँगा। मैं कमजोरी महसूस करता हूँ और ज्यादा सोना जरूरी है। शायद लम्बे अरसेतक आरामके बाद मैं फिर सशक्त हो जाऊँ। नरहरि कैसा है? मेरा तुम सबको आशीर्वाद।

तुम्हारा,

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०), भाग-१, पृष्ठ ८८।

१. सम्भवतः मणिलाल गांधी और उनकी पत्नी सुशीला गांधी।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. साधन-सूत्रमें टिप्पणी है कि इसकी मूल गुजराती उपलब्ध नहीं है। यह अनुवाद जेल-अधिकारियों द्वारा किया गया प्रतीत होता है। काकासाहब विसापुर जेलमें थे।

४. तिथिका निश्चय इमामसाहबकी जीवनी लिखना प्रारम्भ करनेके उल्लेखसे किया गया है। देखिए पिछला शीर्षक और "दैनन्दिनी, १९३२" भी।

५. जीवनी।

२११. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

७ मार्च, १९३२

चि० प्रेमा,

तू यज्ञ पूरा करना भूल गई। तेरी इस चूकके[1] द्वारा मैं तो ऐसा मानता हूँ कि रामने तेरा घमंड चूर किया है। इस भूलको जितनी बड़ी तू समझती है उतनी बड़ी मैं नहीं समझता। तू बड़ी मानती है, यह बिलकुल ठीक है। रामने घमंड चूर किया है, ऐसा इसलिए कहता हूँ कि भूलके पुतले हम अगर किसी काममें एक भी भूल न करें, तो हमारे भीतर गर्वका (वह कितना ही सूक्ष्म हो) आ जाना सम्भव है। जैसा नारदजी के प्रति रामचन्द्र या शिव (?)ने किया, कुछ वैसा ही रामने तेरे प्रति किया मालूम होता है। इससे दो लाभ हैं: गर्व दूर हुआ और आगे भूल नहीं होगी।

तेरे पत्रमें जो शब्द-चित्र हैं, उनपर आज लिखनेकी कोई बात नहीं रह जाती। तू कठोर है, ऐसा मैंने बिलकुल नहीं माना है। तेरी आलोचनाएँ मेरे लिए तो कामकी ही हैं। सबमें गुण-दोष भरे हैं। तू अगर गुण कम देखती हो तो अधिक देखनेकी आदत डालना।

मेरे पत्रसे नारणदासको सोचमें बिलकुल नहीं पड़ना चाहिए था। नारणदास यज्ञ तो करता ही है। दूसरे शारीरिक कामके लिए मैंने उसके पास समय ही नहीं रहने दिया। इसमें वह क्या करे? इसमें भी मेरी रचना-शक्तिका अधूरापन है। आश्रम शुरू किया तभी सुव्यवस्था कर सका होता, तो आज जो कुछ लोगोंको केवल देखरेख वगैरहमें ही लगे रहना पड़ता है, वह न होता। जो चल पड़ा सो चल पड़ा। मैं मानता हूँ कि अब भी परिवर्तन हो सकता है। लेकिन वह मुझे सूझता नहीं है और मेरे सिवा ऐसी कोई स्त्री या पुरुष अभीतक हमें मिला नहीं है, जो ऐसे मामलोंमें आश्रमके नियमोंका अनुसरण करते हुए अधिक विचार करके उनपर अमल करा सके। न मिले, तबतक जो-कुछ चलता है, उसे सहन करें। हाँ, यह ध्यानमें रखें कि वह बहुत अपूर्ण है। क्योंकि मैं तो मानता ही हूँ कि आश्रममें सबके लिए अपने-अपने हिस्सेका शारीरिक काम और सुव्यवस्थाकी रक्षा कर सकना शक्य है। यह विश्वास रखकर हम चलेंगे तो किसी दिन इसकी कुंजी हाथ लग जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७५)से। सी० डब्ल्यू० ६७२३ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

१. प्रेमाबहन कंटकको घमंड था कि वह आश्रमके नियमोंका पालन बहुत सावधानीसे करती है। परन्तु एक बार उसकी कताईमें आठ या दस तार कम रह गए और उसने इसका पश्चात्ताप करनेके लिए तीन दिनका उपवास रखा था।

२१२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

७ मार्च, १९३२

भाई घनश्यामदास,

कितना परिश्रम? मेरे खुराकके फेरफारसे घभराहटका कोई कारण नहिं है केलौरि पर मेरा विश्वास नहिं है या कम है। उन लोगोंका[1] प्रमाण सब उन्हीं लोगोंके लिये है। हम उनका मुकाबला कैसे कर सकते हैं? प्रत्येक धंदाको भी केलौरीका प्रमाण नीकालनेमें देखना चाहिये। अब मैं चार आउंस रोटीका टोस्ट भी लेता हुं। खजुर मिल गई है। मेरी दृष्टिमें अरबस्तानसे जो अच्छी खजुर आती है वह इससे अच्छी है। मेरे पास जो खजुर आती है वह अच्छी हि है। दूधकी आवश्यकता सिद्ध होनेसे शीघ्र लुंगा। चिंता न करें।

अमेरिकाके हाल पढ़कर मुझे कुछ आश्चर्य नहिं हुआ। परंतु वहां सज्जन भी काफी पड़े हैं।

वहांका जलवायु तुमारे लिये अनुकूल था क्या? तुमको खुराकका प्रमाण मिल गया है जानकर आनंद हुआ। मालवीजी महाराज कैसे हैं? सरदार कहते हैं रामेश्वरदास बीमार थे। मुझे पता नहिं था। अब कैसे हैं?

बापूके आशीर्बाद

सी० डब्ल्यू० ७८९६ से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला।

२१३. पत्र : अगाथा हैरीसनको

८ मार्च, १९३२

प्रिय अगाथा,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले; पोस्टमैनका प्रयत्न[2] भी।

तुमने बिलकुल ठीक किया जो मित्रोंकी[3] प्रवृत्तियोंका ब्यौरा मुझे नहीं लिखा; और मैं वह सब जाननेको उत्सुक भी नहीं हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम सब यथाशक्ति और जो उचित है, वही कर रहे हो।

१. अनुमानतः अमेरिकियोंका।

२. अर्थ स्पष्ट नहीं है।

३. अनुमानतः आशय इंडिया कन्सिलियेशन ग्रुप, लन्दनके सदस्योंसे है। अगाथा दिसम्बर, १९३१ में इस संस्थाकी अवैतनिक मंत्री बनी थी।

क्या तुम्हें मॉडके पत्र मिलते हैं या उससे तुम्हारी भेंट होती है? उससे कहो कि मुझे लिखे और अपने स्वास्थ्य तथा अन्य बातोंमें प्रगतिके बारेमें लिखे।

सब मित्रोंको मेरा यथायोग्य।

मुझे अभीतक रस्किनकी पुस्तकके खण्ड[1] नहीं मिले हैं।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४५१) से।

२१४. पत्र : मनमोहनदास पी० गांधीको

८ मार्च, १९३२

भाई मनमोहन,[2]

तुम्हारा पत्र मिल गया है। थोड़े ही दिनों पहले तुम्हारी बात सोच रहा था। इतनेमें तुम्हारा पत्र मिल गया। मुझे पुस्तकें अभी नहीं मिली हैं।

ऊन और रेशम उद्योग-सम्बन्धी कोई विशेष पुस्तक मुझे याद नहीं आती। पुणताम्बेकरके निबन्धके[3] अन्तमें बहुत-सी पुस्तकोंकी सूची है, उसे देख लेना। सूची ग्रेगकी पुस्तकमें भी है।

आजकल तो मेरे पास पुस्तकोंका खासा ढेर है। फिर घनश्यामदास भी कुछ भेजनेवाला है, इसलिए अभी तुम्हें तकलीफ नहीं दूँगा।

मेरा हमनाम होनेमें नुकसान तो है ही। आखिरकार तुम्हें जवाब तो देना ही होगा। यह कबूल तो करना ही पड़ेगा कि तुम महात्मा नहीं हो[4]। हम दोनों मजेमें हैं। मेरा दाहिना हाथ अब कम काम करता है, इसलिए बायेंसे लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत मनमोहनदास गांधी
१३५, केनिंग स्ट्रीट
कलकत्ता

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५) से।

१. **फॉर्स क्लेविजेर;** देखिए "दैनन्दिनी, १९३२", २५ मार्च और ६ अप्रैल की प्रविष्टियाँ। **महादेव देसाईकी डायरी,** भाग-१ की २८ मार्च, १९३२ की प्रविष्टिमें महादेव देसाईने भी कहा है, "बापू रस्किनकी **फॉर्स क्लेविजेर** बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ रहे हैं. . ."।

२. इंडियन चेम्बर ऑफ कामर्स, कलकत्ताके मंत्री।

३. एस० वी० पुणताम्बेकर और एन० एस० वरदाचारी-द्वारा लिखित **हाथ-कताई और हाथ-बुनाई—एक निबन्ध;** इसे एस० गणेशन, मद्रासने प्रकाशित किया था।

४. विदेशसे आनेवाले पत्र भूलसे इनके पास पहुँच जाते थे।

२१५. पत्र : सर सैम्युअल होरको

११ मार्च, १९३२[1]

प्रिय सर सैम्युअल,

शायद आपको याद होगा कि गोलमेज परिषदमें अल्पसंख्यकोंका दावा पेश किये जानेपर अपने भाषणके[2] अन्तमें मैंने कहा था कि अगर अन्त्यजोंको अलग निर्वाचक मण्डल दिया गया, तो मैं जानकी बाजी लगाकर उसका विरोध करूँगा। यह मैंने क्षणिक आवेशमें या भाषाकी छटा दिखानेके लिए नहीं कहा था। वह पूरी गम्भीरतासे दिया हुआ वक्तव्य था।

उस वक्तव्यके अनुसार मैंने यह आशा की थी कि हिन्दुस्तान लौटकर पृथक् निर्वाचक मण्डलके विरुद्ध — कम-से-कम अन्त्यजोंके पृथक् निर्वाचक मण्डलके विरुद्ध तो अवश्य ही — लोकमत संगठित करूँगा। मगर मैं वैसा करूँ, यह शायद विधाताको मंजूर न था।

मुझे जिन अखबारोंको पढ़नेकी इजाजत है, उनपर से मैं देखता हूँ कि इस मामलेमें ब्रिटिश सरकार किसी भी क्षण अपना निर्णय घोषित कर सकती है। पहले मैंने यह सोचा था कि इस निर्णयके घोषित होनेपर यदि यह दिखा कि अन्त्यजोंके लिए अलग निर्वाचक मण्डलका निर्माण किया जा रहा है, तो मैं उस समय अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिए जो कदम जरूरी मालूम होगा, उठाऊँगा। परन्तु मुझे लगता है कि यदि मैं पहलेसे सूचना दिये बिना कुछ करूँ, तो वह ब्रिटिश सरकारके साथ अन्याय होगा। अपने वक्तव्यको जो महत्त्व मैं देता हूँ, सरकार उसे वैसा महत्त्व न दे सकी हो, यह स्वाभाविक ही है।

अन्त्यजोंके लिए पृथक् निर्वाचक मण्डल बनानेके विरुद्ध मेरी सारी आपत्तियोंको दोहराना शायद ही जरूरी हो। मैं तो ऐसा महसूस करता हूँ कि मैं अन्त्यजोंमें से ही एक हूँ। उनका मामला दूसरोंसे बिलकुल ही अलग तरहका है। मैं विधान-सभाओंमें उन्हें प्रतिनिधित्व मिलनेके विरुद्ध नहीं हूँ। मैं तो चाहूँगा कि औरोंके लिए मताधिकारका पैमाना ज्यादा कड़ा हो तो हो, मगर हरिजनोंमें शिक्षा या जायदादकी योग्यताके किसी भी प्रतिबन्धके बिना सभी बालिग स्त्री-पुरुषोंको मताधिकार दिया जाय। मगर अलग निर्वाचक मण्डल, महज राजनैतिक दृष्टिसे वे चाहे जैसे माने जायें, अन्त्यजों और हिन्दू समाज दोनोंके लिए हानिकारक हैं। पृथक् निर्वाचक मण्डलोंसे उन्हें कैसा और कितना नुकसान हो सकता है, इसे समझनेके लिए यह जानना जरूरी है कि वे कथित सवर्ण हिन्दुओंके बीचमें किस तरह फैले हुए हैं और उन

१. यह पत्र ९ मार्चको लिखा गया था और १० मार्चको संशोधित करके ११ मार्चको भेजा गया था; देखिए "दैनन्दिनी, १९३२"।

२. देखिए खण्ड ४८, पृष्ठ ३२६-३१।

पर कितने अधिक अवलम्बित हैं। जहाँतक हिन्दू समाजका सम्बन्ध है, पृथक् निर्वाचक मण्डलोंका अर्थ उसे चीरकर उसके टुकड़े कर देने-जैसा होगा। मेरे लिए तो इन वर्गोंका प्रश्न मुख्यतः नैतिक और धार्मिक है। उसका राजनैतिक पहलू महत्त्वपूर्ण अवश्य है, फिर भी नैतिक और धार्मिक प्रश्नकी तुलनामें वह नगण्य ही है। इस मामलेमें मेरी भावनाएँ समझनेके लिए आपको यह याद रखना चाहिए कि इन लोगोंमें मैं बिलकुल बचपनसे दिलचस्पी लेता रहा हूँ और इनकी खातिर मैंने कई बार सर्वस्वकी बाजी लगा दी है। मैं यह बात किसी अभिमानकी भावनासे कदापि नहीं कह रहा हूँ; क्योंकि मुझे लगता है कि सवर्ण हिन्दू कितना ही प्रायश्चित्त क्यों न करें, सदियोंसे उन्होंने हरिजनोंको जान-बूझकर जैसा अधःपतित जीवन जीनेके लिए बाध्य किया है, उसका परिशोधन वे नहीं कर सकते। मगर मैं जानता हूँ कि उनके पृथक् निर्वाचक मण्डल बनाना उन्हें कुचलकर उनकी जो अधम स्थिति बना दी गई है, न तो उसका प्रायश्चित्त है और न ही यह उसके निराकरणका उपाय है।

इसलिए महामहिमकी सरकारको मैं नम्रतापूर्वक जता देता हूँ कि अन्त्यजोंके लिए अगर वह पृथक् निर्वाचक मण्डल बनानेका निर्णय देगी, तो मुझे आमरण उपवास करना पड़ेगा।

कैदी होकर मैं ऐसा कदम उठाऊँ, तो उससे ब्रिटिश सरकारको सख्त परेशानी होगी और मेरी-जैसी हैसियतवाले आदमीका राजनैतिक क्षेत्रमें ऐसी पद्धति, जिसे अधिक कुछ नहीं तो पागलपनसे भरी हुई तो कहा ही जायेगा, दाखिल करना बहुत अनुचित माना जा सकता है। मुझे इस सबका खयाल है और दुःख भी है। इसकी सफाईमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने जो कदम उठाना सोच रखा है, वह कोई पद्धति नहीं है; वह मेरे जीवनका एक अंग है। वह अन्तरात्माका आदेश है, जिसकी मैं अवज्ञा नहीं कर सकता। फिर चाहे इसका नतीजा यही क्यों न हो कि समझदार आदमी होनेकी जो भी थोड़ी-बहुत प्रतिष्ठा मेरी है, वह मुझे खो देनी पड़े।

अभी तो जहाँतक मैं देख सकता हूँ, यदि मैं जेलसे छोड़ दिया जाऊँ तो उससे भी उपवास करनेका मेरा कर्त्तव्य तनिक भी कम न होगा।

तथापि, मैं आशा कर रहा हूँ कि मेरी ये सब आशंकाएँ बिलकुल बेबुनियाद हैं और ब्रिटिश सरकार अन्त्यजोंके लिए पृथक् निर्वाचक मण्डल बनानेका कोई इरादा नहीं रखती।

यहाँ एक और मामलेका उल्लेख कर देना भी शायद अनुचित न होगा, जो मेरे मनको अशान्त किये हुए है और जो मुझे ऐसे ही उपवासके लिए बाध्य कर सकता है। यह मामला है आजकल चल रहा दमन। इससे मुझे कब ऐसा आघात पहुँच जाये जो मुझे कोई बहुत बड़ा बलिदान देनेको मजबूर कर दे, सो मैं कह नहीं सकता।

मुझे लगता है कि आजकल जो दमन चल रहा है वह, जिसे औचित्यकी सीमा कहा जा सकता है, उससे बाहर हो गया है। सारे देशमें सरकारका आतंक फैला हुआ है। अंग्रेज अधिकारी और हिन्दुस्तानी अधिकारी दोनों ही अपनी मानवतासे भ्रष्ट

होकर पशुओं-जैसा व्यवहार कर रहे हैं। बड़े और छोटे हिन्दुस्तानी अधिकारियोंका अधःपतन तो इस कारण हो रहा है कि जनताके प्रति बेवफा होने और अपने देश-भाइयोंके साथ अमानुषिक बरताव करनेको सरकार अच्छा काम कहकर पुरस्कृत कर रही है। जनताको बुरी तरह दवाया जा रहा है। वाणीकी स्वतन्त्रता कुचल दी गई है। कानून और व्यवस्थाके नामपर गुण्डागिरीका वोलवाला हो रहा है। लोकसेवाके लिए बाहर निकली हुई स्त्रियोंको बेइज्जत होनेका खतरा बना रहता है।

मुझे ऐसा लगता है कि यह सब स्वतन्त्रताकी उस भावनाको दबा देनेके लिए किया जा रहा है जिसका कि कांग्रेस प्रतिनिधित्व करती है। दमन प्रचलित कानूनके सविनय-भंगकी सजा देनेतक ही सीमित नहीं है। निरंकुश शासनतन्त्रकी ओरसे ऐसे नये-नये आदेश निकाले जाते रहे हैं जिनका उद्देश्य अधिकांशतः लोगोंको अपमानित करना होता है। इस तरह जनताको मानो इन आदेशोंकी अवज्ञा करके उसका फल भोगनेपर मजबूर किया जा रहा है।

इन सब कृत्योंको जिस रूपमें मैं समझ रहा हूँ, उसके अनुसार मुझे तो इनमें कहीं भी प्रजातन्त्रकी भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। इंग्लैंडकी मेरी हालकी यात्राके दौरान मेरी इस रायकी पुष्टि हुई है कि आपका प्रजातन्त्र एक सतही और बन्धनों तथा प्रतिबन्धोंसे जकड़ी हुई चीज है। सर्वाधिक महत्त्वके मामलोंमें तो कोई व्यक्ति या दो-चार व्यक्तियोंकी कोई मण्डली ही पार्लियामेंटसे कुछ भी पूछे विना निर्णय कर लेती है और पार्लियामेंटके सदस्योंको वे क्या कर रहे हैं, इसे साफ-साफ समझे बिना मंजूरी दे देनी पड़ती है। मिस्रके मामलेमें और १९१४ में युद्धकी घोषणा करते समय ऐसा ही हुआ था। हिन्दुस्तानके मामलेमें भी आजकल यही हो रहा है। प्रजातांत्रिक कही जानेवाली शासन-व्यवस्थामें एक व्यक्तिके हाथोंमें तीस करोड़से अधिक आबादीवाली प्राचीन जातिके भाग्यके निबटारेकी निरंकुश सत्ता हो और उसके निर्णय परम भयंकर विनाशकारी शक्तिके बलपर कार्यान्वित कराये जा सकते हों, यह सोचकर मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व विद्रोहकी भावनासे भर उठता है। मैं इसे प्रजातन्त्रकी हत्या मानता हूँ।

इस दमनको जारी रखनेका परिणाम हमारे दो देशोंके लोगोंके पहले ही कड़वे सम्बन्धोंको और भी कड़वे बनानेके अलावा और कुछ नहीं हो सकता। मेरे सामने सवाल यह है कि जहाँतक मेरी जिम्मेदारी है और जहाँतक मैं कुछ सहायता कर सकता हूँ, इस दमन-चक्रको रोकनेके लिए मैं क्या करूँ। सविनय अवज्ञा बन्द कर देना इसका उपाय नहीं है। मेरे लिए यह एक धार्मिक सिद्धान्तकी तरह पवित्र है। मैं अपनेको स्वभावसे लोकतन्त्रवादी मानता हूँ। अपनी इच्छापर अमल करानेके लिए शरीर-बलका उपयोग करना मेरी कल्पनाके लोकतन्त्रके साथ सर्वथा असंगत है। इसलिए जहाँ-जहाँ शरीर-बलका उपयोग आवश्यक और उचित माना जाता है, आम तौरपर वहाँ-वहाँ उसके उचित विकल्पके रूपमें मैंने सविनय प्रतिरोधके प्रयोगका तरीका निकाला है। उसमें खुदको कष्ट सहन करना पड़ता है। सविनय अवज्ञा करनेवालेके लिए ऐसी हालतोंमें अन्ततक उपवास करके अपने प्राण त्याग देना, मेरी योजनाका एक हिस्सा है। मेरे लिए अभी वह वक्त नहीं आया है। ऐसा

कदम उठानेके लिए अनिवार्य भीतरी आदेश मुझे अभी नहीं मिला है। मगर बाहर जो-कुछ हो रहा है, वह इतना भयानक है कि उसने मेरी आत्माको झकझोर दिया है। इसलिए अन्त्यजोंके मामलेमें उपवासकी सम्भावनाके बारेमें लिखते हुए मुझे लगा कि यदि मैं आपको यह न बताऊँ कि एक और कारणसे भी ऐसे उपवासकी सम्भावना है और वह अधिक दूर नहीं है, तो यह आपके साथ ईमानदारीका व्यवहार नहीं होगा।

कहनेकी जरूरत नहीं, कि आपके साथ होनेवाले तमाम पत्र-व्यवहारमें मेरी तरफसे पूरी तरह गोपनीयता रखी गई है। अलबत्ता, सरदार वल्लभभाई पटेल इस बारेमें सब-कुछ जानते हैं और इसी तरह महादेव देसाई भी, जिन्हें हालमें ही मेरे साथ रखा गया है। मगर वैसे आप इस पत्रका, आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा उपयोग कर सकते हैं।[1]

हृदयसे आपका,

सर सैम्युअल होर
व्हाइट हाल
लन्दन

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (४), भाग–१, पृष्ठ ५; तथा **बॉम्बे क्रॉनिकल,** १३–९–१९३२ भी।

२१६. पत्र : दुर्गा म० देसाईको

११ मार्च, १९३२

चि० दुर्गा,

कल महादेव अचानक आ पहुँचा।[2] लगता है कि उन लोगोंने सोचा होगा कि सरदारके अलावा एक और साथी भी मेरे पास होना चाहिए। पैरकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। एक जगह जरा-सी सोजिश है। दवा चल रही है। चिन्ता करनेका तनिक भी [कारण][3] नहीं है। जो भी लिखना हो, मुझे तो जब चाहे तब लिख सकती हो। जब आनेको मन करे, तब आ जाना।

बापूके आशीर्वाद

१. सर सैम्युअल होरके जवाबके लिए देखिए परिशिष्ट ३। पृथक् निर्वाचक मण्डल और दमनपर वल्लभभाई तथा महादेव देसाईसे गांधीजी की बातचीतके ब्यौरेके लिए देखिए **दि डायरी ऑफ महादेव देसाई,** भाग १, पृष्ठ ४-५, ७ और ८।

२. नासिक-जेलसे।

३. यहाँ पत्र फटा हुआ है।

[पुनश्च:]

अगले सप्ताह बापूसे मिलनेके लिए आनेवाली मण्डलीके साथ आना अच्छा रहेगा।[1]

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४८४) से।

२१७. पत्र : लक्ष्मीबहन ना० खरेको

११ मार्च, १९३२

चि० लक्ष्मीबहन,

तुम अपना पत्र [किसी औरसे] लिखवाओ, इसकी बजाय मराठीमें स्वयं ही क्यों नहीं लिखतीं ? इतनी मराठी मैं आसानीसे सीख लूँगा। बहनोंके बारेमें समझ गया। मण्डल हो या न हो, तुम सभी बहनें समय-समयपर मिल लिया करो और ऐसी कुछ बातचीत कर लिया करो जो तुम्हारे कल्याणमें सहायक हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१) से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

२१८. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

११ मार्च, १९३२

चि० निर्मला,

बड़े सभी मन्दिर[2] गये हैं तो तुम सब उनकी जिम्मेदारी उठा लो। ऐसा करो तो यह भी मन्दिर जाने-जैसा ही होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६६) से।

१. यह वाक्य महादेव देसाईका लिखा हुआ है।

२. अभिप्राय जेलसे है।

२१९. पत्र : नारायण देसाईको

११ मार्च, १९३२

चि० नारायणराव,

'बबलो' से 'नारायण' बना है, इसलिए अब तुझे 'राव'[1] बना डालूँ तो गलत नहीं होगा। फिर महादेवका कहना है कि तूने पिंजाई हालमें ही सीखी लगती है। यह सच हो तो तेरा रावसाहब बनना ठीक ही हुआ। आजकल महादेव यहीं है। तुझे सन्देश भेजना हो तो भेज देना। कितने तार कातता है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

तू पींजता है, इसलिए महादेव तेरी पूनियाँ कातनेके लिए उत्सुक हो रहा है। दो-चार गड्डी भेज देना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७५) से।

२२०. पत्र : एक लड़कीको

१२ मार्च, १९३२

चि०,

'गीता' कण्ठस्थ करनेका काम स्मरण-शक्तिका है और यह आसान है। 'गीता' का अर्थ समझनेका काम बुद्धिका है, यह कठिन है, इसलिए इसमें मजा नहीं आता। किन्तु जैसे ही बुद्धिको मजा आने लगेगा, वैसे ही अर्थ समझनेकी इच्छा उत्पन्न होगी। इसलिए बुद्धिके विषयोंमें आनन्द लेने लगो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९६३) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. मराठीमें प्राय: नामोंके साथ जोड़ा जानेवाला आदरसूचक शब्दांश।

२२१. एक पत्र

१२ मार्च, १९३२

चि०,

बोलनेके कई अवसर आते हैं। कक्षामें सवाल पूछनेकी जरूरत होती है, खेलते समय या छुट्टीके समय भी बोलना पड़ता है। [कताई-] यज्ञ करना फर्ज है। उसे न करें तो फर्जसे पीछे हटते हैं और कर्जदार बनते हैं।

जिस तरह मैलमें हाथ डालें तो हाथ मैले होते हैं, उसी तरह झूठ बोलें तो मन मैला होता है और हाथ मैले होनेकी अपेक्षा मन मैला होना ज्यादा खराब है। मैला हाथ तो धोकर साफ कर सकते हैं। मन इतनी आसानीसे साफ नहीं हो सकता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९६५) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

२२२. पत्र: नारायण मोरेश्वर खरेको

१२ मार्च, १९३२

चि० पण्डितजी,

बहुत-सी पुस्तकें पढ़नेके बजाय एक ही का मनन करनेसे और उसपर अमल करनेसे मनोवांछित परिणाम मिलता है। संन्यासका अर्थ सब कर्मोंका त्याग कदापि नहीं है। उसका अर्थ है काम्य कर्मका त्याग और नियत कर्मके फलका त्याग। यही नैष्कर्म्य है। इसीलिए कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्म देखना आवश्यक है। नैष्कर्म्यका वही अर्थ है जो मैंने लिखा है। तो भी उसकी साधना तो करनी ही है। इसी उलझनसे कर्मफलके त्यागकी उत्पत्ति हुई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२३)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

२२३. एक पत्र

१३ मार्च, १९३२

चि०,

केवल संस्कारके कारण कोई उन्नति नहीं कर सकता। पुरुषार्थके बिना उन्नति असम्भव है। पुरुषार्थ करते हुए भी उन्नति होती न दिखे तो उससे घबराना नहीं चाहिए। यन्त्रविज्ञानकी तरह आध्यात्मिक विज्ञानमें भी यही नियम काम करता है कि कोई शक्ति निष्फल नहीं जाती। पाँच मन शक्ति उत्तरकी ओर ढकेले और पाँच मन दक्षिणकी ओर तो जिसके ऊपर ये शक्तियाँ अपना जोर चला रही हैं, वह वस्तु भले ही स्थिर बनी रहे, फिर भी दोनों शक्तियोंने अपना काम पूरा किया और उस वस्तुकी स्थिरता ही उसकी गति है। इसीमें से अनासक्ति-मार्ग निकला है। हम तो पुरुषार्थ करते ही रहें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९६२) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२२४. पत्र : डाहीबहन पटेलको

१३ मार्च, १९३२

चि० डाहीबहन,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। क्या तुम्हारा भाई अब बिलकुल स्वस्थ हो गया है? मुझे पत्र लिखती रहना। जिसने सेवा-धर्म अपनाया है, उसे कोई काम खोजना नहीं पड़ता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२०५) से।

२२५. पत्र : महेन्द्र वा० देसाईको

१३ मार्च, १९३२

चि० मनु,

तूने अजमेरका तो बहुत अच्छा वर्णन लिखा है। किन्तु अक्षर खराब हैं; अब अच्छे अक्षर लिखना। जयपुर आदिके वर्णनकी राह देखूँगा। दूधीबहनसे कहना, मुझे पत्र लिखे। तेरा वजन कितना है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२२) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

२२६. पत्र : मथुरी ना० खरेको

१३ मार्च, १९३२

चि० मथुरी,

इस बार तूने, जैसे अक्षर तू लिखती रही है, उससे ज्यादा सुन्दर लिखे हैं। इसी तरह मेहनत करेगी तो मोतियोंके दानोंकी तरह सुन्दर अक्षर लिख पायेगी। यदि तू पूनी बहुत अच्छी बनाती हो तो पींजनेकी यह गति तेरे लिए ठीक गिनी जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६३–ए) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

२२७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१३ मार्च, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। अभी मुझे बायें हाथसे ही लिखना पड़ेगा। इसलिए बहुत लम्बे पत्र नहीं लिखे जा सकते। बायाँ हाथ दायेंकी गतिसे नहीं चल सकता। महादेवकी मदद अब जरूर मिल सकती है, लेकिन जेलके लिए यह नया प्रयोग होगा। देखता हूँ कि मैं उसे कितना लिखा सकूँगा। शुद्ध प्रेम-पत्र लिखवाना ठीक लगेगा या नहीं, यह देखना है। कामके पत्र तो लिखाऊँगा ही।

तेरे पत्रोंसे मैं जरा भी तंग नहीं हुआ।

हम सबको या तो नित्य बढ़ना होगा या पीछे हटना होगा। स्थिर तो कुछ है ही नहीं।[१]

मैं अपने ऊपर दोष ले लेता हूँ, इसमें झूठी नम्रता या अतिशयता बिलकुल ही नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि बाकी लोग दोषमुक्त हो जाते हैं। लेकिन जो मुख्य व्यक्ति है, वह जैसे अच्छेका यश ले लेता है वैसे ही उसे बुरेके अपयशका स्वामी भी बनना ही चाहिए।

अन्तर्जातीय विवाहकी आवश्यकताको एक हदतक मैं स्वीकार करता हूँ।

अगर पुरुषको विवाह-विच्छेदका अधिकार हो तो स्त्रीको भी होना चाहिए। लेकिन सामान्यतया मैं इस प्रथाका विरोधी हूँ। प्रेमकी गाँठ अविभाज्य होनी चाहिए।

स्त्री-पुरुषकी शिक्षा अलग भी हो सकती है और साथ भी हो सकती है। यह विषयपर निर्भर करता है। वकालत दोनों साथ सीख सकते हैं। इस बारेमें सारे देशके लिए या सब परिस्थितियोंके लिए मैं एक नियम नहीं बता सकता। यह बात सरल नहीं है। कोई भी देश किसी निश्चित परिणामपर नहीं पहुँच सका है। सारा प्रश्न ही अभी प्रयोगाधीन है।

सौन्दर्यकी स्तुति होनी ही चाहिए। लेकिन वह मूक ही अच्छी है। और 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'[२]का सिद्धान्त यहाँ भी सत्य है। आकाशका सौन्दर्य देखकर जिसे हर्ष न हो, उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा, ऐसा कहा जा सकता है। लेकिन जो हर्षसे विह्वल होकर नक्षत्र-मण्डलतक पहुँचनेकी सीढ़ी तैयार करने लगें, उन्हें मोहमें पड़ा हुआ समझो।

पाठ्यक्रम[३] अच्छा लगा है। उसमें कोई परिवर्तन या परिवर्धन मुझे अभी नहीं सूझ रहा है।

जापान-चीनके मामलेमें हमारी सहानुभूति चीनकी तरफ होगी ही। लेकिन सच्ची स्थिति तो जैसी एक बालकको पत्रमें मैंने बताई है, वही लगती है।

जमनादासके बारेमें तूने लिखा, वही ठीक है। वह मन-ही-मन घुटता रहता है। सुशीला[४] उसका दर्द ताड़ सके, तब काम चले।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७६) से। सी० डब्ल्यू० ६७२४ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

१. गांधीजी के २५ फरवरीके पत्र (देखिए पृष्ठ १४८-५०) के उत्तरमें प्रेमाबहन कंटकने कहा था कि यदि जेलमें या बाहर रहते हुए गांधीजी की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती है तो इससे उनके प्रति उसका प्रशस्य भाव कम हो जायेगा।

२. **ईशोपनिषद्–१**।

३. आश्रम-शालाके लिए।

४. प्रेमाबहन कंटककी एक सहेली।

२२८. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

१३ मार्च, १९३२

चि० पुष्पा,

बोलनेके विषयमें किसी दूसरे पत्रमें[1] लिखा है, सो देख लेना। ईश्वरने हमें जो शक्तियाँ दी हैं, वे सब नियममें रखने और कुछ तो बिलकुल दबा देनेके लिए हैं। मुँह दिया है, सो बोलते ही रहनेके लिए नहीं दिया; ईश्वरके कामकी हदतक बोलनेके लिए दिया गया है। ईश्वरने अच्छा और बुरा दोनों करनेकी शक्ति दी है, किन्तु बुरा करनेकी इच्छाको तो नाबूद कर देना है। अब बात समझमें आई?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८३)से। सी० डब्ल्यू० २९ से भी; सौजन्य: पुष्पाबहन ना० नायक।

२२९. पत्र : वनमाला न० परीखको

१३ मार्च, १९३२

चि० वनमाला,

जिस लड़कीकी चिट्ठीमें जवाब देने लायक कुछ न हो, उसे लौटती डाकसे मेरा पत्र पानेकी आशा नहीं रखनी चाहिए। तेरा इस बारका पत्र ऐसा ही है। लेकिन तूने हर हफ्ते मेरा पत्र पानेकी इच्छा प्रकट की है, इसलिए इस बार लिख दिया। अब चेतना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

नरहरिके क्या समाचार हैं?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६८) से। सी० डब्ल्यू० २९९१ से भी; सौजन्य: वनमाला देसाई।

१. देखिए "एक पत्र", १२-३-१९३२।

२३०. पत्र : तिलकनको

१४ मार्च, १९३२

प्रिय,

आत्मसंयमकी योजनाओंपर अमल करते समय एक क्षणके लिए भी इस तथ्यसे ध्यान नहीं हटाना चाहिए कि हम सब परम तत्त्वके अंश हैं और इसलिए उसका स्वभाव भी हममें है, और चूँकि परमतत्त्वमें भोगेच्छाओंकी तृप्ति-जैसी कोई चीज नहीं हो सकती इसलिए अवश्य वह मानव स्वभावसे भी बाहरकी चीज होनी चाहिए। यदि इस प्राथमिक तथ्यको हम भली-भाँति समझ लें तो आत्मसंयम प्राप्त कर लेनेमें हमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। ठीक यही विचार 'गीता' में भी व्यक्त हुआ है और उसे प्रतिदिन सन्ध्या-समय प्रार्थनामें हम गाते हैं। आपको याद होगा कि एक श्लोकमें कहा है कि विषयेच्छा केवल तभी समाप्त होती है जब व्यक्ति ईश्वरका साक्षात्कार कर लेता है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ८९६१) से; सौजन्य : नारणदास गांधी। **महादेवभाईनी डायरी,** भाग १, पृष्ठ १४–५ से भी।

२३१. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

१४ मार्च, १९३२

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। बहुत-से काम एक साथ हाथमें लेना ब्रह्मचारीका काम नहीं है। वह एक बारमें एक ही काम हाथमें लेता है, अर्थात् अपना तन, मन उसमें लगा देता है। इसलिए जब हम किसी काममें लगे हों और उस कामके बारेमें बात करना जरूरी न हो तो चुप रहना ही ठीक बात होगी। लेकिन अगर हम खेल रहे हों या घूमने निकले हों तब बोलना उसका एक अंश ही है अतः उस समय हम बोल सकते हैं। जो अपने जीवनको इस तरह गढ़ता है, वह उसे सरस बना सकता है। जिस संस्थामें लोग चुपचाप काम करते रहते हैं और बोलनेके समय ही बोलते हैं, वह बहुत शान्तिपूर्ण लगती है। व्यायाम या उसी जैसे अन्य अवसरोंपर लड़कियाँ चड्डी और कुरता पहनें, इसमें मैं कोई दोष नहीं देखता बल्कि इसे पसन्द करता हूँ। आश्रमवासियोंका ध्येय निश्चित हो ही गया है। वह यह कि उन्हें सत्यके अन्वेषणमें लीन हो जाना है। 'सोल्जर' का अर्थ तुम सब क्या मानते हो, मुझे लिखना। तब फिर 'सोल्जर'-जैसा बनना चाहिए या नहीं, इसका उत्तर दूँगा।

बहुत यात्राएँ करनेके बाद मुझे सुन्दरतम देश भारत लगा है। यों, मैं मानता हूँ कि मेरे मनमें झूठा पक्षपात नहीं है इसलिए सभी देशोंकी बहुत-सी अच्छाई मैं अवश्य देख सका और उस तरह वे सब भी मुझे अच्छे लगे हैं तथा मैं उन सबकी विशेषता समझ सका हूँ। लेकिन कुल मिलाकर ऐसा लगा कि भारत किसी देशसे कम नहीं है; जो चाहिए, वह भारतमें मिलता है और जो भारतमें नहीं मिलता, उसकी खास जरूरत नहीं पड़ती।

आश्रमके पास पैसा हो और खर्च ज्यादा न आता तो आजकी हालतमें भी झूले और फिसलनेकी पट्टियाँ लगवानेमें मुझे कोई दोष नहीं दिखता। याद केवल यह रखना चाहिए कि आश्रम सदाके लिए एक गरीब संस्था है। आश्रमके पास पैसेकी जितनी सुविधा हो, उस हदतक वह जो चाहे सो कर सकता है, ऐसा मानना उचित नहीं है। और जो गरीबको शोभा दे, वह भी आश्रम तभी कर सकता है जब उसे सुविधा हो। इसलिए प्रश्न सुविधा और अपने उद्देश्यके अनुसार क्या योग्य है, इसका है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८९६८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२३२. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

१४ मार्च, १९३२

बा,

कई दिनोंसे लिखूँ कि न लिखूँ, सोचता रहता था। आज पढ़ा कि अभीतक तू बाहर है, इसलिए लिखनेका मन हुआ। अब तो महादेव भी मेरे साथ है। अर्थात् साथी, बढ़ गये। हम तीनों[1] मजेमें हैं। रामदास मिलकर गया। अच्छा था। तू पत्र दिया करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. गांधीजी, वल्लभभाई पटेल और महादेव देसाई।

२३३. इमाम साहब – २[१]

१४ मार्च, १९३२

जैसा कि हम जानते हैं, इमाम साहबने अपनी दोनों बेटियोंका विवाह करनेमें देशका बहुत खयाल रखा था। उनका प्रयत्न ऐसा दामाद खोजनेका रहा जो देश-सेवक हो, हिन्दू-मुसलमानोंको एक-सा गिनता हो और जो आश्रम-जीवनके योग्य सिद्ध हो। इसलिए उन्होंने गुजराती गरीब मुसलमान लड़के खोज निकाले।

कह सकता हूँ कि इमाम साहबसे मेरी पहली मुलाकात १९०३ में उस समय हुई जब मैं दोबारा दक्षिण आफ्रिका गया। इमाम साहब कहते थे कि हम उससे पहले भी मिल चुके थे, किन्तु मुझे उसका स्मरण नहीं है। जब मैंने जोहानिसबर्गमें वकालत शुरू की, तब वे मुवक्किलोंके साथ मेरे पास आते थे। उन दिनों उनका तौर-तरीका कुछ अलग ही था। अंग्रेजी ढंगकी पोशाक पहनते थे और सिरपर तुर्की टोपी लगाते थे। इमाम साहब कुशाग्रबुद्धि हैं, यह मैं जल्दी ही जान गया था, किन्तु तब किसी दूसरे प्रकारसे उनकी कोई खास अनुकूल छाप मेरे मनपर नहीं पड़ी थी। मुझे वे बहुत जिद्दी लगे, किन्तु जैसे-जैसे मैंने उन्हें अधिक जाना, वे मुझे पसन्द आते गये।

जैसे-जैसे मुझे अनुभव हुआ, मैंने देखा कि जिसे मैं उनकी जिद समझता था, वह जिद नहीं थी बल्कि किसी भी बातको सम्पूर्ण रूपसे समझ लेनेका उनका आग्रह था। किसी बातके विषयमें उन्होंने जो विचार स्थिर किया हो, उसे वे तबतक नहीं छोड़ते थे जबतक उनकी बुद्धि स्वीकार न कर ले। वे स्वयं वकील नहीं थे, इसलिए कानूनी सवालोंके विषयमें वकील जो-कुछ कहे, उसे वे वेद-वाक्य मानकर चलनेको तैयार नहीं थे; बल्कि वकीलके साथ कानूनके मामलेमें भी वाद-विवाद करते थे। यद्यपि वे पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु उन्हें अपनी बुद्धिपर विश्वास था। इसके सिवा उन्हें स्वाभिमानका बड़ा खयाल था और इसीलिए वे किसीके प्रभावमें न आकर अपने पक्षको दृढ़तासे पकड़ लेनेकी जबरदस्त शक्ति रखते थे। यह मैं जल्दी ही समझ गया।

प्रारम्भमें इमाम साहब मेरे पास मुवक्किलोंके मामले समझानेके लिए ही आते थे; किन्तु उन्हें दुनियाकी रोजकी हलचलमें दिलचस्पी थी; इसलिए वे मुझसे उस विषयमें भी चर्चा करते थे। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको होनेवाले कष्टोंसे सम्बन्धित सभाओं आदिमें वे भाग लेते। वे अनेक बातोंमें मेरा साथ देते, किन्तु जहाँ उन्हें मेरी बात पसन्द न आती, वहाँ वे खुले आम मेरा विरोध करनेमें तनिक भी नहीं हिचकते थे। ऐसा करते-करते इमाम साहब क्रमशः मेरी ओर खिंचते चले गये

१. यह "पत्र : नारणदास गांधीको", १४-३-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

और जब सत्याग्रह शुरू हुआ, तब वे पहाड़की तरह अविचल सिद्ध हुए। कुछ लोगोंने साथ छोड़ दिया, कुछ कमजोर सिद्ध हुए, कुछ लोगोंने सख्त विरोधतक किया, किन्तु मुझे इमाम साहबके कभी डिगनेकी बात याद नहीं आती। जब इमाम साहबको पहली बार जेलकी सजा मिली, किसीने नहीं सोचा था कि वे टिके रहेंगे। पहला कारावास तो कुछ ही दिनोंका था। फिर भी ऐसे अनेक लोगोंने, जो उनकी इज्जत करते थे, मुझसे कहा, "इमाम साहब दोबारा जेल नहीं जा सकेंगे। वे बहुत सुकुमार हैं, शौकीन हैं, और उनकी जरूरतें बहुत-सी हैं।" यह बात बहुत बड़े अंशमें ठीक भी थी। इसके बावजूद इमाम साहब तनिक भी कमजोर नहीं पड़े और मैंने देखा कि वे, जिनका रहन-सहन सादा माना जाता था, उन्होंने हार मान ली। इमाम साहबमें त्याग-शक्ति प्रचुर मात्रामें थी और यद्यपि किसी बातका निश्चय करनेके पहले वे बहुत सोचते थे, किन्तु एक बार निश्चय कर लेनेके बाद उसपर दृढ़ रहनेकी उनमें अद्भुत शक्ति थी।

जब इमाम साहब सत्याग्रहमें कूदे, तब उन्होंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि उन्हें अपना घर खत्म करके फकीरी लेनी पड़ेगी। किन्तु जब उन्होंने देखा कि अगर उन्हें पक्के तौरपर सत्याग्रहमें रहना है तो घर-बारका मोह छोड़ना पड़ेगा, तब कह सकते हैं कि उन्होंने वह मोह क्षण-भरमें छोड़ दिया। इमाम साहबके लिए यह कोई छोटा त्याग नहीं था।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२३४. पत्र : नारणदास गांधीको

सोमवार, १४ मार्च, १९३२

चि० नारणदास,

लगभग ऐसा कहा जा सकता है कि मेरा दाहिना हाथ बेकाम हुआ और महादेव आया। बेकाम होनेका यह अर्थ नहीं है कि हाथ लगातार दर्द करता रहता है, फिर भी इसका इतना अर्थ तो है ही कि यदि मैं दाहिने हाथका उपयोग लिखने आदिमें करता रहूँ तो वह दर्द करेगा। सम्भव है कि अब इस हाथसे ज्यादा काम न लिया जा सके; क्योंकि विलायतसे लौटते हुए यात्रामें तो मैंने इसे पूरा आराम दिया था तथापि, मैं देख सका हूँ कि उससे यह पुनः काम करने लायक नहीं बन पाया है। यह हाथ बेकाम ही हो जाये तो भी दुःख माननेका कोई कारण नहीं होगा। किसी-न-किसी दिन तो सारे अवयव शिथिल हो ही जायेंगे; और वे क्रमशः शिथिल होते ही चले जायें तो इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है। यह ईश्वरकी कम कृपा नहीं है कि मैं दाहिने हाथसे खूब काम ले चुका हूँ। और अन्तमें तो हमारे [आध्यात्मिक] कोशके[1] अनुसार काम लेने-देनेवाला तो वही है। जबतक उसकी इच्छा होगी

१. भगवद्गीता।

तबतक और जिन शर्तोंपर वह चाहेगा, उन शर्तोंपर वह हमसे काम लेगा। हाथ-पाँव सब उसके यन्त्र हैं। हम उनको बिगाड़नेके कारण न बनें, इतना बस है। आजतक जिस हदतक उन्हें बिगाड़ा हो, उस हदतक हम नादानीके दोषी हैं। हम उन्हें इस तरह बिगाड़ते हैं इसीलिए, जिसे हम बुढ़ापा कहते हैं, जब वह आता है तब हमारे अवयव शिथिल होने लगते हैं। जिसने अपने अंगोंका कभी दुरुपयोग नहीं किया, बुढ़ापा उसके लिए कष्टकारक तो होना ही नहीं चाहिए। बल्कि वह सुखद ही होता है। यदि वृक्षादिमें बुद्धि हो तो हम समझ सकते हैं कि फलके पूरी तरह पककर नीचे गिर पड़नेपर उसको दुःखी नहीं होना चाहिए। बल्कि यह जानकर कि उसका उपयोग दूसरेके लिए हो सकेगा, उसे सुखी ही होना चाहिए। इसी तरह, जिसका जीवन कृतार्थ हुआ हो उसे पूरी तरह यह विश्वास होना चाहिए कि इस देहके जीर्ण होनेपर जो नई स्थिति पैदा होगी, वह और अधिक उपयोगी होगी। लेकिन अभी तो हमें यह सब दर्शन बघारने-जैसा लगता है, क्योंकि सम्पूर्ण रूपसे सुखदायक बुढ़ापा जगतमें कहीं देखनेमें नहीं आता, अथवा क्वचित् ही देखनेमें आता है। और मृत्युको मित्रकी तरह बढ़कर स्वीकार करनेवाला तो दुर्लभ ही है।

हम तीनोंकी तबीयत ठीक ही कही जायेगी। महादेवके पाँवकी हड्डीमें दर्द अवश्य है, लेकिन आराम लेने और सूर्य-स्नानसे उसके अच्छे हो जानेकी सम्भावना है। चिन्ताका कोई कारण नहीं है।

खुशालभाईकी पिछले हफ्तेमें तुमने कोई खबर नहीं दी। इससे अनुमान लगाता हूँ कि फिलहाल तो बादल बिखर गये हैं।

मुलाकातोंके बारेमें अभीतक साफ नहीं हुआ है। शायद रुक भी जायें। जयसुखलाल, काशी, लक्ष्मी, मोतीको तो एक-दो दिनोंमें आकर मिल जाना चाहिए।

हरिदास गांधी[1] यहाँ आ गया है। अस्पतालमें है। उसकी खबरें मिलती रहती हैं। पर अभीतक हममें से कोई उससे मिल नहीं पाया है। रामदास मिलकर गया है। दूसरोसे भी शायद मिल सकूँगा। मीराबहनका पत्र आना चाहिए था। अभीतक तो नहीं आया।

गंगाबहन झवेरीके जेलसे छूटनेकी खबर अखबारमें है। किसीने उनका जुर्माना भर दिया; यह कौन रहा होगा? प्रभावतीके क्या कोई समाचार मिलते हैं?

राधाका खर्च उठाने योग्य है। पूंजाभाई अबतक फिर स्वस्थ हो गये होंगे।

न्यूयॉर्कके लोग जो अनुमति माँगते हैं, उसके बारेमें होम्सको लिखना अथवा तार करना ज्यादा अच्छा होगा। पच्चीस रुपयोंमें होम्सको निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता, इसलिए उन लोगोंको यह तार करो:

"कम्युनिटी चर्च न्यूयॉर्कके रेव० होम्सको [इस सम्बन्धमें] जो भी जरूरी हो करनेका अधिकार दे रहे हैं।"[2]

और होम्सको तारकी नकल भेजकर लिखो कि ठीक लगे तो अनुमति दे दें।

१. अमरेलीके।

२. तारका मसविदा अंग्रेजीमें है।

लीलावती बादामकी जो चीज लाई थी, उसके बारेमें उसने बताया था कि वह पिसी बादाम और खजूरको मिलाकर बनाई गई थी। यह किस तरह बनती है और इसमें दोनोंका प्रमाण क्या होता है, यह जाना जा सके तो यहाँ बनाई जा सकेगी। वहाँसे भेजती रहे, यह ठीक नहीं लगता और वहाँसे लाने देते रहें तो भी परिमाण तो जानना चाहिए। इसके बिना यह अन्दाज नहीं लगेगा कि इसे किस मात्रामें लिया जा सकता है।

ब्रजकृष्णके बारेमें अखबारमें पढ़ा था।[1]

बापूके आशीर्वाद[2]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२१४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२३५. पत्र : रुक्मिणी बजाजको

१४ मार्च, १९३२

चि० रुक्मिणी,

तुम्हारा पत्र मिला।

मुझे तो 'माधवलाल'से 'माधवदास' ज्यादा पसन्द है। लेकिन आजकल बहुतोंको 'दास' प्रत्यय नहीं भाता। क्या सन्तोकको मेरा सुझाव[3] पसन्द है? बनारसीसे भी सलाह लेना और तब निश्चय करना। ऐसा मत सोचना कि मेरी पसन्दगी माननी ही चाहिए। काशी पहुँचकर लिखनेमें आलस्य मत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०६१) से।

२३६. पत्र : शान्तिलाल मेहताको

१४ मार्च, १९३२

चि० शान्ति,

तेरा पत्र मिला। मुझे खुशी हुई। शादी कहाँ की, यह क्यों नहीं लिखा? विवाह सादगीसे हुआ, यह जानकर अच्छा लगा। तू अकेला ही गया था या बुजुर्गोंमें से भी कोई साथ थे? लगता है, मणिलाल पिछले हफ्ते नहीं आया। मगर एक-दो

१. आशय ब्रजकृष्ण चाँदीवालाकी २२ फरवरी, १९३२ की गिरफ्तारी और छः महीनेकी सजा तथा जुर्मानेसे है।

२. साधन-सूत्रमें इसके बाद 'इमाम साहब-२' है; देखिए पिछला शीर्षक।

३. देखिए "पत्र : रुक्मिणी बजाजको", १-३-१९३२।

पखवाड़ोंमें आनेकी बात पक्की है, ऐसा उसने लिखा था। अगर तू शान्तिपूर्वक देशमें रह सके तो यहीं रह जाना अधिक अच्छा है, ऐसा मुझे लगता है। तेरी बहूकी क्या इच्छा है? वह पढ़ी-लिखी है या नहीं? यह सब जाननेकी भी जरूरत तो है ही। इसके बिना एकाएक सलाह नहीं दी जा सकती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

२३७. पत्र: आश्रमकी बहनोंको

सोमवार, १४ मार्च [१९३२][1]

प्रिय बहनो,

तुम पत्रकी इच्छा करती हो, यह मुझे अच्छा लगता है। आज तो संक्षेपमें ही लिखूँगा। तुम्हारा मंडल छिन्न-भिन्न हो गया, यह ठीक नहीं है। इन दिनों तुम्हारी संख्या कम हो गई है फिर भी यदि मंडल चलाती रह सको तो अच्छा। सम्भव है, इसकी कोई उपयोगिता अभी न दिखे। यह भी सम्भव है कि शुरूमें अनेक प्रकार की बाधाएँ आयें। तथापि, यदि तुम उसमें लगी रहो तो वह उपयोगी तो है ही। लगे रहनेके लिए तुम्हें चाहे जितनी छोटी किन्तु सामुदायिक प्रवृत्तियाँ खोज निकाल लेनी चाहिए। अर्थात्, ऐसी प्रवृत्तियाँ जो मण्डलकी प्रवृत्तियाँ मानी जायें और जिन्हें चलाना सब अपनी जिम्मेदारी समझें। इसका यह अर्थ नहीं है कि अभी जो अनेक कार्य हो रहे हैं, उनमें एक नया कार्य और जोड़ लो। इसका अर्थ इतना ही है कि आज चल रहे कार्योंमें से ही एक या अधिककी जिम्मेदारी मण्डल अपने ऊपर ले ले। बहनें साथ मिलकर काम नहीं कर सकतीं, इस मिथ्या धारणामें तो पड़ना ही नहीं। वे दूसरे देशोंमें कितने बड़े-बड़े काम कर पाती हैं, सो तो मैं तुम्हें पहले लिख ही चुका हूँ। यहाँ भी अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। न मिलते हों तो हमें पेश करने हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. देखिए "पत्र: आश्रमकी बहनोंको", १८-२-१९३२; गांधीजी ने उसमें यूरोपकी महिलाओंके सार्वजनिक कार्योंके विषयमें लिखा था। प्रस्तुत पत्र उसके बादका ही होगा।

२३८. पत्र : एक नवविवाहित दम्पतीको

१४ मार्च, १९३२

चि०,

तुम दोनोंने नया रास्ता[1] निकाला है। मेरे आशीर्वाद तुम दोनोंको हैं। उसमें सरदार स्वेच्छासे शरीक हो रहे हैं। हम चाहते हैं, तुम दोनों शुद्ध सेवा करो। तुमने आशीर्वादकी माँग छपे हुए कार्डमें की है, इससे वह सिर्फ एक शिष्टाचार-भर बनकर रह जाती है और उस हदतक उसकी कीमत कम हो जाती है। अगर आशीर्वाद माँगने लायक हों तो वे हाथसे लिखकर मँगाने चाहिए और उसमें दम्पतीके कुछ शुभ संकल्पोंका भी उल्लेख होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी – भाग १, पृष्ठ १५

२३९. पत्र : बच्चोंको

१४ मार्च, १९३२

आजका [संघर्षका] समय लम्बे अरसेतक चलता रहे, तो हमें उससे थकावट मालूम नहीं होनी चाहिए और यदि इसे शोकका कारण मान लें तो थकावटका अनुभव हुए बिना रह ही नहीं सकता।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी – भाग १, पृष्ठ १५

२४०. एक पत्र[2]

१४ मार्च, १९३२

मेरा यह भी विश्वास है कि शादी जातिके बाहर होनी चाहिए। मर्यादा वैश्य तक ही बढ़ाई जाये तो भले, परन्तु योग्य पति वैश्यके बाहर ही मिले और लड़की उसे पसन्द करे, तो उसे रोकना नहीं चाहिए।

महादेवभाईनी डायरी, भाग १, पृष्ठ १५

१. इस नवविवाहित दम्पतीने अपना विवाह हो चुकनेका उल्लेख करते हुए आशीर्वाद माँगा था।

२. यह पत्र एक सज्जन-द्वारा अपनी कन्याके विवाहके बारेमें पूछताछ किये जानेके उत्तरमें लिखा गया था।

२४१. पत्र : आर० बी० मार्टिनको

१५ मार्च, १९३२

प्रिय मेजर मार्टिन,

पहली तारीखके अपने पत्रमें[1] मैंने जो विषय उठाया था, उसकी चर्चा मैं पुनः कर रहा हूँ। मेरी पूरी माँगके विचाराधीन होते हुए भी मुझे अपने पुत्र रामदास गांधीको देखनेकी जो इजाजत दे दी गई, उसके लिए मैं आभारी हूँ। तथापि, समय आ गया है जब मेरी उक्त माँगपर निर्णय शीघ्र ही हो जाना चाहिए। मेरे लिए यह मामला गैर-मामूली ढंगसे फौरी हो गया है; क्योंकि एक साथी कैदी, हरिदास गांधी गम्भीर रूपसे बीमार हैं और उनका वजन बहुत घट गया है। वे बहुत समयतक आश्रममें रहे हैं। मैं समझता हूँ कि मेरा उनपर उनके पितासे भी ज्यादा असर है और मैं जानता हूँ कि केवल मेरा उन्हें देख आना उनमें जान डाल देगा। मैं चाहूँगा कि सरकार यह समझ ले कि हरिदास-जैसे नवयुवक, जो मुझसे प्रभावित हुए हैं, मेरे लिए रामदास गांधीसे कम नहीं हैं। इसलिए मेरे मनको तबतक चैन नहीं मिल सकता जबतक कि साथी कैदियोंसे मिलनेका यह मामला तय नहीं हो जाता, खासकर यह देखते हुए कि श्री हरिदास गांधी गम्भीर रूपसे बीमार हैं। मैं शुक्रवारकी सुबह तक जवाबकी प्रार्थना करता हूँ।[2]

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (१४)

२४२. एक पत्रका अंश

१६ मार्च, १९३२

मनुष्य-मात्रके साथ समान भावसे बरतना सम्भव और आवश्यक है। किन्तु विभिन्न व्यक्तियोंकी चारित्रिक योग्यताके अंकनमें इस नियमका प्रयोग नहीं हो सकता। बदमाश और सन्त, दोनोंके प्रति प्रेम और उनकी सुख-सुविधाका खयाल रखा जा सकता है। मगर बदमाशी और सन्तपनको कभी एक श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता और न रखना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग १, पृष्ठ २१

१. देखिए पृष्ठ १६४।

२. बम्बई सरकारके गृह विभागको मार्टिनके पत्र तथा जेल-निरीक्षकको उसके पत्रके लिए देखिए परिशिष्ट ४।

२४३. पत्र : रैहाना तैयबजीको

१६ मार्च, १९३२

चि० रैहाना,

तुम्हारा खत मिला। जो खत गुम हुआ है उसमें मैंने यह पूछा था, 'ज़ोय' और 'ज़े'; 'से' और 'सीन'; 'तोय' और 'ते' के बारेमें कोई कानून है क्या? जैसे 'ख़ास' में 'स्वाद' क्यों, 'से' या 'सीन' क्यों नहीं? सलाममें 'सीन' क्यों, 'स्वाद' क्यों नहीं या 'से' क्यों नहीं? ग़लतमें 'तोय' क्यों, 'ते' क्यों नहीं? फिर यह गज़ल लिखी थी:

> **है बहारे बाग़े दुनिया चन्द रोज़।**
> **देख लो इसका तमाशा चन्द रोज़॥**
> **पूछा लुकमाँसे जिया तू कितने रोज़।**
> **दस्ते हसरत मलके बोला चन्द रोज़॥**
> **बादे मदफ़न क़ब्रमें बोली क़ज़ा।**
> **जाहिलो है ये जमाना चन्द रोज़॥[1]**

आज इतना बहुत मानना क्योंकि वायें हाथसे लिखनेमें वक्त बहुत लगता है न? उर्दू हरफ़ तो बहुत खराब बने हैं; पर तुझे मेरे उर्दू अक्षर समझ लेनेमें अड़चन नहीं होनी चाहिए। महादेवको मेरे पास ले आये हैं। उसे तेरा 'उठ जाग मुसाफिर' भजन याद है। एक बार प्रार्थनामें गा भी लिया गया है। अगली बार उसे उर्दू लिपिमें लिखकर भेजूँगा।

तू अच्छी तरह है न? पशाभाई कहाँ हैं? डाह्याभाईको आशीर्वाद। अम्माजानको हमारे वन्देमातरम् और बहुत-बहुत सलाम। बाबाजानसे कहना कि 'लीडर' में अलीगढ़के विद्यार्थियोंके साथ उनकी तस्वीर देखी। चेहरा दाढ़ीमें छुप गया है, यह देखकर हम खूब हँसे। हमीदा और रोहिणीके समाचार लिखना। इन सब बहनोंको आशीर्वाद। सुहैलाको भी। बेबीको चुम्मा।

आशा है, यह पत्र ठीक मिल जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६३८) से।

१. यहाँतक उर्दू लिपिमें है।

२४४. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

१८ मार्च, [१९३२][१]

प्रिय मेजर भण्डारी,

जब मैंने आपको तीन[२] नाम दिये थे, तब महिला वार्डकी बात कतई ध्यानमें नहीं थी। लेकिन उस वार्डमें कई आश्रमवासी बहनें हैं। इसलिए मैं फिलहाल श्री छगनलाल जोशीको छोड़ दूँगा और उसके बजाय श्रीमती गंगाबहन वैद्यका नाम रखूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५१२९) से।

२४५. पत्र : नारणदास गांधीको

१८ मार्च, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा बड़ा लिफाफा कल यानी गुरुवारको मिला। हरजीवन और शारदा[३] मुझसे मिलने यहाँ आना चाहते हैं। अब आना असम्भव है। इस समयके नियमके अनुसार तो जो राजनीतिमें भाग नहीं लेते, ऐसे आश्रमवासी आ सकते हैं। दूसरोंके बारेमें अभी लिखा-पढ़ी चल रही है। राजनीतिमें भाग लेनेवाले तो वे ही गिने जायेंगे जो कांग्रेसके काममें लगे रहते हैं। इस दृष्टिसे महादेव, देवदास और प्यारेलाल इनमें आयेंगे। कुछ हदतक वालजी भी ऐसे कहे जा सकते हैं; अन्य दूसरे नहीं। लेकिन जो इन दिनों धरना दे रहे हैं, उन्हें भी इनमें गिनना चाहिए। चूंकि [कौन आये और कौन न आये] यह नैया विश्वासके आधारपर चलनी है, इसलिए अन्तिम उत्तरदायित्व मुझपर ही आता है। इसलिए बाल और अन्य जो बालक-बालिकाएँ इस समय यह काम कर रहे हों, उन्हें छोड़कर शेष आश्रमवासी आ सकते हैं। एक बारमें पाँचसे ज्यादा न आयें। मैं जैसा पहले लिख चुका हूँ, पाँच या किसी एकको हर हफ्ते आना ही चाहिए, ऐसी कोई बात नहीं है। फिर भी जिनका मन हो उन्हें ऊपरकी मर्यादामें मेरी तरफसे आनेकी छूट है।

१. **दी डायरी ऑफ महादेव देसाई**, भाग-१, पृष्ठ १७-८ से।
२. हरिदास गांधी, नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल और छगनलाल जोशी।
३. हरजीवन कोटक; शारदा उनकी पत्नी थी।

नाम पहले सुपरिटेंडेंटको भेजें और फिर उसमें वृद्धि न करें, यह जरूरी है। रविवार और छुट्टीके दूसरे दिनोंके सिवा किसी भी दिन ११ से १ के भीतर मिलना सुविधाजनक होगा। सोचता हूँ, बात समझमें आने योग्य ढंगसे सामने रख दी गई है। इतना और जोड़ दूँ कि जो आनेकी इच्छा करते हों, यदि उनके नाम अपने पास दर्ज करके मेरे पास भेजते रहोगे तो मुझे सुविधा होगी . . .।[1]

[गुजरातीसे]

बापूना पत्रो – ९: श्री नारणदास गांधीने, भाग–१, पृष्ठ ३२२–३।

२४६. पत्र: निर्मला ह० देसाईको

२० मार्च, १९३२

चि० निर्मला,

हम अगर अपनी जरूरतके लायक कातें तो भी देशको लाभ है, क्योंकि इतनी दौलत बढ़ी। इसके सिवा श्रम और स्वावलम्बनका दूसरेके सामने उदाहरण पेश हुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६७) से। सी० डब्ल्यू० ८९७२ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

२४७. एक पत्र

२० मार्च, १९३२

चि०,

खाद जब खेतमें डाली जाती है, तब वह सुन्दर मिट्टी बन जाती है। उसके मिट्टीमें बदलते समय उससे जो हवा निकलती है, वह वृक्षोंको खुराक देती है। इसी तरह थूक जबतक मुँहमें रहता है तबतक, यदि मुँह निरोग हो तो, पाचन-क्रियामें मदद पहुँचाता है। बाहर वह गन्दगी पैदा करता है और धूलमें मिलकर वह किटाणुओंका पोषण करता है। मतलब यह हुआ कि अपने योग्य स्थानपर कोई भी वस्तु गन्दगी नहीं है और दूसरा यह कि गन्दगी आदमी पैदा करता है। यह समझकर हमें शौचके नियमोंको समझना और उनका पालन करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९७५) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. पत्र साधन-सूत्रमें अधूरा है।

२४८. पत्र : शारदा चि० शाहको

२० मार्च, १९३२

चि० शारदा,

आकाशमें जो तारागण और नक्षत्र दिखाई देते हैं, ये सब ईश्वरकी मूर्तियाँ हैं।

अपने देशकी स्त्रियोंकी पोशाक मुझे सबसे अच्छी लगी। महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, आदिने एक ही ईश्वरका गुणगान किया है।

स्त्रियोंके लिए ज्यादातर शिक्षण तो पुरुषों-जैसा ही होना चाहिए; हाँ, स्त्री-धर्मकी विशेषता बतानेकी हदतक अलग होना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९०७)से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला।

२४९. एक पत्र

२० मार्च, १९३२

चि०,

यह सच है कि इन दिनों कई जगह लोग, जितनी चाहिए, उससे अधिक छूट लेते हैं। जब भी लोक-जागृति होती है, ऐसा होता ही है। संयम तो जो पाले, उसका है। हम अपने प्रति कठोर रहें और दूसरोंके प्रति उदार। हम जिसे स्वच्छन्दता मानते हैं, वह दूसरोंके लिए संयम हो सकता है। एक व्यक्ति दूधको औषधि-रूपमें लेता है, दूसरा भोग-रूपमें। ऐसा हम रोज देखते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९७९)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२५०. पत्र : गंगाबहन झवेरीको

२० मार्च, १९३२

चि० गंगाबहन (झवेरी),

मुझसे मिलनेके लिए आनेके बारेमें नारणदासने तुम्हें सब बता दिया होगा। जिन्होंने संघर्षमें भाग लिया है, वे नहीं आ सकते, सरकारी हुक्मका ऐसा अर्थ निकलता है। अलबत्ता यह निषेध उनके लिए लागू नहीं होता जो लौकिक दृष्टिसे मेरे कुटुम्बी कहे जायेंगे। इसे लड़ने योग्य बात नहीं मानता; इसलिए जितनी सुविधा वे दे रहे हैं उतनीसे सन्तोष मान लेना ठीक लगता है। तुम्हें जो कहना हो, वह लिख भेजो; या जो आनेवाले हों उनके मारफत कहलवा दो। संघर्षके बारेमें तो मुझसे पूछा नहीं जा सकता। कैदीको उसके विषयमें अपना मत देनेका अधिकार नहीं और उसकी योग्यता भी नहीं। जेलमें तुम्हारी तबीयत कैसी रही? अपने अनुभव लिखना। जुर्माना किसने भर दिया?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९४९) से। सी० डब्ल्यू० ७० से भी; सौजन्य : गंगाबहन झवेरी।

२५१. पत्र : मंगला शं० पटेलको

२० मार्च, १९३२

चि० मंगला (लाड़की[1]),

स्वराज्य मिलेगा, तब बहुत-कुछ करेंगे। गुफा देखोगी और-और भी बहुत देखोगी। हमारे आसपास ही देखनेके लिए बहुत चीजें हैं; वह तो आज भी देख सकते हैं। और यदि उसे सही तरह देखना आ जाये तो बाकीका देखे-बराबर मानो। तुमने आकाश देखना सीखा? मैं बुढ़ापेमें सीख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०७९) से। सी० डब्ल्यू० ४३ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन ब० देसाई।

१. अर्थात् लाड़ली।

२५२. पत्र : मथुरी ना० खरेको

२० मार्च, १९३२

चि० मथुरी,

हमारे यज्ञार्थ कातनेसे गरीबोंको सूत मिलता है। हमारे उदाहरणसे दूसरे कातते हैं और हम गरीबोंके साथ तन्मय होते हैं, जिससे हमारी शुद्धि होती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६४) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

२५३. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

२० मार्च, १९३२

चि० परसराम,

दातुनको अँगुलीकी मदद देनेका अर्थ यह है कि दातुनसे दाँतोंको घिसने और जीभ साफ करनेके बाद कुल्ला करते समय मसूड़ोंको अंगुलीसे खूब घिसते रहना चाहिए। पायरियावालेको दो बार दातुन करनी चाहिए; वह एक बारमें आधा घंटा भी लगाये तो मैं उसे बहुत नहीं मानता। मैंने हब्शियोंको चाहे जब दातुन करते देखा है। दातुनसे दाँत साफ होते हैं; यही नहीं, उसकी कूँची बनाते समय मुँहसे जो लस छूटता है, उसके साथ बहुत-सी गन्दगी भी निकल जाती है। इस लसको तो थूक ही दिया जाता है। मैं खुद तो नमकके सिवा दातुन करते समय और किसी चीजका इस्तेमाल नहीं करता। दातुनका मेरे लिए बहुत अर्थ तो हो भी नहीं सकता; क्योंकि मेरे ऊपरका तो एक भी दाँत नहीं है और अब नीचेके भी थोड़े ही रह गये हैं। (दातुनके लिए) बबूल और नीम, दोनों ही अच्छे हैं, लेकिन पायरियावालेको नीमके अधिक अच्छे होनेकी सम्भावना है। उसकी कड़वाहट बहुत उपयोगी वस्तु है।

लड़कियोंको फाउंटेनपैन काममें लानेकी बिलकुल जरूरत नहीं है। सच कहें तो आश्रममें किसीको फाउंटेनपैनकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। इतनी क्या जल्दी है? विद्यार्थियोंके लिए तो यह चीज हानिकारक ही है। गुजराती, हिन्दी, उर्दू — हिन्दुस्तानकी सभी लिपियोंके लिए बरू ही सही कलम है। बच्चोंको इसका अभ्यास कराया जाना चाहिए। आश्रमकी प्रार्थनाके समय जबतक प्रधान व्यक्तिने शुरू न किया हो तबतक किसीको नही बोलना चाहिए। जब वह शुरू करे तब जो स्वरमें पढ़ सकते हों, वे ही उसका साथ दें, यह नियम है। सारा समुदाय जब एकतान होकर सुरमें

गाता है तब उसका असर होता ही है। यही बात मौनके बारेमें है। दोनों अपनी-अपनी जगह उपयोगी हैं। हवन आदिमें ऊँचे स्वरसे मन्त्रोच्चारण किया जाता है, इसके पीछे मान्यता यह है कि हजारों लोग भावनापूर्वक प्रेक्षकोंके रूपमें बैठे हैं। जब यह चीज रूढ़ हो गयी, तो दस-पाँच प्रेक्षकोंके होनेपर भी हवन ऊँचे स्वरमें ही किया जाता रहा।

एक महाव्रतके पालनमें अधिकांश रूपमें दूसरोंका भी समावेश हो जाता है।

जैसे नीमसे नीम होता है, ऐसे आदमीसे आदमी होता है और जैसे नीममें उत्तरोत्तर उसके सामान्य गुणोंका संक्रमण होता रहता है, वैसा ही आदमीके विषयमें भी है। किन्तु साथ ही अनेक कारणोंसे सब गुणोंके संक्रमणकी यह परम्परा टिक नहीं पाती और टिकनी भी नहीं चाहिए। इसके सिवा, मनुष्य और दूसरे जीवोंमें जो भेद है, उसके कारण भी मनुष्यमें हम विविधता देखते हैं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४९२) से। सी० डब्ल्यू० ४९६९ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा।

२५४. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

२० मार्च, १९३२

चि० पुष्पा,

जो सरदार हो, वह क्या चिट्ठी लिखता है? वह तो सरदारी करता है और दूसरोंसे लिखवाता है।

इस बार तेरे अक्षर ठीक हैं। ध्यान रखनेसे ठीक होते ही हैं। कमलाका कोई पत्र आया?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८४) से। सी० डब्ल्यू० ३० से भी; सौजन्य : पुष्पाबहन ना० नायक।

२५५. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

२० मार्च, १९३२

भाई वालजी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी या मेरी दलील काम नहीं आयेगी। कायदेके आगे दलीलका क्या अर्थ? 'बिल' के आगे हो सकता है। प्रस्तावनाके बिना चला सको तो शायद हो सकता है।

बच्चे अपने खेल-कूदके समयमें ताश खेलें तो मना न करें। बड़े खेलें तो भी मना नहीं किया जा सकता। हाँ, ऐसा कह सकते हैं कि न खेलना वांछनीय है। ताशके खिलाफ तुम्हारा क्या कहना है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२३)से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

२५६. इमाम साहब – ३[1]

२१ मार्च, १९३२

हमें याद रखना चाहिए कि इमाम साहबने अपना रहन-सहन अंग्रेजी ढंगका रखा था। हाजी साहिबा तो जन्मसे ही अंग्रेजोंकी तरह रहनेकी आदी थीं। फातिमा और अमीनाका पालन-पोषण भी अंग्रेज बच्चोंकी तरह किया गया था। ऐसे आदमीके लिए अपना बहुत-सा खर्च कम करके एकदम सादगी ग्रहण कर लेना बहुत मुश्किल काम था। किन्तु इमाम साहब जब एक बार कोई काम करना तय कर लेते थे तो फिर वह उनके लिए सरल हो जाता था। इसलिए जब मैंने जोहानिसबर्ग छोड़ा और फीनिक्समें जा बसनेका निश्चय किया तब इमाम साहबने स्वयं फीनिक्समें रहनेकी बात सामने रखी। यद्यपि मुझे उनकी दृढ़ताका अनुमान था, तो भी मैं उनकी यह बात सुनकर दंग रह गया। मैंने उनके सामने फीनिक्समें रहनेकी कठिनाइयाँ रखीं। जिसने आजतक कभी हाथ-पाँव नहीं हिलाये और एक प्रकारकी साहबीसे जीवन व्यतीत किया, वह एकदम मजदूर कैसे बन सकेगा? सम्भव है, इमाम साहब खुद फीनिक्सका जीवन बर्दाश्त कर लें; किन्तु हाजी साहिबाका क्या होगा? फातिमा और अमीनाका क्या होगा? इमाम साहबने संक्षिप्त और दृढ़ उत्तर

१. यह "पत्र : नारणदास गांधीको", १९/२१-३-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

दिया, "मैंने तो खुदापर भरोसा किया है। हाजी साहिबाको आप नहीं जानते। वह तो मैं जहाँ रहूँ, वहाँ और जिस तरह रहूँ, उसी तरह रहेगी। इसलिए यदि आपको कोई दूसरी दिक्कत न हो तो मेरा फीनिक्स आनेका निश्चय है। संघर्ष कब समाप्त होगा, इसकी कोई खबर नहीं है। मुझे नहीं दिखता कि मैं अब घोड़ागाड़ीका अथवा कोई दूसरा धन्धा कर सकता हूँ। मैं भी आपकी तरह यह समझ गया हूँ कि सत्याग्रहीको धन-दौलत वगैरहका मोह छोड़ देना चाहिए।" मुझे तो इमाम साहबकी यह बात पसन्द थी ही, मैंने फीनिक्सके साथियोंको लिखा। उन्होंने भी इस प्रस्तावका स्वागत किया और इमाम साहब सकुटुम्ब फीनिक्स आ गये।

आश्रमके बहुत-से व्यक्तियोंको शायद यह मालूम नहीं होगा कि इमाम साहब फीनिक्सकी सभी हलचलोंमें भाग लेते थे। सभी नीचेके एक झरनेसे अपने-अपने लिए पानी भरकर लाते थे। झरना आश्रमसे काफी निचाईपर था। फीनिक्स आश्रमके मकान एक टेकड़ीपर बने हुए थे। झरनेसे वहाँतक पहुँचनेके लिए लगभग पचास फुट चढ़ना पड़ता था। इमाम साहबका शरीर तब भी नाजुक ही था। किन्तु सुबह कन्धेपर काँवर रखकर वे नीचे उतरते और पानी भरकर धीरे-धीरे ऊपर आते। साबरमती आश्रममें चरखेका जो स्थान है, फीनिक्समें वही स्थान छापाखानेका था। बालक-बालिकाएँ, पढ़े-लिखे जवान और बूढ़े, सभीको छापाखानेके किसी-न-किसी विभागमें काम करना पड़ता था। अक्षर जोड़ना, छपे हुए अखबारोंकी गड्डी तैयार करना, उनपर कागज लपेटना, टिकट चिपकाना, मशीन रुक जाये तो उसे हाथसे चक्कर देकर ठीक करना, आदि अनेक छोटे-बड़े काम करने पड़ते थे। इसमें सभी लोगोंको थोड़ा-थोड़ा समय देना होता था, खास तौरपर अखबार प्रकाशित होनेके दिन। इस काममें इमाम साहब, हाजी साहिबा, फातिमा और अमीना — चारों हाथ बँटाते थे। इमाम साहबने अक्षर जोड़ना सीख लिया था। उनकी उम्र और स्वभावको देखते हुए यह एक अद्भुत बात ही थी। इस तरह इमाम साहब फीनिक्सके जीवनमें ओतप्रोत हो गये थे। इमाम साहब और उनके कुटुम्बके लोगोंको मांस खानेकी आदत थी। किन्तु मुझे याद नहीं आता कि फीनिक्समें इमाम साहबके घर कभी माँस पका हो।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इमाम साहब किसी भी दृष्टिसे कच्चे या लापरवाह मुसलमान थे। इमाम साहब अथवा उनके कुटुम्बके लोग नमाज़, रोज़ा, आदिमें कभी चूक नहीं होने देते थे। इमाम साहबने फीनिक्सवासियोंके साथ एक होकर और उनके लिए त्याग करके इस्लामकी संस्कृतिका सुन्दर स्वरूप सामने रखा था।

किन्तु अभी तो इमाम साहबकी त्याग-शक्तिकी और भी कठिन परीक्षा होनी थी। इमाम साहब पुनः कई बार जेल गये और वहाँ एक आदर्श कैदीके ढंगसे रहे। जब १९१४में यह निश्चय हुआ कि फीनिक्समें अमुक-अमुक व्यक्तियोंको छोड़कर बाकीके सब लोगोंको हिन्दुस्तान चले जाना है, तब इमाम साहबकी सच्ची कसौटी हुई। दक्षिण आफ्रिका इमाम साहबके लिए घर ही हो गया था। हाजी साहिबा, फातिमा, अमीना तो हिन्दुस्तानको बिल्कुल नहीं जानती थीं। वे हिन्दुस्तानकी

भाषा भी नहीं जानती थीं; थोड़ी-बहुत अंग्रेजी या डच भाषा ही जानती थीं। किन्तु इमाम साहबने निर्णय करनेमें तनिक भी ढील नहीं दिखाई। इमाम साहब और उनके कुटुम्बका यही निश्चय था कि जहाँ मैं रहूँगा, वहीं वे रहेंगे। ऐसा था इमाम साहबका सत्याग्रहके लिए किया गया त्याग और हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए उनका योगदान।

उनके हिन्दुस्तान आनेके बादके जीवनसे तो सभी आश्रमवासी परिचित हैं। यह मेरा दृढ़ मत है कि इमाम साहब दिन-प्रतिदिन ऊँचे उठते जा रहे थे; उनकी वृत्तियाँ शुद्ध होती जा रही थीं; उनकी ईश्वर-भक्ति बढ़ती जा रही थी; और आश्रम-नियमोंके प्रति उनकी श्रद्धा भी बढ़ती जा रही थी। किन्तु उनके हिन्दुस्तान आनेके बादकेके जीवनके संस्मरण देना हमारा हेतु नही है। अच्छा तो यह होगा कि जो-जो उनके प्रगाढ़ सम्पर्कमें आये हों, वे सभी अपने-अपने अनुभव भी लिख डालें और मेरे इन संस्मरणोंके साथ उन्हें संगृहीत कर लिया जाये।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२५७. पत्र: नारणदास गांधीको

१९/२१ मार्च, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हें कल पत्र[1] लिखकर आज डाकमें छोड़नेको दिया। वह यथासमय मिले तो ठीक। उसमें मुलाकातों और चम्पाके बारेमें तफसीलके साथ लिखा है। इसलिए इन बातोंके बारेमें इस पत्रमें नहीं लिखूँगा। उस पत्रमें कुछ और बातें भी हैं।

हरिदास गांधी, छगनलाल और नरसिंहभाईसे[2] आज मिला। इस तरह हर पन्द्रह दिनमें तीन व्यक्तियोंसे मिल सकूँगा। अर्थात्, जो साथी यहाँ हैं उनके बारेमें खबर लगती रहेगी और अगर उनको कोई मदद दी जा सकी, तो वह भी हो सकेगा। हरिदास बहुत कमजोर हो गया है; मगर उसका रोग शारीरिकसे अधिक मानसिक है। उसकी देखरेख हो रही है। कमलाको लिखे पत्रसे ज्यादा समाचार मिलेंगे। कमला हरिदाससे मिलना चाहे तो मिलने आ जाये। यदि वह मेरी मुलाकातके दिन आये और पाँचकी जो संख्या निश्चित है उसीमें हो, तो वह हम दोनोंसे मिल सकेगी।

हेमप्रभा देवीका पत्र बीच-बीचमें मेरे पास सीधा आता रहता है और मैं उन्हें उत्तर भी सीधा ही भेज देता हूँ। इस बहनका साध्वीपन, इसका साहस, श्रम और

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", १८-३-१९३२।
२. नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल।

कुशलता आश्चर्यजनक है। जानकीबहन और जमनालालजी की खबरें मिलें तो मुझे देते रहना। यों मैं मानता हूँ कि मदनमोहन[1] तो पत्र लिखेगा ही। चिमनलालका ऑपरेशन हो गया होगा। किसने किया? त्रिवेणी और दूधीबहनका इलाज कौन वैद्य कर रहा है? अपनी खुजलीका तत्काल उपाय करके उसे समाप्त करो। पूरे शरीरपर गीली पट्टीवाले उपायसे उसे खत्म होना ही चाहिए। वीडजकी जमीनके बारेमें मैं क्या लिखूँ? जो ठीक लगे सो करना। रावजीभाईसे मुलाकात नहीं हो सकती। रणछोड़भाईका पत्र दिखा नहीं। तुम्हारी सूचीमें भी उसका उल्लेख नहीं है।

२१ मार्च, १९३२

तिल्क[म]के नाम मेरा पत्र पढ़ लेना। यदि वह माँस न खानेके कारण बीमार पड़ता हो और उसकी इच्छा हो तो जहाँ वह माँस खा सके, ऐसा कोई स्थान हमें देख लेना चाहिए। यदि यह बात ठीक न लगे, तो मुझे लिखना। मैंने तो दो-तीन साथियोंके साथ यह किया था। इसलिए यह बात मेरे लिए नई नहीं है।

हरियोमलको कामसे मुक्त करके भी अपना शरीर सुधारनेके लिए प्रेरित करना चाहिए।

दयाको उसके पिता बुला रहे हैं; इस विषयमें क्या सोचा? उसके नाम मेरा पत्र तो देखा होगा।

अपनी खुजलीके बारेमें विस्तारसे लिखो।

बापूके आशीर्वाद[2]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२१५ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

२५८. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

२१ मार्च, १९३२

प्रिय बालको और बालिकाओ,

काम छोड़कर शौचादिके लिए जाना पड़े, इसमें पाप तो नहीं है, किन्तु यह कुटेव तो मानी ही जायेगी। जिसे काममें दिलचस्पी है, वह शौचादिसे निवृत्त होकर ही काममें लगेगा। और जो इन क्रियाओंको किसी निश्चित समयपर करनेके नियमका पालन करता है, वह उसी समय जाता है। अगर काम लगातार करना पड़ रहा हो तो शौचादिके लिए जाना ही पड़ेगा; इसलिए कामकी अवधि एक बारमें लगातार चार घंटोंसे अधिक नहीं रखनी चाहिए।

१. जमनालाल बजाजके सचिव।

२. इसके बाद लेख 'इमाम साहब–३' था; देखिए पिछला शीर्षक।

चरखेमें मुख्य स्थान तो उससे मिलनेवाली शिक्षाका है, क्योंकि उससे सेवा-धर्मका भान होता है, एक बहुत उपयोगी धन्धा आ जाता है और वह सुन्दर कला भी है।

अनिच्छा हो तो किसी कामपर नहीं जाना चाहिए। किन्तु अनगढ़ बालकोंके मनमें अच्छी इच्छा ही नहीं होती; इसलिए इस सम्बन्धमें सही नियम यह है कि अच्छे कामके प्रति इच्छा हो या न हो, उसे करनेके लिए अवश्य जायें। करते-करते वह भाने लगता है अर्थात् इच्छा होने लगती है। इच्छाका ही अनुसरण करें तो स्वेच्छाचारी बन जायें। इस परिस्थितिसे तो बचना ही चाहिए। मेरे विषयमें कह सकते हैं कि भाषा और भूमिति मेरे प्रिय विषय थे।

जब नारणदास तुम्हें अनुमति दें तब आ सकते हो। पर मिलनेके लिए आनेके विषयमें संयम रखना अच्छी बात है। याद रखो कि हम गरीब लोग हैं, गरीब रहना चाहते हैं और अपने देशके भूखे मरकर जीनेवालोंसे होड़ लेना चाहते हैं।

अब एक घटना लिख रहा हूँ।

यह मैंने सुना तो था पर यहाँ अपनी आँखों देख रहा हूँ। यहाँ एक बिल्ली है। जब उसे हाजत होती है तब वह एकान्तमें जाती है और मिट्टीवाली जगह खोजती है। शौचके बाद वह पंजोंसे आसपासकी मिट्टी खोदकर उसे ढँक देती है। ढाँककर सूँघती है। थोड़ी भी गन्ध आनेपर और मिट्टी डालती है। यह देखकर मुझे अपनी बात याद आई। क्या हम सब गन्दगीको इतनी सावधानीसे ढाँकते हैं? हम रोज धरती-माताका वन्दन करते हैं, पादस्पर्शके लिए क्षमा माँगते हैं, पर उसपर थूककर, नाक साफ करके या पेशाब आदि करके क्या हम ढाँकते हैं? जो इस नियमका पालन न करते हों, अब करने लगें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८९८२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२५९. एक पत्र

२१ मार्च, १९३२

चि०,

कैदी होनेका सच्चा आनन्द तो किसीसे मुलाकात न लेनेमें है . . .[1]

जिस तरह उतावले होकर खाना नहीं चाहिए, उसी तरह उतावले होकर लिखना भी नहीं चाहिए। आदर्श तो यही है कि किसी भी बातमें उतावली न करें। जल्दी-जल्दी करना पड़े तो अर्थ हुआ कि कभी सुस्तीकी है। अनासक्ति और उतावलीका मेल बैठता ही नहीं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९६९) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

२६०. पत्र: जुगतराम दवेको

२१ मार्च, १९३२

भाई,

तुम्हारे पत्रकी हमने आशा रखी ही थी। जन्म लेनेवाले सभी जीते नहीं रहते।[2] और जब हवा बिगड़ती है, तब मृत्यु-संख्या बढ़ जाती है। इसलिए तुम जो लिखते हो उसपर मुझे आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य और आनन्द यह है कि मृत्यु-संख्या बढ़ी नहीं। और मौतका अफसोस किसलिए? मरने लायककी मौत स्वागतके योग्य है। और जो मरते हैं, वे तो फिर जन्म लेनेके लिए ही न? इसलिए खेदका कोई कारण नहीं है। अकेले रहनेकी कला जिसने नहीं सीखी, वह बाहर होनेवाले परिवर्तनोंसे विचलित हो जाता है। मगर सत्यनारायणको तो वही पाते हैं जो अकेले खड़े रहने लायक होते हैं।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९७०) से; सौजन्य: नारणदास गांधी। **महादेवभाईनी डायरी**, भाग–१, पृष्ठ २७ से भी।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. जुगतराम दवेने उन साथियोंकी शिकायत की थी जिन्होंने संघर्षमें साथ छोड़ दिया था।

२६१. एक पत्र

२१ मार्च, १९३२

चि०,

जैसे अन्न शरीरकी खुराक है, उसी तरह उपासना आत्माकी। जिसे यह विश्वास है कि आत्मा है, वह उपासनाके बिना जी ही नहीं सकता। प्रार्थना अर्थात् आत्माका परमात्माके साथ नियोजन।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९७३) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२६२. पत्र : बच्चोंको

२१ मार्च, १९३२

चि०,

ईश्वरकी मेरी व्याख्या याद है? ईश्वर सत्य है, यह कहनेके बजाय मैं यह कहता हूँ कि सत्य ईश्वर है। मैं हमेशा ऐसा नहीं सोचता था। यह तो चार-एक वर्ष पहले ही सूझा। मगर अनजानमें ही मेरा आचरण इसी किस्मका रहा है। ईश्वरको मैंने सत्यके ही रूपमें जाना है। एक समय ऐसा था जब ईश्वरकी हस्तीके विषयमें शंका थी। मगर सत्यकी हस्तीके बारेमें कभी नहीं थी। यह सत्य केवल जड़ नहीं बल्कि शुद्ध चैतन्यमय है। [दुनियापर] यही राज्य करता है, इसलिए ईश्वर है। यह विचार दिलमें पैठ गया हो, तो तुम्हारे दूसरे सवालोंका जवाब इसीमें आ जाता है। मगर परेशानी हो तो पूछ लेना। मेरे लिए तो यह अनुभवगम्य-जैसा है। 'जैसा' इसलिए कहता हूँ कि मैंने सत्यदेवका साक्षात्कार नहीं किया है। सिर्फ झाँकी देखी है। श्रद्धा अटल है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९७४)से; सौजन्य : नारणदास गांधी। **महादेवभाईनी डायरी,** भाग–१, पृष्ठ २७ से भी।

२६३. पत्र : पुरातन बुचको

२१ मार्च, १९३२

चि० पुरातन,

क्या पिछला ऑपरेशन पूरी तरह सफल नहीं हुआ है? तबीयतमें अब क्या खराबी है? मुझसे प्रश्न पूछा सो ठीक ही किया। विशिष्ट अथवा जैसी भी कहो, मेरी साधना सार्वजनिक सेवाके रूपमें रही है। सत्यकी खोजका यह अविभाज्य अंग है।

रह कहाँ रहे हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१६४) से। सी० डब्ल्यू० ८९७१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२६४. पत्र : कुसुम देसाईको

२१ मार्च, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरा पत्र मिला। प्यारेलाल और गुलजारीलालकी[1] तबीयत अच्छी रहती है। मिलनेकी इजाजत मिले तो दोनोंसे और दूसरोंसे भी मिल आना।[2] क्या ऐसा कहा जा सकता है कि तेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३१) से।

१. गुलजारीलाल नन्दा।

२. धुलिया-जेलमें।

२६५. पत्र : वनमाला न० परीखको

२१ मार्च, १९३२

चि० वनमाला,

नाटकके बारेमें मैं पिछले पत्रमें[१] लिख चुका हूँ। क्या बेलगाँवसे नरहरिका पत्र आया? आया हो तो, क्या समाचार है? क्या सब साथ रहते हैं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६९) से। सी० डब्ल्यू० २९९२ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई।

२६६. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२१ मार्च, १९३२

चि० प्रेमा,

बायें हाथसे लिखनेका आग्रह रखता हूँ, इसलिए लिखनेका काम अपने-आप कम हो जाता है। दाहिने हाथसे लिखनेकी आदत अभी गई नहीं है। विलायतसे जो कागज वगैरह लाया हूँ, उनका हमें उपयोग करना है। यदि उसके कारण तुम्हारी बुद्धि भ्रममें [स्वदेशीकी प्रतिज्ञाके कारण] पड़ती हो तो सँभालकर रख देना। बादमें काम आयेंगे। लाकेटवाली चीजका किस्सा मैं भूल गया हूँ। जिनकी ऐतिहासिक कीमत नहीं थी, ऐसी चीजें साथ नहीं आईं। इसलिए अभी तो सब चीजें बहुत यत्न से सँभालकर रख देना। जिसका उपयोग करना चाहो, उसे उपयोगमें लाना।

यज्ञके बारेमें ऐसा अभिमान जो आग्रहका समानार्थी है, आवश्यक है; किन्तु गर्वका समानार्थी ऐसा अभिमान जिसकी प्रेरणाके वश होकर तुम यह कहने लगो कि 'मेरा क्या कहना, मेरा यज्ञ कभी टूट ही नहीं सकता', त्याज्य है।

अगर मैं ऐसा दावा करूँ कि माया मुझे बाँध ही नहीं सकती, तभी तो मुझे मेघजीके[२] बारेमें तुम्हारे प्रश्नका जवाब देनेकी जरूरत होगी न? मायाके पाशसे

१. पिछले १३ मार्चके पत्रमें 'नाटक' के बारेमें कुछ नहीं मिलता किन्तु बादके पत्रोंमें मिलता है; देखिए "पत्र: इन्दु पारेखको", २४-३-१९३२ तथा "पत्र: नारणदास गांधीको", २४/२९-३-१९३२।

२. उन तीन बच्चोंमें,से एक जिन्हें गांधीजी की सलाहके अनुसार उनके माता-पिताने चेचकका टीका नहीं लगवाया था और जो चेचक निकल-आनेपर बचाये नहीं जा सके थे। गांधीजी इस घटनासे बड़े दुखी हुए थे

छूटनेका प्रयत्न करते हुए भी हम कोमलता और सेवाभाव न छोड़ें। कोई मर जायेगा तो क्या होगा, यह विचार मूर्खताका है, मायाका नहीं। मरना सबको है, यह एक बार जान लेनेके बाद उसका विचार क्या करना? और फिर हम तो नटवरके हाथमें स्वेच्छासे कठपुतली बने हैं; इसलिए कुछ और कहने-सुननेका सवाल नहीं रहता। उसे जैसे नचाना होगा वैसे नचायेगा। मूल बात तो नाचनेकी ही है न? जिसे सदा ही नाचनेको मिले, उसे दूसरा क्या चाहिए?

तेरा संगीत[1] आगे बढ़ रहा है, यह बहुत अच्छा है। टॉन्सिल कटवाना जरूरी हो तो कटवा डालना।

आश्रमसे बाहरवालोंके बारेमें अभी फैसला नहीं हुआ है।[2] सुशीलाका नाम शामिल किया है।

अपने दोषोंकी चर्चा करवाकर तू प्रशंसा करवाना चाहती है क्या? मुझे तेरे दोष बताने ही नहीं हैं। क्या कई बार मैं बता नहीं चुका हूँ? उनमें कितना सुधार किया, यह बता। फिर इस प्रश्नपर अधिक विचार करेंगे।

ईश्वरके भक्तों वगैरहमें एक हदतक ही समता होती है। पूर्ण समता जिसमें प्रकट हो वह परमेश्वर है। लेकिन परमेश्वर तो एक ही है। इसलिए पूर्णतम मनुष्यमें भी अधूरी समता ही होती है। इसीलिए मतोंकी भिन्नता और विरोध होते हैं। इसमें दुःख माननेकी जरूरत नहीं है। जगत विषमताओंका परिणाम है। हमारा धर्म समताकी मात्राको प्रतिदिन बढ़ाते रहना है। ऐसा करते-करते विषमता बुरी लगनेके बजाय सह्य और कुछ अंशमें सुन्दर भी लगेगी।

हिन्दुस्तानमें सब-कुछ अन्य देशोंकी अपेक्षा अच्छा ही है, ऐसा मान लेनेका कोई कारण नहीं। फिर उत्थान-पतन तो विश्वका नियम है। कुल मिलाकर हिन्दुस्तानमें बहुत-कुछ अच्छा है। इसीलिए हिन्दुस्तान विजित देश हुआ, विजेता नहीं। इसके गर्भमें यह मान्यता है कि गुलामकी अपेक्षा अत्याचारीकी स्थिति ज्यादा बुरी है।

हमारे यहाँ खगोलशास्त्रकी और अप्टन सिंक्लेयरकी[3] कौन-सी पुस्तकें हैं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७७) से। सी० डब्ल्यू० ६७२५ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

१. प्रेमाबहन कंटक नारायण मोरेश्वर खरे से संगीत सीख रही थी।

२. मुलाकातके बारेमें।

३. अमेरिकी उपन्यासकार।

२६७. पत्र : मदालसा बजाजको

२१ मार्च, १९३२

चि० मदालसा,

वत्सलाको लिखे पत्रमें तुझे भी अपने कुछ प्रश्नोंके जवाब मिल जायेंगे। दूध यहाँ मुझे सधता नहीं लग रहा था, इसलिए मैंने वैसा लिखा। शान्त जीवनमें दूधकी आवश्यकता न होनेकी सम्भावना है।

सब अनाज कच्चे नहीं खाये जा सकते। हरे पत्ते, गाजर, वगैरह कच्चे खाये जा सकते हैं। उन्हें पकानेसे उनमें जो एक प्रकारका सत्त्व होता है, वह नष्ट हो जाता है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ ३१२।

२६८. पत्र : एक लड़कीको[1]

२१ मार्च, १९३२

ब्रह्मचर्य-पालनमें सबसे बड़ी चीज भ्रातृ-भावनाका साक्षात्कार करना है। हम सब एक पिताके लड़के-लड़कियाँ हैं। उनमें विवाह कैसे? खाना केवल औषधरूप, स्वादके लिए नहीं। मन और शरीरको सेवाकार्यमें लगाये रखना। सत्यनारायणका मनन करना। बाल कटानेका धर्म स्पष्ट हो जाये तो लोक-लज्जा छोड़कर कटवाना। ईश्वर-भक्तिके लिए नित्य सेवामें लीन रहना।

मनोविकार हमारे सच्चे शत्रु हैं, समझकर [उनसे] नित्य युद्ध करना। इसी युद्धका महाभारतमें वर्णन है।

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ–२७।

१. जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहती थी।

२६९. पत्र : अगाथा हैरीसनको

२२ मार्च, १९३२

प्रिय अगाथा,

तुम इस लिखावट[1] को पहचान लोगी। मेरे दाहिने हाथने काम करनेसे इनकार करना शुरू ही किया था, महादेव ठीक उसी समय यहाँ आ पहुँचे। उसमें कोई लगातार दर्द रहता हो, सो बात नहीं है; लेकिन उससे लिख पाना कठिन है। मैं बायें हाथसे काफी लिख लेता हूँ और जब कभी सम्भव होता है, महादेवके हाथसे काम ले लेता हूँ।

तुमने डॉ० रामचन्द्र रावकी [बात][2] की है। मैं उन्हें पहचान नहीं पा रहा हूँ। उन्हें मुझसे भेंट करनेकी इजाजत मिलनेकी सम्भावना नहीं है। हम अब तीन हैं और हम सबका स्वास्थ्य काफी ठीक है और पर्याप्त पुस्तकों, समाचारपत्रों और चरखोंके होनेसे हमारे पास समय बितानेके काफी साधन हैं।

सस्नेह[3],

हृदयसे तुम्हारा,
बापू[4]

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४५२) से।

२७०. पत्र : डॉ० सी० मुथुको

२२ मार्च, १९३२

आपका पत्र तथा आपकी सुन्दर पुस्तक[5] के नये संस्करणकी एक प्रति पाकर बड़ी खुशी हुई। मैं उसे दुबारा पढ़ूँगा। मेरे भोजनके बारेमें चिन्तित न हों। मुझे अभीतक फिरसे दूध शुरू करनेकी जरूरत नहीं पड़ी है। मेरा खयाल है कि जिन दिनों कोई भाग-दौड़ न हो और आदमीको सिर्फ सोचने-विचारनेका ही काम हो, उन दिनों उसे दूध तथा उसके विटामिनोंसे मिलनेवाली स्फूर्तिकी जरूरत नहीं होती

१. महादेव देसाईकी लिखावट।
२. साधन-सूत्रमें यहाँ एक शब्द अस्पष्ट है।
३. ४. ये शब्द गांधीजी के स्वाक्षरोंमें हैं।
५. द ऐंटीक्विटी ऑफ हिन्दू मेडिसिन।

है। मैं खुराकमें रोटी, पिसा हुआ बादाम, हरी सब्जियाँ, टमाटर और नींबू ले रहा हूँ और जितनी शक्ति और वजन चाहिए, इनके बलपर कायम रखे हुए हूँ। मैं गर्म पानी तथा थोड़ेसे सोडा बाइकार्बोनेटके साथ रोज लगभग दो औंस शहद भी लेता हूँ। शौच बराबर ठीक होता है। मैं यह तफसील आपको इसलिए दे रहा हूँ कि आप हमेशा मेरे स्वास्थ्यमें दिलचस्पी लेते रहे हैं। 'भारतमें आयु कैसे बढ़ायें' और 'बाल्यावस्थामें स्वास्थ्य-रक्षा और रोगोंसे बचनेके उपाय'-सम्बन्धी आपके भाषणकी प्रति मुझे नहीं मिली है।[1]

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ५-४-१९३२

२७१. पत्र : पद्माको

२२ मार्च, १९३२

चि० पद्मा,

तेरा पत्र मिला। कविता पढ़ गया। देखता हूँ, तुझमें काव्य-प्रतिभा है। किन्तु धीरजसे काम लो। उस प्रतिभाका विकास शरीर सुधरनेपर ही होगा। वहाँ किसी डॉक्टरकी मदद मिल पाती है? तू तो भुवाली गई थी? वहाँकी हवामें ही दवा है, फिर तबीयत क्यों नहीं सुधरी? सरोजिनी देवीकी एक ही चिट्ठी मिली थी। 'मगनचक्र' को आजमानेका विचार किया है; मंगाया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१३०)से। सी० डब्ल्यू० ३४८२ से भी; सौजन्य: प्रभुदास गांधी।

१. यह वाक्य **हिन्दू**, २९-४-१९३२ से लिया गया है।

२७२. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

२२ मार्च, १९३२

भाई विट्ठलदास,

शायद तुम बम्बई पहुँच गये हो, ऐसा मानकर वहींके पतेपर लिख रहा हूँ। तुमने दूसरी बार जो खजूर भेजे वे मिल गये हैं। उनमें बहुत घुन और इल्लियाँ हैं। शायद यहाँ आनेपर हो गये हों। कुछ भी हो, अब जबतक मैं न मंगाऊँ तबतक खजूर न भेजना। यहाँ जो खजूर मिलते हैं, वे खराब नहीं हैं। फिलहाल तो बिना खजूरके काम चलाकर देखना चाहता हूँ। यहाँ कोई भी चीज ज्यादा तादादमें सँभालना कठिन है। इसके सिवा, जो बाहर हैं उन्हें मन्दिरवासियोंपर बिना जरूरत पैसा या समय नहीं लगाना चाहिए। आवश्यकता पड़नेपर मैं जरूर लिखूँगा। तुम्हारी तबीयत दिन-प्रतिदिन सुधर रही होगी। सरदार और महादेव मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्री विट्ठलदास जेराजाणी
खादी भण्डार
कालबादेवी रोड
बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७८०) से।

२७३. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

२२ मार्च, १९३२

मनुष्य-देहमें ईश्वर-दर्शन होगा या नहीं, यह प्रश्न गीता-भक्तके मनमें पैदा ही नहीं होता, क्योंकि उसे कर्मका ही अधिकार है, फलका कभी नहीं। और जिस बातका अधिकार नहीं है, उसका विचार क्यों किया जाये? तथापि, मेरी राय है कि देह रहते पूर्ण साक्षात्कार असम्भव है। हम ठेठ उसके पासतक जरूर पहुँच सकते हैं, मगर शरीरकी सत्ताके कारण द्वार-प्रवेश असम्भव मालूम होता है। ईश्वरके विरहका दुःख तो हमें सदा ही रहना चाहिए। वह न रहेगा तो प्रयत्न बन्द हो जायेगा या शिथिल पड़ जायेगा। विरह-दुःखका परिणाम निराशा नहीं, आशा होना चाहिए; शिथिलता नहीं, अधिकाधिक उद्यम होना चाहिए। कोशिश थोड़ी भले ही हो, परन्तु वह बेकार कभी नहीं जाती, यह भगवानकी प्रतिज्ञा है। इसलिए हमारा विरह-दुःख भी आनन्ददायक हो जाना चाहिए। क्योंकि हमें विश्वास होना चाहिए कि किसी-न-किसी दिन साक्षात्कार जरूर होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग १, पृष्ठ ३०-१।

२७४. पत्र : एक अवकाशप्राप्त सज्जनको[1]

२२ मार्च, १९३२

आपको डॉ० मुथुको लिखना चाहिए। परन्तु मेरा ज्ञान, जो वैज्ञानिक तो नहीं है किन्तु अनुभवजन्य है, यह बताता है कि आपको तीन उपवास करने चाहिए और फिर दूध और नारंगीके रसके साथ उपवास छोड़ना चाहिए। इतना करके देखिए तो फर्क पड़ेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग १, पृष्ठ ३०।

१. इन्होंने अपने श्वासरोगके लिए प्राकृतिक उपचारके विषयमें पूछा था।

२७५. पत्र : मु० रा० जयकरको

२३ मार्च, १९३२

प्रिय श्री जयकर,

श्री स्टॉक्सकी पुस्तक[1] के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। कृपया श्री स्टॉक्सको बताइए कि मैंने उनकी पुस्तक पढ़ जानेतक दूसरी चीजें पढ़ना बन्द कर रखा है। मैं उसे पढ़ चुकनेके बाद उन्हें सीधा ही लिख पानेकी आशा करता हूँ।

आशा है, बुखारने आपको फिर परेशान नहीं किया होगा और आप अन्यथा भी ठीक और चुस्त ही होंगे।

चूँकि दाहिने हाथमें फिर दर्द होने लगा है, मैं लिखनेमें बायें हाथका उपयोग कर रहा हूँ। अब मुझे महादेवकी सहायता भी मिल गई है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

जयकरके निजी कागजात, पत्र-व्यवहार फाइल सं० ४०७-६; सौजन्य : भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

२७६. पत्र : अब्बासको

२४ मार्च, १९३२

चि० अब्बास,

प्रश्न अच्छा है। 'अनुद्वेगकरम्'[2] का अर्थ हुआ कि बोलनेवालेको बिलकुल शुद्ध हृदयसे यह देखना चाहिए कि उसकी दृष्टि और इच्छा उद्वेग उत्पन्न करनेकी न हो। दूसरेपर क्या असर होगा इसे हम निश्चयपूर्वक कदापि नहीं जान सकते, इसलिए विचार यह करना चाहिए कि कोई हमसे यह कहे तो हमें कैसा लगेगा। 'प्रिय' और 'हितकर' पर भी यही बात लागू होती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३०७)से। सी० डब्ल्यू० ८९८८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. पुस्तकका नाम था – **सत्यकाम ऑर ट्रू डिजायर्स**।
२. **भगवद्गीता,** अध्याय १७, श्लोक १५।

२७७. पत्र : जुगतराम दवेको

२४ मार्च, १९३२

भाई,

तुमने पत्र अच्छा लिखा है। हमारी गाड़ीको चलानेवाला मनुष्य नहीं, ईश्वर है। उसमें बैठे हुए हम होग जबतक उसपर श्रद्धा रखेंगे, तबतक गाड़ी जरूर चलती रहेगी। श्रद्धा छोड़ी कि गाड़ी अटकी ही समझो।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९८३) से; सौजन्य : नारणदास गांधी। **महादेवभाईनी डायरी,** भाग – १, पृष्ठ ३४ से भी।

२७८. पत्र : इन्दु न० पारेखको

२४ मार्च, १९३२

चि०,

तूने बढ़िया सवाल[1] पूछा है।

'महाभारत' काव्य है, इतिहास नहीं। कविका उद्देश्य यह बताना है कि मनुष्य अगर हिंसाका रास्ता पकड़ेगा, तो उसमें झूठ आयेगा ही। फिर तो उससे कृष्ण-जैसे भी नहीं बच सकते। लेकिन बुरा तो बुरा ही है। और शिखंडीको आगे करने और सूर्यको ढँकनेमें दोष तो था ही। मेरी यादके अनुसार व्यासजीने भी इन प्रसंगोंका दोषके रूपमें ही वर्णन किया है।

ऐसे उदाहरणोंवाले नाटकोंमें यह बता दिया जाये कि ये उदाहरण नकल करने लायक नहीं हैं, तो उनके खेलनेमें शायद दोष नहीं होगा। फिर भी तूने जो पूछा है, वह बहुत विचार करने योग्य तो है ही। . . .[2]

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९८५) से; सौजन्य : नारणदास गांधी। **महादेवभाईनी डायरी,** भाग – १, पृष्ठ ३४ से भी।

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", २४/२९-३-१९३२।

२. साधन-सूत्रके अनुसार।

२७९. पत्र : कुसुम देसाईको

२४ मार्च, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तूने अपना पत्र स्पष्टीकरणसे ही काफी भर दिया, परन्तु यह तो एक ही बार हो सकता है। तू जब चाहे आ सकती है।

हम तीनों मजेमें हैं।

जानकीबहन अब ठीक हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३२) से।

२८० पत्र : रैहाना तैयबजीको

२४ मार्च, १९३२

नटखट रैहाना,

मेरी उर्दूकी तारीफ करके मुझे धोखा देती है। खुदाकी मेहरबानी है, मैं इस तरह धोखेमें नहीं गिरूँगा। मेरे हरफ बहुत खराब हैं, और हिज्जे भी ऐसी [ही] तारीफके लायक। मेरी उर्दू [ठीक] होगी उसके पहले रैहाना बुढ़िया बन जायेगी, या मुझको ज्यादा वक्त देना होगा। अब भजन लिखूँ। रैहाना गाती है :

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है;
जो जागत है सो पावत है जो सोवत है सो खोवत है।
टुक नींद से अंखियाँ खोल जरा, ऐ गाफिल रबसे ध्यान लगा;
यह प्रीत करनकी रीत नहीं, रब जागत है तू सोवत है।
यह जान भुगत करनी अपनी, अय पापी पापमें चैन कहाँ,
जब पापकी गठरी सीस धरी, फिर सीस पकड़ क्यों रोवत है।
जो कल करे वो आज तू कर, जो आज करे सो अब कर ले
जब चिड़िया खेंती चुग डाली, फिर पछताये क्या होवत है?[1]

देखता हूँ, अक्षर बहुत खराब हैं। पर बायें हाथसे ठीक बनते नहीं हैं। धीमे-धीमे सुधारूँगा। तबतक सहन करना। ऐसे जड़ शिष्यसे शर्माना नहीं। धीरज रखेगी तो तूने जो झूठी तारीफ की है, सम्भव है, वह सही भी हो जाये। ऐसा

१. यहाँतक पत्र उर्दू लिपिमें है; यहाँ नागरी लिपिमें प्रायः ज्यों-का-त्यों दिया गया है।

नहीं हुआ तो मैं दोष तुझे दूँगा। उर्दूके हिज्जोंके बारेमें क्या कोई किताब नहीं है? पता लगाना। हमीद अली और शरीफाबहन अभी हों तो उन्हें मेरे बहुत-बहुत सलाम कहना और कहना कि गोधरामें उनसे जो भेंट हुई थी और दोनोंने संसार[1] सुधार परिषदमें जो मदद की थी, मैं उसे भूला नहीं हूँ।

बाबाजानको बताना कि उनका कार्ड मिल गया है। लेकिन उनके-जैसे बड़े आदमीको मेरे-जैसे कैदीका अधिक पत्र लिखना ठीक नहीं गिना जायेगा। तेरे-जैसी बच्चियोंको मैं चाहे जितने पत्र लिख सकता हूँ। फिर भी बाबाजान जितना चाहें लिख सकते हैं। इस नियममें दम तो है ही। कैदीको पत्र मिलें तो उसमें हानि नहीं है, मगर कैदी लिखे तो उसमें हो सकती है। वह निर्दोष बालकोंको लिखे तो हर्ज नहीं है। बाबाजानकी स्मृति खराब हो रही है, इसमें अजब कुछ नहीं है। हमारे लिए तो अगर ईश्वर उनके नाचनेकी शक्ति बहुत अरसेतक बनाये रखे, तो बस है। बाबाजान और अम्माजानको हम सबके बहुत-बहुत सलाम और वन्देमातरम्। कमाल मियाँको[2] चुम्बन। हमीदा, रोहिणी, वगैरहको आशीर्वाद। बा फिर उनके पास पहुँच गई, यह बहुत अच्छा हुआ। भजनोंके अपने खजानेमें से तुझे जो पसन्द आयें, ऐसे कुछ भजन भेजना। उर्दूमें लिखेगी तो एक सबक हो जायेगा। पशाभाईसे लिखनेको कहना। तुझे सरदारके और मेरे आशीर्वाद। तेरे लिए तो सरदार सदा वल्लभकाका ही बने रहें।

रैहाना उमर दराज। खुदा हाफिज।[3]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६३९) से।

२८१. पत्र : सोमाभाई पटेलको

२४ मार्च, १९३२

चि० सोमाभाई,

नारणदासने तुम्हें कैद कर रखा है, इसकी चिन्ता मत करो। शरीर सुधार लेना। मुझे अनुभव लिखना। समय किस तरह बिताया? भणसालीका कोई समाचार है? वजन कितना खोया?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२२०) से।

१. अर्थात् समाज।

२. सुहैलाका पुत्र।

३. यह पंक्ति उर्दू लिपिमें है।

२८२. पत्र : विद्या रा० पटेलको

२४ मार्च, १९३२

चि० विद्या,

इस बार तेरे अक्षर बिगड़ गये हैं। अच्छे ही लिखने चाहिए। साधारणतया स्त्री और पुरुषके कामोंमें भेद करनेकी जरूरत नहीं है। उनमें कुछ अन्तर अपने-आप हो जाता है।

नाम माधवभाई नहीं अपितु महादेवभाई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२३)से; सौजन्य : रवीन्द्र रावजीभाई पटेल।

२८३. पत्र : होरेस जी० एलेक्जैंडरको

२५ मार्च, १९३२

प्रिय होरेस,

आपको यह लिखावट पहचाननेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। मुझे फिर बायें हाथका सहारा लेना जरूरी हो गया था; महादेव ठीक उसी समय मेरे पास भेज दिया गया। मुझे आपका नोट पाकर खुशी हुई। अगाथा अपनी शक्तिके अनुसार मुझे आपकी गतिविधियोंके बारेमें सूचित करती रही है और जिन समाचारपत्रोंको पढ़नेकी मुझे इजाजत है, वे भी यदा-कदा उन सब और अनेकों मित्रोंकी गति-विधियोंका कुछ उल्लेख कर देते हैं जिन्होंने इस संघर्षमें अपनी रुचि दिखाई थी; और हॉयलैंड मुझे [संघर्षकी सफलताके लिए की गई] मौन प्रार्थनाओंके बारेमें लिखती रही है। मैं जानता हूँ कि ये सब प्रार्थनाएँ अमूल्य हैं और हृदयसे निकली हुई एक भी प्रार्थनाका समुचित उत्तर मिले बिना नहीं रहता। व्यक्तिको सभी हार्दिक प्रार्थनाओंके स्पष्ट परिणाम दिखाई नहीं देते, यह सही है; किन्तु इससे क्या?

मेरे बारेमें इस बातपर आपका खुश होना ठीक ही है कि मुझे यह आराम जबरन लेना पड़ रहा है। यदि यह आराम न मिला होता तो मेरे बीमार पड़ जानेकी पूरी सम्भावना थी। यहाँ समय काटना भारी नहीं होता। चरखा है और मौन-साथी — पुस्तकें हैं; और मुझे कुछ समय थोड़ा-बहुत लिखनेके लिए भी जरूरी होता है। फिर, मेरे साथ सरदार वल्लभभाई पटेल हैं। वे पिछली बार मेरे साथ नहीं रखे गये थे, तब मेरे और उनके बीचमें एक दीवार थी। और अब महादेव भी मेरे पास आ गया है।

हाँ, ऑलिवसे[1] वह विशेष सन्देश मैं अवश्य पाना चाहता था। मुझे इस बातका खेद था कि सैली ओकमें उन बहुमूल्य दिनोंके दौरान मैं उसके निकट सम्पर्कमें न आ सका। लेकिन मुझमें इतनी कल्पनाशक्ति है कि मैं, वहाँ उसका जीवन कैसा सुन्दर होगा, इसे समझ सकूँ। आपको, ऑलिवको तथा सभी मित्रोंको हम लोगोंका स्नेह।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४१२)से।

२८४. पत्र : आनन्दी आसरको[2]

२५ मार्च, १९३२

चि०,

तुमने मेहमानोंको रूखा जवाब देकर बड़ी गलती की। कोई भी आये, वह चाहे जैसे कपड़े पहने हो, किन्तु उससे नम्रताके साथ बरताव करना चाहिए। मेहमान जो पूछे, उसका जवाब देना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९८४)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

२८५. पत्र : महेन्द्र वा० देसाईको

२५ मार्च, १९३२

चि० मनु,

तेरा वर्णन तो अच्छा है, मगर अक्षर बहुत खराब हैं; उनके विषयमें क्या कहता है? अब तू कितने वर्षका हो गया? अक्षर तो अच्छे होने ही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२४)से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

१. होरेस जी० एलेक्जेंडर की पत्नी।

२. नारणदास गांधीके नाम २४/२९-३-१९३२ के पत्रके आधारपर इस नामका अनुमान किया गया है।

२८६. पत्र : रावजीभाई मणिभाई पटेलको

२५ मार्च, १९३२

चि० रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। इस समय ठीक परीक्षा हो रही है। होने दो। मुझे भी लिखते रहना।

महादेवको यहीं भेज दिया है, सो तो मालूम होगा। कहा जा सकता है कि हम तीनों तो आनन्द कर रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९४) से।

२८७. पत्र : मीराबहनको

२६ मार्च, १९३२

चि० मीरा,

वचनानुसार तुम्हारा पत्र आना चाहिये था, पर आया नहीं। लेकिन मुझे आश्चर्य नहीं है। ऐसा पत्र-व्यवहार रोक लिया गया था। लेकिन जहाँतक मेरा सम्बन्ध है और इसलिए जहाँतक मुझसे पत्र-व्यवहार करनेवालोंका सम्बन्ध है, अब यह रुकावट दूर हो गई है। इसलिए मैं तुमसे लगभग लौटती डाकसे जवाबकी उम्मीद रखता हूँ। तुम्हारा और तुम्हारे साथियोंका क्या हाल है, तुम क्या खाती हो, और दिन किस तरह बिता रही हो, लिखना।

अब महादेव भी हममें शामिल हो गये हैं और हमारी एक मजेकी मण्डली बन गई है। हममें सबसे परिश्रमी कतैया वही है। अपने कमजोर हाथोंके कारण मैं उससे बाजी नहीं मार पाता। मेरा दूधरहित भोजन चल रहा है; खानेकी चीजोंकी सूचीमें लगभग कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है। मेरा खयाल है कि मैंने तुम्हें उसमें रोटी शामिल कर लेनेकी बात लिख दी थी। अभी तक उससे कोई नुकसान मालूम नहीं होता। मेरा वजन १०५$\frac{१}{२}$ और १०६$\frac{१}{२}$ के बीच घटता-बढ़ता रहता है। यह बुरा नहीं है। और लोग भी बिलकुल अच्छी तरह हैं।

हम सबकी तरफसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१६) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६८२ से भी।

२८८. पत्र : मीराबहनको

२६ मार्च, १९३२

चि० मीरा,

मैं साथवाला पत्र[1] भेज ही रहा था कि तुम्हारे दो उत्कृष्ट पत्र मिले। इसलिए मैं उसे भेजना मुल्तवी करके यह पत्र लिख रहा हूँ। अबतक तुम्हें मालूम हो गया होगा कि मैं क्यों नहीं लिख पाया था। हम आखिर कैदी हैं। जैसी नियमितता स्वतन्त्र लोग अपने लिए निश्चित कर सकते हैं, हम वैसी नियमितता की आशा नहीं रख सकते। परन्तु इस तरहकी देर-सबेरमें कुढ़नेकी कोई बात नहीं है। इन्हें अनिवार्य मान लेना चाहिए। आशा है, आइन्दा सब बातें अबाधित रूपमें होती रहेंगी। परन्तु जब-कभी किसी किस्मकी अनपेक्षित रुकावट पैदा हो जाये, तो चिन्ता न करके यह सोच लेना कि 'हम कैदी हैं।'

मुझे खुशी है कि तुम वजन बढ़ानेमें सफल हुई। तुम्हारी लम्बाई-चौड़ाईको देखते हुए, १३२ पौंड वजन में तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। लेकिन गर्मी महसूस होना ठीक नहीं है। नमक छोड़कर तुमने अच्छा किया। तुम २-३ दिनके लिए दूध और मक्खन भी छोड़ दो तो ठंडक मालूम होगी।

तुम्हारा पढ़नेका शौक देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। किसीसे ग्रिफिथ्स-कृत 'रामायण' का पूरा अनुवाद और ११ मुख्य उपनिषदोंका अनुवाद जुटा लो। इस बारके लिए इतना काफी होगा।

हिन्दीके लिए तुम्हें 'बाल रामायण' प्राप्त कर लेनी चाहिए। चूँकि अब कथा मालूम हो गई है, इसलिए तुम्हें उसे हिन्दीमें समझनेमें दिक्कत नहीं होगी।

मुझे लॉर्ड इर्विनके पत्र[2] की नकल पहले ही मिल गई थी।

मुझे भी रोमाँ रोलाँके कोई समाचार नहीं मिले हैं। लेकिन मैं चिन्ता नहीं करता। इस काममें इस प्रकारकी बाधाएँ आती ही रहती हैं।

आज तो यहीं खत्म करना पड़ेगा, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि यह पत्र यहाँसे आज रवाना हो जाये।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१७) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६८३ से भी।

१. देखिए पिछला पत्र।

२. "मेरे खयालसे बापूका मतलब लॉर्ड इर्विन (अब लॉर्ड हैलीफैक्स) के उस पत्रसे है जो उन्होंने मुझे लिखा था।" — मीराबहन।

२८९. पत्र : चिमनलाल एन० शाहको

२६ मार्च, १९३२

चि० चिमनलाल,

तुम बाँसके चरखेके बारेमें क्या चाहते हो? मुझे तो उसको देखनेकी जरूरत नहीं है। उसे देखना चाहिए जो ज्यादा सूत दे सके। यह चरखा मजबूत और दूसरे प्रकारसे अच्छा होगा तो सस्ता पड़नेके कारण चल निकलेगा। हम भी उसे काममें लायें, क्या इसकी जरूरत समझते हो? मैं यहाँसे उसमें चोंच नहीं गड़ा सकता।

अब नाक कैसी है?

शारदा मालिश या सूर्यस्नान क्यों नहीं करती? उसे वह पसन्द नहीं इसलिए या आलसके कारण?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० १२) से।

२९०. पत्र : देवदास गांधीको

२६ मार्च, १९३२

चि० देवदास,

साथी कैदियोंको लिखनेकी अनुमति आज मिली है, इसलिए यह पत्र। तेरा ध्यान तो रोज आता रहता है। महादेव यहीं आ गया है। हम तीनों मजेमें हैं। और बातें तेरा उत्तर पानेके बाद। तबीयत, पढ़ाई-लिखाई और संगी-साथियोंके समाचार देना। लक्ष्मीको मेरे पत्र नियमसे जाते हैं और सुन्दर हिन्दीमें उसके पत्र आते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०२२) से।

२९१. पत्र : जमनालाल बजाजको

२६ मार्च, १९३२

चि० जमनालाल,

तुम्हें और अन्य साथी-कैदियोंको लिखनेकी आज छूट मिल गई है। इसलिए मुझे जवाब देनेकी अब तुम्हें भी छूट मिल जानी चाहिए।

अपनी तबीयत और खुराकका विस्तृत समाचार तुरन्त देना। हम सब चिन्ता अनुभव करते हैं। दूसरे साथी कौन हैं, कैसे हैं? डॉ० सुमन्त[1] कैसे हैं? सरदार कहते हैं कि मेरी ही तरह दीवान मास्टरके दाँत नहीं हैं। उसके क्या हालचाल हैं? कौन-कौन हो, इसकी खबर नहीं है। पन्नालाल[2] है, यह खबर गंगाबहन[3] से मिली।

सभी साथियोंको हमारे वन्देमातरम्। महादेव यहाँ पहुँच गये हैं, यह तो तुम्हें मालूम हो गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २८९६) से।

२९२. पत्र : मणिबहन पटेलको

२६ मार्च, १९३२

चि० मणि,

आज मुझे साथी कैदियोंको लिखनेकी छूट मिली है, इसलिए लिख रहा हूँ। मुझे यदि लिखनेकी छूट है तो जिसे मैं लिखूँ, उसे उत्तर देनेकी छूट मिलनी ही चाहिए। मुझे तुरन्त उत्तर लिखना। लीलावती,[4] नन्दूबहन,[5] मृदु[6], आदि दूसरी बहनोंको आज नहीं लिखता। उनके समाचार भी देना। और कौन हैं?

१. डॉ० सुमन्त मेहता।
२. पन्नालाल झवेरी; गंगाबहनका सौतेला लड़का।
३. गंगाबहन झवेरी।
४. हरिलाल देसाईकी पत्नी।
५. नन्दूबहन कानूगा।
६. मृदुला साराभाई।

महादेव यहाँ आ गये हैं। हम तीनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती मणिवहन पटेल,
कैदी
जेल, बेलगाँव

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने, पृष्ठ ८०।

२९३. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

२६ मार्च, १९३२

चि० निर्मला,

तेरे बड़े भैयाका वजन बढ़ा है और पाँव इतना ठीक हो गया है कि अब चल-फिर लेता है। चिन्ता बिलकुल नहीं करनी है। भाई-बहन समान होते हैं। उससे पूछकर जान लेना। बहनका काम भाईका भला करना है, इसमें उम्रका कोई सवाल नहीं होता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६८) से।

२९४. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

२७ मार्च, १९३२

चि० शारदा,

उस भजनका स्मरण कर जिसमें कहा गया है कि "मेरे लिए एक डग ही बस है"। नई स्थितिमें क्या करेंगे, उसका विचार अभीसे क्यों किया जाये? उस वक्तका उपाय उसी वक्त सूझेगा। सामान्य तौरपर कहा जा सकता है कि स्वराज्य पा जानेपर भी बहुत-सी बातें सीखनेके लिए बची रहेंगी। किन्तु इतना तो तू जानती ही है न कि १६ वर्षसे ऊपरके सारे लोग तब अपनी स्वेच्छासे कार्य कर सकेंगे। मेरे-जैसे लोग तो केवल सलाह देनेका काम करेंगे।

तू मुझे इस बातका जवाब तो दे कि मालिश क्यों नहीं करती और सूर्यस्नान क्यों नहीं करती?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९०८)से; सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला।

२९५. शिक्षाके विषयमें कुछ विचार[1]

२८ मार्च, १९३२

जॉन रस्किन एक उत्तम प्रकारका लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ था। उसका देहान्त १८८० के आसपास[2] हुआ। उसकी एक पुस्तकका[3] मुझपर बहुत ही गहरा असर पड़ा और उसीके सुझाये हुए रास्तेके अनुसार मैंने एक क्षणमें जिन्दगीमें महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन कर डाला। यह बात ज्यादातर आश्रमवासी तो जानते ही होंगे। उसने सन् १८७१ में सिर्फ मजदूर-वर्गको ध्यानमें रखकर एक मासिक-पत्र लिखना शुरू किया था। उन पत्रोंकी तारीफ मैंने टॉल्स्टॉयकी किसी रचनामें पढ़ी थी। मगर वे पत्र मैं आजतक जुटा नहीं सका। उसकी प्रवृत्ति और रचनात्मक कार्यके विषयमें एक पुस्तक मेरे साथ आई थी, उसे यहाँ पढ़ा। उसमें भी उन पत्रोंका उल्लेख था। इससे मैंने रस्किनकी एक शिष्याको विलायतमें लिखा। वही इस पुस्तककी लेखिका हैं। वह बेचारी गरीब है; इसलिए ये पुस्तकें कहाँसे भेज सकती थी? मूर्खतासे या झूठी विनयमें आकर मैंने उसे आश्रमसे रुपया मँगा लेनेको नहीं लिखा। इस भली स्त्रीने अपनी अपेक्षा अधिक समर्थ मित्रको मेरा खत भेज दिया; वे 'स्पेक्टेटर' के मालिक हैं। उनसे मैं विलायतमें मिला भी था। उन्होंने ये पत्र पुस्तकाकार चार भागोंमें छपाये हैं, सो भेज दिये। इनमें से पहला भाग मैं पढ़ रहा हूँ। इनमें विचार उत्तम हैं और हमारे बहुत-से विचारोंसे मिलते-जुलते हैं — यहाँतक कि अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैंने जो-कुछ लिखा है और आश्रममें हम जो भी आचरण करते हैं, वह रस्किनकी इन रचनाओंसे चुराया हुआ है। 'चुराया हुआ' शब्दका अर्थ तो समझमें आ ही गया होगा। जिससे कोई विचार या आचार लिया हो, उसका नाम छिपाकर जब यह बताया जाये कि यह हमारी अपनी कृति है, तो वह चुराया हुआ माना जाता है।

रस्किनने बहुत लिखा है। उसमें से इस बार तो थोड़ा ही देना चाहता हूँ। वह कहता है कि इस कथनमें गम्भीर भूल है कि बिलकुल अक्षरज्ञान न होनेसे कुछ होना अच्छा ही है। रस्किनकी साफ राय यह है कि जो सच्ची है, आत्माका ज्ञान करानेवाली है, वही शिक्षा है और वही लेनी चाहिए। और बादमें वह कहता है कि इस दुनियामें मनुष्यमात्रको तीन चीजों और तीन गुणोंकी आवश्यकता है। जो इन्हें हासिल करना नहीं जानता, वह जीनेका मन्त्र ही नहीं जानता। और इसलिए ये छः चीजें शिक्षाका आधार होनी चाहिए। इस तरह मनुष्यमात्रको बचपनसे — फिर भले वह लड़का हो या लड़की — जानना ही चाहिए कि साफ हवा, साफ

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २४/२९-३-१९३२ के साथ भेजा गया था।

२. उसका देहान्त १९०० में हुआ था।

३. **अनटू दिस लास्ट।**

पानी और साफ मिट्टी किसे कहते हैं, इन्हें किस तरह रखा जाये और इनका उपयोग क्या है। इसी तरह तीन गुणोंमें उसने गुणज्ञता, आशा और प्रेमको गिना है। जिनमें सत्यादिकी कद्र नहीं, जो अच्छी चीजको पहचान नहीं सकते, वे अपने घमण्डमें फिरते हैं और आत्मानन्द नहीं पा सकते। इसी तरह जिनमें आशावाद नहीं यानी, जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शंका रखते हैं, उनका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता। और जिनमें प्रेम नहीं यानी, अहिंसा नहीं, जो जीवमात्रको अपने कुटुम्बी नहीं मान सकते, वे जीनेका मन्त्र कभी नहीं साध सकते।

इस बातपर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। यदि यह फिर किसी वक्त समाजके समझने लायक ढंगसे दे सकूँ तो ठीक ही होगा। आज तो इतनेसे ही सन्तोष कर लेता हूँ। साथ ही इतना और कह दूँ कि जो कुछ हम अपने देहाती शब्दोंमें विचारते रहे हैं और आचरणमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं, लगभग वही सब रस्किनने अपनी प्रौढ़ और विकसित भाषामें और अंग्रेज जनता समझ सके, इस ढंगसे पेश किया है। यहाँ मैंने दो अलग भाषाओंकी तुलना नहीं की है, बल्कि दो भाषा-शास्त्रियोंकी की है। रस्किनके भाषा-शास्त्रके ज्ञानके साथ मेरे-जैसा आदमी मुकाबला नहीं कर सकता। मगर ऐसा समय जरूर आयेगा जब अपनी भाषाका हमारा प्रेम व्यापक होगा; जब भाषाके पीछे धूनी रमानेवाले रस्किन-जैसे शास्त्री निकल आयेंगे, तब वे उतनी ही प्रभावशाली गुजराती लिखेंगे जितनी प्रभावशाली अंग्रेजी रस्किनने लिखी है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२९६. पत्र : अमतुस्सलामको

२८ मार्च, १९३२

प्रिय अमतुल,

मुझे अचरज हो रहा था कि तुम्हारा कोई खत क्यों नहीं आया। नारणदास मुझे तुम्हारे बारेमें बताते रहे। अब तुम्हारा खत आया, सो अच्छा लगा। कुछ भी लिये बिना डॉ० शर्माने तुम्हारा इलाज किया, यह उनकी भलमनसी है। वे अपनी जिन किताबोंकी सिफारिश करें, वे तुम मुझे भेज सकती हो। तुम्हारे लिए कोई जगह तय कर देना थोड़ा मुश्किल है। तुम्हें या तो किसी पहाड़पर या समुद्रके किनारे जाना चाहिए। मुझे लगता है कि तुम पोरबन्दर या सासवड जा सकती हो। अभी तो और कोई स्थान मेरे खयालमें नहीं आ रहा है। जो तुमने कमाया है, उसे किसी गलत कदमसे खो न देना। अगर तुम्हारे अपने लोगोंमें से कोई मसूरी रहता हो, तो वहाँ जानेमें हिचकिचाना नहीं चाहिए। मैं नारणदाससे सहमत हूँ कि गरमीके इन दिनोंमें तुम्हें आश्रममें नहीं रहना चाहिए।

अलबत्ता, तुम जब चाहो, आ सकती हो और मुझसे मिल सकती हो। सरदार वल्लभभाई और महादेव मेरे साथ हैं। दाहिने हाथसे लिखनेमें कुछ दर्द होता है, इसलिए बायाँ हाथ काममें ला रहा हूँ।

प्यार,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २३८) से।

२९७. पत्र : एच० डब्ल्यू० एमर्सनको

२८ मार्च, १९३२

प्रिय श्री एमर्सन,

बम्बईके सूचना निदेशकका इस आशयका एक पुरजा पढ़कर मुझे दुःख हुआ कि बम्बई-सरकार रास तथा ऐसे ही अन्य गाँवोंके 'जिद्दी' किसानोंकी जमीनें बेच डालनेका इरादा रखती है। मैं नहीं जानता कि पिछले वर्ष लॉर्ड इर्विनने बातचीतके दौरान जो बात कही थी, वह आपको याद है या नहीं। कहा गया था कि पहलेवाले सत्याग्रह आन्दोलनके दौरान जिन परिस्थितियोंके कारण सरकारने रासमें कुछ जमीनें बेच दीं, उन परिस्थितियोंके दुबारा पैदा होनेपर ऐसा फिर किया तो नहीं जाना चाहिए। मेरे कहनेका यह आशय नहीं है कि लॉर्ड इर्विनका यह कथन उस समयकी उनकी निजी इच्छासे ज्यादा कुछ था; लेकिन इस बातपर मुझे दुःख होता ही है कि एक सम्माननीय और ऊँचे पदाधिकारीकी ऐसी सभी उदार इच्छाएँ उपेक्षित या नजरअन्दाज कर दी जा सकती हैं। लॉर्ड इर्विनके अपने इस कथनके अलावा भी मैं चाहूँगा कि इस सम्बन्धमें, सरकारी अधिकारियोंके व्यवहारके कारण हो या कांग्रेसियोंके व्यवहारके कारण, जो भी कटुता शेष रह जाती है, वह यदि एकदम समाप्त नहीं की जा सकती तो भी उसकी विरासतोंको कम-से-कम तो कर ही डालना चाहिए। निश्चय ही ऐसा कोई काम नहीं किया जाना चाहिए जो फिर मिटाया न जा सके और दोनों पक्ष शायद आगे चलकर जिसे बुरा कहें या जिसके लिए हमारी पीढ़ियाँ हमें बुरा कहें।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेज़ीसे]

गृह विभाग, राजनैतिक, फाइल सं० १४/१७, १९३२, पृष्ठ ७; सौजन्य: भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार।

२९८. पत्र : तिलकनको[1]

२८ मार्च, १९३२

घमण्ड थोथा होता है। स्वाभिमान ठोस चीज है। किसीके स्वाभिमानको दूसरेसे ठेस नहीं पहुँच सकती। स्वाभिमानको धक्का अपनेसे ही लगता है। चूंकि घमण्डको सदा बाहरसे ही आघात लगता है इसलिए दूसरे उसको ठेस पहुँचा सकते हैं।

ईश्वरको साक्षात् देखा, इस प्रयोगमें 'साक्षात्' का अर्थ अक्षरशः नहीं लेना चाहिए। यह प्रयोग तो हमारी भावनाकी निश्चितता बतानेके लिए है। ईश्वर तो निराकार है। वह आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टिसे ही दिख सकता है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ५२।

२९९. एक पत्र

२८ मार्च, १९३२

भाई,

मनको मजबूत बनानेके लिए सुबह किये गये निश्चयका दृढ़तासे पालन करें। कुछ दिनोंके बाद हफ्ते-भरके लिए संकल्प करें। इस तरह वह जीवन-भरका हो जाता है। व्यर्थका एक भी विचार मनमें कदापि न आने दें। इसीसे राम-नामकी महिमा है। यह तानपूरा है; अन्य सारे विचार भिन्न-भिन्न वाद्य और संगीत हैं? तानपूरा तो छिड़ा ही रहना चाहिए। शरीरके लिए निश्चिन्तताकी आवश्यकता है। लगता है, आपका खयाल है कि मन निरोग हो जाये तो शरीर अच्छा हो ही जायेगा; फिर भी शरीरका उपचार तो करना ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८९८७) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. आश्रमका एक विद्यार्थी।

३००. पत्र : मंगला शं० पटेलको

२८ मार्च, १९३२

चि० मंगला (लाड़ली),

गणित बुद्धिका विषय तो है ही। उसी प्रकार 'गीता' के श्लोकोंका अर्थ, इतिहास, भूगोल, आदि जिन विषयोंको समझनेमें मस्तिष्क लगाना पड़े, बुद्धिके विषय हैं। 'गीता' को कण्ठस्थ करना बुद्धिका विषय नहीं है। कातना बुद्धिका विषय हो सकता है। जो कातते हुए कातनेकी पद्धति या चरखेकी बनावटमें फेरफार सोचते और करते हैं, कहा जा सकता है कि वे अपनी अक्ल दौड़ाते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८०) से। सी० डब्ल्यू० ४४ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन ब० देसाई।

३०१. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२८ मार्च, १९३२

चि० प्रेमा,

तू चाहे जो सवाल पूछना। ऐसा मौका शायद फिर कभी न आये। तू नहीं जानती कि मैं एक लकीरमें भी जवाब दे सकता हूँ और पन्ने भी भर सकता हूँ। ज्यादा नहीं लिख सकूँगा तो थोड़ेमें ही पूरा कर दूँगा। फिर भी उत्तर अधूरे नहीं होंगे।[1]

मेरे दाहिने हाथपर तेरी जीभका असर हुआ, यह तो ऐसा माननेके बराबर हुआ कि कौआ डालीपर बैठा और डाली टूटी, इसलिए कौवेके भारसे ही डाली टूटी।

मुझे स्वप्न आते जरूर हैं, लेकिन शायद ही कभी उनपर मेरा ध्यान जाता है। जो स्वप्न आते हैं, उन्हें मैं कोई महत्त्व नहीं देता।

हमारे पुस्तकालयमें कार्लाइल और रस्किनकी पुस्तकोंका पूरा सेट होना चाहिए। अगर हो तो उसकी सूची भेजना।

हमारे पास सब पुस्तकोंकी कितनी सूचियाँ हैं? अगर एकसे ज्यादा हों तो एक मुझे भेज देना।

१. प्रेमाबहनको उस समय गांधीजी बायें हाथसे ही पत्र लिखते थे।

बड़ी बहनोंके बारेमें मैंने तुझे कभी लिखा नहीं। इस बार जी में आया कि लिखूँ। बहनें किसी भी सामाजिक हेतुसे आपसमें मिलती मालूम नहीं होतीं। इसका अर्थ यह है कि संघ टूट गया है। इस बारेमें लक्ष्मीबहन और दुर्गाको मैंने लिखा तो है, लेकिन मेरा कुछ असर होता दीखता नहीं है। साथ मिलकर काम करनेकी जिम्मेदारी लेनेकी शक्ति बहनोंमें आनी चाहिए। तुझमें हिम्मत और आत्मविश्वास हो, तो इस कामको हाथमें ले। अगर हाथमें ले, तो कभी हार नहीं माननी है, इस निश्चयके साथ ही हाथमें लेना। सब बातें हमारे अनुकूल हों तो ही हम काम करें, यह तो न करनेके बराबर होगा। बढ़ई चाहे जैसी लकड़ीके टुकड़ेमें से आकार गढ़ लेता है, शिल्पी चाहे जिस पत्थरमें से मूर्ति गढ़ लेता है, वैसे ही चाहे जैसे मनुष्योंके साथ रहना और उनसे काम लेना हमें आ जाये, तभी हमारी मनुष्यता की कीमत मानी जायेगी। मुझे तो लगता है कि हमें यही इस दुनियामें सीखना है; और इसके लिए हमारे भीतर सागर-जैसी उदारता होनी चाहिए। किसीसे मिलते ही उसके दोष देखकर हम डरने लगें, तब तो काम बिगड़ेगा ही। दोष तो हैं ही — हमारे भीतर भी हैं और दूसरोंमें भी। इसके बावजूद भी मिलना है, ऐसा निश्चय हो तो ही काम बनता है। मैं जानता हूँ कि यह काम बहुत कठिन है। मेरा तो वर्षोंसे यही धन्धा रहा है। लेकिन मैं सफल हुआ हूँ, ऐसा नहीं कह सकता। थोड़ी-सी सफलता मिली मालूम होती है, इसलिए दूसरोंको रास्ता दिखानेकी हिम्मत या धृष्टता मैं करता हूँ।

अब तुझे जो ठीक लगे, वही करना। यह पत्र बहनोंके सामने रखना चाहे तो रख सकती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७८) से। सी० डब्ल्यू० ६७२६ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

३०२. पत्र : विमलाबहन ए० पटेलको

२८ मार्च, १९३२

चि० विमला,

नरसिंहभाईने[1] मुझे तेरे पत्र और पुस्तकोंके लिए तैयार कर रखा था। शायद तुझे मालूम हो कि मैं उनसे मिल चुका हूँ। उनकी तबीयत अच्छी थी और वे प्रसन्न थे। अब तो सबके साथ रहते हैं। तूने जो पुस्तकें भेजी हैं, उन्हें समय मिलनेपर पढ़ूँगा। तेरा काम ठीक चल रहा होगा।

माताजी को हम दोनोंके वन्देमातरम्। तुझे आशीर्वाद।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२७५) से।

१. विमला ए० पटेलके पिता।

३०३. पत्र : वनमाला न० परीखको

२८ मार्च, १९३२

चि० वनमाला,

तेरे बराबर बड़ी लड़कीमें इतनी बातें चाहिए: अच्छा शरीर, अच्छा मन, शरीर और मनका उद्यम। इन उद्यमोंमें कपास-सम्बन्धी सभी क्रियाएँ, रसोई करना, विविध खेल, तैरना, संगीत, गुजराती, हिन्दी और संस्कृतका ज्ञान, सामान्य अंकगणित, इतिहास, भूगोल, गीता-ज्ञान। नक्षत्रों और वनस्पतियोंकी पहचान। इनमें से कुछ न हो तो अधूरापन मानना। लेखन-कलाको तो भूला ही जा रहा था।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

मोहनको[1] ज्वर क्यों आ रहा है? क्या डॉक्टरको दिखा दिया है?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७०) से। सी० डब्ल्यू० २९९३ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई।

३०४. एक पत्र

२८ मार्च, १९३२

जैसे पेड़के पत्ते साथ ही रहते हैं, उसी तरह समान आचार-विचारवालोंकी बात है। यह स्वाभाविक आकर्षण है।

साथी-सहयोगी करोड़ों हो सकते हैं। मित्र तो एक ईश्वर ही है। दूसरी मित्रता ईश्वरकी मित्रतामें बाधक है, यह मेरा मत और अनुभव है।

मैं यह नहीं जानता या मानता कि कृष्ण भगवान योगबलसे या दूसरे बलसे भौतिक साधनोंके बिना आया-जाया करते थे। सच्चे योगी विभूति-मात्रका त्याग करते हैं, क्योंकि उनका योग सिर्फ साक्षात्कार साधनेके लिए होता है। उसकी किसी हल्की चीजके साथ कैसे अदला-बदली की जा सकती है?

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ५३।

१. वनमाला न० परीखका भाई।

३०५. पत्र : नारणदास गांधीको

२४/२९ मार्च, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक कल मिली। गंगाबहन मिलकर गई। हमें इन्दुके शरीरके बारेमें विचार करना चाहिए। यह बंगलौरसे १०० पौण्ड वजन लेकर आया और अब ८० रह गया है। इसका कारण समझना। वह भोजन कहाँ करता है; भोजनमें क्या लेता है, बंगलौरमें क्या खाता था, किस तरह रहता था, आश्रममें उसका शरीर किस तरह ठीक रह सकता है—ये सारी बातें उससे पूछकर समझ लेना। आश्रममें जिन-जिनकी तबीयत ठीक न रहती हो, उन सभीके बारेमें ये बातें हमें जान लेनी चाहिए और जो उपचार और फेरफार हम कर सकते हैं और जो हमारे लिए उचित हैं, अगर उनके बाद भी वे अच्छे न हों तो ऐसे लोगोंको दूसरी किसी जगह भेज देना चाहिए, जैसे बीजापुर या वर्धा। इन बातोंपर विचार कर लेना और अगर किसी एकको इसके लिए जिम्मेदार बनाना चाहो तो वैसा तय कर देना। तुम हरेक आदमीके बारेमें पूछताछ करते रहो, यह तो नहीं हो सकता। तुमपर तो अन्तिम निर्णय लेनेका बोझ-भर रहना चाहिए।

मैंने मुलाकातके बारेमें जो विशेष पत्र[1] पिछले सप्ताह दिया था, वह तुम्हें मिल चुका होगा, ऐसा मानकर मैं यहाँ और नहीं लिखूँगा। चम्पाके विषयमें भी उसी पत्रमें लिखा था। दो-तीन बातें और भी थीं।

इन्दुने अपने पत्रमें एक अच्छा सवाल किया है। मैंने उसका जो जवाब[2] दिया है, सो देख लेना। साथ ही तुम, पण्डितजी, प्रेमाबहन, चिमनलाल, वालजी और जो दूसरे इस विषयमें विचार कर सकते हों, उनको इसपर सोचना चाहिए। भीष्मको मारनेके लिए शिखण्डीको सामने करवाने और जयद्रथको मारनेके लिए सुदर्शन-चक्रसे सूर्यको बादलोंमें ढँकनेका काम करके कृष्णने गलत किया या नहीं, इस प्रश्नके उपरान्त इन्दुने पूछा है कि आश्रममें इस तरहके नाटक खेले जा सकते हैं या नहीं। मुझे यह प्रश्न बहुत पसन्द आया। यदि नाटकका झुकाव ऐसी बातोंको दोष-रूपमें प्रस्तुत करना हो तो मैं आश्रममें इनके खेले जानेमें कोई बाधा नहीं मानता। फिर भी ऐसे नाटकोंके खेले जानेके औचित्यको लेकर तो मेरे मनमें शंका है ही। महापुरुषोंने दोषपूर्ण काम किये हों और हमने उन दोषोंको दोषके रूपमें ही प्रस्तुत किया हो तो भी अगर उनका वर्णन अनावश्यक है तो बालकोंके सामने इस प्रकारकी बातें रखते रहना मुझे श्रेयस्कर नहीं लगता। वह कार्य दोषपूर्ण था, यह तो वे भूल जाते हैं; इतना ही याद रखते हैं कि इसे महापुरुषोंने भी किया है इसलिए हम भी कर

१. देखिए पृष्ठ २०२-३।

२. देखिए "पत्र : इन्दु पारेखको", २४-२-१९३२।

सकते हैं। इस प्रकारके प्रभाव पड़नेकी सम्भावना है। इसलिए मुझे ऐसे प्रसंग चुनकर नाटक-रूपमें सामने रखना ठीक नहीं लगता। हमारे नाटक बिलकुल दूसरी तरहके होने चाहिए। मुझे तो ऐसा ही लगता है। जैसे रवीन्द्रनाथका 'मुक्त धारा' और हमने यहाँ मैथिलीशरण गुप्तका 'अनघ' पढ़ा, वह भी बहुत अच्छा है। और यह वहाँ बालकोंके आगे रखने योग्य है। इसकी हिन्दी सरस और अत्यन्त मीठी है, भाव उत्तम हैं।

मैं हरिदासके समाचार लेता रहता हूँ।

क्या कहींसे कृष्णदासके[1] समाचार मिलते हैं? न मिलते हों तो महावीरप्रसाद को लिखकर पता लगाओ।

अमतुलबहन जरूर मुझसे मिलने आ सकती है। तुम्हारी और कनुकी खुजली अब खत्म होनी ही चाहिए।

विद्यापीठके पुस्तकालय आदिके बारेमें यहाँ बैठकर तो हम सबको ऐसा लगता है कि हमें ऐसे द्वैधशासनमें नहीं पड़ना चाहिए। तब तो सूत्र दोनों संस्थाओंके हाथमें रहेंगे। या तो वे पूरा संचालन हमारे हाथमें दे दें या फिर जबतक अपने हाथमें रखना चाहें, खुद ही उसे अच्छी तरह अपने हाथमें रखें। फिर भी तुम्हें जैसा उचित लगे, करना। इस जेलमें जो बहनें हैं, उनसे मैं भेंट तो नहीं कर सकूँगा, फिर भी उन्हें पत्र लिखने और उनके पत्र पानेकी सुविधा रहेगी।

आनन्दीने अपने पत्रमें प्रेमाकी बात लिखी थी। उसके नाम पत्रमें मेरा जवाब[2] देख लेना। फिर इस बातपर और विचार जरूरी है। हमने बच्चोंको निर्भयता और सिर ऊँचा रखनेकी शिक्षा देकर अनजाने ही उन्हें ढीठ बना दिया है। बड़े भी इस दोषसे मुक्त नहीं हैं। कई बार उनकी धृष्टता दु:खदायक रूप ले लेती है। जान पड़ता है, आश्रममें कोई मेहमान आये थे; लड़कोंने उनकी बातोंके ठीक उत्तर नहीं दिये। एकने यह रास्ता बताया तो दूसरेने वह, और उन्होंने जो प्रश्न किये, उन्हें अनसुना कर दिया। कोई कार्यालयतक साथ तो खैर गया ही नहीं। आनन्दीके पत्रसे लगता है कि वह वहाँ कहीं आसपास ही थी। उसे पश्चात्ताप हुआ और उसने मानो अपनी त्रुटि स्वीकार करने और सुधारनेके खयालसे मुझे लिखा है। उसने पूछा है, ऐसे समय आश्रमवासियोंका कर्त्तव्य क्या है? कर्त्तव्यके विषयमें कोई शंका नहीं है; किन्तु जब प्रश्न पूछा ही गया है तो सबका ध्यान तुम इस तरफ खींचना। मैंने जो-कुछ आनन्दीको लिखा है, उसका विस्तार करके लोगोंको समझाना। मैंने अपने पत्रमें सामान्य सिद्धान्तको स्पष्ट करते हुए दो-एक वाक्य ही लिखे हैं।

वनमालाने लिखा है कि मोहनका शरीर हमेशा गरम बना रहता है; उसे ९९ डिग्री ज्वरांश रहता है। इसके बारेमें पूछताछ करना। जरूरी हो तो किसी डॉक्टरकी सलाह लेना। उसकी उमरके बच्चेको हमेशा इतना ज्वरांश क्यों रहना

१. कृष्णदास सिंहराय, गांधीजी के एक सचिव।

२. देखिए "पत्र: आनन्दी आसरको", २५-३-१९३२।

चाहिए। या हो सकता है, बच्चा होनेके कारण ही ज्वर मापने या नाड़ी देखनेसे हमें ज्वरका भान होता हो और सचमुचमें ज्वर न रहता हो। चंचल बच्चा दिन-भर दौड़ता-फिरता है; उसकी छातीकी धड़कन कुछ तेज रहेगी ही और थर्मामीटर लगाने या नाड़ीकी गति देखनेपर कुछ अधिक गर्मीका आभास हो सकता है। ऐसी हालतमें बच्चेकी मल-परीक्षा, जीभ, पाचनक्रिया और वजनको देखना चाहिए। बच्चेका वजन हर हफ्ते बढ़ना चाहिए। उसकी जीभ साफ और गीली होनी चाहिए और टट्टी साफ, बिना जोर लगाये तथा दुर्गन्धरहित होनी चाहिए। अगर ये सब बातें हों तो नाड़ी और थर्मामीटर क्या कहते हैं, इससे चिन्तित नहीं होना चाहिए। आश्रमकी हरेक माता और जेठालाल भी यह समझ-सीख लें।

अमतुलका पत्र था। उसमें उसने उसके दिल्लीके पतेपर पत्र लिखे जानेकी इच्छा प्रकट की थी। मैंने उसी पतेपर उसे लिखा है। अगर वह वहाँ आई हो तो उसे इतना बता देना। वह बेशक मुझसे आकर मिल सकती है। तुम्हारी इस रायसे मैं सहमत हूँ कि उसे गर्मीके दिनोंमें साबरमती नहीं रहना चाहिए। उसके पोरबन्दर, चोरवाड या सासवडमें रहनेका प्रबन्ध कर सको तो बहुत अच्छा रहे। अगर मसूरीमें उसके कोई रिश्तेदार हों तो वहाँ चली जाये। अगर वह अल्मोड़ामें पद्माके साथ रह सके तो यह भी उसके लिए अच्छा रहे। मैंने उसे भी पत्रमें यह सलाह दी है। जैसे प्रबन्धकी बात मैंने कही है, उसके लिए वैसे प्रबन्धमें मदद कर देना।

अभी तुम्हारा पत्र हाथमें लिया। उसमें प्यारेलालके नामपर निगाह पड़ी। वह जहाँ रह रहा है, शायद वहाँकी आबहवा ठंडी है। इसलिए अमतुल वहाँ रहे तो उसे शायद उसके साथ अच्छा भी लगेगा और वह प्यारेलालकी कुछ मदद भी कर सकेगी। सुलताना[1] और दूसरे बच्चे भी वहाँ हैं। इन सब बातोंको सुझाव ही मानना और वही करना जो उचित लगे।

मेरे और गंगाबहनके बीच पत्र-व्यवहार शुरू हो गया है। वह लिखती है, जेलमें सब बहनें अच्छी हैं।

तुमने चप्पलके तलेके लिए जो चमड़ा भेजा था, मुझे मिल गया है।

बिना दूधके भोजनका मेरा प्रयोग चल रहा है। अभीतक कोई हानि नहीं दिखी। इससे निष्कर्ष निकालता हूँ कि जो व्यक्ति शान्तिके साथ रह रहा हो, उसे दूधकी जरूरत नहीं है। आध्यात्मिक उन्नतिके विचारसे दूध लेना हानिकारक भी हो सकता है। फिर भी अभीतक तो यह एक अनुमान ही है। प्रयोग लम्बे अरसेतक सफलताके साथ चलता रहे तभी निश्चयपूर्वक कुछ कह सकता हूँ। मेरे बारेमें वैसे इतना तो है ही कि १९१८ तक, पेचिश होनेके पहले, मैं कितना भी श्रम करूँ, बिना दूधके रह लेता था। फिर भी अभी तो इन सारे अनुमानोंका कोई मूल्य नहीं

१. अमीना कुरैशीकी बेटी।

है। अभी तो इतना ही जरूरी है कि मैं तुम्हें हर हफ्ते प्रयोगके परिणाम लिखता रहूँ। फिलहाल कोई मेरे दृष्टान्तके अनुसार चलनेकी बात भी न सोचे।

बापूके आशीर्वाद[1]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२१६ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३०६. पत्र: आश्रमके बच्चोंको

२९ मार्च, १९३२

चि० बालको और बालिकाओ,

इस बार तुम्हारी चिट्ठी नहीं आई इसलिए सच कहें तो मेरा भी लिखना जरूरी नहीं था। फिर भी इस बार दरगुजर करता हूँ। ज्ञान केवल जिज्ञासुको दिया जाता है। जिज्ञासु वह है जिसे ज्ञानकी भूख है। तुम्हें भूख न हो तो जिस तरह बच्चेको बिना भूखके जबरदस्ती खिलाते-पिलाते रहनेसे वह बीमार हो जाता है, उसी तरह बिना भूखके जबरदस्ती दिया गया ज्ञान तुम्हें पचेगा नहीं। इसलिए हर बार तुम्हारी चिट्ठी आये इतना ही नहीं, उस चिट्ठीका सरस होना भी जरूरी है। सरस यानी मीठा अर्थात्, जिसे लिखनेमें तुमने रस लिया हो और मैं भी जिसे पढ़नेमें रस ले सकूँ। तुम्हें लेजिममें रस आये और तुम उसके विषयमें सरस पत्र लिखो तो भी सम्भव है, वह मेरे लिए नीरस ठहरे, क्योंकि मुझे उसके बारेमें कुछ भी नहीं मालूम; और यहाँ शायद उसे जाननेकी कोई सामग्री भी न हो। तब फिर मैं उसका सरस उत्तर कैसे दे सकता हूँ? अब तुम समझ गये होगे कि तुम्हारा पत्र सरस किन दो बातोंसे हो सकता है। मेरी ओरसे भी इन दोनों शर्तोंका पालन होना चाहिए। इसीलिए मैंने शारदाको एक चिट्ठीमें लिखा था कि अगर तुम्हें 'गीता' सम्बन्धी मेरे पत्रोंमें आनन्द नहीं मिल पाता तो वह मेरी ही कसर है। अस्तु।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८९८९ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. साधन-सूत्रमें इसके बाद लेख "शिक्षाके विषयमें कुछ विचार", २८-३-१९३२ दिया गया है।

३०७. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२९ मार्च, १९३२

चि० काका,

तुम सबको पत्र लिखनेकी अनुमति मुझे मिल गई है; इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ। अपनी तबीयतके समाचार देना। मैंने सुना था कि नरहरि और प्रभुदास भी तुम्हारे ही साथ हैं। इसलिए उनकी भी खबर देना। यह बात तुमपर ही डाली है, इसीलिए उन्हें नहीं लिख रहा हूँ। क्या कुछ पढ़-लिख रहे हो?

हम तीनों मजेमें हैं। . . .[1]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

मुझे तुम लोगोंको लिखनेकी अनुमति मिली है, इसलिए विश्वास है, तुम्हें मेरे पत्रका उत्तर देनेकी अनुमति भी मिल जायेगी।

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४८५) से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर।

३०८. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

३० मार्च, १९३२

प्रिय मेजर भण्डारी,

६ तारीख[2] के अपने पत्रके सिलसिलेमें मेरे पास 'गैर-राजनीतिक' शब्दकी परिभाषा पहुँचा दी गई है। देखता हूँ, वह मेरी अपनी परिभाषा-जैसी ही है। आपको उदाहरणके तौरपर आश्रमसे बाहरके ऐसे पाँच लोगोंके नाम भी भेजे गये थे जो शायद मुझसे मिलना चाहें या जिनसे शायद मैं मिलना चाहूँ। उनके बारेमें कोई जवाब नहीं मिला है। यदि जवाब दिया जा सके तो आभार मानूँगा। सरकारने जो सूची माँगी है, उसे तैयार कर सकनेकी दृष्टिसे मैं उस जवाबका इन्तजार कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

१. शेष अंश जेल-अधिकारियों-द्वारा काट दिया गया था।

२. देखिए "पत्र: एम० जी० भण्डारीको", ६-३-१९३२।

३०९. पत्र : डाह्यीबहन पटेलको

३१ मार्च, १९३२

चि० डाह्यीबहन,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। सेवा जितनी कठिन होगी, सेवक और सेविकाएँ उतनी ही कम मिलेंगी। इसीलिए तुम्हारी चिट्ठीसे मुझे कुछ अजब नहीं लगा। किन्तु कम सेवकोंके होते हुए भी, जो समझदार सेवक-सेविकाएँ काम कर रहे होते हैं, वे अधिक कर्त्तव्य-परायण होते हैं और अधिक बलिदान कर पाते हैं। इसलिए बादमें संख्या भी बढ़ जाती है। यह निरपवाद नियम है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२०६) से।

३१०. पत्र: कुसुम देसाईको

३१ मार्च, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तूने प्रतिज्ञा ली है तो पत्र अवश्य लिखती रहना। तेरा पच्चीसवाँ वर्ष शुरू हो गया है तो क्या हुआ? तेरे सामने अभी बहुत लम्बी जिन्दगी पड़ी है। उसमें तेरे बारेमें मेरे-जैसोंने जो आशाएँ बाँधी हों, उन्हें सफल करना। प्यारेलालसे मिलने अवश्य जाना। अपनी तबीयत मैं खुद इस बार अच्छी मानता हूँ। अभीतक दूधके बिना वजन टिका हुआ है और पिचकारीकी जरूरत नहीं पड़ती, इससे मुझे सन्तोष है। दायें हाथसे नहीं लिखा जा सकता, इसका मुझे दुख नहीं। बायें हाथकी आदत पड़ जायेगी। हम तीनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३३) से।

३११. पत्र : मोहन न० परीखको

३१ मार्च, १९३२

चि० मोहन,

तुम्हारे अक्षर बहुत छोटे-बड़े हैं। लिखावट सुधारो। यह अच्छा है कि तुम जल्दी उठते हो। क्या तुम्हें अंक आने लगे। न आते हों तो सीखना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१७६) से।

३१२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

३१ मार्च, १९३२

तुम्हारी कोई खबर नहीं मिली थी। इसलिए लाचार होकर तारामतीको पत्र लिखा। कल तुम्हारा पत्र मिला; खुशी हुई। वजन कम होनेका मुझे दुःख नहीं है। दूसरी दृष्टियोंसे स्वास्थ्य अच्छा रहना चाहिए। जलवायुकी दृष्टिसे तो नासिक अच्छा ही माना जाता है। जहाँ भी रहो, वहाँसे मुझे पत्र लिखते रहना। और यदि इससे तुम्हारे लिए दूसरोंको पत्र लिखनेमें विघ्न पड़े तो जिसे लिखनेकी आवश्यकता हो उसे मुझे लिख देनेके लिए कह देना। मेरे साथ यहाँ व्यवस्था यह है कि मैं चाहे जिस किसी कैदी-साथीको लिख सकता हूँ। इसका अर्थ यह मानना चाहिए कि वह मुझे उत्तर दे तो उसकी गिनती उन पत्रोंमें नहीं होगी जिन्हें लिखनेका उसे हक है।

. . . कैदमें[1] रहनेवालेके लिए जेलके बाहरकी दुनियाका विचार बिलकुल त्याज्य है। कैद होनेसे जो नया कर्त्तव्य प्राप्त हो जाता है, वहाँ उसका पालन करना ही कर्मयोग कहलायेगा।

"बुद्धौ शरणमन्विच्छ"[2] आदिका अर्थ सांख्य अर्थात् ज्ञानमार्ग नहीं है। "एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोगेत्विमां श्रृणु"में[3] जिस योगबुद्धिके विषयमें कहनेकी प्रतिज्ञा है, वही अर्थ यहाँ है। इसलिए, यदि तुलना करनी ही हो तो कर्मयोग और भक्तियोग की करनी है। किन्तु 'गीता' तुलना करनेके बदले ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनोंका मेल साधती है। एककी पूर्ण साधनाके लिए अन्य दोनों आवश्यक ही हैं। इसलिए ये तीनों अविभाज्य हैं। इन तीनोंमें कर्म थोड़ा विशेष बताया गया है तो वह केवल

१. साधन-सूत्रके अनुसार।
२. गीता, २-४९।
३. गीता, २-३९।

इसलिए कि उसमें भ्रम होनेकी कम गुंजाइश है। "नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।"[1] मैं यह मानता हूँ कि पुस्तक पढ़ते हुए पहले उसका सीधा अर्थ समझ लेना चाहिए; बादमें उसपर स्वतन्त्र रूपसे मनन करना चाहिए।

पुनर्जन्मके विषयमें तो शंकाकी गुंजाइश ही नहीं है। हमारा शरीर रोज थोड़ा-सा बदलता है और सात वर्षमें तो सारा बदल जाता है। लेकिन शरीर एक ही लगता है क्योंकि आकृति एक है। किन्तु यदि शरीर सात वर्षमें बदल जाता है तो जिसे हम मृत्युके नामसे जानते हैं, उसके आनेसे [बदलनेके बजाय] सब-कुछ नष्ट हो जाता है, ऐसा माननेका कोई कारण ही नहीं है। आत्मा शरीरसे भिन्न है ही। शरीरके नष्ट होनेपर वह नष्ट नहीं होती। तो फिर उसका सिर्फ स्थान-भर ही बदलता है। और यदि स्थान बदलता है तो वह अन्य देहमें क्यों नहीं जा सकती? किन्तु इस सबके बारेमें मिलनेपर ही चर्चा कर सकता हूँ। इस बीच इतना जरूर चाहता हूँ कि जिन अनेक बातोंके बारेमें तुम्हारे मनमें शंका हो, उनका पूरी तरह समाधान हो जाये। जो अर्थ पूछनेकी इच्छा हो, वह पूछ लेना।

मुझ लगता है कि मैं 'स्मृति' नहीं लिख सकता। मैं जो-कुछ कहता या लिखता हूँ, वह किसी विशेष पद्धतिके अनुसार किया गया विचार नहीं होता। सत्यकी आराधनाके सिलसिलेमें परिस्थितियोंसे पार पाने लायक शक्ति ही मेरे पास है। अर्थात् मैं शास्त्री नहीं हूँ और 'स्मृति' लिखनेका कार्य शास्त्रकारका है। पहले किशोरलालने मुझसे यह प्रश्न पूछा था। मुझसे बन सके तो जरूर लिखूँ। ईश्वरने जो योग्यता दी है, उसका सदुपयोग हो सके तो भाग्यशाली हूँगा।

हम तीनों मजेमें हैं। तीसरा महादेव है।

[पुनश्चः]

तू मेरे पास आनेका प्रयत्न उदासीन भावसे करता है, इसमें मुझे कोई बुराई नहीं लगती। इसमें सफलता मिल जाये तो अच्छा लगेगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १०५-७।

१. **गीता**, २-४०।

३१३. पत्र : वनमाला न० परीखको

३१ मार्च, १९३[२][1]

चि० वनमाला,

तेरी बीमारी समाप्त हो गई होगी। बहनोंके सीखनेके लिए सर्वश्रेष्ठ विषय शुद्ध आचार है। बाकी जो पसन्द आये, वह सीखना है। एक-सी उम्र हो तो स्वभाव भी एक-जैसे होंगे, यह निश्चित नहीं है।

सभी वनस्पतियाँ हमें देखकर नहीं लजा जातीं। जो लजाती हैं वे क्यों, सो मैं नहीं जानता। तुममें से कोई शोधक बुद्धिकी हो तो वह कारण खोजे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७६१)से। सी० डब्ल्यू० २९८४ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

३१४. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

१ अप्रैल, १९३२

चि० पण्डितजी,

सरदारका वजन घट गया है किन्तु तबीयत अच्छी है। यह ठीक है कि उन्होंने खुराकमें फेरफार किया था; लेकिन अब पहले [भोजनकी] जैसी बहार थी, लगभग वैसी ही फिर शुरू हो गई है। इसमें अधिकारियोंकी ओरसे तो कोई रोक थी ही नहीं। खाने-पीनेमें हम खुद जो मर्यादा बाँध लें, वही है।

शास्त्रोंका अर्थ लगानेका स्वर्ण नियम यह है कि जितने अर्थ किये गये हैं, वे टीकाकारोंकी अपनी-अपनी दृष्टिसे ठीक हो सकते हैं। मुमुक्षुके हृदयमें जो अर्थ उतर जाये, वह तो श्रद्धापूर्वक उसीपर दृढ़ रहे और उसे अनुभवमें सिद्ध करे। अर्थोंमें समन्वयादि बैठाना तो शास्त्रियोंका काम है। जिन्हें अपना आचार दृढ़ करना है, उनके लेखे तो स्वीकृत अर्थके अनुसार आचरण करना ही समन्वय है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२४) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१. साधन-सूत्रमें '१९३१' है; किन्तु तब गांधीजी जेलमें नहीं थे; देखिए पृष्ठ २४०।

३१५. पत्र : दूधीबहन वा० देसाईको

२ अप्रैल, १९३२

चि० दूधीबहन,

मेरे हाथमें और कुछ नहीं, सावधानीके विचारसे मैं दाहिना हाथ काममें नहीं ला रहा हूँ। तुम्हारा वजन बढ़ना नहीं चाहिए। थोड़ा उपवास करो या फिर सिर्फ फलोंपर रहो। यह निरर्थक वजन ही है। मक्खन निकाले हुए मट्ठेपर रहो तो भी शायद काफी हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२५) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

३१६. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

२ अप्रैल, १९३२

चि० निर्मला,

तुम सब ऐसा-कुछ सोचती जान पड़ती हो मानो स्वराज्य अर्थात् बापूराज्य। ऐसा हो तो वह स्वराज्य कदापि नहीं होगा। स्वराज्य तो जिनकी बुद्धि परिपक्व मानी जाती हो, उनका राज्य होगा। ऐसे लोग जो निश्चित करेंगे, वह होगा। हम आशा करें कि आज मोटरोंका जितना जोर है, तब इससे कम होगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

महादेव मजेमें है। पाँवका दर्द बहुत कम है। रोटी, दाल, भात, शाक वगैरह जो और जितना घरमें खाता था, यहाँ भी खाता है। चिन्ताका लेशमात्र कारण नहीं है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४६९) से।

३१७. पत्र : पुरातन बुचको

२ अप्रैल, १९३२

चि० पुरातन,

जब कुछ दिनोंतक आराम लेना ही है, तो क्या तुम अल्मोड़ा, देवलाली, माथेरान, बेलगाँव या चोरवाड, माँगरोल, अथवा डुमस-सरीखे किसी समुद्री किनारे नहीं जा सकते?

बुजुर्ग प्रार्थना करते थे इसलिए मैं भी [बाल्यावस्थामें] प्रार्थना करता था। दक्षिण आफ्रिकामें १८९३ में हृदय-मंथन हुआ और मैं ज्ञानपूर्वक आस्तिक हो गया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१६५) से।

३१८. पत्र : मंगला शं० पटेलको

३ अप्रैल, १९३२

चि० मंगला (लाड़ली),

अपने आसपासके लोगोंको जानना जरूरी है। इसी प्रकार आसपासके वृक्षों, घास, आदिके नाम और गुण जानने चाहिए। चन्द्रभागाका[1] उद्‌गम जान लेना चाहिए। वहाँके जन्तुओं, पक्षियों, पशुओंको जानना, उनके नाम न हों तो नाम रखना, वहाँकी भूमिके गुण-दोष जानना, आसपासकी इमारतोंका इतिहास जानना। इतना जान लेना काफी होगा न? इस सबमें से कितना जानती है?

निरीक्षण-शक्ति बहुत बारीकीके साथ देखने-जाँचनेसे बढ़ती है।

मैं किताबके सहारे आकाश-दर्शन सीखा हूँ।

देर होती हो तो थोड़ा लिखो, किन्तु लिखो सावधानीसे और धीरे-धीरे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८१)से। सी० डब्ल्यू० ४५ से भी; सौजन्य : मंगला ब० देसाई।

१. आश्रमके निकट बहनेवाली एक छोटी नदी जो अब सूख गई है।

३१९. पत्र : नारणदास गांधीको

३ अप्रैल, १९३२

चि० नारणदास,

अधिकतर तुम्हारा पत्र बुधवारको ही मिल जाता है। इस बार भी इन्दुने सुन्दर प्रश्न लिख भेजा है। क्या आश्रममें तलवार, खुखरी, आदिका अभ्यास कर सकते हैं?[१] आश्रममें तलवार और खुखरी, आदि कब सिखाने लगे, यह मुझे मालूम नहीं या याद नहीं है। मेरे वहाँ रहते उन्हें शुरू किया हो तो मुझसे पूछा था कि नहीं, यह भी याद नहीं है। उस समय पूछा हो तो भी इस समय तो मुझे यह काम उपयुक्त नहीं लगता। तुम सब साथ बैठकर इसपर विचार करना और यदि किसी प्रकार इसके समर्थनमें कुछ कहना कठिन हो तो इसको छोड़ देना। हमारी मर्यादा लाठीतक ही होनी चाहिए, ऐसा मुझे लगता है। तो भी तुम स्वयं और दूसरे जिम्मेदार आश्रमवासी स्वतन्त्र रूपसे इसपर विचार कर लेना। और दूसरी छोटी या बड़ी बातें हों तो उनपर भी विचार कर लेना चाहिए।

दूसरा प्रश्न बीमारीका है। इन्दुकी तरह कोई यदि वहाँ आकर तुरन्त बीमार पड़ जायें तो उसके लिए दूसरे स्थानकी ही व्यवस्था करनी चाहिए। जमना[२] ही बारह रतल वजन बढ़ाकर आई है। अब यदि वहाँ आते ही वह इतना वजन खो बैठे तो मुझे यह बात असह्य ही लगेगी। जो लोग [साधारणतया] अपने स्वास्थ्यकी रक्षा कर सकते हैं लेकिन साबरमतीमें नहीं कर सकते, उन्हें बाहर रखनेमें उनकी तथा आश्रमकी भलाई है। आश्रममें ऐसा कौन-सा दोष है जिससे वह कई लोगोंको माफिक नहीं आता? हमें इस दोषका पता लगाना चाहिए। एक कारण पानी तो है ही। लेकिन दूसरे कारण भी हो सकते हैं। वे हवा और खुराक हैं। यदि हम किसी प्रकार हवाको दूषित करते हैं तो यह हमें मालूम करना चाहिए। उसके लिए देखना होगा कि हमारे और पशुओंके मल आदिकी ठीक व्यवस्था होती है कि नहीं। आनन्दी बीमार ही रहती हो तो उसे कहीं भेज देना चाहिए। शारदा कहती थी कि यदि मैं अनुमति दूँ तो बेलाबहन उसे शारदाके पास रहनेके लिए माथेरान भेज दें। अच्छी तरहसे देखें तो मेरी अनुमतिकी आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए। अनुमति देना न देना तुम्हारे अधिकारकी बात है। मुझे खुद तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। फिलहाल तो हम देवलालीमें खर्च उठा ही रहे हैं; इसलिए यदि आनन्दीको वहाँ भेजा जा सकता हो तो यह भी करने लायक है। यह बात तो एकके बारेमें ही हुई। मैंने तुम्हारे सामने सभी बीमारोंसे सम्बन्धित प्रश्न विचारके लिए रखा है।

१. देखिए उसके अन्य प्रश्नके लिए "पत्र : इन्दु पारेखको", २४-३-१९३२।

२. नारणदास गांधीकी पत्नी जो बम्बई स्वास्थ्य सुधारनेकी दृष्टिसे जाकर लौटी थीं।

भाई वालजीसे कहना कि 'व्रत विचार'का[1] अनुवाद सावधानीके साथ पास तो रख ही छोड़ा है। बनेगा तो मैं इसे भेज भी दूँगा। भेज सकनेकी कुछ आशा बँध रही है।

चम्पाके बारेमें तुमने जो कुछ लिखा है, वह मैं समझ गया हूँ। उसकी चिन्ता तुम्हें ही करनी है।

मैंने आनन्दीके विषयमें तुम्हें जो लिखा है, उससे यह तो समझ ही गये होगे कि हरजीवन और शारदा मिलकर गये। यदि लक्ष्मी, लीलावती, वगैरहके बारेमें जान पाओ तो उनके हाल-चाल लिखना।

तलेका चमड़ा और किताबें मिल गई हैं। बहनोंको सिखानेमें अधिकारियोंकी आपत्ति यह है कि उसके लिए स्त्रियोंको पुरुषोंकी जेलमें लाना पड़ता है। और मुझे तो वहाँ ले ही नहीं जायेंगे। उनकी यह आपत्ति मुझे ठीक लगी, इसलिए मैंने ही आग्रह छोड़ दिया और इसलिए पत्र-व्यवहार करनेकी बात तय हुई। मैं पत्र लिखने लगा हूँ। गंगाबहन लिखती है कि आश्रममें सब [अच्छे हैं]।

जबतक खुजली पूरी तरह अच्छी नहीं हो जाती, इलाज करते ही रहना। उससे दूसरे लाभ भी होंगे ही।

क्या 'आश्रम पत्रिका' निकल रही है? निकलती है तो क्या मुझे भेजी जाती है? तुम्हारे पत्रोंके साथ पिछले कुछ हफ्तोंसे वह देखनेमें नहीं आती।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

प्रभावतीका पत्र आज ही मिला। वह लखनऊ सेन्ट्रल जेलमें है। कान्ता[2] भी वहीं है। कान्ताको 'अ' वर्गमें चढ़ा दिया है। प्रभावतीको 'ब'में उतार दिया है। मेरे लेखे प्रभावती चढ़ी है और कान्ता उतरी है। जान पड़ता है, उसकी तबीयत ठीक रहती है। वह लिखती है, जयप्रकाश बम्बईमें हैं। संलग्न सुन्दर शब्द-चित्र[3] इस सप्ताहके लिए महादेवने लिखा है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२१७ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. १९३० के कारावास-कालमें गांधीजी के 'आश्रम-व्रत'-सम्बन्धी प्रवचनोंके अनुवाद। देखिए खण्ड ४४।

२. सुमंगल प्रकाशकी चचेरी बहन।

३. "ए सेन्टली वुमन ऑफ रशिया" शीर्षकके अन्तर्गत सेम्युअल होरकी पुस्तक **फोर्थ सीलके लेखके** आधारपर। **आश्रम जीवन** में प्रकाशित।

३२०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

३ अप्रैल, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला।

इन्दुने सुन्दर प्रश्न पूछे हैं। तलवार, कटार, वगैरहके प्रयोग हम आश्रममें कैसे करें? इस बारेमें नारणदासके[1] पत्रमें लिखा है। इसलिए यहाँ इस सम्बन्धमें नहीं लिख रहा हूँ। तू स्वयं यह सीख रही है, इसलिए तेरे सामने यह सवाल खड़ा हुआ या नहीं, यह जाननेके लिए ही यहाँ इसका उल्लेख किया है।

तू आश्रमको जो प्रमाण-पत्र देती है, वह मैं नहीं दूँगा। सच्चा हो तो यह प्रमाण-पत्र मुझे अच्छा जरूर लगेगा। जिस बातको हाथमें लेते हैं, उसके पीछे पागल हो जाते हैं, ऐसी छाप तुझपर पड़ी होगी। वह ठीक नहीं है। आश्रमके व्रतोंतक भी हम कहाँ पहुँच सके हैं? आश्रममें हम हिन्दी, उर्दू, तमिल, तेलगू और संस्कृत सिखानेवाले थे। इस दिशामें बड़ा ही शिथिल प्रयत्न हुआ है। चमड़ा कमानेकी कलामें हम कहाँतक कुशल बने हैं? बारीक-से-बारीक सूत हम कहाँ कातते हैं? ऐसी तो दूसरी बहुत-सी बातें बता सकता हूँ। मेरी शंकाके समर्थनके लिए इतना काफी है।

लाठी वगैरहके पीछे सब पड़ सकते हैं — यह तो मिठाईके पीछे सब पड़ते हैं, ऐसा कहनेके बराबर हुआ। संसारमें ऐसी चीजें जरूर हैं, जिनके पीछे पड़नेमें कोई परिश्रम नहीं होता। हम पशु-परिवारके भी हैं, इसलिए यह गुण हममें स्वाभाविक है। उसे पैदा नहीं करना पड़ता। उसे बढ़ाना उचित है या नहीं, यह प्रश्न है। पशु-जातिके सभी गुण त्याज्य हों, ऐसी बात तो नहीं है।

अभी रसोईमें कितने लोग खाते हैं? डबलरोटी अब भी बनती है क्या? बनती है तो बनाता कौन है? अच्छी बनती हो तो जब कोई आये, उसके साथ एक या दो भेजना।

लक्ष्मीसे कोई मिले तो उससे कहे कि उसके एक भी पत्रका उत्तर न दिया हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। इसलिए वह मुझे पत्र लिखे।

दीक्षितके[2] ज्योतिषशास्त्रका गुजराती अनुवाद हुआ है। वह मेरे पास है। बालकी पुस्तक यहाँ मिल जायेगी, इसलिए नहीं मँगा रहा हूँ। अप्टन सिंक्लेयरकी भेजी हुई पुस्तकें आश्रमकी ही हैं। उन्हें दर्ज कर लेना और उनमें से 'बोस्टन' और 'ब्रास टैक्स' भेजना। बाकी पुस्तकोंकी सूची भेजना।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. खगोल विद्यापर लिखनेवाले मराठी लेखक।

उपनिषद् मुझे अच्छे लगते हैं। उनका अर्थ लिखने जितनी योग्यता मुझमें है, ऐसा मैं नहीं मानता हूँ।

मेरी विनोदी प्रकृतिको तुझे पहचानना चाहिए। प्रशंसा करानेके लिए तू दोषोंके विषयमें पूछती है, ऐसा विनोदमें ही पूछा जा सकता है। इसमें इतना तो सत्य है ही कि अगर प्रेमीजनसे हम अपने दोष पूछें, तो उसके परिणाममें प्रशंसा सुननेको मिलती है। क्योंकि प्रेम दोषपर पर्दा डालता है; या दोषको गुणके रूपमें देखता है। प्रसंगानुसार दोष बताना प्रेमका स्वभाव है और वह भी सम्पूर्णता देखनेके लिए ही। तुझे धुरन्धरके सामने 'हिस्टेरिकल' कहा था, उसमें भी तेरी प्रशंसा थी, यह क्या किसनने कहा? क्योंकि वह प्रसंग ऐसा था कि अगर तुझे 'हिस्टेरिकल' न मानता तो तू ज्यादा दोषी ठहरती। तू 'हिस्टेरिकल' तो है ही। तू पागल-जैसी हो जाती है, इसका क्या अर्थ है? जो भावनाओंसे अभिभूत हो जाता है, वह 'हिस्टेरिकल' है। यह समझमें आता है न?

मुझे हमेशा ही यह लगा है कि जापानकी नीति शोचनीय है। रूसके विरुद्ध उसकी जीत जरूर होनी चाहिए थी, लेकिन उससे यह साबित नहीं होता कि जापानकी नीति अनुकरणीय है। लेकिन अभी तो हम अपनी नीतिको सँभालें, तो काफी होगा। जापानको सँभालनेवाला तो करोड़ों आँखोंवाला सदा जागता सत्पुरुष बैठा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२७९) से। सी० डब्ल्यू० ६७२७ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

३२१. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

सोमवार, ३ अप्रैल, [१९३२][1]

बहनो,

मैं दाहिने हाथसे जितनी जल्दी लिख पाता हूँ, बायें हाथसे वैसा नहीं; इसलिए यह पत्र बोलकर लिखवा रहा हूँ।

बहनें कुछ भी करें, किन्तु मैं बुजुर्गके नाते उनके विरोधमें सत्याग्रह कैसे कर सकता हूँ? इस विचारमें जबर्दस्त भूल है और सत्याग्रहके बारेमें गलतफहमी भी है। तुम्हारे वाक्यमें तो सत्याग्रहका अर्थ दुराग्रह-जैसा हो गया। सत्याग्रह छोटे और बड़े, राजा और रंकके बीच भेद नहीं करता। ईश्वर भी हमारे विरोधमें सत्याग्रह करता है। उसका सत्याग्रह तो निरन्तर चल रहा है। सत्यका आग्रह—

१. इस पत्रका कुछ अंश ४-४-१९३२ की तारीखमें **महादेवभाईनी डायरी,** भाग–१ में दिया गया है।

सत्याग्रहका मूल अर्थ इतना ही है और अगर ईश्वर सत्यका आग्रह न रखे तो एक क्षणमें संसार नष्ट हो जाये। सत्याग्रहके अभिप्रायमें जिस प्रकार अधिकार-भावना है उसी प्रकार धर्म-भावना भी है। मैं तुम्हारा ही दृष्टान्त लेता हूँ। यदि तुम मेरे पत्रोंपर बातचीत न करो या उनका उत्तर न दो तो मेरे लिए रोज-रोज लिखनेके लिए सचमुच कुछ रहे ही नहीं। इसलिए लिखनेका फिर कोई मूल्य या प्रभाव भी न बचे। सत्यार्थी लिखनेके लिए कुछ नहीं लिखता। बोलनेके लिए कुछ नहीं बोलता। उसके लिखने या बोलनेका विशेष कारण होना ही चाहिए। उसकी सामान्य स्थिति मौनकी स्थिति होनी चाहिए। सच कहें तो मुझे, तुम्हें या किसी औरको कुछ करना ही नहीं चाहिए और सो भी कैद कर लिये जानेके बाद। कैद हो जानेके बाद भी सरकार बाहरके जगतसे एक निश्चित मर्यादामें सम्बन्ध रखने देती है, उसका उपयोग कर लेता हूँ। किन्तु वह उपयोग कामकी हदतक लिखना ही होना चाहिए। मेरे-जैसे व्यक्तिको तो आचरणके द्वारा ही अपनी बात व्यक्त करनी चाहिए। जो मेरे आचरणसे कुछ नहीं ग्रहण करता, वह मेरे कहनेसे क्या लेगा? यह हुआ सामान्य नियम। किन्तु आश्रममें और आश्रमके बाहर ऐसे कितने ही लोग हैं जो मेरे आचारको अच्छा मानते हैं और इसीलिए मुझसे अधिक बातें समझनेकी इच्छा करते हैं। निस्सन्देह, उनको लिखना मेरा धर्म हो जाता है। इसमें तुम लोग भी आ जाती हो। लेकिन यह तो तभी जब तुम मुझसे कुछ पूछो। इसी-लिए मैंने लिखा कि अगर तुम लोग कुछ जवाब न दो, कुछ न पूछो, विचार-विमर्श न करो तो मैं फिर क्या लिखूँ?

तुम्हारा संकोच मैं जानता हूँ। स्वभाव भी जानता हूँ। जो सूझे, उतनी सेवा यथाशक्ति करके मुक्त और मूक रहती हो, यह ठीक है। यही शोभनीय है। फिर भी इसी तरह जीवनको रचते हुए एक-दूसरेसे मिलना भी तो है ही। आश्रममें रहनेका अर्थ ही यह है कि हम एक समाज बनकर रहें, इसलिए साथ-साथ रहें, साथ-साथ खायें, बैठें-उठें, काम करें, सोचें। भोजनके समय हम जो मन्त्र पढ़ते हैं, यह उसका अर्थ है। थोड़ी-बहुत संघ-शक्ति पशुओंमें भी है। मनुष्योंमें तो वह अपार है और होनी ही चाहिए, क्योंकि मनुष्यका धर्म जीव-मात्रके साथ अद्वैत अर्थात् ऐक्य साधना है। यदि संघमें रहना पसन्द न आये तो वह इसे साध ही नहीं सकता। इसलिए, जैसे बने, तुम्हें संघ-शक्ति तो हस्तगत करनी ही है। इसलिए, अगर तुम इन दिनों एक संघकी तरह रोज मिल नहीं पातीं तो भी हर हफ्ते मेरे पत्र पाने और उसका जवाब देनेके लिए जब तुम मिला करोगी तो फिर उससे आगे बढ़ना भी हो सकता है। जो बहनें व्यक्तिगत रूपमें लिखती हैं, उन्हें तो मैं लिखता ही रहता हूँ। किन्तु सभी बहनोंको सम्बोधित करके लिखनेकी प्रथा पड़नेके बाद यह बात समझमें आई कि बहनोंके संघको भी मैं लिखूँ, ये बहनें उसपर चर्चा करें और चर्चासे जो प्रश्न उत्पन्न हों, वे उनके विषयमें मुझे लिखा करें। मुझे लगता है कि मैं जो कहना चाहता हूँ और तुम्हारी ओरसे जिस बातकी आशा करता हूँ, वह अब स्पष्ट हो गया।

यह तो मेरे पत्रकी प्रस्तावना हुई। त्रिवेणी बहनने एक प्रश्न उठाया है। वह सब बहनोंपर लागू होता है, इसलिए आज उसीके विषयमें लिखता हूँ। वह पूछती है, बहनें (केवल आश्रमकी नहीं, बल्कि जिनसे भी सम्पर्कका अवसर आया) मुर्दार-सी लगती हैं? इनमें जान क्यों नहीं दिखती? भले ही सभी बहनोंके बारेमें यह कथन लागू नहीं होता, तो भी त्रिवेणीबहनकी धारणामें तथ्य है। इसके जो कारण मैं देख पाया हूँ, वे ये हैं : १. बहनोंका अव्यवस्थित जीवन, २. चिन्तामय जीवन, ३. बचपनसे दोषयुक्त पालन-पोषण, ४. प्रसूतिके समय आरोग्यशास्त्रके नियमोंके विरुद्ध सार-सँभाल, ५. व्यायामका अभाव, ६. आरोग्यको हानि पहुँचानेवाली खुराक, ७. घरमें घुसे रहनेकी आदत, ८. अखाद्य खानेकी आदत, ९. प्रायः विचारोंमें विकार और फिर उनपर ज्ञानमय अंकुश रखनेके बजाय उन्हें जबर्दस्ती दबानेका प्रयत्न।

इतने कारण मेरी दृष्टिमें आये हैं। अनेकोंपर इनमें से अनेक कारण लागू होते हैं, कहनेका यह उद्देश्य नहीं है। सभी बहनोंको चाहिए कि वे अपने ऊपर लागू होनेवाले कारण खोजें। सबसे बड़ा एक दोष बहनोंमें यह देखा गया है कि वे अपने मनकी बात छिपाये रखती हैं। इससे उनमें दम्भ आ जाता है और दम्भ उसीमें आ सकता है जिसके मनमें असत्य घर कर गया हो। दम्भ-जैसी विषैली वस्तु इस जगतमें मैं दूसरी नहीं जानता। हिन्दुस्तानके मध्यमवर्गकी स्त्रीको वह सदा ही दबाये रहता है। उनमें दम्भ समा जाता है और वह कनखजूरेकी तरह उन्हें कुतरकर खा जाता है। कदम-कदमपर जो नहीं भाता, वही करती हैं और उन्हें करना पड़ रहा है, ऐसा वे मानती हैं। जरा सोचकर देखें तो वे समझ जायें कि इस जगतमें किसीसे दबकर चलनेका उनके लिए कोई कारण नहीं है। यदि वे जैसी हैं, उसी रूपमें संसारके सामने हिम्मतके साथ खड़ी होनेको तैयार हो जायें और पहला पाठ यही सीख लें तो मैंने जो अन्य कारण बताये हैं, उनका निराकरण हो जाये।

मेरी समझमें यह बहुत महत्त्वका पत्र है। इसपर बार-बार विचार करना; इसमें से जो समझमें न आया हो सो पूछना। चिट्ठीको दो-तीन बार ध्यानसे पढ़ लोगी तो आसानीसे समझमें आ जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३२२. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

३ अप्रैल, १९३२

चि० पुष्पा,

इस बार तेरे अक्षर ठीक प्रमाणमें हैं। इसी तरह सुधारती रहना।
कातनेके बारेमें कान्ताके नाम लिखा पत्र देखना।
सरदारी न करे तो सरदार काहेके ?
नाटकमें भारतमाता बनी थी तो अब वैसे गुणोंका विकास करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८५) से। सी० डब्ल्यू० ३१ से भी; सौजन्य : पुष्पाबहन ना० नायक।

३२३. पत्र : किसनको

३ अप्रैल, १९३२

चि० किसन,

क्या चाहती है कृष्णाकुमारी नामसे संबोधु ? तुमारा खत बहोत अच्छा लगा। जमनाबहन इ०को व्यायाम सीखाया वह ठीक हुआ।

अब तुमारा शरीर अच्छा हो गया होगा।

फिर भी खत लिखो।

बापूके आ[शीर्वाद]

जी० एन० ९०६८ से।

३२४. पत्र : एक अमेरिकीको[1]

४ अप्रैल, १९३२

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपके पहले सवालके जवाबमें मेरा कहना है कि मुझे यह पसन्द नहीं है कि कोई मुझे छुड़वाये। फिर कोई शर्त मानकर तो मैं छूटना ही नहीं चाहता। जिसे मैंने अपने जीवनका एक धर्म-कार्य माना है, मैं उसे किसी भी पुरस्कारके लोभसे नहीं छोड़ सकता।

[अंग्रेजीसे]

दि डायरी ऑफ महादेव देसाई, भाग – १, पृष्ठ ५४–५।

३२५. पत्र : एक अमेरिकीको[2]

४ अप्रैल, १९३२

'क्रिश्चियन साइंस' के अनुयायी अनेक मित्रोंसे मैं मिला हूँ। उनमें से कुछने श्रीमती ऐडीकी पुस्तकें मेरे पढ़नेके लिए भेजी हैं। इनमें से किसीको भी मैं पूरा तो नहीं पढ़ सका, लेकिन ऊपरसे देख गया हूँ। इन मित्रोंने जैसी आशा रखी होगी, वह असर तो इन पुस्तकोंने मुझपर नहीं डाला। मैं बचपनसे ही यह सीखा हूँ, और अनुभवसे इस शिक्षाकी सचाईका मुझे विश्वास हुआ है, कि आध्यात्मिक शक्तियोंका या सिद्धियोंका उपयोग शारीरिक रोग मिटानेके लिए नहीं करना चाहिए। वैसे, मैं यह अवश्य मानता हूँ कि दवाओं आदिसे इन्सानको परहेज रखना चाहिए। मगर यह बात सिर्फ आरोग्य-रक्षा-विषयक शारीरिक दृष्टिसे ही है। और फिर, मैं भगवानपर पूरी तरह निर्भर रहनेमें विश्वास करता हूँ — इस आशासे नहीं कि वह मेरा रोग दूर कर दे, बल्कि उसकी इच्छाके अधीन होने और उन गरीबोंके दुःखमें भागीदार बननेके लिए जिन्हें चाहनेपर भी शास्त्रीय डॉक्टरी मदद नहीं मिल सकती। मगर मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि मैं अपने इस विश्वासपर सदा अमल नहीं कर पाता। बेशक, मेरा प्रयत्न हमेशा इसी तरफ रहता है, मगर अनेक प्रलोभनोंके बीच मैं पूरी तरह इसपर अमल कर सकना कठिन पाता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ७१ – २।

१. महादेव देसाईके अनुसार यह पत्र उक्त अमेरिकीके इस प्रस्तावके उत्तरमें लिखा था कि वह "इस शर्तपर गांधीजी की रिहाई करवा सकता है कि वे केवल ईसामसीहकी शिक्षाके प्रचार-कार्यमें अपना सारा समय लगायेंगे।"

२. पहले नास्तिक और तब 'क्रिश्चियन साइंस' के अनुयायी इस अमेरिकीने इस विषयपर गांधीजी के विचार पूछे थे।

३२६. पत्र : सुरेन्द्रको

४ अप्रैल, १९३२

ब्रह्मचर्यके बारेमें तुमने लिखा था, सो मुझे मिल गया था। मिलेंगे तब जरूर चर्चा करेंगे। जो विचार मैंने इमामसाहबके यहाँ प्रकट किये थे, वे दृढ़ हुए हैं और होते जा रहे हैं। यानी, अनुभव उनकी सचाई साबित कर रहा है। तीनों कालमें और सब हालतोंमें टिका रहे, वही ब्रह्मचर्य है। यह स्थिति बहुत मुश्किल है, मगर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। हमारा जन्म विषयसे हुआ है। जो विषयसे पैदा हुआ है, वह शरीर हमें बहुत अच्छा लगता है। वंश-परम्परासे मिले हुए इस विषयी उत्तराधिकारको निर्विषयी बनाना कठिन ही है। फिर भी वह अमूल्य आत्माका निवास-स्थान है। यह प्रत्यक्ष हो जाये तब ब्रह्मचर्य स्वाभाविक हो सकता है। और वह ब्रह्मचर्य साक्षात् रम्भा स्वर्गसे उत्तर आये और स्पर्श करे, तो भी अखण्डित रहता है। अपनी माँ सबके लिए रम्भाके समान होती है। इस रम्भामाताका खयाल करनेसे भी विकार शांत हो जाने चाहिए। मगर पत्रका कितना विस्तार करूँ? इसीपर बार-बार विचार करके फलितार्थ निकालना।

कुर्सी लगानेसे कोई पिघल जाये,[1] तो तुम उसे अहिंसाका परिणाम समझो, यह ठीक नहीं। मगर यह विषय महत्त्वपूर्ण नहीं है। जैसे-जैसे श्रद्धा बढ़ेगी, वैसे-वैसे बुद्धि भी बढ़ेगी। 'गीता' तो यह सिखाती जान पड़ती है कि बुद्धियोग ईश्वर कराता है। श्रद्धा बढ़ाना हमारा कर्त्तव्य है। यहाँ यह समझनेकी बात जरूर है कि श्रद्धा और बुद्धिका अर्थ क्या है। यह समझ भी व्याख्यासे नहीं आती, सच्ची नम्रता सीखनेसे आती है। जो यह मानता है कि वह जानता है, वह कुछ नहीं जानता। जो यह मानता है कि वह कुछ नहीं जानता, उसे यथासमय ज्ञान हो जाता है। भरे हुए घड़ेमें गंगाजल डालनेकी सामर्थ्य ईश्वरमें भी नहीं है। इसलिए हमें ईश्वरके पास रोज खाली हाथ ही खड़े होना है। हमारा अपरिग्रह भी यही बताता है। अब बस? मुझे जब लिखना हो लिखो। अधिकारी पत्र मुझतक पहुँचा देंगे।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ७०।

१. यहाँ लेखकके कुर्सीकी तरह बाहें फैलाकर घुटनोंके बल बैठनेका उल्लेख है।

३२७. एक पत्र[1]

४ अप्रैल, १९३२

जब किसी बातके विषयमें कहना पड़े, तब कोई भी कुर्बानी करके सत्य ही कहना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ७१।

३२८. पत्र : मनु गांधीको

४ अप्रैल, १९३२

चि० मनुड़ी,

तेरा पत्र मिला। उसे मैं दो बार पढ़ गया। तुझे घबरानेकी जरूरत नहीं है। हरिलालकी दुर्दशा तूने आँखों देख ली, यह बहुत अच्छा हुआ। मुझे तो सब हाल मालूम ही था। इतनेपर भी हमें किसीके बारेमें आशा नहीं छोड़नी चाहिए। ईश्वर क्या नहीं कर सकता? हरिलालमें कुछ भी पुण्य बाकी होगा, तो वह उग आयेगा। हम उसकी लल्लो-चप्पो न करें। हम झूठी दया न करें और अधिकाधिक पवित्र होते चले जायें, तो उसका असर हरिलालपर भी जरूर होगा। तुझे कठोर हृदय बनाना है। हरिलालको लिख देना चाहिए कि जबतक शराब न छोड़े तबतक यह समझ ले कि तू है ही नहीं। हम सब यह रास्ता अख्तियार कर लें तो हरिलाल सँभल जाये। शराबीको जब कोई बड़ा आघात पहुँचता है, तब वह अक्सर अपनी कुटैव छोड़ देता है।

शादीके बारेमें तूने जो जवाब दिया है, वह मुझे पसन्द आया। इस निश्चय पर कायम रहेगी तो तेरा भला ही होगा। तू बिलकुल बचपनमें तो इतनी बीमार थी कि तेरे बचनेकी आशा ही नहीं थी। उस समयकी बा की भारी सेवा और आइस-डॉक्टर[2] के इलाजसे तू बच गई। लेकिन यह कहा जा सकता है कि इस बीमारीके कारण तू पाँच सालतक तो बिलकुल बढ़ी ही नहीं। अब भी कमजोर तो है ही। बलीने[3] तेरी सार-सँभालकी है। वह न करती तो तू जरूर बीमार पड़ती। इसलिए मैं तो तेरी उम्रमें से कम-से-कम पाँच साल हमेशा घटा देता हूँ। हमने तो स्त्रियोंके

१. लेखकने पूछा था कि सच बोलनेसे किसीके प्राण जाते हों तब भी क्या सच ही बोलना चाहिए?

२. डॉक्टर केल्कर।

३. बलीबहन वोहरा, मनु गांधीकी मामी।

विवाहका समय जल्दी-से-जल्दी २१ वर्षका माना है। इसलिए तूने जो उम्र सोची है, वह ठीक है। तेरे लिए २५वाँ वर्ष मुश्किलसे शादीके लायक मानता हूँ। मगर मैं तुझे बाँधना नहीं चाहता। यह इतना ही बतानेको लिखा है कि आज जो तेरे विचार हैं, वे ठीक हैं। रामीने जल्दी शादी करनेका आग्रह किया, तो मैंने उसमें रुकावट नहीं डाली। हाँ, इतनी छोटी उम्रमें उसका विवाह करना मुझे जरा भी पसन्द नहीं आया। तेरे लिए तो जल्दी शादी न करनेके बहुत-से कारण हैं। ईश्वर तेरा निश्चय कायम रखे। अभी तो खूब पढ़। शरीर मजबूत बना और 'गीताजी' जो धर्म सिखाती हैं, उसे समझ और उसीके अनुसार आचरण कर।

मुझे लिखती रहना। मिलनेको जी करे तो आकर मिल भी सकती है। अपने अक्षर खूब सुधारना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५११) से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला।

३२९. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

४ अप्रैल, १९३२

भाई विट्ठलदास,

तुम्हारे अक्षर देखकर हम सबको बड़ा आनन्द हुआ। पूरा-पूरा विश्राम अवश्य लेना। शरीर बिलकुल ठीक हो जाये तभी काम हाथमें लेना।

मेरा कार्ड तुम्हें मिले, इसके पहले ही तुम्हारे खजूर फिर आ पहुँचे। इल्ली लग जानेके बाद खजूरोंको खाने लायक कदापि नहीं मानना चाहिए। इल्लियाँ गूदे और ऊपरी सतहके बीच रहती हैं। वे धोनेसे नहीं निकलतीं। मैंने खजूरोंके बारेमें यही देखा है। ज्यादातर खजूर तो मैं यहाँ महारोगियोंके चिकित्सालयमें पहुँचा देता हूँ। जो बिगड़े नहीं हैं, ऐसे थोड़े-बहुत खजूर मैं खाता हूँ। मगर अब मत भेजना। यहाँ बाजारमें बिना इल्लीके सूखे और सख्त खजूर मिलते हैं; इनसे मेरा ठीक काम चल जाता है। अपने पास न फालतू वक्त है, न पैसा। इसलिए इन दोनोंको बचाना ठीक।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७८१) से।

३३०. पत्र : लक्ष्मी जेराजाणीको

४ अप्रैल, १९३२

चि० लक्ष्मी,

तेरी चिट्ठी मिली। पैंसिलसे लिखा हुआ फीका होता है और रोज-रोज फीका पड़ता जाता है। मिलनेवालेको मिलते-मिलते पत्र इतना धुँधला पड़ जाता है कि पढ़नेमें वक्त लगाना पड़ता है। पत्र पानेवालेकी जगह दूर हो तब तो अक्षर कई बार अपाठ्य हो जाते हैं। फिर पैंसिलसे अक्षरोंका आकार भी उत्तम नहीं बन पाता। आखिरी बात यह, कि पैंसिलसे लिखे अक्षरोंको अच्छा-बुरा कहना आसान नहीं होता। भविष्यमें कलम और स्याही मिलनेपर पत्र या अन्य कुछ लिखनेमें उन्हींके उपयोगका निश्चय करो।

अगर विट्ठलदास बिलकुल स्वस्थ हो जाते हैं तो तू भी निश्चय ही यशकी भागी होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१२)से; सौजन्य: पुरुषोत्तम दा० सरैया।

३३१. पत्र : रैहाना तैयबजीको

४ अप्रैल, १९३२

रैहानाको खुदा तन्दुरुस्त और मनदुरुस्त करे और रखे। शागिर्द उस्तानीके पास शैतानी सीखने थोड़े ही पहुँचा है। शागिर्दके पास उस्तानीकी शैतानी भी चलनेवाली नहीं है। तुम्हारा भजन बिना सुने, रहना अच्छा नहीं लगता। आकर सुनाओ तभी बने। इसके लिए तुम्हें लड़का बनकर जेलमें आना होगा। देखता हूँ, महादेव गा सकता है या नहीं। अब पढ़िए आजकी गजल:

अगर है शौक मिलनेका तो हरदम लौ लगाता जा,
जलाकर खुदनुमाईको भसम तन पर लगाता जा।
पकड़कर ईश्ककी झाड़ू सफाकर . . . दिलको,
जमींकी धूलको लेकर मुसलीपर उड़ाता जा।
मुसल्ला छोड़ तसबीह तोड़ किताबाँ डाल पानी में,
पकड़ दस्त तू फरिश्तोंका गुलाम उसका कुहाता जा।[1]

१. यहाँतक उर्दूमें है; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ४४६।

अपने उर्दू अक्षरोंपर मुझे शर्म आती है। लेकिन बायें हाथसे इससे अच्छे अक्षर नहीं बन पाते। ऊपरकी इबारत लिखनेमें लगभग पौन घंटा लग गया। सच तो यह है कि मुझे रोज थोड़ा लिखना चाहिए। परन्तु मैं ठहरा लोभी। इस एकान्तवासमें जितना हो सके उतना कर लेनेकी इच्छाके कारण अकेली उर्दूको बहुत समय नहीं दे सकता। मुझे लोभमें तो तूने ही डाला है। तू थोड़े वाक्य उर्दूमें लिख देती थी, इसलिए मुझे उर्दूका लोभ हुआ और शागिर्द बन गया। कैसा शागिर्द और कैसी उस्तानी। जोड़ तो जबर्दस्त बना है, अब देखें अपनी नाक साबुत रहती है या नहीं।

बावाजानके छट्ठीके लेखमें क्या लिखा जाता है सो हम उत्सुक होकर देख रहे हैं। हम लोग तुम सबको अक्सर याद करते हैं। सरदार, काका और महादेव बावाजानके अनेक संस्मरण सुनाते और गौरवका अनुभव करते हैं कि बावाजानके साथ रह सके। मैं थोड़े ही उस तरह रह सका हूँ! कभी मेरी भी पारी आयेगी।

हमीदा, रोहिणी, वगैरह की खबरें अब इसके बादके खतमें पानेकी आशा रखूँगा।

पाशाभाईकी चिट्ठी आज ही मिली है। जवाब आज इसीके साथ नहीं भेज पाया तो बादमें भेजूँगा।

आज अब और नहीं लिखूँगा।

बापूकी बहुत-बहुत दुआ

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४०) से।

३३२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

[५][1] अप्रैल, १९३२

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। इस पत्रके अक्षरसे ही जानोगे कि महादेव यहाँ आ गया है। सबके खोराकका अभ्यास कर रहे हैं यह मुझको अच्छा लगता है। हमारे मध्यम वर्गके खानेमें समतोलता नहीं है, और बहुत चीज निकम्मी खाकर शरीर बिगाड़ते हैं उसमें कोई संदेह नहि है। और डाकतर और वैद्य लोग पैसे कमानेमें इस विषयका खयाल तक भी नहीं करते हैं। इसलिए तुम्हारे प्रयोगोंकी उपयोगिता मैं समज सकता हूं। और मेरी आशा है कि रामेश्वरजी और लक्ष्मीनिवासको लाभ हुआ होगा। कुछ भी नई शोध करें मुझको बताते रहें।

मेरे बारेमें गैरसमज रहती है उसका मुझे पूरा ख्याल है। परंतु मैं निश्चिंत रहता हूं। अनुभवसे देखा है कि धीरज रखनेसे बहुतसी गलतफहमिआं दूर हो जाती हैं। रात्रि कितनी भी लंबी हो उसका अंत है ही।

१. देखिए "दैनन्दिनी, १९३२"।

अबतक मेरा खुराक वही चलता है। और अच्छा ही लगता है। एण्ड्रयूजको मिलते हैं क्या? उनकी तबीअत कैसी है?

बापूके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ७८९७ से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला।

३३३. पत्र : मैथिलीशरण गुप्तको

५ अप्रैल, [१९३२][1]

भाई मैथिलीशरणजी,

आपका पत्र मिला था। 'साकेत', 'अनघ', 'पंचवटी' और 'झंकार' सब रसपूर्वक पढ़ गया। बहुत अच्छे लगे। परन्तु टीका करनेकी मैं अपनी कुछ भी योग्यता नहीं समझता हूँ। तो भी आपने मेरे अभिप्राय पूछे हैं और क्योंकि जैसे पढ़ता गया वैसे विचार भी आते रहते थे, इसलिए जैसे आये वैसे ही आपके सामने रखता हूँ। उर्मिलाका विपाद अगरचे भाषाकी दृष्टिसे सुन्दर है परन्तु 'साकेत'में उसको शायद ही स्थान हो सकता। तुलसीदासजीने उर्मिलाके बारेमें बहुत कुछ नहीं कहा है यह दोष माना गया है। मैंने इस अभावको दोष दृष्टिसे नहीं देखा। मुझको उसमें कविकी कला प्रतीत हुई है। मानसकी रचना ही ऐसी है कि उर्मिला-जैसे योग्य पात्रका उल्लेख आध्याहारमें रखा गया है, और उसीमें काव्यका और उन पात्रोंका महत्त्व है। उर्मिला इत्यादिके गुणोंका वर्णन सीताके गुण विशेष बतानेके लिए ही आ सकता था। परन्तु उर्मिलाके गुण सीतासे कम थे ही नहीं। जैसी सीता वैसी ही उसकी भगिनीआं। मानस एक अनुपम धर्मग्रन्थ है। प्रत्येक पृष्ठमें और प्रत्येक वाक्यमें सीता सीता रामका ही जप जपाया है। 'साकेत'में भी मैं वही चीज देखना चाहता था। इसमें कुछ भंग उपरोक्त कारणके लिए हुआ। एक और चीज भी कह दूँ। दशरथा-दिका रुदन तुलसीदासजीके मानसमें पढ़नेसे आघात नहीं पहुँचा था। तुलसीदाससे दूसरा कुछ नहीं हो सकता था। परन्तु इस युगके पुस्तकमें ऐसा रुदन अच्छा नहीं भाता है। उसमें वीरताको हानि पहुँचती है, और इधर भक्तिको भी। जो ऐहिक भोगको क्षणिक माननेवाले हैं, आत्मामें जिनका विश्वास है उनको मृत्युका और वियोगका असह्य कष्ट हो ही नहीं सकता है। क्षणिक मोह भले आ जावे। परन्तु उनसे करुणाजनक रुदनकी आशा हम कैसे रखें?

यह सब लिखनेका मेरा उद्देश्य हरगिज नहीं कि आप दूसरे संस्करणके लिए कोई सुधारणा करें। हां, यदि मेरे लिखनेमें आपको कुछ योग्यता प्रतीत हो तो दूसरी बात है।

१. विषय सामग्रीके आधारपर; देखिए "पत्र: मैथिलीशरण गुप्तको", २६-४-१९३२ और "दैनन्दिनी, १९३२" में ५ अप्रैलकी प्रविष्टि भी।

महादेव मेरे पास आ गये हैं। और क्योंकि मेरे दाहिने हाथमें लिखनेसे कुछ कष्ट होता है और बायें हाथसे लिखनेमें कुछ देर होती है, इसलिए मैंने यह पत्र उनसे लिखवाया है।

आपका,

(ह०) मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ९४५५ से; सौजन्य: भारत कला भवन, वाराणसी।

३३४. पत्र : चन्द्र त्यागीको

५ अप्रैल, १९३२

भाई त्यागीजी,

तुम्हारा पत्र मिलनेसे आनन्द हुआ और ज्यादह यह जाननेसे कि प्लेगके रोगियोंकी सेवाका काम कर रहे है। आजकल मैं दूध नहीं लेता हूं। डबलरोटी, बादाम, खजूर, भाजी और नींबु इससे यहां तो काम निपटता है। मन जैसे था वैसा ही है। देवशर्माजी के[1] खतकी प्रतीक्षा करता हूँ। दाहिने हाथमें सिर्फ लिखनेसे ही दर्द होता है। यह करीब एक वर्षकी बात है। और तो कुछ नहीं है। बलवीरके हरफ अच्छे हैं। पुराने दोषोंको अब तो भूल गया है ना?

महादेव मेरे साथ है। यह कार्ड उन्हींके हाथ लिखा गया है।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० ३२५९ से।

३३५. एक पत्र[2]

७ अप्रैल, १९३२

आपका पत्र मिला। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं अपने लक्ष्यतक पहुँच गया हूँ। लगता है कि अभी मुझे बहुत फासला तय करना है . . .।[3]

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ५९।

१. आचार्य अभयदेवके नामसे भी प्रसिद्ध थे।

२. पत्र-लेखक कोई ओवरसियर थे। उन्होंने गांधीजी से पूछा था कि क्या उन्हें मुक्ति मिल गई है और उन्होंने ईश्वरको साक्षात् देखा है?

३. साधन-सूत्रके अनुसार।

३३६. पत्र : नृसिंहप्रसाद का० भट्टको

७ अप्रैल, १९३२

क्षयसे क्षयका डर ज्यादा दुःख देता है।[1] जिसे क्षयकी बीमारी बता दी जाती है, वह अपनी बीमारीका ही खयाल करता रहता है और जहाँ-तहाँ क्षयसे होनेवाले दर्दकी कल्पना करता रहता है। मनसे यह भूत निकाल भगाया जा सके, तो बीमार जल्दी अच्छा हो जाता है।

धनका सवाल तुम्हें क्यों परेशान करता है?[2] यह चीज तो तुम मुझसे सीख ही लो, क्योंकि इस मामलेमें मैं विशेषज्ञ माना जा सकता हूँ। 'महात्मा' बननेसे पहले ही मैं जो बात सीख चुका था वह यह है — उधार रुपया लेकर व्यापार करना जैसे गलत अर्थशास्त्र है, वैसे ही उधार रुपयेसे सार्वजनिक संस्था चलाना गलत धर्मशास्त्र है। और जिस संस्थामें अच्छे-से-अच्छे आदमियोंको भीख माँगनेके लिए भटकना पड़े, उसका नाम उधार व्यापार ही है। तुमने संख्याका हिसाब रखा है, उसके बजाय यह हिसाब क्यों नहीं रखते कि जितना रुपया आये, उसीके अनुसार विद्यार्थी लिये जायें? मैं जो-कुछ लिख रहा हूँ, उसपर अमल करना बहुत ही आसान है। सिर्फ संकल्पकी आवश्यकता है। हर सालका आँकड़ा तय कर लिया जाये। उसके मुताबिक घर बैठे रुपया आये तो संस्था चलाई जाये। न आये तो बन्द कर दी जाये। तुम्हारी संस्था तो बहुत पुरानी कही जायेगी। उसका पिछला इतिहास उज्जवल है। शिक्षक अच्छे हैं। इतना होनेपर भी लोगोंमें श्रद्धा पैदा क्यों न हो? अपना सारा साहस ईश्वरको समर्पित करके उसके नामपर संकल्प करो। उसकी मरजी होगी तो वह संस्था चलायेगा। 'हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जतां नथी जाणी रे।' यह भजन आज शामकी प्रार्थनामें गाया था। एक लड़कीको लिखे हुए मेरे पत्रसे उसकी याद आई। तुम लिखते हो कि वल्लभभाई होते या मैं होता तो तुम्हें यह परेशानी न होती। परेशानी है कहाँ? और है तो उसे मिटानेवाले हम कौन? अंधा अंधेको क्या रास्ता बताये? लेकिन परेशानी मानते हो तो वह भी उसीकी गोदमें डाल दो। इन सब बातोंको पांडित्य समझकर फेंक न देना। परन्तु इनपर अमल करना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ७८।

१. पत्र-लेखकने गिजुभाई बधेकाके बच्चेको इलाजके लिए पंचगनी ले जानेका उल्लेख किया था।

२. पत्र-लेखकने भावनगरमें चलाई जानेवाली शिक्षा-संस्था दक्षिणामूर्तिकी आर्थिक समस्याका उल्लेख किया था।

३३७. पत्र : वनमाला न० परीखको

७ अप्रैल, १९३२

चि० वनमाला,

अच्छे विचार करें तो मन अच्छा रखा जा सकता है। अच्छे विचार अच्छे काम करनेसे आते हैं। पशु मर रहा है, इसका अन्दाज लग ही जाता है, ऐसा नहीं है। इसका अनुमान प्रायः अनुभवी व्यक्तिको ही हो पाता है।

मैं भी भाईके बारेमें खबर पानेकी कोशिश कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

भूलसे तेरे ही पत्रपर लिख दिया। माफ करना। कतरन रखे ले रहा हूँ।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७१)से। सी० डब्ल्यू० २९९३ से भी। सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

३३८. पत्र : मीराबहनको

८ अप्रैल, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र[1] मिला। मुझे ऐसा लगता है कि दाये हाथमें अभी तकलीफ रहेगी। यहाँ आनेपर मैं दाये हाथसे काफी लिखने लगा था; किन्तु मुझे जल्दी ही मालूम हो गया था कि उससे कोई लाभ नहीं। यह चुपचाप आते हुए बुढ़ापेका एक चिह्न हो सकता है। अगर ऐसा है तो वह न दुःखका कारण है और न आश्चर्यका ही। अगर मैंने शरीरको केवल सेवाके साधन और भगवानके मन्दिरके तौरपर इस्तेमाल करना सीखा होता, तो बुढ़ापा एक ऐसे सुन्दर पके हुए फलकी तरह होता, जिसमें उसकी जातिके फलके तमाम गुण पूर्णरूपमें होते। यदि मैं इतनी-सी असमर्थता भुगतकर ही बच जाऊँ तो यह सौभाग्य ही होगा। लेकिन यह भी व्यर्थकी अटकलबाजी है। इन चीजोंके बारेमें अटकल लगाना मेरा काम नहीं है। इन चीजोंको ध्यानमें रखकर निश्चित मर्यादाओंके भीतर उचित सावधानी रखना काफी है। इसलिए तुम हाथके बारेमें चिन्ता न करना।

१. **दि डायरी ऑफ महादेव देसाई,** भाग–१ से उद्धृत इस पत्रके उद्धरणोंके लिए देखिए परिशिष्ट ५।

उपवासके दिनके सिवाय मेरा वजन १०६ पौंड बना हुआ है। उपवासके दिन स्वाभाविक रूपसे ही घटकर १०३½ पौंड हो जाता है। २४ घंटोंमें मैं अच्छी सिकी हुई डबलरोटीके ५-६ टुकड़े, ३० खजूर, एक बार कटोरा-भर उबली हुई भाजी, सुबह ४–१५ पर दो चम्मच शहद, चुटकी-भर सोडे और गरम पानीके साथ, और दो बार सोडा और नींबू[1] ले लेता हूँ। लगभग २ औंस बादामकी लुगदी भी लेता हूँ। इतनेसे मुझे सन्तोष मालूम होता है। अगर इससे काम न चला तो फिर दूध लेने लगूँगा। दस्त दिनमें दो-तीन बार बिना किसी दवा या अन्य उपायके साफ हो जाता है। नौ बजेसे पौने चार बजेतक रातमें और दिनके समय २०-२० मिनट करके दो बार सो लेता हूँ। दो दिनमें ३७५ तार कातता हूँ। अभीतक धुनाई शुरू नहीं की है। तुम्हारी भेजी हुई पूनियाँ खतम होती ही नहीं दीखतीं। शेष समय पढ़ने-लिखनेमें लगाता हूँ। अभी तो रस्किनका 'फोर्स क्लेविगेरा' नामक मानवीय भावनासे ओतप्रोत ग्रन्थ पढ़ रहा हूँ। यह आदमी जो कहता है, वह बिलकुल सच्चे दिलसे कहता है। ये पत्र वचन और कर्ममें लेखककी आत्माभिव्यक्तिका उत्तम प्रयत्न हैं।

मुझे पत्रोंके लिखने और अब लिखानेमें भी बहुत वक्त लगता है। चूँकि मुझे साथी कैदियोंको लिखनेकी इजाजत है, इसलिए पिछली बारसे लिखनेका काम ज्यादा सहज रहता है। इससे मैं खुश हूँ। हर सप्ताह आश्रमको नैतिक समस्याओंपर कुछ-न-कुछ लिखकर भेज देता हूँ। और अब पिछले पाँच दिनसे मैंने आश्रमका इतिहास[2] लिखना शुरू किया है।

मेरे बारेमें तुम्हारे सब सवालोंके जवाब खत्म हुए।

वल्लभभाई और महादेवकी तबीयत बहुत अच्छी है। . . .[3] इन मामलोंमें हमपर अपनी लगाई हुई पाबन्दियोंके सिवा और कोई पाबन्दी नहीं है।

थोड़े समयतक नमक छोड़ देनेसे कोई हानि नहीं हो सकती। जो परिणाम तुमने अपने बारेमें देखे हैं, वे तो होते ही हैं। कमजोरी आनेकी जो बात तुम देख रही हो, वह थोड़े दिनकी है और किसी-न-किसी रूपमें ताजा नींबू लेनेसे इसे बहुत हदतक दूर किया जा सकता है। मेरे खयालसे तुम जानती हो कि मैं लगातार ७-८ वर्ष तक बिना नमकके रहा हूँ और उसका कोई दुष्परिणाम नजर नहीं आया। इस प्रयोगमें बहुत लोग मेरे साथ शरीक हुए थे। इसलिए तुम नमक छोड़नेका अपना प्रयोग उससे लाभ होनेकी अवधितक चला सकती हो। दूधमें खालिस नमक बहुत होता है। कच्चे दूधमें खारेपनका स्वाद आता है।

१. "ठंडे पानीके साथ" – मीराबहन।

२. इसे गांधीजी ने ५ अप्रैल, १९३२ को गुजरातीमें लिखना शुरू किया था। देखिए "दैनन्दिनी, १९३२"; इसका अंतिम उपलब्ध भाग ११ जुलाई, १९३२ को लिखा गया। इसलिए यह पुस्तक खण्ड ५० में सम्मिलित की गई है।

३. यहाँ जेल-अधिकारियोंने एक वाक्य काट दिया था।

तुम अपने बारेमें जो-कुछ कहती हो, उसे मैं समझता हूँ और उसकी कद्र करता हूँ। मैं तुम्हें आश्वस्त कर दूँ कि जब मैं बाहर जाऊँगा, तुम निश्चय ही मेरे साथ रहोगी और निजी सेवाका अपना पहलेवाला काम सँभालोगी। मैं बिलकुल साफ देखता हूँ कि तुम्हारे पास आत्मविस्तारका केवल यही रास्ता है। मैं पहलेकी तरह तुम्हें किसी भी प्रकार कुंठित करनेका दोषी नहीं बनूँगा। विगतको सोचते हुए मुझे यही सान्त्वना मिलती है कि मैंने जो-कुछ किया, तुम्हारे प्रति गहरे प्रेम और तुम्हारे भलेके विचारके सिवा अन्य किसी कारणसे नहीं किया। मैं इस सत्यको एक बार फिर समझ रहा हूँ कि सुराज्य स्वराज्यका स्थान नहीं ले सकता।[1] एक गुजराती कहावत है कि व्यक्ति जो-कुछ स्वयं देखता है, वह शायद उसके घनिष्ठतम मित्रको भी न दिखाई दे, फिर भले ही उसके पास समीक्षणका कोई तीव्र प्रकाश-साधन हो। ये दोनों कहावतें चाहे सबपर लागू न होती हों तो भी तुम्हारे मामलेमें निश्चय ही लागू होती हैं। इसलिए अबसे मेरी तरफसे किसी हस्तक्षेपकी आशंका करनेकी तुम्हें जरूरत नहीं है। फिर तुमसे अधिक स्नेहपूर्ण मेरी सेवा और कौन कर सकता है?

तुम्हारे भेजे हुए भजन महादेवको मिल गये। वे उनपर काम करेंगे।

मैं तुम्हें यह बताना भूल गया कि अब मैंने आकाशके अध्ययनकी आदत डाल ली है। तुम देखती हो कि मेरी लेखनीकी स्याही खतम हो गई है। यह महादेवकी है। और अब सोनेका समय यानी सवा नौसे ज्यादा वक्त हो गया है। लेकिन अपने खयालसे मैंने कोई बात उत्तर दिये बिना नहीं छोड़ी है। नरगिससे जालके बारेमें विस्तृत पत्र मिला है। खूब मुक्ति मिली।

हम सबकी तरफसे प्यार।

बापू

[पुनश्च :]

मैं एक दिलचस्प कतरन साथ भेज रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि वह इतनी गैर-राजनीतिक है कि रोकी नहीं जायेगी।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५०६)से; सौजन्य: मीराबहन।

१. यह वाक्य मूल पत्रमें जेल-अधिकारियोंने काट दिया था; यहाँ यह **दि डायरी ऑफ महादेव देसाई**, भाग–१, पृष्ठ ६३ से लिया गया है।

३३९. पत्र : कुसुम देसाईको

८ अप्रैल, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरे पत्र मिलते रहते हैं। प्यारेलालका पत्र मिला था। मैंने जवाब भी दिया था। अब संस्कृत उच्चारण पक्के कर लेना और व्याकरण भी सीख लेना। तकलीकी बात तो है ही। कब्ज रहता है? तेरा स्वास्थ्य सुधरना चाहिए। 'सरस्वतीचन्द्र'[1] का पहला भाग मुझे बहुत पसन्द आया था। परन्तु चारों ही भाग पढ़ डालने चाहिए। 'काव्य-दोहन' के चार भाग हैं। वे पढ़ लेने चाहिए। 'करण घेलो'[2] और 'वनराज चावडो' तथा नर्मदाशंकर[3] और मणिलाल नभुभाईके[4] कुछ लेख पढ़ जाने चाहिए। इतना पढ़ लेनेसे गुजराती भाषाका स्वरूप समझमें आ जायेगा। ये पुस्तकें इकट्ठी करके तू ही शायद पहुँचा सकती है।

रैले साइकिलके आनेका मुझे तो पता ही नहीं था। किंग्स्ले हाल[5] पत्र लिखूँगा। रोलाँकी[6] पुस्तकें मिल गई हैं। पढ़ लूँगा। तारादेवी[7] यहीं हैं। उनका मेरे नाम पत्र भी आया है। वे और दूसरी बहनें आनन्दमें हैं। तारादेवीने 'रामायण' माँगी हैं, सो भेजूँगा। सुशीलाके दो पत्र आये थे। वह पत्र लिखनेका साहस करे तो प्यारेलालकी बहन कैसे कहलाये? लंकाशायरवाली पुस्तक [छगनलाल] जोशीके पास गई है। वापस आनेपर पढ़ूँगा और राय दूँगा। इस बार पुस्तकोंका ढेर इकट्ठा नहीं किया। पुस्तकें आती तो रहती ही हैं। उनमें से भेजने लायक नहीं दिखीं। रस्किनके 'फोर्स क्लेवीगेरा' के खण्ड आये हैं। चाहिए तो वे भेज दूँ। प्यारेलालको शायद ही इनमें नई बात मिले। मेरे पास म्यूरियल[8] और अगाथा[9] तथा होरेसके[10] पत्र आते हैं। मेरा वजन जितना था, उतना ही अर्थात् १०६ पौण्ड बना हुआ है। खानेमें पिसे हुए बादाम, खजूर, सिकी हुई रोटी, नींबू और कोई उबला हुआ साग—एक बार ये चीजें होती हैं। अभी तो दूधके बिना काम चल रहा है। इस बार कब्ज बिलकुल नहीं है। नींद बढ़ी है। हाथकी खराबी अभीतक है, यह मैं देख

१. गुजरातीके प्रसिद्ध कथा-लेखक गोवर्धन त्रिपाठीका उपन्यास।

२. नर्मदाशंकर मेहताका उपन्यास।

३. १८३३-८६; गुजराती कवि, 'कवि नरमद' के नामसे विख्यात।

४. द्विवेदी (१८५८-९८); गुजरातीके एक प्रसिद्ध विद्वान और वेदान्ती।

५. १९३१ में गांधीजी गोलमेज परिषदके लिए इंग्लैंड गये, उस समय उनका निवास वहाँ था।

६. रोमाँ रोलाँ।

७. प्यारेलाल नैयरकी माँ।

८. म्युरियल लेस्टर।

९. अगाथा हैरिसन।

१०. होरेस एलेक्जेंडर।

रहा हूँ। लेकिन फिलहाल कोई दर्द नहीं होता जान पड़ता। पढ़ना थोड़ा होता है। अभी रस्किनका 'फोर्स' चल रहा है। लिखनेमें 'गीता'का जो हिस्सा बाकी था, वह पूरा हो गया। अब आश्रमका इतिहास हाथमें लिया है। महादेवको लिखवाता हूँ। आश्रमके पत्र काफी समय लेते हैं। बायें हाथसे लिखता हूँ, इसलिए अधिक कातनेमें डेढ़-दो घंटेतक लग जाते होंगे। हाथके कारण अधिक जान-बूझकर नहीं कातता। दो दिनमें ३७५ तार पूरे करनेका आग्रह रखा है। अभी पींजा नहीं। मीराकी दी हुई पूनियाँ चल रही हैं। महादेवने पींजना शुरू किया है।

हरिलाल[1] के बारेमें पूछनेवाला था; इतनेमें तूने ही पूछनेकी हिम्मत कर ली। तूने क्या किया, जहाँ मुझे यह पूछना था, वहाँ तू ही मेरे गले पड़ रही है। मेरी शर्त बनी हुई है। तू क्यों नहीं लिख सकती? तू चाहे जैसा लिख, सुधारना और पास करना तो मुझे है न? संकोच छोड़ कर लिखना है। तू प्रयत्न ही नहीं करती, इसमें एक प्रकारका आलस्य होगा। ऐसा हो तो उसे निकाल दे। तू इतना करे तो प्रस्तावना लिखना मैंने मंजूर किया है सो लिखूँगा। अभी प्रकाशित तो नहीं हो सकती, मगर एक बार लिख ली जाये तो बहुत अच्छा होगा। हो सकता है, बाहर निकलनेके बाद न लिख पाऊँ। मेरा आग्रह सकारण है, यह तो तू समझती है न? तेरे लेखके बिना पत्र-संग्रह सुशोभित ही नहीं होगा। ये अभी प्रकाशित नहीं किये जा सकते।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३४)से।

३४०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

८ अप्रैल, १९३२

चि० प्रेमा,

धुरन्धर यहाँ है तो बहुत करके कभी हम मिलेंगे ही। तू एक पत्थरसे बहुत-से पक्षी मारनेका लोभ रखे, इसके बजाय एक बारमें बहुत-से बेर गिरानेका लोभ क्यों नहीं रखती? पक्षी मारनेका लोभ तेरे लिए तो त्याज्य होना चाहिए।

खपरैल[2] की चोटसे अच्छी बची। इसका यही अर्थ लगायेंकि तेरे हाथसे अभी बहुत बड़ी सेवा होनी बाकी है।

बहनोंके बारेमें मुसीबतमें पड़नेका कोई कारण नहीं है। बहनें तुझसे यह सेवा लेना चाहें और तुझे आत्मविश्वास हो तो करना, वरना यह बात उठी ही नहीं, ऐसा

१. कुसुम देसाईके पति हरिलाल देसाई, जिनके पत्र-संग्रहके लिए कुसुम देसाईको उनका जीवन वृतान्त लिखना था।

२. प्रेमाबहन कंटक छज्जेके नीचे सो रही थी। हवाके झोंकेसे एक खपरैल टूटकर उसके बिस्तरपर आ पड़ा था।

समझकर भूल जाना। तुझमें आत्मविश्वास दूसरोंको सिखानेके लिए नहीं, लेकिन अपनी नम्रताके लिए, गलतफहमी न होने देनेके लिए, कठिन प्रसंग सामने आनेपर उनसे निवट सकनेके लिए होना चाहिए। कई बार हम मानभंग, गलतफहमी, वगैरहके डरसे जिम्मेदारी लेनेमें हिचकिचाते हैं। इस संकोचको तू पार कर सके तो जिम्मेदारी लेना। यह तो तू मानती ही है कि सब बहनें बहुत भली हैं। उन्हें ऐसे व्यक्तिकी मददकी जरूरत है जो उनके विचार लिख सके, दफ्तर सँभाल सके। अपढ़ माँ में पढ़ी-लिखी लड़कीसे ज्यादा समझ और व्यवहार-बुद्धि हो सकती है। लेकिन उस बुद्धिका उपयोग वह निरक्षरताके कारण नहीं कर सकती। इस कमीकी पूर्ति वह लड़कीके माध्यमसे कर सकती है। यह कमी तू पूरी करे, ऐसी मेरी इच्छा है। गंगाबहन थीं, तब मण्डल बहुत काम करता था, ऐसा मैं नहीं मानता। लेकिन किसी-न-किसी बहाने गंगाबहन सब बहनोंको इकट्ठा कर लेती थीं। उन्हें ऐसा लोभ था और उन्होंने इसका बीज बोया था। यहाँ भी तो वे वैसा ही कर रही हैं। उस बीजका वृक्ष देखनेकी मैं आशा रखता हूँ। सामाजिक काम तो बहनें करती ही हैं, लेकिन वह व्यक्तिगत रूपमें करती हैं। मेरी इच्छा है कि किसी सामाजिक सेवाके लिए बहनें सामूहिक रूपमें जिम्मेदारी लें। ऐसा करनेसे संघ-शक्ति पैदा होती है। ऐसी शक्ति पैदा हो तो फिर व्यक्ति भले ही आते और जाते रहें, संघ चलता ही रहता है। यह शक्ति ईश्वरने केवल मनुष्यको ही दी है। इस देशमें स्त्रियोंने यह शक्ति विकसित नहीं की। इसमें दोष पुरुषोंका है। अभी हमें इस विवादमें नहीं पड़ना है। अगर हम यह मानें कि यह शक्ति स्त्रियोंमें बढ़नी ही चाहिए तो उसे बढ़ानेके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। फिर चाहे आरम्भमें इस संघका काम सिर्फ मेरा पत्र प्राप्त करना और उसका उत्तर देना ही हो। धीरे-धीरे (भले बहुत धीरे ही) उसमें वृद्धि की जाये। मेरी बात तू अच्छी तरह समझ गई हो, वह तेरे गले उतरी हो, दूसरी बहनोंको भी यह ठीक लगती हो, इसमें रस लेनेके लिए वे तैयार हों, तभी यह चीज हाथमें ली जाये। लेकिन इसमें कठिनाइयाँ दिखाई दें या कोई महत्त्व न दिखाई दे, तो इसे छोड़ दिया जाये।

मुझे पुस्तकोंकी सूची मत भेजना। अप्टन सिंक्लेयरकी पुस्तकें मैंने मँगाई हैं। उनके सिवा दूसरी कोई पुस्तकें नहीं मँगानी हैं।

एक धर्मके लोगोंको दूसरे धर्ममें लेनेकी प्रथा मुझे तो बिलकुल पसन्द नहीं है। दो अलग धर्मोंके स्त्री-पुरुषोंमें विवाह होना असम्भव या अयोग्य ही है, ऐसा मैं नहीं मानता।

हिन्दू-धर्मके मूल तत्त्व तो वे हैं ही; किन्तु मुझे गोरक्षा और वर्णाश्रम उसके विशिष्ट तत्त्व भी लगते हैं। किसी भी राष्ट्रको उन्नतिके रास्तेपर जाना हो तो उसे सत्य और अहिंसाका आश्रय लेना चाहिए।

मुझे लगता है कि तेरे सब प्रश्नोंके उत्तर इसमें पूरे आ जाते हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

विद्यापीठकी तरफसे प्रकाशित गुजराती जोड़णीकोशके द्वितीय संस्करणकी मेरी प्रति वहाँ होनी चाहिए। वह भेज देना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८०) से। सी० डब्ल्यू० ६७२८ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

३४१. पत्र : सन्तराम आश्रमके सचिवको

८ अप्रैल, १९३२

आपका पत्र और गुजराती 'गीता' और 'रामायण' मिले। दोनोंके लिए महाराज-श्रीका आभार मानता हूँ। इस बारेमें मतभेद हो ही नहीं सकता कि ब्राह्मण पण्डित सन्त पुरुष हों और लोगोंमें उपनिषदादिका प्रचार करें तो अच्छा है। विद्वत्ता और साधुताका मेल आजकल कम पाया जाता है। इसलिए ऐसी प्रवृत्तियोंके बारेमें मनमें उदासीनता तो जरूर रहती है।

'गीता' और 'रामायण' के पूरे पारायणके बारेमें [भी लोगोंके मनमें] ऊपर-जैसी या उससे भी कुछ ज्यादा उदासीनता रहती है। अर्थ समझे बिना या अर्थ समझते हुए भी केवल उच्चारणके लिए — यह मानकर कि मानो उच्चारणमें ही पुण्य हो — या आडम्बर या कीर्तिकी खातिर जो लोग पाठ करते हैं, उनके पारायणका मेरी नजरमें कोई मूल्य नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि मैं यह मानता हूँ कि इससे नुकसान होता है। अगर ऊपरके दोषोंको दूर रखनेके उपाय महाराज खोज सके हों और उसके अनुसार पारायण करा रहे हों, तो इसमें शक नहीं कि उससे भला होगा।

मैं कैदी हूँ, इस बातको ध्यानमें रखकर मेरे ऐसे पत्रोंका सार्वजनिक उपयोग नहीं होना चाहिए। इसलिए इस बारेमें पूरी सावधानी रखियेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ ८१–२।

३४२. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दारको

८ अप्रैल, १९३२

१-२. ईश्वरको मानना चाहिए, क्योंकि हम अपनेको मानते हैं। जीवकी हस्ती है तो जीवमात्रका समुदाय ईश्वर है, और यही मेरी दृष्टिमें प्रबल प्रमाण है।

३. ईश्वरको नहीं माननेसे सबसे बड़ी हानि वही है, जो हानि अपनेको न माननेसे हो सकती है। अर्थात्, ईश्वरको न मानना आत्महत्याके समान है। बात यह है कि ईश्वरको मानना एक वस्तु है और ईश्वरको हृदयगत करना और उसके अनुकूल आचार रखना बिलकुल दूसरी वस्तु है। सचमुच इस जगतमें नास्तिक कोई है ही नहीं। नास्तिकता आडम्बर मात्र है।

४. ईश्वरका साक्षात्कार राग-द्वेषादिसे सर्वथा मुक्त होनेसे ही हो सकता है, अन्यथा कभी नहीं। जो मनुष्य ऐसा कहता है कि मुझे साक्षात्कार हुआ है, उसे साक्षात्कार नहीं हुआ, ऐसा मेरा मत है। यह वस्तु अनुभवगम्य है, परन्तु अनिर्वचनीय है। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

५. ईश्वरमें विश्वास रखनेसे ही मैं जिन्दा रह सकता हूँ। ईश्वरकी मेरी व्याख्या याद रखनी चाहिए। मेरे समक्ष सत्यसे भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। सत्य ही ईश्वर है।

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ ८२।

३४३. एक पत्र

९ अप्रैल, १९३२

चि०

देव अर्थात् भला करनेवाले। दैत्य अर्थात् बुरा करनेवाले। भले और बुरेके बीच मेल कैसे हो सकता है? इसलिए इसमें पक्षपातकी कोई बात नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०१९)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३४४. एक पत्र

९ अप्रैल, १९३२

चि०,

मीराबाईके सम्बन्धमें हम जिन चमत्कारोंकी बात सुनते हैं, उनपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है। मैं यह भी नहीं मानता कि ये चमत्कार इसी तरह घटित हुए होंगे। हमें जिस चीजको ध्यानमें रखना है, वह तो मीराबाईकी पवित्रता है। . . .[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०२५) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३४५. पत्र: मंगला शं० पटेलको

९ अप्रैल, १९३२

चि० मंगला,

शत्रुको हम मित्र-जैसा मानें और वैसा ही व्यवहार करें तो अन्तमें वह हमारे ऊपर विश्वास करने लगेगा।

बीमार आदमीको अनेक तरहकी अपथ्य वस्तुओंको खानेकी इच्छा होती है। इस इच्छाको यदि वह रोक सके तो बीमारी जल्दी जा सकती है। तेरा वजन धीरे-धीरे बढ़ेगा।

'गीता' समझनेके लिए यदि तू, जितना चाहिए, उतना ध्यान देगी तो समझने लगेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८२) से। सी० डब्ल्यू० ४६ से भी; सौजन्य: मंगलाबहन ब० देसाई।

१. शेष पत्रांश उपलब्ध नहीं है।

३४६. पत्र : महेन्द्र वा० देसाईको

९ अप्रैल, १९३२

चि० मनु,

तेरे पत्रकी भाषा ठीक है। लिखावटमें सुधारकी जरूरत है। बीमार क्यों पड़ गया था? अब तो बिलकुल अच्छा हो गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२६) से; सौजन्य: वालजी गोविन्दजी देसाई।

३४७. पत्र : निर्मला ह० देसाईको[1]

९ अप्रैल, १९३२

चि०,

तुलसीको लोग इसलिए पूजते हैं कि तुलसीमें कुछ गुण हैं। क्रोध तो क्रोध पर ही करना चाहिए। विपक्षी मूर्खता करे इसलिए क्या हम भी वैसा ही करें? बड़े-बूढ़े क्रोध करते हैं तब वे भी भूल करते हैं। वे क्रोध करें तो भी हम जिस बातको सही [मानते हैं][2], उसीको पकड़े रहें। बड़े भाई[3] का पत्र तुझे मिल गया न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७०) से। सी० डब्ल्यू० ९०१८ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. एस० एन० रजिस्टरमें यह पत्र निर्मला देसाईको लिखा बताया गया है

२. सी० डब्ल्यू० की प्रतिके अनुसार।

३. महादेव देसाई।

३४८. पत्र : रावजीभाई मणिभाई पटेलको

९ अप्रैल, १९३२

चि० रावजीभाई,

यह तो केवल तुम्हारे पत्रकी पहुँचकी सूचना देनेके लिए है। जो भी व्यक्ति अपनी शक्तिसे ज्यादा कुछ करनेकी कोशिश करता है, वह मूढ़ है। जो अपनी शक्तिके अनुसार अपने कर्त्तव्यका पालन करता है, वह धन्य है। सामान्यतः कर्त्तव्यपरायणता धन्यवादका कारण नहीं होनी चाहिए। किन्तु जहाँ अधिकांश लोग दिवाला निकाल रहे हों, वहाँ जो थोड़े लोग अपना ऋण चुकाते हैं, वे धन्यवादके पात्र हो जाते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९५) से। सी० डब्ल्यू० ९०१४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३४९. पत्र : विद्या रा० पटेलको

९ अप्रैल, १९३२

चि० विद्या,

भगवान न कहींसे आते हैं और न कहीं जाते हैं। भगवान तो सदा हैं और रहेंगे। अवकाशके समय पत्ते खेलनेमें मुझे कोई दोष तो नहीं दिखता, पर मैं उसे प्रोत्साहन नहीं दूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२४) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३५०. पत्र : जमनालाल बजाजको

९ अप्रैल, १९३२

चि० जमनालाल,

तुम्हारे पत्रकी हम सब राह देख रहे थे। पत्र सम्पूर्ण है। वहाँकी खुराक माफिक आ गई है, यह बड़े सन्तोषकी बात है। जानकीबहन और कमलनयनके सम्बन्धमें मुझे समाचार मिल चुके थे। विनोबा यदि व्रत लेकर न बैठ गये हों तो मैं समझता हूँ कि उन्हें दूध लेनेकी जरूरत है। वहाँ भी उनका काम तो सख्त मालूम होता है। उसको करते रहनेके लिए दूधकी जरूरत है, ऐसा मेरा खयाल है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वनस्पतियोंमें ऐसी कोई वनस्पति जरूर है जो दूधकी आवश्यकताको पूरा करती है और दूधके दोषोंसे मुक्त है; परन्तु ऐसी वनस्पतिकी खोज करनेकी योग्यता जिन वैद्योंमें है, उन्हें इसका खयाल नहीं है। यह हम-जैसोंकी शक्तिके बाहरकी बात है; या फिर इसकी खोज करें तो हमें एक ही वस्तुके पीछे पड़ जाना चाहिए। परन्तु मेरी निश्चित राय है कि हम ऐसा नहीं कर सकते। अतः जो धर्म सहज प्राप्त हो गया है, उसीको पकड़ रखना हमारा कर्त्तव्य है। मुझे यही खयाल रहता है कि विनोबाको अपना वजन इतना ज्यादा कम न होने देना चाहिए।

वहाँ तुम्हारे आसपास अच्छा समाज जम गया मालूम होता है। तुम्हारे 'सी' श्रेणीकी मुझे ईर्ष्या होती है। जब तुमको वह वर्ग मिला तो मुझे बहुत खुशी हुई थी। तुम्हारा स्वास्थ्य उससे कुछ खराब होगा, ऐसी शंका मुझे कभी नहीं हुई। खुद अपनी और अपने पड़ोसियोंकी तबीयतकी देखभाल करनेकी तुम्हारी क्षमताके विषयमें मेरे मनमें कभी शंका आई ही नहीं; और जो अनुभव तुमको मिल रहे हैं, वे दूसरी तरह तुम कभी प्राप्त नहीं कर सकते थे।

प्यारेलालसे कहो कि कुसुमके द्वारा लिखे उसके पत्रका पूरा जवाब[1] मैं दे चुका हूँ। इसलिए यहाँ कुछ नहीं लिखाता। वह जवाब कदाचित् इससे पहले उसे मिल जायेगा। न मिले तो मुझे खबर कर देना। हम तीनों मजेमें हैं। अभी दो महीने से मैं रोटी, बादाम, खजूर, एक साग और नींबू लेता हूँ। उससे अच्छा रहता है। एनिमाकी बिलकुल जरूरत नहीं रहती। 'आश्रमका इतिहास' लिख रहा हूँ। बहुत-सा समय पत्र लिखनेमें जाता है। इस छोटे-से मण्डलमें तुम्हारे सम्बन्धमें तो दिनमें कितनी ही बार बातें होती हैं। सबको हम सबके यथायोग्य कहना। जब-जब लिख सको, तब-तब लिखते रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २८९७) से।

१. देखिए "पत्र: कुसुम देसाईको", ८-४-१९३२।

३५१. पत्र : शारदा चि० शाहको

९ अप्रैल, १९३२

चि० शारदा,

सत्यसे राज्य भी मिल सकता है, इसका अर्थ यह है कि सत्यके लिए कुछ भी असाध्य नहीं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सत्य-भाषण करनेवाला कोई व्यक्ति राज्य प्राप्त करनेके लिए निकल पड़े। यह तो ईश्वरकी परीक्षा करनेके समान हुआ। सत्यका पुजारी राज्यका लोभ नहीं रखता। सत्यका आचरण करना ही उसका राज्य है। मुझे तो सब भाषाएँ अच्छी लगती हैं। यज्ञके अर्थका विस्तार तो हमेशासे ही होता रहा है। गुजराती स्त्रियोंकी पोशाक अच्छी कही जा सकती है। उसमें दो परिवर्तन होने चाहिए। नीचे चड्डी भी पहनें और चोलीके बदले कुर्ता।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९४९) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखा-वाला।

३५२. एक पत्र

१० अप्रैल, १९३२

चि०,

यह तो जैसा व्रत लिया हो, उसपर निर्भर है। कोई अमुक घंटे कातनेका व्रत लेता है, कोई अमुक तार कातनेका और कोई दोनोंका — यानी, कम-से-कम इतने घंटे और इतने तार कातनेका। जो भी व्रत लिया हो, उसका मन, वचन और कर्मसे पूरा पालन करना चाहिए।

मनुष्यकी वृत्तियोंका सूत्र-संचालन ईश्वर भी करता है और शैतान भी। हम इन दोनोंके बीचमें झूलते रहते हैं, इसीलिए वृत्तियोंमें फेरफार होता रहता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०१७) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३५३. पत्र : चिमनलाल एन० शाहको

१० अप्रैल, १९३२

चि० चिमनलाल,

तुम्हें प्रतिदिन सोडा और नमक डालकर गरम पानी नाकमें चढ़ाना चाहिए। ऐसा करनेसे नाक रुँधेगी नहीं। नाकसे रोज पानी पीनेकी यह आदत डालने लायक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० १३) से।

३५४. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

१० अप्रैल, १९३२

चि० पण्डितजी,

विद्यापीठके पुस्तकालयके बारेमें तुमने जो लिखा है, वह ठीक है।

वाणी ऐसी होनी चाहिए जिससे किसीको उद्वेग न हो, इसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरे आदमीको उद्वेग होगा ही नहीं। बोलनेवालेका उद्देश्य उद्वेग करनेका न रहा हो फिर भी यह संभव है कि सुननेवालेको उसकी बातसे उद्वेग हो। पिता अपने लड़केसे भाँग न पीनेको कहे तो इसमें उसका उद्देश्य उद्वेग करनेका नहीं होता, किन्तु लड़केको भाँग पीनेकी आदतके कारण उद्वेगका अनुभव होता है। तथापि, यह तो मानना ही होगा कि पिताका धर्म भाँगका निषेध करनेका था।

'नारायणराव'[1] वाली बात महादेवकी समझमें नहीं आई। 'हसूद' नाम कहाँसे आया है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२५) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

१. देखिए "पत्र : नारायण देसाईको", ११-३-१९३२।

३५५. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

१० अप्रैल, १९३२

प्रिय बालको और बालिकाओ,

राष्ट्रीय सप्ताह[1] के कार्यक्रमका थोड़ा विवरण मुझे अब [तुम्हारे] अगले पत्रमें मिलेगा। हम तो यहाँ उपवास और थोड़ा अधिक कातनेके सिवा कुछ नहीं कर सके। तुम्हारे शब्दोंके हिज्जोंमें गलतियाँ रह जाती हैं, यह नहीं होना चाहिए। मेरी कमीसे तुम्हें सबक लेना चाहिए। वह 'जोडनीकोश' तुम लोगोंके देखते रहनेके लिए जल्दी तैयार करवाया गया था।

प्रार्थनामें सचमुच सावधान रहते हो तो कहा जायेगा तुम एक कदम आगे बढ़े।

हमें पाप करनेके लिए कौन प्रेरित करता है, इसका उत्तर तो 'गीतामाता' ने दिया ही है। काम और क्रोध हमसे पाप करवाते हैं। इसे तुम सब अपने पिछले जीवनका स्मरण करके देख सकोगे। कथनकी संगति मिलाकर जाँचना। विद्यार्थी मण्डल आश्रम-व्यवस्थाके अन्तर्गत होनेके कारण अंशत: परतन्त्र है। सभी मण्डल अंशत: परतन्त्र होते ही हैं। अपने निर्धारित क्षेत्रमें विद्यार्थी मण्डल स्वतन्त्र है।

विद्यार्थी-जीवनमें किसी उद्योगके बारेमें कहूँ तो कह सकता हूँ कि जिल्दसाजी और बढ़ईगिरी मुझे पसन्द थे। चरखेसे ही सम्बन्धित इतने अधिक उद्योग हैं कि उनके बाद फिर दूसरा कोई काम हाथमें लेनेका सवाल नहीं रहता। सम्पूर्ण चरखा-शास्त्र जाननेके लिए इतने सब उद्योगोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिए: खेती, रसा-यन, रंगरेजी, चित्रकला, बढ़ईगिरी, लुहारी, बुनाई, सुइयोंसे बुनना, सीना, ओटाई, पिंजाई, धोबीका काम; फिर विभिन्न देशोंके उद्योगोंका इतिहास, खुदाई, अंकगणित, रेखागणित, आदि। तुम खुद सोचकर देखना कि ऊपरकी बातोंकी सामान्य जानकारी चरखा-शास्त्रके लिए आवश्यक है या नहीं। मैंने तो जो याद आ गये, उन कलाओं और उद्योगोंके नाम लिख दिये। साथ बैठकर विचार करोगे तो तुम और भी सम्बन्धित उद्योगोंके नाम सोच सकोगे। कुछ नये सूझें तो मुझे लिखना। आशा है इस सूचीको तो ध्यानमें रखोगे ही।

हम जिनको पूजते हैं वे कृष्ण, भूलके पुतले नहीं, पूर्णावतार हैं और इसलिए कोई ऐतिहासिक कृष्ण न होकर वे योगेश्वर कृष्ण थे, जिन्होंने अर्जुनको गीतामृत पान कराया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ९०२० से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. सन् १९१९ में सत्याग्रह-आन्दोलनके शुरू होनेपर यह ६ से १३ अप्रैलतक प्रति वर्ष मनाया जाता था।

३५६. पत्र : मनु गांधीको

१० अप्रैल, १९३२

चि० मनुड़ी,

तूने पत्र लिखकर अच्छा किया है। तू हरिलालका डर छोड़ दे और उसे भूल जा। बली बहादुर है। उसने जो तमाचा मारा[1], उसमें हिंसा नहीं थी, उसका सरस प्रेम ही था।

मैंने पिछले सप्ताह जो पत्र[2] लिखा था, वह मिल गया होगा। उसमें मैंने सभी कुछ लिखा था इसलिए आज ज्यादा नहीं लिख रहा हूँ। अब तेरा वजन कितना है? बा को पत्र न लिखा हो तो अब लिख देना। उन्हें तेरे पत्रकी प्रतीक्षा जरूर होगी।

क्या रोज प्रार्थना करती है? भजन गाती है? न करती हो तो अब करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५१२) से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला।

३५७. पत्र : विमलचन्द्र वा० देसाईको

१० अप्रैल, १९३२

चि० नानु,

तेरा पत्र सुन्दर माना जा सकता है। किन्तु तुझे अंक ऐसे लिखने चाहिए मानो छपे हुए हों। बालपोथी पढ़ना ही चाहता हो तो प्रेमाबहन पढ़ा देगी। जो-कुछ भी करे, उसे सुन्दरतासे करनेकी आदत डाल ले।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७५५) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

१. हरिलालको; देखिए **महादेवभाईनी डायरी**, भाग–१, पृष्ठ ९१।

२. देखिए "पत्र : मनु गांधीको", ४-४-१९३२।

३५८. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

१० अप्रैल, १९३२

चि० परसराम,

मीराबहनकी दी हुई पूनियाँ चल रही हैं; फिर पाँच तारीखसे महादेवने पींजना शुरू कर दिया है। इसलिए उसमें से भी कुछ हिस्सा मिल जाता है। पिछली बार जेल गया था, तभीसे मालिश कराना छोड़ दिया है। किन्तु महादेव तलवोंपर घी मल देता है।

शिक्षकोंके विषयमें लिख सका तो लिख दूँगा। बालकोंकी चोरी आदि करनेकी आदत प्रेमसे छुड़ा सकते हैं, भय दिखाकर नहीं। धमकानेका ज्यादा असर नहीं होता।

खुशामद और शुद्ध सेवामें उतना अन्तर है जो झूठ और सचमें है।

दूसरी त्याज्य बातोंमें लोकनिन्दाका भय भी आ जाता है। हमारे मनमें लोक-निन्दाका डर नहीं होना चाहिए परन्तु हम उसकी अवगणना भी न करें।

नीति-व्यवहार निरपेक्ष है और सापेक्ष भी।

रसायनशास्त्रसे हानि तो नहीं होती पर उसके दुरुपयोगसे हो सकती है। और उसका दुरुपयोग खूब हो रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४९३) से। सी० डब्ल्यू० ४९७० से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा।

३५९, पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

१० अप्रैल, १९३२

चि० ब्रजकिसन,

तुम्हारा खत मुझको मिल गया। तुमने सब हाल विस्तारसे दिये हैं यह अच्छा किया। और डाक्टर [अंसारी][1] साहेब वगैरह तुम्हारे साथी हैं उसे मैं तुम्हारा सौभाग्य समजता हूँ। सबको हम तीनोंके बहुत सलाम और बं० मा० कहो। डाक्टर साहेबके दांत अब बन गये होंगे। तुम्हारा ३ तारीखका पत्र मुझे नहीं मिला।

३३ वे वर्षमें प्रवेश करनेके लिये आशीर्वाद है ही। एक तीहाइ आयु खत्म हुआ। उम्मीद तो रखें कि दो तीहाइ पूरा पूरा बाकी रहे और उसमें सेवाके सब

१. ब्रजकृष्ण चाँदीवाला इन दिनों डॉ० अन्सारीके साथ दिल्ली जेलमें बन्द थे। ११ अप्रैलको उन्हें मुल्तान-जेल भेज दिया गया था।

साधन तुमको मिलते रहे। तुम्हारी भावना उत्तम प्रकारकी है इसलिये मेरा विश्वास है कि दृढता इ० गुण धीरे धीरे तुममें आ जायेंगे।

मुझको खत लिखते रहो। देवदासके बारेमें खबर मिलते रहते है। कृष्ण नायर कुछ खबर आजकल कुछ नहीं है। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। वैसे ही सरदार वल्लभभाई ओर महादेवका। दो महिनेसे मैंने दूध छोड़ा है और उसके बदलेमें बादाम लेता हूं। और दूध छोडा उस वख्तसे रोटी और एक भाजी और लींबु लेता हूं। और अब तक तो अच्छा रहा है। वजन जो यहां आनेपर था वही है यानी १०६ रतल।

गीता शब्दानुक्रम तो पिछली साल ही खत्म किया था। इस समय आश्रमका इतिहास लिख रहा हूं। थोडा पढनेका होता है और कातनेका तो है हि।

बापूना आशीर्वाद

जी० एन० २३९१ से।

३६०. तार: कमला नेहरूको

११ अप्रैल, १९३२

आनन्द भवन
इलाहाबाद

यह जानकर कि आम सभामें[1] माँको चोट आ गई और रणजीत[2] बुखार में पड़ा है, खेद हुआ। आशा है चिन्ता योग्य नहीं है। पूरा ब्यौरा तारसे भेजो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्सस्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (३), भाग १, पृष्ठ १२७। **बॉम्बे क्रॉनिकल,** १८-४-१९३२ से भी।

१. इलाहाबादमें राष्ट्रीय सप्ताह (६-१३ अप्रैल) के उत्सवोंके दौरान स्वरूपरानी नेहरू एक जलूसका नेतृत्व कर रही थीं; पुलिसके लाठीचार्ज करनेपर उनके सिरपर चोट आई थी।

२. रणजीत एस० पण्डित।

३६१. आकाश-दर्शन[1]–१

सत्यके पुजारीका रस अनन्त होता है। सत्यनारायणकी झाँकीके लिए वह अपने आपको कभी बूढ़ा नहीं मानता। जो हर काम सत्यरूप ईश्वरके ही प्रीत्यर्थ करता है, जो सर्वत्र सत्यको ही देखता है, उसके लिए बुढ़ापा विघ्नरूप नहीं होता। सत्यार्थी अपने ध्येयको ढूँढ़नेके लिए अमर है, अजर है।

यह सुन्दर स्थिति मैं तो बरसोंसे भोग रहा हूँ। जिस ज्ञानसे जान पड़े कि मैं सत्यदेवके अधिक पास पहुँच रहा हूँ, उसके पीछे जानेमें बुढ़ापा मुझे बाधक नहीं हुआ। इसकी ताजा मिसाल मेरे लिए आकाश-दर्शन है। आकाशका सामान्य ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा तो अन्तरमें अनेक बार उपजी; पर मैंने यह मान लिया था कि मेरे और काम मुझे इस ओर लगनेकी इजाजत न देंगे। यह खयाल गलत भले ही हो, पर जबतक मेरा मन अपनी भूल न देख ले, तबतक तो वह मेरे लिए रुकावट बनेगी ही। सन् १९२२ के कारावासमें भाई शंकरलालको प्रेरणा देनेवाला बहुत करके मैं ही था। उस विषयकी पुस्तकें मँगाई गईं। भाई शंकरलालने तो इतनी जानकारी प्राप्त कर ली जितनेसे उन्हें सन्तोष हो जाये। मुझे फुरसत न मिली।

सन् १९३०–३१में काकासाहबका सत्संग मिला। उन्हें इस विषयका अच्छा ज्ञान है। पर मैंने उनसे उसे न पाया। इसलिए कि उस वक्त मुझे सच्ची जिज्ञासा न थी। १९३१ में कारावासके आखिरी महीनेमें एकाएक शौक जगा। बाह्य दृष्टिसे जहाँ सहज ही ईश्वर रहता हो, उसका निरीक्षण मैं क्यों न करूँ? आँखें पशुकी तरह महज देखा करें, पर जिसे देखें, वह विशाल दृश्य ज्ञानतंतुतक न पहुँचे, यह कैसी दयनीय बात है? ईश्वरकी महान लीलाके निरखनेका यह सुयोग कैसे जाने दिया जाता? यों आकाशको पहचान लेनेकी जो प्यास जगी, उसे अब बुझा रहा हूँ और यहाँतक आया हूँ कि आश्रमवासियोंको अपने मनमें उठनेवाली तरंगोंमें साझीदार बनाये बिना अब रहा नहीं जाता।

हमें बचपनसे यह सिखाया गया है कि हमारा शरीर पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु नामके पंचमहाभूतका बना हुआ है। इन सभीके विषयमें हमें थोड़ा-बहुत ज्ञान होना ही चाहिए; फिर भी इन तत्त्वोंके विषयमें हमें बहुत थोड़ी जानकारी है। इस समय तो हमें आकाशके विषयमें ही विचार करना है।

आकाशके मानी हैं अवकाश — खाली जगह। हमारे शरीरमें अवकाश न हो तो हम क्षण-भर भी न जी सकें। जो बात शरीरके विषयमें है, वही जगतके विषयमें भी समझनी चाहिए। पृथ्वी अनन्त आकाशसे घिरी हुई है, हम अपने चारों ओर जो आसमानी रंगकी चीज देखते हैं, वह आकाश है। पृथ्वीके छोर सिरे हैं। वह ठोस गोला है। उसकी धुरी ७,९०० मील लम्बी है; पर आकाश पोला है। उसकी

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", ११-४-३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

धुरी मानें तो उसका कोई ओर-छोर न होगा। इस अनन्त आकाशमें पृथ्वी एक रज-कणके समान है और उस रज-कणपर हम तो रज-कणके भी ऐसे तुच्छ रज-कण हैं कि उसकी कोई गिनती ही नहीं हो सकती। इस प्रकार शरीर रूपसे हम शून्य हैं, यह कहनेमें तनिक भी अतिशयोक्ति या अल्पोक्ति नहीं। हमारे शरीरके साथ तुलना करते हुए चींटीका शरीर जितना तुच्छ है, पृथ्वीके साथ तुलना करनेमें हमारा शरीर उससे हजारों-गुना तुच्छ है, तब उसका मोह क्यों हो? वह छूट जाये तो शोक क्यों करें?

पर इतना तुच्छ होते हुए भी इस शरीरकी भारी कीमत है, क्योंकि वह आत्माका और हम समझें तो परमात्माका — सत्यनारायणका — निवास-स्थान है।

यह विचार अगर हमारे दिलमें बसे तो हम शरीरको विकारका भाजन बनाना भूल जायें। और अगर हम आकाशके साथ ओतप्रोत हो जायें और उसकी महिमा तथा अपनी अधिकाधिक तुच्छताको समझ लें तो हमारा सारा घमण्ड चूर हो जाये। आकाशमें जिन असंख्य दिव्य गणोंके दर्शन होते हैं, वे न हों तो हम भी न हों। खगोलवेत्ताओंने बहुत खोज की है, फिर भी हमारा आकाशविषयक ज्ञान नहींके बराबर है। जितना है, वह हमें स्पष्ट रीतिसे बताता है कि आकाशमें सूर्यनारायण एक दिनके लिए भी अतन्द्रित तपश्चर्या बन्द कर दें तो हमारा नाश हो जाये। वैसे ही, चन्द्र अपनी शीत किरणें लौटा ले तो भी हमारा यही हाल होगा और अनुमानसे हम कह सकते हैं कि रात्रिके आकाशमें जो असंख्य नारायण हमें दिखाई देते हैं उन सबका इस जगतको बनाए रखनेमें स्थान है। इस प्रकार इस विश्वमें सम्पूर्ण प्राणियोंके साथ, सम्पूर्ण दृश्योंके साथ हमारा बहुत घना सम्बन्ध है और हम एक-दूसरेके सहारे टिक रहे हैं। अतः हमें अपने आश्रयदाता आकाशमें विचरनेवाले दिव्य गणोंका थोड़ा परिचय कर ही लेना चाहिए।

इस परिचयका एक विशेष कारण भी है। हमारे यहाँ कहावत है — "दूरके ढोल सुहावने।" इसमें बहुत सचाई है। जो सूर्य हमसे इतनी दूर रहकर हमारा रक्षण करता है, उसी सूर्यके पास जाकर हम बैठें तो उसी क्षण भस्म हो जायें। यही बात आकाशमें बसनेवाले दूसरे गणोंकी भी है। अपने पास रहनेवाली अनेक वस्तुओंके गुण-दोष हम जानते हैं। इससे कभी-कभी हमें उनसे विरक्ति होती है, दोषोंके स्पर्शसे हम दूषित भी होते हैं। आकाशके देवगणके हम गुण ही जानते हैं, उनको निहारते हम थकते ही नहीं, उनका परिचय हमारे लिए हानिकर हो ही नहीं सकता और इन देवोंका ध्यान धरते हुए हम अपनी कल्पना-शक्तिको उदात्त विचारोंके साथ जितनी दूर ले जाना हो, ले जा सकते हैं।

इसमें तो शंका ही नहीं कि आकाशके और अपने बीच हम जितना पर्दा खड़ा करते हैं, उतने ही अंशमें अपनी देह, मन और आत्माको हानि पहुँचाते हैं। हम स्वाभाविक रीतिसे रहते हों तो चौबीसों घंटे आसमानके नीचे ही रहें। यह न हो सके तो जितने समय रह सकते हों, उतने समय रहें। आकाश-दर्शन अर्थात् तारा-दर्शन तो रातमें ही हो सकता है और सबसे अच्छा तो सोते समय हो सकता है। अतः जो इस दर्शनका पूरा लाभ उठाना चाहे उसे तो सीधे आकाशके नीचे

ही सोना चाहिए। आसपास ऊँचे मकान या पेड़ हों तो वे इस दर्शनमें विघ्न डालते हैं।

बच्चोंको और बड़ोंको भी नाटक और उनमें दिखाये जानेवाले दृश्य बहुत रुचते हैं; पर जिस नाटककी योजना प्रकृतिने हमारे लिए आकाशमें की है, उसको मनुष्य-कृत एक भी नाटक नहीं पा सकता। फिर नाट्यशालामें आँखें बिगड़ती हैं, फेफड़ोंमें गन्दी हवा जाती है, और आचरणके बिगड़नेका भी बहुत डर रहता है। इस प्राकृतिक नाटकमें तो लाभ-ही-लाभ है। आकाशको निहारनेमें आँखोंको शान्ति मिलती है। आकाशके दर्शनके लिए बाहर रहना ही होगा, इसलिए फेफड़ोंको शुद्ध हवा मिलेगी। आकाशको निहारनेमें किसीके आचरणका बिगड़ना आजतक नहीं सुना गया। ज्यों-ज्यों इस ईश्वरीय चमत्कारका ध्यान किया जाता है, त्यों-त्यों आत्माका विकास ही होता है। जिसके मनमें रोज रातको सपनेमें मलिन विचार आते हों, वह बाहर सो कर आकाश-दर्शनमें लीन होनेका यत्न कर देखे। उसे तुरन्त निर्दोष निद्राका आनन्द मिलेगा। आकाशमें अवस्थित दिव्यगण मानो ईश्वरका मूक स्तवन कर रहे हों। हम जब इस महादर्शनमें तन्मय हो जायेंगे तब हमारे कान उसको सुनते जान पड़ेंगे। जिसके आँखें हों वह इस नित्य नवीन नृत्यको देखे। जिसके कान हों, वह इन अगणित गन्धर्वोंका मूक गान सुने।

आइए, अब हम इनके बारेमें कुछ जानें या मुझे जो बहुत थोड़ा मिला है, उसमें सब साथियोंको साझी बनाऊँ। सच पूछिए तो पृथ्वी आदिके विषयमें थोड़ा सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद आकाश-दर्शन किया जाये तो ठीक कहा जायेगा। हो सकता है कि मैं जो लिखनेवाला हूँ, वह काकासाहबके सम्पर्कमें आये हुए आश्रमके सब बालक जानते हों। ऐसा हो तो अच्छा ही है। मैं आश्रमके छोटे-बड़े, नये-पुराने सभीके लिए लिख रहा हूँ। उसमें जिसको रस मिले, उसके लिए तो यह विषय बिलकुल ही आसान हो जायेगा।

प्रार्थनाके बाद तुरन्त आकाश-दर्शन करना अच्छा होगा। इसमें एक बार बीस मिनटसे अधिक समय देनेकी जरूरत नहीं। जो समझेगा, वह इसे प्रार्थनाका अंग ही मानेगा। बाहर सोनेवाला अकेले जितनी देर ध्यान करना हो, करे। थोड़ी ही देरमें उसी ध्यानमें वह सो जायेगा। रातमें नींद टूटे तो फिर थोड़ी देर दर्शन कर ले। आकाश प्रतिक्षण फिरता दिखाई देता है। इससे क्षण-क्षणमें उसके दर्शन बदला ही करते हैं।

रात आठ बजे आकाशकी ओर देखिए तो पश्चिममें एक भव्य आकृतिके दर्शन होंगे।
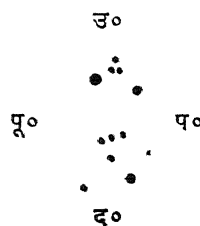
यह आकृति पश्चिममें होगी। मैं पूर्वमें सिर रखकर सामने देख रहा हूँ। इस तरह देखनेवाला इस आकृतिको भूल ही नहीं सकता। इन दिनों उजाला पाख है, इसलिए यह तारा-मण्डल और कई दूसरे कुछ धूमिल तारा-मण्डल भी दिखाई देते हैं। फिर भी यह मण्डल इतना तेजस्वी है कि मुझ-जैसे नौसिखियेको भी इसे ढूंढ़ लेनेमें कठिनाई नहीं होती। इसके विषयमें हमारे यहाँ और पश्चिममें लोगोंका क्या खयाल है, यह पीछे बताऊँगा। इस वक्त तो इतना ही कहूँगा कि इस मंडलके स्थानका वर्णन वेदमें देखकर लोकमान्य तिलक महाराज वेदके कालकी खोज कर सके थे। आश्रमके पुस्तक-संग्रहमें स्वर्गवासी दीक्षितजी की एक पुस्तक है। उसमें तो बहुत बातें बताई गई हैं। मेरा काम तो रस उत्पन्न कर देना मात्र है, पीछे तो आश्रमवासियोंसे ही मैं अधिक सीख सकूँगा। मेरे लिए तो ये नक्षत्र ईश्वरके साथ सम्बन्ध जोड़नेके एक साधन हो गये हैं। आश्रमवासियोंके लिए भी हों।

"जैसा बने वैसा तू रह पर जैसे-तैसे हरिको प्राप्त कर।"[१]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८२१८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३६२. पत्र : नारणदास गांधीको

११ अप्रैल, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मिलनेके लिए किसीका न आना मुझे तो पसन्द ही है। उसका मुख्य कारण यही है कि पैसेका व्यय होता है; फिर खर्च करनेवाला कोई भी हो। जहाँ जाये बिना काम चल ही नहीं सकता, वहाँ तो कहनेकी कोई बात है ही नहीं। यह विचार जिसके मनमें न बैठे, उसको इसपर अमल नहीं करना है। बाहर रह जानेवाले लोगोंकी स्थिति या उनकी भावनाका माप मैं कर ही नहीं सकता।

तिलकम मलाबार तो बिलकुल न जाये। किसी दूसरी जगह भेजना सम्भव हो तभी बात बने। बम्बई भेजना सम्भव हो तो यह भी आजमाने योग्य है। सम्भव है, अहमदाबाद जिन्हें माफिक नहीं आता, उन्हें बम्बई ठीक बैठ जाये। बम्बईकी आबहवा मलाबारसे मिलती-जुलती तो है ही। हमने देखा, कि वह जमनाको माफिक आई। मणिलालसे (रेवाशंकरभाईके) पूछकर देखना या दामोदरसे — शायद तुम्हें मेरा खयाल ठीक लगे। मनु बिलकुल ठीक हो गया होगा। अगर अमतुलको पैसेकी तंगी हो तो मुझे लगता है कि किराये वगैरहका प्रबन्ध हमें करना चाहिए।

विद्यापीठके पुस्तकालयके बारेमें समझ गया। तुम सबको जो योग्य लगे, वही करना।

१. गुजराती सन्तकवि अखा भगत (१६१५–१६७४ ई०) के गीतकी एक पंक्ति।

दूध छूटे अब तो दो महीने हो गये। उसका कोई खराब असर पड़ा हो तो मेरी दृष्टिमें तो नहीं आया। कह सकते हैं, वजन टिका हुआ है। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, मेरा यह विचार बनता जा रहा है कि जिसे बहुत दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती और जिसे नियमपूर्वक सोने-बैठनेको मिल सकता है, वह दूधके बिना काम चला सकता है। अर्थात्, दूध राजसी-प्रवृत्तियोंके लिए जरूरी है।

मैं हरियोमलकी कीमत समझ पाया हूँ। हठ कर-करके वह अपना शरीर निचोड़ न डाले, यह देखना। कृष्णमय्यादेवीको तो हम लोग समझते ही हैं, किन्तु यह सोचकर कि ये कुटुम्बीजन हैं, इन्हें बर्दाश्त किये बिना चारा नहीं है। कुटुम्बीजनोंको जिस हदतक सहते हैं, इस कुटुम्बको उससे भी जरा ज्यादा सहन करें। जब तुम्हें लगे कि अब हद हो गई है, तब पैसा भेजना बन्द कर देना। मैं यहाँसे अधिक और कोई राय नहीं दे सकता।

'अनासक्तियोग' के मलयालममें अनुवादकी अनुमति दे देना। तुम्हारे पत्रसे ऐसा लगता है कि हरिहर शर्मा बाहर है। मेरा ऐसा खयाल है कि वह राजगोपालाचारीके साथ है।

मथुरादासके बारेमें तुम जो लिखते हो सो ठीक है।

अनन्तपुरसे जेठालालके समाचार मुझे नहीं मिले। पत्र भी नहीं मिला। मेरा खयाल है कि हरिलाल यदि अब आश्रममें आये तो शराब छोड़ देनेकी शर्तपर ही उसे आने दिया जा सकता है। पद्माको अल्मोड़ामें कबतक रखना है, अब यह बात थोड़े विचारके योग्य है। इस विषयमें पद्माकी और सीतला सहायकी राय भी जान लेना।

वहाँ शेर आ जाये तो क्या करना चाहिए, इसकी तो मैं काफी चर्चा कर चुका हूँ। उसमें से तुम्हें जो याद रह गया हो और जितना तुम पचा सके हो, उसीके अनुसार करना।

सासवडके भाई विष्णु काणेके बारेमें संवेदनाका पत्र मैंने सीधे चिन्तामणि शास्त्रीकी मारफत भेजा है।

पत्रोंको सेंसर करना। रावजीभाईका पत्र पास न करने लायक था। तुम्हारा बोझ तो बढ़ता है। किन्तु हम जिन बातोंको महत्त्व देते हैं, उनके विचारसे यह आवश्यक है।

बापूके आशीर्वाद

संलग्न :
ह्यूमके नाम एक अंग्रेजी-पत्र।
'आकाश-दर्शन' पर लेख।[१]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

३६३. पत्र : हीरालाल शाहको

१२ अप्रैल, १९३२

भाईश्री हीरालाल,

आपकी पुस्तकें और प्रेमपूर्ण पत्र मिला। ये एक हफ्ते देरसे मिले क्योंकि डाह्याभाई भूल गये थे। पुस्तकें उपयोगी सिद्ध होंगी। आपके पत्र और टिप्पणियाँ उनको अधिक उपयोगी बनायेंगी। आप मानते हैं उतना लोभ मुझे नहीं है। इतना मामूली ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहता हूँ कि जिससे मैं आकाशमें ईश्वरको ज्यादा अच्छी तरह देख सकूँ। आपको जो ठीक लगे, वही खगोल-विद्याकी कोई छोटी-सी पुस्तक भेज देना। आपकी पुस्तकें सँभालकर रखूँगा। इस बारेमें आपकी सावधानी मैंने देखी है। मैं मित्रोंसे ऐसी पुस्तकें एकाएक नहीं लिया करता। कहीं खो जायें या खराब हो जाये, तो!

आपकी मेहनत और सुघड़पनकी जितनी तारीफ करूँ, थोड़ी है। लेकिन मुख्य कुंजी[1] मिल जानेका दावा क्या कुछ ज्यादा नहीं है? वह कुंजी क्या है? उसे कुंजी और मुख्य कुंजी माननेके क्या आपके पास सबल प्रमाण हैं? विशारदोंने उसे स्वीकार किया है? अपनी खोजसे आप किस फलके निकलनेकी आशा दिलाते हैं? इसमें चरखेवाला मुख्य कुंजीके अभावका दोष तो नहीं है? मैं आपसे समझनेके लिए तैयार हूँ। और तटस्थभावसे आपकी दलीलोंको तोलूँगा। मगर शोधकको, जो शोभा दे, ऐसी नम्रता अपनेमें पैदा कीजिये। मैं जानता हूँ कि वह पैदा करनेसे नहीं आती। सच्ची खोजोंमें वह छुपी ही रहती है। अपने पास हजारों प्रमाण हों तो भी शोधकको अपनी खोजके बारेमें शंका रहती ही है। नतीजा यह होता है कि जब वह अपनी खोज दुनियाके सामने रखता है, तब उसे साक्षात्कार हो चुकता है। जगत विस्मित होता है और उसपर विश्वास करता है। उसके वचनमें सत्ता होती है, तेज होता है। संसार उसकी बातको मान लेता है। उसके प्रमाणोंसे जगत चकित हो जाता है। क्योंकि शोधक तो अपनी खोजकी दसों दिशाओंसे जाँच कर चुकता है। ये सब बातें आपकी खोजके बारेमें सच हों, तो मुझे कुछ कहना नहीं है। ऐसा हो तो आपको सहस्र प्रणाम! परमात्मा करे ऐसा ही हो।

हम सब यानी तीनों आनन्दमें हैं। शंकरसे कहें कि स्वास्थ्य न बिगाड़े, खत लिखे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ ९३-४।

१. **दि डायरी ऑफ महादेव देसाई,** भाग–१ में महादेव देसाई लिखते हैं: "हीरालाल शाहने बापूको लिखा था कि उन्होंने कुछ विषयोंकी व्याख्या करनेके लिए मुख्य कुंजी प्राप्त कर ली है।"

३६४. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ अप्रैल, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। गुरुवारको मिलनेवालोंका दल आयेगा, यह मैंने लिख रखा है। अमेरिका तार दे देना कि आश्रमकी नीति [अपने प्रकाशनोंमें] विशेष अधिकारोंका उपभोग करने या दूसरोंको वैसा अधिकार देनेकी नहीं है। इसलिए तफसीलसे पत्र लिखें जिससे निश्चित निर्णय लिया जा सके।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

बेचारी मणि मुक्त हो गई। मैं तो यह खबर पाकर हल्का ही हुआ।

अखण्ड कताईका परिणाम जाननेके लिए आतुर रहूँगा। उसके लिए अलग कार्ड लिख भेजना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२१९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३६५. पत्र : शान्तिलाल मेहताको

१२ अप्रैल, १९३२

चि० शान्ति,

तुम्हारा दूसरा पत्र मिल गया था। कुछ भी करो धैर्यपूर्वक करना। अपनी पत्नीको थोड़ा-बहुत पढ़ाओ तो अच्छा है। मणिलालको मई मासमें आ जाना चाहिए। काम समेटनेमें जितना सोचा था, उसे उससे ज्यादा समय लग गया है। सोच-विचार कर खर्च करना। अपनी पत्नीको पढ़ाओ; या उसकी पढ़ाईका बन्दोबस्त करनेके विषयमें जमनादाससे सलाह करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

३६६. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

१२ अप्रैल, १९३२

भाईश्री खम्भाता,

मैं यह सोच ही रहा था कि तुम्हारा पत्र क्यों नहीं आया; इतनेमें तुम्हारा पत्र मिल गया। तुम्हारे पत्रसे अनुमान लगा रहा हूँ कि तुम्हारी तबीयत ठीक है। तुम्हारा विलायतसे भेजा हुआ पत्र अन्तमें मेरे पास पहुँच गया था और मेरा तो यही खयाल है कि मैंने उसका जवाब भी दिया था। सिरके नीचे हाथ दबाकर सोनेकी आदत है, यह तो मैं नहीं जानता। सम्भव है कि किसी समय दबा रह गया होगा। तुम्हारा पत्र मिलनेके बाद मैंने ध्यान तो रखा ही था और इस विषयमें चौकस भी रहता हूँ। इसलिए उसके बाद हाथ उस ढंगसे कभी नहीं रखा, यह मैं कह सकता हूँ। किन्तु उसका कुछ असर हुआ है, ऐसा मुझे नहीं लगता। इस दुर्बलताका क्या कारण है यह अभीतक कोई नहीं बता सका। सिर्फ सावधान रहनेके लिए दाहिने हाथसे लिखना भी छोड़ दिया था। तो भी डाक्टरोंने बादमें निर्णय किया कि जो दर्द होता है, वह लिखनेके कारण नहीं होता। मालिश करनेसे आराम हो सकता हो तो यहाँ भी मालिश करनेकी अनुमति तो जरूर मिल जायेगी। किन्तु किस तरह मालिश करनी है यह लिखो, जिससे मैं उसी तरह अपने-आप मालिश कर लूँ या महादेवसे करा लूँ। परन्तु मेरे हाथके बारेमें तनिक भी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। हर समय दर्द रहता है, ऐसा नहीं है। कुछ खास काम करते ही दर्द होता है। यहाँके डाक्टरोंका तो ऐसा विचार था कि यह बुढ़ापेकी निशानी है। इसलिए कोई इलाज नहीं हो सकता। साधारण तौरपर बुढ़ापेमें कई तरहकी कम-जोरी आ जाती है क्योंकि हम अपने जीवनमें पहले संयमका पालन नहीं करते। यह ऐसा भी हो सकता है; और अगर हो तो इसमें दुःख या ताज्जुब करनेका कोई कारण नहीं। इसलिए इस विषयमें सावधान रहनेके अतिरिक्त मैं और किसी तरहकी चिन्ता नहीं करता। आजकल यहाँ एक नया डाक्टर आया है। उसका विचार है कि वह दर्द ठीक कर पायेगा। देखता हूँ क्या होता है।

तुम दोनों प्रसन्न होगे। हम तीनों आनन्दसे हैं। एण्ड्रयूज मिला ही होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५४८) से। सी० डब्ल्यू० ५०२३ से भी; सौजन्य : तहमीना खम्भाता।

३६७. पत्र : आर० वी० मार्टिनको

१३ अप्रैल, १९३२

प्रिय मेजर मार्टिन,

६ मार्चको मैंने मेजर भण्डारी[1] को गैर-राजनीतिक साथियोंसे मुलाकातोंके बारेमें लिखा था। मैंने ३० मार्चको एक स्मरण-पत्र[2] भेजा था, लेकिन अभीतक मुझे जवाब नहीं मिला। मैंने उदाहरणके तौरपर नामोंकी जो सूची पहले ही भेज दी है, उसके बारेमें अब मुझे जवाब मिल ही जाना चाहिए। कुछ ऐसे मित्र हैं जो मुझसे मिलना चाहेंगे और जिनसे मैं मिलना चाहूँगा। उनसे न मिल पानेपर मुझे काफी असुविधा और कुछ उद्विग्नता भी होती है।

सरकारने कृपापूर्वक अपने जेलके साथियोंकी कुशलता जाननेके लिए पत्र लिखनेकी मेरी इच्छाको उचित मान लिया है। सरकारकी अनुमति पानेपर मैं जेलके कुछ साथियोंको पत्र लिखता रहा हूँ; परन्तु बेलगाँवसे मुझे कोई जवाब नहीं मिलना। मैंने श्रीमती मणिबहन पटेलको लिखा है। वे सरदार वल्लभभाई पटेलकी बेटी हैं; लेकिन वे दस वर्षोंसे ज्यादा समयतक आश्रमके अनुशासनमें रही हैं। कुछ समय पहले उनके पिताको उनका एक पत्र मिला था जिससे पता चला कि वे इन दिनों बीमार हैं। इसलिए मैंने उनको पत्र लिखा। उसमें मैंने उनके स्वास्थ्यके बारेमें पूछा था, लेकिन मुझे कोई जवाब नहीं मिला। फिर काका कालेलकर हैं; उन्हें आप अच्छी तरहसे जानते हैं। आपको पता ही है कि वे तपेदिकसे पीड़ित रहे हैं और उन्हें विशेष देखरेखकी जरूरत है। मैंने उन्हें भी पत्र लिखा, किन्तु कोई जवाब नहीं मिला। तीसरे व्यक्ति प्रभुदास गांधी[3] हैं। वे मेरे नजदीकी कुटुम्बी हैं। वे बचपनसे ही, जब मैं दक्षिण आफ्रिकामें था, मेरी देखरेखमें पले-बढ़े। वह भी उसी बीमारीसे ग्रस्त हैं जो काकासाहब कालेलकरको है और उनका विशेष उपचार होता रहा है। इनके सिवा श्रीयुत नरहरि परीख हैं जो आश्रमके एक सदस्य हैं। वे एक पुराने सहयोगी हैं। वे भी बेलगाँव-जेलमें हैं। मैंने प्रभुदास गांधी व नरहरि परीख, दोनोंके बारेमें काकासाहब कालेलकरसे पूछताछ की थी, लेकिन कोई खबर नहीं मिली। क्या आप कृपया उनके स्वास्थ्य, उनकी खुराक तथा वजनके बारेमें जरूरी सूचना हासिल करेंगे। उनके बारेमें किसी खबरका न मिलना मेरे लिए काफी चिन्ताका कारण है।

मेरे लिए इस बातका पक्का पता लगा देनेकी भी कृपा करें कि मैंने इलाहाबाद भेजा जानेवाला जो तार[4] मेजर भण्डारीके हाथमें दिया था और जिसमें

१. २. देखिए पृष्ठ १७३ और २४५।

३. छगनलाल गांधीके पुत्र, गांधीजी के भतीजे।

४. कमला नेहरूको; देखिए पृष्ठ २८५।

श्रीमती मोतीलाल नेहरूको लगी चोटों तथा उनके दामाद श्रीयुत रणजीत पंडितकी बीमारीके बारेमें पूछताछ की गई थी, ठीकसे भेज दिया गया था या नहीं। मैं यह बताना ठीक समझता हूँ कि नेहरू-परिवारसे मेरे सम्बन्ध राजनैतिक उतने नहीं हैं जितने कि निजी और अन्तरंग हैं। नेहरू-परिवारके सदस्योंके स्वास्थ्य व कुशल-क्षेममें बहुत दिलचस्पी रखना मेरे लिए स्वाभाविक है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

३६८. पत्र : एस्थर मेननको

१३ अप्रैल, १९३२

रानी बिटिया,

मुझे हमेशा तुम्हारा पत्र पाकर खुशी होती है। तुम्हारा पत्र दिलचस्प है और उससे कुछ भेदोंकी झलक भी मिलती है। तुम अब भी कुछ-कुछ उद्विग्न बनी हो। तुम्हें उद्विग्नता त्याग देनी चाहिए। यदि हमें ईश्वरमें विश्वास है तो हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए; जैसे कि विश्वासपात्र द्वारपाल अथवा चौकीदारके होनेपर हम चिन्ता नहीं करते। ईश्वरसे बढ़कर अच्छा द्वारपाल अथवा चौकीदार कौन हो सकता है; उससे कभी चूक नहीं होती। इतना ही काफी नहीं कि हम ऐसी बातोंका भजन करें या उनको केवल बौद्धिक रूपसे ग्रहण करें। जरूरी यह है कि हम भीतरसे वैसा महसूस करें। यह महसूस करना ठीक वैसा है जैसे कि दर्द या आनन्द महसूस करते हैं। हमें अपने अनुभवपर तर्कसे कौन हरा सकता है? मैं यह इसलिए लिख रहा हूँ कि मैं चाहता हूँ कि तुम सारी चिन्ताओं और परेशानियोंसे पूरी तरह मुक्त हो जाओ।

बच्चोंको विभिन्न कौमोंकी गुड़ियाँ देनेका विचार बहुत अच्छा रहा। हिन्दी लड़कीका क्या नाम है और वह किस प्रान्तकी है?

क्या मैंने तुम्हें बताया था कि महादेव मेरे साथ है?

बच्चोंको चुम्बन।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सं० १०९) से; सौजन्य : भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड,** पृष्ठ ८९-९० से भी।

३६९. पत्र : शंकरराव देवको[1]

१५ अप्रैल, १९३२

भाई,

तुम्हारे बारेमें बहुत सोचा, रातको भी विचार किया, हम तीनोंने मिलकर भी चर्चा की। परिणाम यही आया है कि निश्चयसे मानते हैं कि जिसको तुमने धर्म माना है, वह धर्म नहीं, परन्तु अधर्म है। सत्याग्रह चलते हुए जिसका सम्बन्ध सत्याग्रहके साथ होनेका सम्भव रहता है, उस बारेमें कोई भी सत्याग्रही बगैर सभापतिकी सम्मतिके कुछ व्रत ले ही नहीं सकता। तुम्हारे व्रतका अर्थ जो तुमने किया है वह अनर्थ है। जेलमें मधुकरीका कुछ अर्थ रहता नहीं है। जेल खत्म होनेके बाद मधुकरीके लिए घूमनेमें शर्म होगी या नहीं होगी, उसका निश्चय आज करनेका तुम्हें अधिकार नहीं है। बाहर निकलनेके वक्त दिल कैसा रहेगा उसका आज निश्चय करना ईश्वर जैसा होनेका दावा करने जैसी बात हुई। हम तीनों मानते हैं कि जो-कुछ भी 'क' वर्गका खाना मिलता है, वही ईश्वरार्पण बुद्धिसे खाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। संन्यास-धर्म भी यही बताता है।

अब रही बात कपड़ोंकी। जेलमें खद्दर ही पहननेका आग्रह करना किसी तरह योग्य नहीं कहा जा सकता। इस बारेमें हरएक सत्याग्रह-कैदीका धर्म है कि जब तक महासभा [कांग्रेस] इस बारेमें निर्णय न करे, तबतक जेलमें खद्दर पहननेका आग्रह न रखा जाये। और इस बारेमें भी स्वावलम्बनका तुम्हारा व्रत है उसमें कोई हानि नहीं आती। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि उपवास छोड़ दो और भूल स्वीकार करो और खाना शुरू कर दो। उपवासके कारण एक-दो दिन दूध ही लेकर या तो फल लेकर रहना अच्छा होगा। यह तो केवल वैद्यकीय दृष्टिसे लिखता हूँ। मेरी उम्मीद है कि हम सबने तटस्थतासे जो अभिप्राय दिया है उसके अनुकूल करोगे।

बापूके आशीर्वाद

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ ९८।

१. शंकरराव देवका नाम "दैनन्दिनी, १९३२", में से दिया गया है। महादेव देसाई लिखते हैं: "श्री देवने कपड़ेके विषयमें आत्मनिर्भरताकी शपथ ली हुई थी। इसलिए वे अपने द्वारा काते हुए सूतका ही कपड़ा पहनते थे। दूसरे, उन्होंने मधुकरीसे प्राप्त भोजनपर ही निर्भर रहनेकी शपथ ली थी। यदि इससे भोजन प्राप्त न हो तो वे दूध व फल लेते थे।" (**दि डायरी ऑफ महादेव देसाई**, भाग १, पृष्ठ ७१)

३७०. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

१५ अप्रैल, १९३२

प्रिय श्री भण्डारी,

इसके साथके पत्रकी[1] इबारत आप मंजूर करें, तो आप उसे . . . को[2] तुरन्त ही दे दीजिएगा। उसमें उपवास तोड़कर रोजमर्राकी खुराक लेना शुरू करनेके लिए दुबारा आग्रह करनेके सिवा और कुछ नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

अगर श्री . . .[3] इस पत्रमें दी हुई मेरी सलाह मान लें और अपना उपवास तोड़ दें, तो मैं आशा रखता हूँ कि आप उन्हें एक-दो दिन दूध दे देंगे। उपवासके विशेषज्ञ होनेके नाते मेरा यह अनुभव है कि ठोस खुराक लेकर उपवास तोड़नेसे शरीरको बहुधा बड़ा नुकसान पहुँचता है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ ९९।

३७१. पत्र : खगेन्द्र प्रिय बरुआनीको

१५ अप्रैल, १९३२

प्रिय मित्र,

आपने मुझे जो खादी भेजी है, उसके लिए धन्यवाद। इसके साथ कोई पत्र नहीं है। कृपया इसका इतिहास मुझे लिख भेजिए।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

श्रीयुत खगेन्द्र प्रिय बरुआनी
नोगांग
असम

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५५१)से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२ और ३. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ा हुआ है पर पत्रसे स्पष्ट है कि यह व्यक्ति शंकरराव देव ही हैं।

३७२. एक पत्र

१६ अप्रैल, १९३२

प्रियवर,

यदि बादामकी लुगदी आपको माफिक पड़ती है तो अवश्य लीजिए। लेकिन कॉडलिवर आयलका पर्याप्त परीक्षण करके देखना ही चाहिए। मैंने सुना है कि उसका स्वाद रद्दी है; लेकिन या तो स्वाद दबा देना चाहिए या उसे इस तरह पीजिए जैसे हम [कभी-कभी] ओठोंसे गिलास लगाये बिना और तालूसे उसका स्पर्श बचाकर पानी पीते हैं, इससे वह सीधा गलेके नीचे उतर जायेगा।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९०२६)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३७३. पत्र: शारदा चि० शाहको

१७ अप्रैल, १९३२

चि० शारदा,

उद्धारका रास्ता यही है कि हम सत्यका पालन करें। प्रकृतिमें जन्म लिया है तो उसका असर हुए बिना न रहेगा। बुरे प्रभावोंका विरोध करना हमारा धर्म है। . . .[1] किसी विशेष दिशामें सोनेका कोई विशेष परिणाम होता है, इस कथनमें कुछ सार है, ऐसा मुझे नहीं लगता। . . .[2] सप्ताहमें मैंने दुगुना काता। महादेवने भी दुगुनी कताई की। उपवास तो किया ही था। तुम सबने तो बहुत ज्यादा किया। ईश्वर तो हमारे विरुद्ध निरन्तर सत्याग्रह करता है क्योंकि हमारे असत्यको वह क्षण-भरके लिए भी सहन नहीं करता। ईश्वर अर्थात् सत्य। उसके सत्याग्रहके विषयमें क्या कहना? क्या समझ नहीं आया?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९०९)से; सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला।

१. व २. साधन-सूत्रके अनुसार।

३७४. एक पत्र

१७ अप्रैल, १९३२

चि०,

हम आश्रममें सारे भयोंके पार जानेके लिए रहते हैं। सत्यका पालन करते हैं, सो भी सत्यके विचारसे ही; किसीके भयसे नहीं। समाजने जिन्हें कुचला है, उन सबको हिम्मतके साथ अपने बन्धन तोड़ने हैं। आश्रमका अस्तित्व उन्हींके लिए है। बहनें इस बातको अच्छी तरह समझकर उससे लाभ उठायें, मैं ऐसी इच्छा करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०३२)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३७५. एक पत्र

१७ अप्रैल, १९३२

चि०,

पृथ्वी कब बनी, पहले कौन-सा प्राणी पैदा हुआ और कब, यह हमें नहीं जानना है। यह ईश्वरका काम है। हम अपना धर्म जानकर सन्तोष करें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०३६)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३७६. एक पत्र

१७ अप्रैल, १९३२

भाई,

मणिकी मृत्युका शोक नहीं करना है। वह तो महादुःखसे छूट गई है। शल्य-क्रिया करानेके लिए भी पश्चात्ताप न करना। मणिके पुण्यस्मरण अवश्य लिखना। तुम सब उसके गुणोंका अनुसरण करना। ऐसा करोगे तो कह सकते हैं कि वह विशेष रूपसे जी रही है। फिर जीवकी मृत्यु तो होती नहीं। सिर्फ उस घरका नाश होता है जिसमें उसका वास था। और ऐसा तो होता ही रहता है। कोई जल्दी और कोई देरसे जाता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०४३)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३७७. पत्र : मंगला शं० पटेलको

१७ अप्रैल, १९३२

चि० मंगला,

तुम सब उस दिशामें जाकर चन्द्रभागाका उद्गम-स्थान खोज निकालो। तनिक भी दूर नहीं है। सिर्फ नाम ही बड़ा है। उसका मुहाना तो तुम सबने देखा ही होगा। उद्गम स्थलकी ओर जाओ और किनारेपर क्या-क्या है, यह भी देखो। कातनेसे क्या मिलता है, हम यह नहीं देखते। सिर्फ कताई करनेसे करोड़ोंका पोषण होता है, इसलिए हम एकाग्रचित्तसे कताई करें। ऐसा करते हुए हममें से कोई अच्छा चरखा खोज पायेगा और वह न भी हुआ तो भी हम दूसरे अनेक काम कर पायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८३)से। सी० डब्ल्यू० ४७ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन ब० देसाई।

३७८. पत्र : नारायण देसाईको

१७ अप्रैल, १९३२

चि० बाबलो,

तूने 'नारायण' लिखकर हस्ताक्षर किये, इसलिए मैंने तुझे 'राव' बना दिया।[1] अब तुझे 'नारायण देसाई' कहकर बुलाना है। बाबलो कहनेमें ही क्या बुराई है। पहले इनामी चरखा खोज डाल फिर देसाई कहूँगा। जो पहले देसाई कहलाये सो अपने कामके कारण। तू भी कोई बड़ी सेवा करके 'देसाई' बन तो कितना अच्छा है। बाप देसाई हैं इसलिए बेटा भी देसाई कहलाये, इसमें कोई मजा नहीं है। इसकी बजाय क्यों न बचपनके नामको ही कायम रखें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७८)से।

१. देखिए "पत्र : नारायण देसाईको", ११-३-१९३२

३७९. पत्र : पृथुराज ल० आसरको

१७ अप्रैल, १९३२

चि० पृथुराज,

तुम्हें पत्र कहाँ लिखूँ, यह तुमने नहीं लिखा है इसलिए आश्रमके पतेमें ही लिख रहा हूँ। अपने सुन्दर पत्रमें तुमने हाथके बारेमें कुछ नहीं लिखा। आत्मनिर्भर और बापपर निर्भर होना कोई दो विरोधी बातें नहीं हैं। जिस तरह माँ-बापके गुण सन्तानमें आ जाते हैं, उसी तरह उनका धन और प्रतिष्ठा भी। यदि कोई इन्हें त्याग दे तो वह मिथ्याभिमानी कहलायेगा। वह उसका सदुपयोग करे और उसमें वृद्धि करे, यही सुपुत्रका कर्त्तव्य है। इसलिए ऐसा मानो कि तुम्हें अपने पुरुषार्थसे पिताके कामको पूरा करना है।

सारा संसार जो-कुछ कहे, उसे हम सुन लें; लेकिन करें वही जो हमारी अन्तरात्मा कहे। और हमारी अन्तरात्मा आदेश दे सके, इसके लिए हम नियमोंका पालन करें। सबकी अन्तरात्माकी आवाज सुनाई नहीं देती। उसको सुननेके लिए दिव्य कानोंकी आवश्यकता है।

तुमने अक्षरोंमें काफी सुधार कर लिया है, पर अभी भी वे पूरी तरह गढ़े हुए नहीं हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० १२१८७-ए) से। सी० डब्ल्यू० ९०८५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३८०. पत्र : रावजीभाई म० पटेलको

१७ अप्रैल, १९३२

चि० रावजीभाई,

तुम्हारे पत्र मजेदार हैं, परन्तु मर्यादाका उल्लंघन करते हैं[1] हमें तो बड़े बादशाहको, सत्यरूपी ईश्वरको जवाब देना है। तुम सबपर मुझे विश्वास है इसलिए तुम्हारे काम-काजका हाल जाननेकी इच्छा नहीं होती। तुम्हारे कुशल-मंगलका समाचार मिलता रहे, इतना ही काफी है। यह आलोचना नहीं है। सिर्फ तुम्हें सावधान और निश्चिन्त कर देना चाहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९६) से। सी० डब्ल्यू० ९०४० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. राजनैतिक विषयोंकी चर्चाके कारण।

३८१. एक पत्र

१७ अप्रैल, १९३२

चि०

अस्पृश्यता कब घुस गई उसका मुझे पता नहिं। मोटर ई० वाहन नहिं थे तब लोघ पैदल जाते थे। गंगाबहन वगेरह अच्छी हे। बच्चोंके लिए दूध सबसे अच्छा है। मुझे कुछ याद नहिं कौनसा खेल भाता था। हा, नाटक देखनेका शोख था।

बापूके आ[शीर्वाद]

सी० डब्ल्यू० ९०४६ से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३८२. आकाश-दर्शन–२[1]

१८ अप्रैल, १९३२

पिछली बार तारा-मंडलका जो चित्र भेजा है, उसके विषयमें अनेक कल्पनाएँ हैं। इस मंडलके चित्रोंमें से एक भी सम्पूर्ण नहीं होता। जितने तारे चित्रमें दिखाई देते हैं, उनसे कहीं अधिक उसमें होते हैं। इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि हर आदमी अपने-अपने लिए चित्र बनाए और जितने तारे खाली आँखसे दिखाई दें, उनके चिह्न बना ले। इससे तारोंको पहचाननेकी शक्ति जल्दी ही बहुत बढ़ जायेगी और नक्शोंमें जो तस्वीरें आती हैं, उनकी बनिस्बत अपने लिए अपने हाथों खींचा हुआ चित्र बढ़िया होगा, क्योंकि अलग-अलग जगहसे देखनेमें थोड़ा-थोड़ा फर्क तो पड़ता ही है। हर आदमी नियत स्थानसे नियत समयपर निरीक्षण करे तो ज्यादा अच्छा है। यह सूचना नक्शेके बारेमें और आरम्भ करनेवालेके लिए है। आप एक बार अच्छी तरह नक्षत्रोंकी पहचान कर लें तो फिर कहीं भी हों, अपने इन दिव्य मित्रों या दिव्य गणोंको तुरन्त पहचान लेंगे।

मद्रासके 'हिन्दू' दैनिकके साथ एक साप्ताहिक परिशिष्ट निकलता है, बम्बईके 'टाइम्स' के साथ भी निकलता है। दोनोंमें हर महीने दिखाई देनेवाले तारा-मंडलोंके नक्शे छपा करते हैं। 'हिन्दू' में हर महीनेके पहले हफ्तेमें और 'टाइम्स' में दूसरे हफ्तेमें निकलता है। इनमें से कोई नक्शा हाथ आ जाये तो उसमें हमें बहुत-कुछ मिल जायेगा। 'कुमार' (गुजराती मासिक)का सौवाँ या शती-अंक निकलनेवाला है, उसमें भाई हीरालाल शाहने इस विषयपर लेख भेजा है। उनका अध्ययन गहरा

१. यह "पत्र : नारणदास गांधीको", १५/१८-४-१९३२ के साथ भेजा गया था। देखिए अगला शीर्षक।

मालूम होता है। यह लेख जिसे देखना हो वह देख जाये। मैं तो इस लेखके बाद इस विषयपर अधिक न लिखूँगा। मैं आकाश-दर्शन किस रीतिसे कर रहा हूँ, इसको यहाँ थोड़ा अधिक स्पष्ट करूँगा। इससे आगे जाऊँ तो इस हफ्तेमें जो दूसरी चीजें लिखनेको हैं, वे रह जायेंगी। प्रसंगवश कुछ भेज दूँ तो वह अलग बात है, या फिर किसीके प्रश्नपर भेजूँ।

जिस नक्षत्रका चित्र मैंने दिया है, उसका नाम अपने यहाँ मृग या मृगशीर्ष है। उसीके कारण हमारे अगहन महीनेका नाम मार्गशीर्ष — मगसिर — पड़ा है। हमारे महीनोंके नाम नक्षत्रोंके नामपर पड़े हैं। मृग-नक्षत्रको पश्चिममें 'ओरायन' कहते हैं। यह शिकारी है। इसके पूरबमें दो सीधी रेखाओंमें बहुत तेजस्वी तारे हैं। उनके शिकारीके कुत्ते होनेकी कल्पना की गई है। जो पश्चिममें है, वह बड़ा और जो उत्तरमें है वह छोटा कुत्ता है। पूरबकी ओर और दक्षिणमें शिकारीके चौथे कोनेके तारेके नीचे जो नक्षत्र दिखाई देता है वह खरगोश मान लिया गया है। कुत्ते उसकी ओर दौड़ते हैं। बीचमें जो तीन तारे हैं, वे शिकारीके कमरबन्दके तीन रत्न हैं।

ऐसी आकृतियाँ भी खींची गई हैं। बड़े कुत्तेको हमारे यहाँ लुब्धक और उपर्युक्त तीन तारोंको मृगका पेट कहते हैं। उसके दक्षिणमें जो तारा है, वह लुब्धकका छोड़ा हुआ बाण है। उत्तरकी ओर चतुष्कोणके बाहरके तीन तारे मृगके सिर हैं। यह सारी कल्पना खासी मनोरंजक है। इसकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत लिखा गया है। उसमें से बहुत ही थोड़ा मैं पढ़ पाया हूँ।

आकाशमें ऐसी आकृति बिलकुल नहीं है। वह हमें जितनी नजदीक दिखाई देती है, उतनी नजदीक भी नहीं है। ये तारे तारे नहीं; बल्कि सूर्यसे भी बड़े सूर्य हैं। करोड़ों मील दूर होनेके कारण ये आकाशमें बूँदकी तरह झलकते हैं। इन सूर्योंके विषयमें हमारा ज्ञान बहुत थोड़ा है; पर अपढ़-से-अपढ़के लिए भी ये तारागण मित्रके प्रयोजनकी पूर्ति करते हैं। क्षण-भरको उनकी ओर दृष्टि डाली कि देखनेवाला चाहे तो तुरन्त अपने सारे दुःख-दर्द भूल जाये और भगवानकी महिमा गाने लगे। तारोंको वह ईश्वरके दूत मान सकता है, जो सारी रात हमारी रखवाली किया करते हैं और हमें आश्वासन देते हैं। यह तो सत्य सिद्ध हुआ है। तारे सूर्य हैं, बहुत दूर हैं, आदि बुद्धिके प्रयोग हैं। वे हमें ईश्वरकी ओर ले जानेमें जो सहायता देते हैं, वह अवश्य हमारे लिए पूरा सत्य है। शास्त्रीय रीतिसे हम जलको अनेक रीतियोंसे पहचानते हैं, पर उस ज्ञानका शायद कोई उपयोग नहीं करते। वह प्राण और शरीरको साफ-सुथरा रखनेकी चीज है, यह ज्ञान और इसका यह उपयोग हमारे लिए बड़े ही कामके हैं और हमारे लिए यह उपयोग सत्य है। फिर वस्तुतः वह कोई दूसरा ही पदार्थ हो और उसका इससे अधिक उपयोग हो सकता हो तो अच्छा ही है। यही बात तारागणके विषयमें है। उनके उपयोग अनेक हैं। मुझे उनका जो प्रधान गुण जान पड़ा, मैंने तो उसका ही मनन और तदनुसार उपयोग सुझाया है। जान पड़ता है, कुछ ऐसा ही प्राचीन कालसे चलता आ रहा है। पीछे कालक्रमसे अनेक

प्रकारके दूसरे वर्णन उसमें मिल गये और आख्यायिकाएँ उत्पन्न हुईं। इन सबको हम इस विषयमें रुचि बढ़ानेके लिए अवश्य पढ़ें, पर जो मूल उपयोग मैंने सुझाया है, उसको न भूलें।

मृगके उत्तरमें दो दूसरे मंडल हैं, उनकी पहचान हम कर लें —
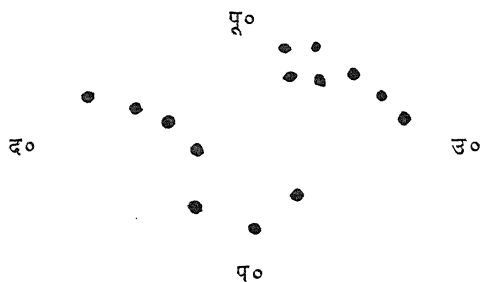
इनमें बड़ा मंडल सप्तर्षि है। छोटेको ध्रुव मत्स्य कहते हैं। दोनोंमें सात-सात तारे दिये हैं, पर सप्तर्षिमें दूसरे बहुत-से हैं। वे 'टाइम्स' और 'हिन्दू' के चित्रोंमें मौजूद हैं। ध्रुव मत्स्यमें दूसरे तारे नहीं दिखाई देते। इन दिनों उजाले पक्षमें तो शायद तीन ही दिखाई देंगे — दो चतुष्कोणके और एक सिरेका, जिसका नाम ध्रुव है। ध्रुव ऐसा तारा है जो लगभग अचल रहता है और इससे पिछले जमानेमें नाव-जहाज चलानेवालोंको बड़ी मदद मिलती थी। ये दोनों मंडल ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते हुए जान पड़ते हैं। इन दिनों इनकी गति देखनेका बड़ा आनन्द आता है। सारी रात इनका स्थान बदलता रहता है। इसको नोट करते जायें तो इनके मार्गका नक्शा खासा कुण्डलाकार होगा। पश्चिममें इन्हें बड़ा रीछ और छोटा रीछ कहते हैं। एक पुस्तकमें तो इनके सुन्दर चित्र भी मैंने देखे हैं। बड़े रीछको हल की उपमा भी देते हैं। सप्तर्षि रातकी घड़ीका काम देते हैं। थोड़ा अभ्यास हो जानेके बाद सप्तर्षिकी गतिका समय अवश्य जाना जा सकता है।

पर अमूल्य होते हुए भी ये उपयोग और ये नाम मूल उपयोगके सामने मुझे तुच्छ-से लगते हैं। हमें चाहिए कि आकाश जैसा स्वच्छ है वैसे हम स्वच्छ हों, तारे जैसे तेजस्वी हैं वैसे हम तेजस्वी हों। वे जैसे ईश्वरका मूक स्तवन करते जान पड़ते हैं, वैसे हम करें। वे जैसे अपना रास्ता एक क्षणके लिए भी नहीं छोड़ते, वैसे हम भी अपना कर्त्तव्य न छोड़ें।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३८३. पत्र : नारणदास गांधीको

१५/१८ अप्रैल, १९३२

चि० नारणदास,

अमेरिकाके तारके विषयमें मेरा कार्ड[1] मिला होगा। बली वगैरह मिलकर गये। आ गये, यह अच्छा किया।

मुझे लगता है कि अब हरिलालको फिरसे आश्रममें आश्रय नहीं दिया जाना चाहिए। मैंने तो उसे सीधे पत्र लिख दिया कि अब फिरसे आश्रय नहीं मिलेगा। पत्र जमनादासकी मारफत भिजवाया है। वह जहाँ-तहाँ आश्रय माँगता है और थोड़ा रहकर अपने दुर्व्यसनोंका सेवन करने लगता है। और फिर जहाँ आश्रय मिला था, उसका हवाला देकर दूसरी जगह जा टिकता है। आजतक उसे आश्रमने इस आशासे सहन किया कि इसी तरह धीरे-धीरे शायद वह ठिकाने आ जायेगा। पर ऐसा होनेके बजाय इसका हाल और खराब हो गया।

लगता है, तुमने वहाँ राष्ट्रीय सप्ताहको बहुत अच्छी तरह सम्पन्न किया। इस कारण कोई बीमार न पड़े तो अच्छा। एक और बातकी तरफ मैंने पहले ध्यान खींचा था; फिर याद दिलाता हूँ। राष्ट्रीय सप्ताहमें सात दिनोंतक देह-तोड़ मेहनत करके फिर जैसे रहते थे, वैसे ही रहने लगें और कुछ दिन थकावट उतारनेमें निकाल दें, उसकी जगह मैं यह अधिक ठीक समझता हूँ कि इस अवधिमें सावधान रहकर हम उत्पादनमें जो वृद्धि करें, उसे सदा बनाये रखें। 'गीता'की भाषामें कहें तो पहले प्रकारकी प्रवृत्ति आसुरी और दूसरी दैवी अथवा पहली राजसी और दूसरी सात्विकी[2] कहलायेगी। हमने तो यहाँ ऐसा किया कि महादेवने पींजना प्रारम्भ कर दिया और पहलेसे थोड़ा ज्यादा काता; लेकिन मैंने जितना काता, मुझे उतना कातते रहनेमें संदेह है; फिर भी, अगर मेरा दाहिना हाथ बेकाम नहीं हो जाता है तो मैं उतना कातते रहनेका इरादा करता हूँ।

कुछ बीमार [आश्रमवासी] अगर हमेशा भी बाहर रहें तो उनका खर्च उठाया जाना चाहिए। अल्मोड़ामें आश्रम बनानेका यही उद्देश्य था न? इसी तरह दूसरी जगह क्यों नहीं बना सकते? और जब हम देखते हैं कि जमना-जैसोंको आश्रमकी आबहवा माफिक आती ही नहीं है तब वे ऐसी जगह रह सकते हैं। इसपर हमें बहुत खर्च नहीं पड़ेगा और फिर उन सभी स्थानोंमें हम कुछ कर भी सकेंगे। वर्धा इसी तरह बना। पहले रमणीकलाल[3] या किसी औरको भेजा था, पर जब आश्रम बन गया और उसे निबाहना जरूरी हो गया तो रमणीकलाल बीमार पड़ा या उसे वहाँ

१. देखिए पृष्ठ २९२।

२. देखिए अध्याय १७, श्लोक ११ और १२।

३. यह रमणीकलाल मोदी था।

काम करना कठिन लगा; — क्या हुआ था सो तो मुझे ठीक याद नहीं है, तब विनोबा को भेजा। विनोबा-जैसा और कोई व्यक्ति तो हमारे पास नहीं है, पर हमारे पास जितनी सुविधा है, उसीके अनुसार किसीको भेजकर काम चलाया जा सकता है, ऐसा मुझे लगता है। समुद्र-तटपर कोई जगह मिले तो उसे चुनना ठीक होगा। पर यह तो आगेकी बात हुई, फिर भी हम इतना तो कर ही सकते हैं कि समुद्र-तटपर कोई जगह खोजकर वहाँ कुछ लोगोंको रख दें और मनमें निश्चय कर लें कि अगर कोई ऐसी दो-तीन जगह बदल-बदल कर भी अच्छा नहीं होता और उसका शरीर छूट जाता है, तो भी हम बीमारोंके बाह्योपचारकी यही मर्यादा रखेंगे। इस मर्यादाको बनाये रखें या नहीं, इसका निर्णय तुरन्त न हो तो भी जिन बीमारोंको आबहवा बदलनेकी जरूरत है, उनके लिए इसका प्रबन्ध करना ही चाहिए। पद्माको वापस बुलानेसे सम्बन्धित हमारा पत्र शायद भटक गया। जान पड़ता है, उसकी भी ऐसी ही इच्छा है। सीतलासहाय और सरोजिनी देवीकी राय जानकर उचित कार्रवाई करना। जमनाको या तो फिर बम्बई चले जाना चाहिए, या बोरडी, सासवड, चोरवाड, पोरबन्दर, वेराबल, माँगरोल, घोघा, गोपनाथ, वगैरहमें से कोई एक जगह चुननी चाहिए। मेरा खयाल है कि जमनाको बम्बई माफिक आया, इसका इतना ही अर्थ है कि समुद्र-तट माफिक आया। इस अनुमानमें कसर होगी तो बात अनुभवसे मालूम पड़ जायेगी। मैं मानता हूँ कि जो जगह जमनाको अनुकूल बैठेगी, वही तिलकमके लिए भी ठीक होगी। मैं यह तो पहलेसे ही मानता हूँ कि कृष्णमय्यादेवी, पद्मा और राधाका खर्च आश्रमके वशके बाहरकी बात है। फिर भी जैसे अन्य खर्च अनुचित होनेपर भी बर्दाश्त किये हैं, इसी तरह इसे भी मन बर्दाश्त करता है। लज्जा तो आती ही है। लेजिमके व्यायामसे उत्पन्न प्रश्नकी चर्चा और उसपर लिए गये निर्णयकी प्रतीक्षा रहेगी। चन्द्रकान्ताके पक्षमें जिसने अपने प्रभावका उपयोग किया, उसने भला नहीं किया। विदेशसे आये हुए जो पत्र मेरे पास भेजने योग्य लगें, उनकी नकल भेजना। बाकीकी कोई जरूरत नहीं। हस्ताक्षर माँगनेवालोंको हस्ताक्षर नहीं भेजे जा सकते। बादाम और खजूरके मिश्रणके बारेमें अभीतक कुछ नहीं मिला। मुझे लगता है कि यह किस तरह बन सकता है, यह मेरी समझमें आ गया है।

काका, नरहरि, प्रभुदास और मणिबहनकी तबीयत अच्छी है, ऐसा समाचार जेलके अधिकारियोंसे मिल गया है। उन लोगोंमें से अभीतक किसीका पत्र नहीं आया है।

मौनवार, १८ अप्रैल, १९३२

महावीर[१] का सीधे ही मेरे पास पत्र आया है। मैंने उसे लिखा है कि खर्चका अनुमान-पत्र भेजे और रहनेकी अन्तिम तारीख तय करे। तय करते समय याद रखे कि हम गरीब लोग हैं। ऐसा जान पड़ता है कि नीमू और बच्चे लखतरमें भले-चंगे नहीं रहते। इसलिए यही ठीक लगता है, कि उन्हें वहाँसे बुलवा लिया जाये।

१. महावीर गिरि; देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", २१/२२-४-१९३२।

बच्चोंको लखतरकी गर्मी शायद सहन नहीं होती। उसके मुकाबले तो साबरमती ठण्डा ही है। यदि बीजापुर ठीक बैठे तो वे वहाँ रहें। लेकिन आश्रमके सिवाय कहीं और रखना हो तो भी यह निर्णय, मेरी समझमें, उनके आनेके वाद ही लिया जा सकेगा।

दाहिने हाथके अंगूठेकी ही तरह बायें हाथकी कोहनी दर्द करती है। इसलिए डॉक्टर कहता है कि बायें हाथको आराम दो। बायें हाथसे तार खींचनेमें कष्ट होता है, ऐसा अबतक तो मैंने अनुभव नहीं किया। कष्ट तो हाथकी दूसरी गतियोंके समय होता है। लेकिन सावधानीके विचारसे मैंने कलसे दाहिनेसे तार खींचना और बायेंसे चक्र चलाना शुरू किया है। कल बायें हाथसे लगभग साढ़े तीन घंटोंमें ९५ तार निकाले; आज अढ़ाई घंटोंमें ८५। गांडीव-सन्धानमें इस प्रकारका फेरफार करते हुए यान्त्रिक कठिनाई तो कोई नहीं होती। केवल तकुएको एक तरफसे दूसरी तरफ लगाना पड़ता है और चक्रको बायीं तरफ रखना होता है। यह तो बादमें मालूम होगा कि हाथपर इसका असर कैसा पड़ता है। सप्ताहमें एक ही दिन कातकर ३५५ तार निकालनेका नियम रखा था और उसे कायम रखना सोचा था; मगर अभी उसे मुल्तवी कर दिया है। लेकिन अगर बायें हाथका अभ्यास हो जाये तो यह साधारण लाभ नहीं है। इसलिए कम तार निकाल पानेका दुःख नहीं है। बल्कि यह सब लिखनेका उद्देश्य तो यह है कि वहाँ किसीको उत्साह हो तो वह बायें हाथका उपयोग दाहिने हाथ-जितना करनेमें लग जाये। जापानमें बचपनसे ही दोनों हाथोंसे समान काम लेनेकी आदत डलवाई जाती है। इससे दुगना नहीं तो लगभग दुगना लाभ तो हो ही सकता है। बायाँ हाथ दाहिनेके बराबर काम दे तो दाहिनेको आराम मिलता ही रहे और कभी उसमें चोट वगैरह आ जाये तो बायेंसे वही काम लिया जा सके —यह मामूली बात नहीं होगी। यदि इस बातमें कोई सार लगे तो जिसे माफिक आये, उसे बायें हाथसे दाहिनेका काम लेना शुरू कर देना चाहिए। मुझे तो ऐसे कामोंमें सहज ही लिखना, कातना और भोजन करना सूझ रहे हैं। विचार करें तो ऐसे बहुत काम दिखेंगे जिन्हें हम दाहिने हाथसे करते आ रहे होंगे और जो धीरे-धीरे बायें हाथसे बिना बहुत परिश्रमके थोड़ा ध्यान रखकर किये जा सकते हैं।

मेरे पासकी रुई समाप्त होनेको आ गई है; इसलिए अगर तुम्हारे पास अच्छी रुई हो तो दो सेर भेजना। आज कुल मिलाकर ३९ पत्र हैं। इनके अतिरिक्त तुम्हारे नामका पत्र और आकाश-दर्शन – २[1]।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२२० भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

३८४. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

१८ अप्रैल, १९३२

प्रिय बालको और बालिकाओ,

हम स्वयं प्रजाजन हैं इसलिए हमारा स्वभाव सहज रूपसे हमें प्रजातन्त्रकी ओर आकर्षित करता है। किन्तु सत्यका उपासक होनेके कारण हमारा यही कर्त्तव्य है कि हम न्यायको पहचानें और जिस तरफ न्याय हो, उसीका पक्ष लें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ९०३९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३८५. एक पत्र

१८ अप्रैल, १९३२

चि०,

अहिंसा, धीरज, शान्ति, सहनशीलता और पवित्रता स्त्रियोंके विशेष गुण हैं। स्वप्नोंका कारण कम नींद है। बदहजमी होनेसे या बहुत सोच-विचार करनेसे भी स्वप्न आते हैं। कारण मालूम करके उनका निवारण किया जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०२९)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३८६. एक पत्र

१८ अप्रैल, १९३२

चि०,

जहाँ देखें वहाँ अज्ञान तो है ही। उसका दुःख न करें किन्तु यदि अपना अज्ञान निकाल दें तो दूसरोंके अज्ञानका दूर होना भी सम्भव है। अज्ञानका अर्थ है अपने कर्त्तव्यका ज्ञान न होना या ज्ञान होते हुए भी तदनुसार व्यवहार करनेकी अनिच्छा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०३०) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३८७. एक पत्र

१८ अप्रैल, १९३२

चि०,

बहन भाईको राखी बाँधकर उसकी मंगल कामना करती है और यही चाहती है कि अवसर आनेपर वह उसकी जो सेवा कर सकता हो, करे। एक बार जिसे राखी बाँध दे, वह हमेशाके लिए भाई तो बन ही जाता है। और [illegible]ाई बहनकी खातिर प्राणतक देकर उसकी सेवा करनेके लिए बँध जाता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०३५) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३८८. एक पत्र

१८ अप्रैल, १९३२

चि०,

बहन या किसी भी असहायपर कोई हमला करे तो हमें अपने प्राण देकर उसे बचाना चाहिए। जहाँ हिंसाका अवसर है, वहाँ प्राण तो दिये ही जा सकते हैं। किन्तु प्राण देनेकी शक्ति न हो तो हिंसाका सहारा लेकर सहायता करना भी उचित है। इससे हिंसाका हिंसत्व तो नहीं मिट जाता, सदोष तो वह है ही। किन्तु कायरता हिंसाकी तुलनामें अधिक खराब है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०३७) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३८९. एक पत्र

१८ अप्रैल, १९३२

चि०,

नाकसे खून गिरना बन्द करनेके लिए सिरपर रोज दोपहरको मिट्टी बाँधनी चाहिए। सुबह-शाम नाकसे ठंडा पानी चढ़ाकर मुँहसे निकालना चाहिए। नाकसे ठंडा पानी लेना आसानीसे आ जाता है। धूपमें नहीं घूमना चाहिए। सिर गरम न होने दें। किताबमें लिखी हर चीज ठीक ही होती है, ऐसा नहीं मानना चाहिए। शामको सातके पहले ही खा लेना अच्छा है। यह अनुभवसिद्ध है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०३८) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३९०. पत्र: परशुराम मेहरोत्राको

१८ अप्रैल, १९३२

चि० परसराम,

विमलके लिए तुमने ठीक कविता लिखी। पिताका प्रेम ठहरा न? और यह सही है। वह नहीं पढ़ता, मैं ऐसा नहीं मानता। बच्चे अच्छे वातावरणमें रखे गये हों तो वे सुविधापूर्वक सीखते रहते हैं। मैंने कई बार अनुभव किया है कि वे वर्गमें जितना सीखते है, उसके बाहर कहीं ज्यादा सीखते हैं। इसलिए हमारा काम है कि हम सारे वातावरणको वर्ग-जैसा बना डालें। उसमें से बालक अनुकूल ज्ञान खींचते ही रहेंगे। यही सही मॉन्टेसरी-पद्धति है। किन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि सभी बड़ोंको अप्रत्यक्ष रूपमें शिक्षक होना चाहिए अर्थात्, उनका चरित्र उज्ज्वल होना चाहिए और बालकोंके प्रति उनमें प्रेम होना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपना वर्ग ही तोड़ दें; फिर भी इसका इतना अर्थ जरूर है कि जितनी जल्दी बने, वातावरण वर्ग-सरीखा बना डालें और सभी बड़े अपनेको बच्चोंका अभिभावक समझने लगें और वैसी योग्यता प्राप्त करें। ऐसा करनेपर चलनेवाला वर्ग बच्चोंको बोझ नहीं महसूस होगा।

मैंने लिखा है इसलिए 'साकेत' और 'अनघ'को पढ़ाना जरूरी नहीं है। तुम्हें मेरा सुझाव जँचे और आश्रममें कुछ लोग उन्हें समझ सकें, तभी ये पुस्तकें पढ़ाई जायें।

(१) वर्गसे बाहर थोड़ा काम दिया जा सकता है; (२) मन:स्थितिके अनुसार घूमते जाते समय कभी एकान्त, कभी बातचीत, तो कभी पठन-पाठन लाभप्रद होता है। जब जैसा अनुकूल लगे, वैसा करें; (३) जो व्यक्ति माता-पिता और गुरुतुल्य हों, वे सभी ईश्वरतुल्य हैं; (४) आश्रममें नये आनेवालोंको आश्रमके नियमोंका ही अनुसरण करना है, क्योंकि व्यक्ति तो अच्छे-से-अच्छे हों तो भी अधूरे हैं और इसलिए वे [हर बातमें] अनुकरणीय नहीं हैं। इसके सिवा यह मनुष्य-स्वभाव ही है कि जो अधिक-से-अधिक नियमानुसार चलता होगा, नियम-पालनका संकल्पकर्त्ता उसीकी ओर खिंचेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४९४) से। सी० डब्ल्यू० ४९७१ से भी; सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा।

३९१. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१८ अप्रैल, १९३२

चि० जमना,

जो मुझसे नियमित पत्रकी आशा रखे और खुद मुझे नियमित रूपसे लिखे चाहे न लिखे, उसे हर हफ्ते मैं क्या लिखता रहूँ?

कुसुम बीमार रहती है तो उसे आराम करनेको बाध्य करना चाहिए। डर है कि वह बिना आराम किए अच्छी नहीं होगी। मैं तो उसे लिखूँगा ही।

यह तय हो गया कि साबरमतीकी आबहवा तुम्हें माफिक नहीं आती। इसका यह अर्थ हुआ कि लम्बी अवधितक तुम्हें साबरमतीमें नहीं रहना चाहिए। यह दु:खकी बात नहीं है। आश्रम जमीनका टुकड़ा नहीं है। जहाँ जाओ, वहीं पूरी तरह आश्रमके नियमोंका पालन करो तो आश्रम सार्थक होगा। अगर तुमने बम्बईमें बारीकीसे नियमोंका पालन किया होगा तो वहाँके वातावरणपर उसका असर हुआ होगा। नियम-पालनके बारेमें किसी दिन लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५१) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३९२. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

१८ अप्रैल, १९३२

भाई खम्भाता,

तुम्हारा पत्र मिला है। फिलहाल तो तुम्हें नहीं बुला सकता। मित्रोंसे मिलनेके बारेमें पत्र-व्यवहार चल रहा है। अगर सन्तोषप्रद फल निकला तो जरूर बुलवाऊँगा। मालिश आपके कहे अनुसार शुरू कर दी है। मेरे पास लाक्षादि तैल नामका एक तेल है; उसीकी मालिश चलती है। परिणाम तुम्हें बताऊँगा। एन्ड्रयूजकी तबीयत ठीक होगी।

आप सबको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६५९९) से।

३९३. पत्र : मणिबहन न० परीखको

१८ अप्रैल, १९३२

चि० मणि,

नरहरिकी चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। उसकी तबीयत अच्छी है, ऐसा सरकारने सूचित किया है। उसके हाथका लिखा पत्र पानेका प्रबन्ध कर रहा हूँ। जिसने सब-कुछ ईश्वरको सौंप दिया है, वह चिन्ताका बोझ क्यों उठाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९६६) से। सी० डब्ल्यू० ३२८३ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

३९४. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

१८ अप्रैल, १९३२

चि० निर्मला,

हम जबतक सबको सगे भाई-बहन नहीं मानने लगते, तबतक सब [प्रगति] मिथ्याभास है। सगे और दूसरोंके बीच भेद क्यों मानें? जिनके सगा कोई न हो, उनका क्या हो? और सगेका देहावसान हो जाये तो क्या हो? जो सबको सगा मानता है, उसके सगेका देहावसान नहीं होता, क्योंकि उसके अ[संख्य][1] सगे हैं। यही सगापन सच्चा है, दूसरा झूठा और क्षणिक है। समझी या नहीं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७२) से। सी० डब्ल्यू० ९०३३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

३९५. पुष्पा शं० पटेलको

१८ अप्रैल, १९३२

चि० पुष्पा,

स्वराज्यका अर्थ अगर गांधीराज हो, तब तो वह कष्ट ही हुआ न? स्वराज्य अर्थात् सबका राज; उसमें पुष्पा भी आती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८६) से। सी० डब्ल्यू० ३२ से भी; सौजन्य : पुष्पा ना० नायक।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कटा-फटा है।

३९६. पत्र : पद्माको

१८ अप्रैल, १९३२

चि० पद्मा,

मुझे नहीं मालूम, इन दिनों भुवालीमें कौन है। बाहर कौन-कौन हैं, यह भी नहीं मालूम। वहाँके किसी व्यक्तिसे परिचय हो, तभी जाना ठीक होगा। फिलहाल तू आश्रम जाये तो वह मुझे तो ठीक लगता है। जो भाग्यमें होगा, सो होगा। सरोजिनी देवीकी क्या इच्छा है? जानना चाहूँगा, सीतलासहाय क्या चाहता है। मुझे ऐसी याद है कि तेरे जो पत्र आये हैं, उनका मैंने उत्तर तो दिया है। तेरे ही पत्र नियमसे नहीं आये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१३१) से। सी० डब्ल्यू० ३४८३ से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी।

३९७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१८ अप्रैल, १९३२

चि० प्रेमा,

तू सचमुच लिखनेकी मन:स्थितिमें नहीं थी। पत्र तो लगभग हमेशा-जितना ही लम्बा है, लेकिन बेसिर-पैरका है। जब खानेकी जरूरत न हो तब खाना नहीं चाहिए; घूमनेकी जरूरत न हो तब घूमना नहीं चाहिए; वैसे ही लिखनेकी जरूरत न हो तब लिखना नहीं चाहिए। अथवा थक गई हूँ, इसलिए नहीं लिखती, इतना लिखकर खत्म कर देना चाहिए।

दिनका अन्त होनेपर आनन्दके बदले मनमें चिढ़ होती है, यह अच्छा लक्षण नहीं है। यह अनासक्ति तो नहीं ही है। मेरी सलाह है, मेरा आग्रह है कि तू अपने जंजाल कम कर। इससे तुझे या आश्रमको कोई नुकसान नहीं होनेवाला है। प्रफुल्ल चित्तसे किया हुआ काम बढ़ता है और फलदायी सिद्ध होता है।

हर हफ्ते यहाँके साथियोंसे मिलता हूँ। उनमें धुरन्धरको भी बुलाया था। उसकी तबीयत अच्छी है। वजन घटा है, क्योंकि 'सी' श्रेणीकी ही खुराक लेता है। अगर बीचमें उससे कोई मिला न हो तो तू मिल सकेगी।

लेजिमके सम्बन्धमें उठनेवाले प्रश्नोंपर तूने जो लिखा है, वह बिना विचारे लिखा है, ऐसा मानता हूँ। 'कलाके लिए कला' का विचार मनुष्यको कहाँ ले जाता है, यह तू नहीं जानती। इसके नामपर पश्चिमके जवान लड़के-लड़की बिलकुल नरकमें उतर रहे हैं। पत्र लिखते समय शायद कलाकी परिभाषा तेरे ध्यानमें ही नहीं थी।

लेकिन तेरे पत्रमें सब-कुछ बे-ठिकानेका होगा, ऐसा तूने ही मुझे चेताया है। इसलिए मैं ज्यादा लम्बा नहीं लिखता।

तू अपने-आपको 'हिस्टेरिकल' न समझे, यह सम्भव है। यह हो सकता है कि किसन भी यह न देख सके। फिर यह भी सम्भव है कि 'हिस्टेरिकल' का पूरा अर्थ भी तुम दोनों न समझी हों। इसका अर्थ समझनेके लिए तूने शब्दकोश कभी नहीं खोला होगा। ऐसा नहीं है कि हमारे एम० ए० आदि पढ़े लोग अंग्रेजी जानते ही हों। फिर ऐसे खास शब्दके अर्थ तो बहुत कम लोग ही जानते हैं। 'हिस्टेरिकल' व्यक्तिका तू सुन्दर नमूना है। यह दोष ही है, ऐसा माननेकी जरूरत नहीं है। लेकिन आखिर तो हिस्टीरियाको मिटा डालनेकी आवश्यकता रहती ही है। लेकिन मैं तुझे इसके विवेचनमें नहीं उतारूँगा। तू हिस्टेरिकल नहीं हैं, ऐसा खुशीसे मानती रह। तू इसे सच्चा ही सिद्ध करना चाहती है, इसलिए मैं निश्चिन्त हूँ। 'न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गति तात गच्छति।'[1]

तेरा वाक्य यह था कि आश्रममें जिस चीजके पीछे हम पड़ते हैं, उसे छोड़ते नहीं, यह आश्रमकी खूबी है। इसे मैं प्रमाण-पत्र मानता हूँ। भले ही आज आश्रम इसके योग्य नहीं है। लेकिन अन्तमें हम इसके योग्य होंगे, ऐसा आग्रह तो रखेंगे ही। हम जो कर नहीं सके, उसका मुझे दुःख नहीं है। मुझे उसका भान है, इसलिए जाग्रत हूँ। जो-कुछ सोचा था, उसे सीखनेका समय नहीं है, यह तो स्पष्ट रूपसे मेरी कमी है। मेरी व्यवस्था-शक्ति कम है, शिक्षण-शक्ति कम है और समयके प्रमाणका भी ज्ञान मुझे कम है। ऐसा होते हुए भी अगर परिस्थितिवश मैं ज्यादा समयतक बाहर नहीं रहा होता, तो अधिकतर कार्यक्रम किसी तरह मैंने पूरा कर लिया होता। मेरा ऐसा अनुभव है। लेकिन बीती हुई बातोंको इसीलिए याद करते हैं कि अब भी कुछ सुधारा जा सकता हो तो सुधार लें। जो मैं नहीं कर सका, उसे तुम सब विचार करके और योजना बनाकर जितना कर सको, करो। क्या करना था, क्या-क्या करना बाकी है, उसमें से क्या-क्या करना सम्भव है, इसकी समय निकाल कर जाँच करो। जो हो सके, वह करो। ऐसा लगे कि कुछ भी नहीं हो सकता तो फिर अपरिहार्यको भूल जाओ। उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

शून्यवत् होनेका अर्थ है 'मैं करता हूँ' की वृत्तिको छोड़ना। इसमें निराशावादके लिए स्थान ही नहीं है।

महादेव और मैंने सप्ताहमें दुगना काम किया, ऐसा कहा जायेगा। सरदारको इस बार अभी कातनेकी धुन नहीं लगी है। उपवास[2] तो हम तीनोंने किये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८१) से। सी० डब्ल्यू० ६७२९ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

१. **भगवद्गीता**, अध्याय ६ श्लोक ४०।

२. राष्ट्रीय सप्ताहमें ६ और १३ अप्रैलके दिन।

३९८. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको[1]

१८ अप्रैल, १९३२

चि०,

१. जैन निरूपण और साधारण वैदिक निरूपणके बीच मैंने विरोध नहीं पाया, मगर केवल दृष्टिकोणका ही फर्क है। ईश्वर वेदका कर्त्ता-अकर्त्ता दोनों है। सारा जगत ईश्वरमय है, इसलिए ईश्वर कर्त्ता है। मगर वह कर्त्ता नहीं है, क्योंकि वह अलिप्त है। उसे कर्मका फल भोगना नहीं पड़ता। और जिस अर्थमें हम कर्म शब्द इस्तेमाल करते हैं, उस अर्थमें जगत ईश्वरका कर्म नहीं है। 'गीता' के जो श्लोक तूने उद्धृत किये हैं, उनका इस तरह सोचनेपर मेल बैठ जाता है। इतना याद रखना : 'गीता' एक काव्य है। ईश्वर न कुछ बोलता है, न करता है। ईश्वरने अर्जुनसे कुछ कहा हो, सो बात नहीं है। ईश्वर और अर्जुनके बीचका संवाद काल्पनिक है। मैं तो ऐसा नहीं मानता कि ऐतिहासिक कृष्ण और ऐतिहासिक अर्जुनके बीच ऐसा संवाद हुआ था। 'गीता' की शैलीमें कुछ भी असत्य है या अयुक्त है, सो भी नहीं। इस तरहसे धर्मग्रन्थ लिखनेका रिवाज था। और आज भी कोई संस्कारी व्यक्ति लिखे, तो उसमें कोई दोष नहीं माना जा सकता। जैनोंने केवल न्यायकी, काव्यरहित यानी रूखी बात कह दी और बता दिया कि जगतकर्त्ता कोई ईश्वर नहीं है। ऐसा कहनेमें कोई दोष नहीं, मगर जन-समाज रूखे न्यायसे नहीं चलता। उसे काव्यकी जरूरत रहती ही है। इसलिए जैनोंके बुद्धिवादको भी मन्दिरोंकी, मूर्त्तियोंकी और ऐसे अनेक साधनोंकी जरूरत मालूम हुई है। वैसे, केवल न्यायकी दृष्टिसे इनमें से कुछ भी नहीं चाहिए।

२. असलमें पहले प्रश्नके उत्तरके गर्भमें ही तेरे दूसरे प्रश्नका उत्तर आ जाता है जैसे, मैं यह मानता हूँ कि तेरा दूसरा प्रश्न भी पहलेके गर्भमें ही है। । 'कृपा' शब्द काव्यकी भाषा है। भक्ति ही काव्य है। मगर काव्य कोई अनुचित या घटिया चीज या अनावश्यक वस्तु हो सो बात नहीं है। यह निहायत जरूरी चीज है। पानी दो हिस्से हाइड्रोजन और एक हिस्सा ऑक्सीजनसे बना हुआ है, यह न्यायकी बात हुई। मगर पानी ईश्वरकी देन है, यह कहना काव्यकी बात हो गई। इस काव्यको

१. पुरुषोत्तम गांधीने निम्न प्रश्न पूछे थे :

(१) गीताके ईश्वरवाद और जैनमतके अनीश्वरवादमें क्या अन्तर है?

(२) ईश्वरमें कार्यका समर्पण नहीं है तो कृपा कौन करता है? भक्तके पास ईश्वरकी कृपाके अतिरिक्त दूसरा क्या साधन है जिसमें उसकी श्रद्धा हो? आदमीकी प्रार्थना तो उसकी शुभेच्छा ही होती है या इससे कुछ अधिक?

(३) 'सत्य ही ईश्वर है'—आपके इस कथनका सही अर्थ क्या है?

समझना जीवनका आवश्यक अंग है। पानीका न्याय समझना जीवनका आवश्यक अंग नहीं है। इस तरह यह कहना कि, जो-कुछ होता है, वह कर्मका फल है, अत्यन्त न्याययुक्त है। मगर कर्मकी गति गहन है। हम देहधारी इतने ज्यादा पामर हैं कि मामूली-से-मामूली परिणामके लिए भी जितने कर्मके जिम्मेदार होते हैं, उस सबका ज्ञान हमें नहीं हो सकता। इसलिए, यह कहना कि ईश्वरकी कृपाके बिना कुछ नहीं होता, ठीक है और यही शुद्ध सत्य है। देहमें रहनेवाली आत्मा एक घड़ेमें रहनेवाली हवाकी तरह कैदी है और घड़े की हवा जबतक अपनेको अलग समझती है, तबतक वह अपनी शक्तिका उपयोग नहीं कर सकती। इसी तरह, शरीरमें कैद आत्मा अगर यह माने कि वह स्वयं कुछ करती है, तो सर्वशक्तिमान परमात्माकी शक्तिसे वंचित रहती है। इसलिए, यह कहना कि जो-कुछ होता है वह ईश्वर ही करता है, वास्तविक है और सत्याग्रहीको शोभा देता है। सत्यनिष्ठ आत्माकी इच्छा पुण्य होती है और इसलिए वह फलती ही है। इस विचारसे जिस प्रार्थनाके श्लोक[1] तूने उद्धृत किये हैं, वह प्रार्थना हमारी निष्ठाके हिसाबसे सारी दुनियाके लिए भी जरूर फलेगी। जगत हमसे भिन्न नहीं है, न हम जगतसे भिन्न हैं। सब एक-दूसरेमें ओतप्रोत हैं और एकके कामका असर दूसरेपर हुआ करता है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि विचार भी कार्य है, इससे एक भी विचार बेकार नहीं जाता। इसीलिए हमें हमेशा अच्छे विचार करनेकी आदत डालनी चाहिए।

३. ईश्वर निराकार है और सत्य भी निराकार है, इसलिए सत्य ईश्वर है, यह मैंने कोई हिसाब लगाकर तय नहीं किया है। बल्कि मैंने यह देखा है कि ईश्वरका सम्पूर्ण विशेषण तो सत्य ही है, बाकीके सब विशेषण अपूर्ण हैं। ईश्वर शब्द भी विशेषण है और अनिर्वचनीय महान तत्त्वको बतानेवाला एक विशेषण है। मगर ईश्वरका धात्वर्थ लें तो ईश्वर शब्द फीका लगता है।

ईश्वरको राजाके रूपमें देखनेसे बुद्धिकी तृप्ति नहीं होती। उसे राजाके रूपमें देखनेसे हममें एक प्रकारका भय भले ही पैदा हो जाये और इससे पाप करते डरें और पुण्य करनेका प्रोत्साहन मिले। मगर इस तरहका भयवश किया हुआ पुण्य भी लगभग पुण्य नहीं रहता। पुण्य करें तो पुण्यकी खातिर ही करें, इनामके लिए नहीं। ऐसे अनेक विचार करते-करते एक दिन ऐसा समझमें आ गया कि ईश्वर सत्य है, यह कहना भी अधूरा वाक्य है। सत्य ही ईश्वर है, यह जहाँतक मनुष्यकी वाचा पहुँच सकती है, वहाँतक पूर्ण वाक्य है। सत्य शब्दका धात्वर्थ विचारनेपर भी यही परिणाम आता है। सत्य सत् धातुसे निकला हुआ शब्द है और सत्के मानी तीनों कालमें होना है। तीनों कालमें जो हो सकता है, वह तो सत्य ही है और उसके सिवा दूसरा कुछ है नहीं। मगर सत्यको ही ईश्वरके रूपमें देखनेसे श्रद्धा जरा भी कम न होनी चाहिए। मेरे खयालसे तो उलटे बढ़नी चाहिए। मुझे तो यही अनुभव हुआ है। सत्यको परमेश्वरके रूपमें जाननेसे अनेक प्रपंचोंसे छूट जाते हैं। चमत्कार देखने या सुननेकी इच्छा नहीं रहती। ईश्वर-दर्शनका अर्थ समझनेमें मुश्किल

१. सी० डब्ल्यू० साधन-सूत्रके अनुसार "समस्ताः सुखिनो भवन्तु।"

हो सकती है, सत्य-दर्शनका अर्थ समझनेमें कठिनाई है ही नहीं। सत्य-दर्शन खुद भले ही मुश्किल हो, मुश्किल है ही; मगर जैसे-जैसे सत्यके नजदीक पहुँचते जाते हैं, वैसे-वैसे हम इस सत्यरूपी ईश्वरकी झाँकी देखने लगते हैं, इसलिए पूर्ण दर्शनकी आशा बढ़ती है और श्रद्धा भी बढ़ती है।[1]

इससे प्रश्नोंका उत्तर न मिला हो तो फिर पूछना। मैं जवाब देते उकताऊँगा नहीं और मुझे विश्वास है कि मैं सन्तोषजनक उत्तर दे पाऊँगा। तुम्हारे मनमें जो-जो शंकाएँ उठें, उनका समाधान इतनेसे न हो सका हो तो फिर पूछना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग १, पृष्ठ १०५-७। सी० डब्ल्यू० ९०४४ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

३९९. एक पत्र

१९ अप्रैल, १९३२

प्रिय,

हम सब ऋषियोंकी सन्तान हैं और इसलिए हमारे मनोंमें अपने पुरोहित या किसी वर्ण विशेषका होनेके कारण अभिमान नहीं होना चाहिए। ब्राह्मणने स्वेच्छया जनताकी सेवा चुनी और इसी तरह क्षत्रियने भी। अपने व्रतका पालन करना केवल ब्राह्मणका या सैनिकका ही नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है। इसलिए, यदि आप अपने वर्णका अभिमान माने बिना सोच-समझकर उचित ढंगसे व्रत लेते, तो मैं उसे प्रशंसनीय मानता। लेकिन यदि अब आप अपना व्रत निबाहना चाहते हैं तो उसके लिए जितनी सावधानी जरूरी है, उतनी तो रखनी ही पड़ेगी अर्थात्, देहको जितने आरामकी जरूरत है, उतना आराम अवश्य करो ताकि तुम्हारा व्रत भंग न हो और न उसपर अनुचित रूपसे बोझ ही पड़े। सिर्फ निर्वाह-भरके लिए पैसा लोगे, उससे ज्यादा नहीं, तुम्हारा यह निर्णय बहुत ठीक है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९०४१) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. इसके बादका अनुवाद सी० डब्ल्यू० प्रतिसे किया गया है।

४००. पत्र : सुरेन्द्रजीको

१९ अप्रैल, १९३२

तुम्हारे पत्रका उत्तर देनेकी जल्दी नहीं थी, इसलिए यह सोचकर जवाब रोक रखा था कि कैदीके नाते मर्यादा रखें तो अच्छा है। पहलेके (विलायतवाले) पत्रमें तुमने मुझे जो लिखा था, वह मैं बिलकुल भूल गया हूँ। मेरे बारेमें जो मनम आये, उसे लिखनेमें संकोच रखना ही नहीं चाहिए; संकोच रखना असलमें दोष ही माना जायेगा। सम्बन्धी और साथी मेरी जो-कुछ भी आलोचना मनमें करते हों, उसे वे मेरे सामने रखें तो उससे मुझे सीखनेको मिलेगा; क्योंकि इस आलोचनामें वैर-भाव तो होगा ही नहीं। और प्रियजनोंके बारेमें मनमें कुछ भी आ जाये, उसे तत्काल कहना प्रेम और मित्रताकी निशानी है। जो प्रेम कहनेमें संकोच रखे, वह अधूरा है।

सभी हालतोंमें कायम रह सके, वही ब्रह्मचर्य है[1], इसमें 'सभी हालतों' का पूराअर्थ करना चाहिए। किसी भी लालचमें या किसी भी प्रलोभनमें पड़नेपर भी जो टिका रहे, वह ब्रह्मचर्य है। किसीने पत्थरका पुरुष बनाया हो और उसके पास कोई रूपवती युवती जाये, तो पत्थरपर उसका असर नहीं होगा। इसी तरह जो पत्थरकी तरह रह सके, वह ब्रह्मचारी है। मगर जैसे पत्थरकी मूर्त्ति न कानोंसे काम लेती है, न आँखोंसे, वैसे ही पुरुष भी लालचके पीछे न दौड़े। जो दौड़ता है, वह तो ब्रह्मचारी नहीं है। इसलिए, अपनी तरफसे तो पुरुषका एक भी कृत्य ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसे विकारके चिह्नके तौरपर माना जा सके। मगर बड़ा सवाल तुम्हारे मनमें यह है: स्त्री-जातिका दर्शन और उसका संग अनुभवसे संयम भंग करनेवाला पाया गया है, इसलिए वह त्याज्य है। इस विचारमें मुझे दोष दिखता है।

जो संग स्वाभाविक है और जिसका मूल सेवा है, उसे छोड़कर ही जिस संयमका पालन किया जा सके, वह संयम नहीं, ब्रह्मचर्य नहीं। वह तो बगैर वैराग्यका त्याग है। इसलिए यह संग अवसर पाकर बढ़ेगा ही। 'पर' के दर्शनोंके बिना विषयोंकी निवृत्ति हो ही नहीं सकती[2], यह वेदवाक्य है। मगर इससे उल्टा वाक्य भी उतना ही सच है। विषयोंकी निवृत्तिके बिना 'पर' के दर्शन नहीं हो सकते। यानी, दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं। अन्तिम वचनको जरा समझ लेनेकी जरूरत है। रस तो 'पर' के दर्शनके बाद मिट जाता है यानी, विषयोंके शान्त हो जानेपर भी भीतर अगर रस रह जाता है, तो 'पर' के दर्शन हुए बिना विषय-वासनाके जाग्रत होनेकी सम्भावना रह जाती है। साक्षात्कार होनेके बाद वासनामात्र असम्भव हो जाती है। यानी, पुरुष नर न रहकर नपुंसक हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह एक न रहकर शून्य बन जाता है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो वह परमेश्वर में समा

१. देखिए, "पत्र: सुरेन्द्रजीको", पृष्ठ २६०।
२. **भगवद्गीता**, अध्याय २, श्लोक ५९।

जाता है। जहाँ वासना नहीं रही, वहाँ रस भी क्या और विषय भी क्या? इस तरह बुद्धिको तो यह बिलकुल सीधा लगता है। यहाँ 'पर' और जहाँ-जहाँ ईश्वर, ब्रह्म, परब्रह्म, वगैरह शब्द आते हैं, वहाँ-वहाँ 'सत्य' शब्द इस्तेमाल करके अर्थ करने और समझनेसे वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जायेगी और साक्षात्कारका अर्थ भी आसानीसे समझमें आ जायेगा। यह खेल आत्मवंचनाका नहीं है। आश्रममें जो कुटुम्ब-भावनाके नामपर मन-ही-मन विषयोंका सेवन करते होंगे, वे तो तीसरे अध्यायवाले मिथ्याचारी हैं। हम यहाँ सत्याचारीकी बात कर रहे हैं, और यह सोच रहे हैं कि सत्याचारीको क्या करना चाहिए। इसलिए, आश्रममें अगर ९९ फीसदी लोग कुटुम्ब-भावनाका ढोंग करके विषयोंका सेवन करते हों, और अगर १ फीसदी लोग भी बाहर और भीतरसे केवल कुटुम्ब-भावनाका ही सेवन करते हों, तो इससे आश्रम कृतार्थ हो जायेगा। और इससे आश्रम-द्वारा कल्पित आचरण उचित माना जायेगा। इसलिए, हमें यह नहीं सोचना है कि दूसरा क्या करता है। हमें तो यही विचार करना है कि अपने लिए क्या हो सकता है। इसके साथ-ही-साथ इतना तो सही है ही कि किसीके पहल करनेकी स्पर्धामें हम अपनी झोंपड़ी न फूँक लें। कोई कुटम्ब-भावनासे रह सकनेका दावा करे, मगर हम अपनेमें यह शक्ति न पायें तो उसके दावेको स्वीकार करते हुए भी हम कुटुम्ब-भावनाका दावा न करें और [अनावश्यक] सम्पर्कसे बचें। आश्रममें हम एक नया, और इसलिए भयंकर, प्रयोग कर रहे हैं। इस कोशिशमें सत्यकी रक्षा करते हुए जो घुलमिल सकें, वे घुलमिल जायें। जो न घुलमिल सकें, वे दूर रहें। हमने ऐसे धर्मकी कल्पना नहीं की है कि आश्रममें सभी सब तरहसे स्त्री-मात्रके साथ घुलें-मिलें। इस तरह घुलने-मिलनेकी हमने सिर्फ छूट रखी है। धर्मका पालन करते हुए जो इस छूटको ले सकता है, वह ले ले। मगर इस छूटके लेनेमें जिसे धर्म खो बैठनेका डर है, वह — आश्रममें रहते हुए भी — उससे सौ कोस दूर भाग सकता है। एक आश्रमवासी . . .[1]को अपनी लड़की समझ सकता है और उसी तरह उससे व्यवहार कर सकता है। मगर दूसरा आश्रमवासी इच्छा होते हुए भी ऐसा व्यवहार मनमें पैदा न कर सके, तो उसका धर्म है कि वह . . .[2]का संग छोड़ दे। मैंने यहाँ मृत देहकी मिसाल दी है। ऐसा दृष्टान्त लेनेमें भी शायद दोष हो तो इन दोके बजाय 'अ', 'ब' समझ लिए जायें। 'क' का मन 'ब' के प्रति 'अ' के जैसा न रह सके, तो 'क' के लिए आश्रममें 'ब' को न छूना ही धर्म है। और इस धर्मका पालन जहाँ-जहाँ मुझे मालूम हुआ है, वहाँ-वहाँ करानेकी मैंने कोशिश की है।

कुर्सीकी बात भूल जाने लायक है। इसे महत्त्व देनेकी जरूरत नहीं है। तुम 'कल्याणकृत' हो इसलिए आखिरकार सब ठीक होकर रहेगा। बुद्धिका उपयोग तो होता ही रहेगा। बुद्धिको कुंठित कर डालनेकी जरा भी जरूरत नहीं है। भूलें करते-करते सच्चे प्रयोग भी होंगे। और ऐसी तो कोई बात है ही नहीं कि बुद्धिके जितने प्रयोग करते हो, वे सभी गलत निकलते हैं। सौमें पाँच प्रयोग गलत साबित हुए

१ और २. नामका साधन-सूत्रमें उल्लेख नहीं है।

हों, तो उससे क्या हुआ? हमें भूलें करनेका अधिकार है। जहाँ भूल होगी, वहींसे फिर गिनेंगे और आगे बढ़ेंगे।

लन्दनमें किस मौकेपर मैं बोला था, यह तो मुझे याद नहीं है। मगर जो व्रत पालन करता है वह स्त्री-समाजकी ज्यादा सेवा कर सकता है, यह वाक्य तो सच है ही। और जिस हदतक मुझे उसमें सफलता मिली होगी उस हदतक सेवा ज्यादा हुई ही होगी, यह बात तो सचमुच माननी ही चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १०८–१०।

४०१. पत्र : नृसिंहप्रसाद का० भट्टको

२० अप्रैल, १९३२

मुझे जो डर था, परिणाम वही हुआ है। मैं दरिद्रनारायणके लिए भटका, तुम्हें इसमें और मेरी सलाहमें असंगति दिखाई दी। तुम असंगति देखोगे, मुझे यह अन्देशा था। मगर मुझे असंगति दिखाई नहीं दी। जब दौरेपर निकला था, तब भी मुझे ऐसी कोई बात नहीं लगी थी। फर्क यह है: दक्षिणामूर्ति तुम्हारी संस्था कहलाती है, जैसे आश्रम मेरी संस्था कहलाती है। दक्षिणामूर्तिमें तुम्हारा काम रुपया इकट्ठा करना नहीं है बल्कि पढ़ाना है, विद्यार्थियोंमें अपनी आत्माको उँडेल देना है। आश्रममें मेरा कर्त्तव्य रुपया लाना नहीं, नियमोंका पालन करके आश्रमवासियोंसे पालन कराना और आश्रमकी विविध प्रवृत्तियोंको पुष्ट करना है। ऐसा करनेसे आवश्यकतानुसार रुपया आ जायेगा, यह श्रद्धा रखनी चाहिए। दरिद्रनारायणके कोषके लिए इससे उल्टा कानून है। इसमें तो वृत्ति ही कोष जमा करनेकी है। दक्षिणामूर्तिके लिए तुम नहीं जा सकते; मगर मित्र लोग उसके लिए शौकसे माँगें। माँगना उनका धर्म है। अब भेद समझमें आया? यह भेद आजका नया नहीं है। दक्षिण आफ्रिकामें भी मैं इसी भेदके अनुसार चलता था। यानी, ज्ञान होनेपर फीनिक्सके लिए भिक्षा बन्द कर दी थी। मगर वहाँ जो लोक संस्थाएँ चल रही थीं, उनके लिए मैं घर-घर भटका था। इसलिए मेरा तो अब भी यही कहना है कि तुम्हें आज नहीं तो कल निश्चय कर लेना चाहिए कि रुपया उगाहनेके लिए तुम नहीं जा सकते। मदद करनेवाले मित्रोंको जानते हो। उन्हें पत्र लिखो और निश्चय बता दो, और फिर जो-कुछ होना हो, होने दो। ऐसी संस्थाओंकी अभीतक लोगोंमें कद्र नहीं है, लोग अपने-आप इन संस्थाओंको दान भेजनेका धर्म नहीं समझते, यह सब अर्धसत्य है। इन संस्थाओंके चलानेवाले हम लोग श्रद्धा-रहित हैं, इसलिए दानके बारेमें लोगोंने सच्ची शिक्षा नहीं पाई। वैसे यह एक 'दुष्ट चक्र' है। हमने लोगोंको तालीम नहीं दी, इसलिए उन्हें नहीं मिली; और जबतक लोग अपने-आप दान देना न सीखें, तबतक हम उनके यहाँ भटकते रहें; इस तरह काम कभी ठिकाने नहीं लगेगा। लोग सीखेंगे

नहीं और हममें श्रद्धा आयेगी नहीं। नतीजा यह होगा कि नौ दिन चले अढ़ाई कोस। इसलिए हममें से कुछ लोगोंको बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाकर भी श्रद्धाका मार्ग अपनाना जरूरी है। इसके लिए तुम बिलकुल योग्य हो। दूसरी संस्थाओंकी तुलनामें यह संस्था पुरानी है, प्रतिष्ठा-प्राप्त है, शिक्षक सभी स्वार्थी नहीं हैं, जो शिक्षा दी जाती है, वह प्रेमसे दी जाती है। इसके साक्षीके रूपमें कितने ही विद्यार्थी तैयार भी हुए हैं। कुछ नियमित रूपसे दान देनेवाले मिल गये हैं। इसलिए व्यवहार-बुद्धिसे जाँच करनेपर भी मेरा बताया हुआ कदम अयोग्य नहीं लगता। और मेरे खयालसे शुद्ध श्रद्धा ही शुद्ध व्यवहार है।

यह क्यों मान लेते हो कि तुम फीस बढ़ा दोगे और स्वावलम्बी बन जाओगे, तो धनवानोंके लड़के ही आयेंगे? कुछ तो तुम्हें मुफ्त लेने ही होंगे। इनका बोझा तुम धनवानोंपर डालो, तुम्हारी शिक्षाकी उन्हें गरज होगी तो इतना कर वे देंगे, देना ही चाहिए। अपनी शिक्षाकी आवश्यकताके बारेमें शंका किसलिए करते हो? मेरा तो दृढ़ विश्वास और अनुभव है कि हमारी अच्छी-से-अच्छी संस्थाएँ भी इसलिए पूरा विकास नहीं कर पातीं कि उनके आचार्योंको अपना समय रुपया माँगनेमें लगाना पड़ता है। संस्थाका भीतरी विकास ही आचार्यकी साधना होनी चाहिए। उसके बजाय आचार्यको अपना अमूल्य समय रुपये जुटानेपर खर्च करते देखा गया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि ऐसा करनेमें आचार्य अपना धर्म भूल गये। उन्होंने अपने धन्धेके बारेमें श्रद्धा नहीं रखी। नतीजा हम देख रहे हैं। एक बार तुम सब शिक्षक मिलो, और फिर जो मित्र आजतक धन देते आये हैं उनके साथ मिलो, और बादमें संकल्प करो। मिलना सलाह लेनेके लिए नहीं, बल्कि संकल्प करनेके लिए और उसे प्रकट करनेके लिए ही हो। श्रद्धा किसीकी सलाहकी राह नहीं देखती, और सलाह लेने बैठोगे तो खोओगे।

आज तो इतना कहकर ही खत्म करता हूँ। फिर मेरे साथ झगड़ना हो तो शौकसे झगड़ना। तुम्हें पत्र लिखनेकी फुरसत है तो मुझे भी है ही। बाहर होता तो यह फुरसत मिल ही नहीं सकती थी। इसलिए मेरे विशेष ज्ञानका और विशेष अनुभवका पूरी तरह लाभ उठा लेना। नहीं उठाओगे, तो तुम घाटेमें रहोगे। यह कहनेमें कि इस मामलेमें मैं कुशलता रखता हूँ, न मुझे कोई संकोच है, न शर्म। मेरी कुशलता तुम मंजूर करो या न करो, यह तुम्हारी मर्जी। साँपका जहर उतारना जाननेवाला अगर अपनी कलाके बारेमें शंकित रहे या उसे छिपाये, तो जिस तरह वह मूर्खोंका सरदार माना जायेगा, उसी तरह मैं भी अगर अपनी कलाको जानते हुए छिपाऊँ तो मूर्खराज कहलाऊँगा। जान-बूझकर ऐसा बननेकी मेरी इच्छा नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१ पृष्ठ ११२–४।

४०२. पत्र : ई० ई० डॉयलको

२१ अप्रैल, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,[१]

मेजर मार्टिनको लिखे गये मेरे १३ अप्रैलके पत्रका[२] सरकारने जो जवाब दिया है, वह मुझे मेजर भण्डारीने पढ़कर सुना दिया है। उस पत्रमें मैंने, और बातोंके अलावा, पहले ही भेजी गई उन अराजनैतिक साथियोंकी विवरणात्मक सूची[३] के बारेमें भी लिखा था जो मुलाकातके लिए आ सकते हैं। उसी पत्र-व्यवहारके सिलसिलेमें आज मैं, जितने अराजनैतिक साथी मेरे ध्यानमें आते हैं, उनकी पूरी सूची भेज रहा हूँ। मैंने सूचीमें उल्लिखित व्यक्तियोंका संक्षिप्त वर्णन भी कर दिया है। परन्तु मैंने उसे सिर्फ उन व्यक्तियोंतक सीमित रखा है जिनसे मैं निकट भविष्यमें मिलनेकी इच्छा कर सकता हूँ। वे राजनीतिसे किसी भी तरह तनिक भी सम्बन्धित नहीं हैं। इसलिए मेरा सुझाव है कि जब मैं ऐसे व्यक्तिसे मिलना चाहूँ जिसका नाम सूचीमें नहीं है, तब वह निर्धारित मर्यादाके अनुसार मुझसे मिल सकता है या नहीं, इसका निर्णय सुपरिंटेंडेंटपर छोड़ दिया जाये। कारण, मैं देखता हूँ कि यदि सूचीमें दर्ज न किए गए हर व्यक्तिका नाम सरकारको भेजना जरूरी माना जाये तो उत्तर-प्राप्तिमें विलम्बके कारण मेरी प्रार्थनाका उद्देश्य ही विफल हो सकता है।[४]

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

[संलग्न]

अराजनैतिक साथियोंकी विवरणात्मक सूची

१. इन्दिरा नेहरू	पण्डित जवाहरलाल नेहरूकी बेटी, आयु चौदह वर्ष; पूनामें श्री वकीलके स्कूलमें पढ़ रही है।
२. जहाँगीर वकील और उनकी पत्नी	शिक्षाविद्; पूनामें एक आदर्श विद्यालय चला रहे हैं। इन्दिरा नेहरू इसी विद्यालयमें पढ़ रही है।

१. बम्बई-प्रान्तकी जेलोंके महानिरीक्षक।

२. देखिए "पत्र : आर० वी० मार्टिनको", १३-४-१९३२।

३. देखिए "पत्र एम० जी० भण्डारीको", ६-३-१९३२।

४. अपने २३ अप्रैलके पत्रमें डॉयलने जवाब दिया था : "आप अपने जिन अराजनैतिक साथियोंसे मिलनेकी इच्छा कर सकते हैं, उनकी दूसरी सूची भी मैंने सरकारके पास भेज दी है। और उससे आपके इस सुझावपर निर्णय करनेको भी कहा है कि जो व्यक्ति सूचीमें नहीं हैं, वे आपसे मिल सकते हैं या नहीं, इसका निर्णय सुपरिंटेंडेंटको करने दिया जाये। सरकारसे आदेश प्राप्त होते ही मैं आपको सूचित करूँगा।"

३. हेमप्रभा देवी	सतीशचन्द्र दासगुप्तकी पत्नी; सौदपुर (बंगाल) में खादी-कार्यमें पूरी तरह संलग्न।
४. रैहाना तैयबजी	श्री अब्बास तैयबजी की बेटी, जन्म-रोगी।
५. हीरालाल शाह	बम्बईमें रहनेवाले एक व्यापारी; इनकी गणित-ज्योतिषमें रुचि है।
६. दामोदरदास कानजी	बम्बई-वासी एक सज्जन; आश्रमके साथ इनका गहरा सम्पर्क है।
७. करमचन्द चुनीलाल	बम्बईके एक दलाल।
८. हीरावन्ती मनसुखलाल	समाज-सेविका; मनसुखलाल चुनीलालकी पत्नी।
९. नरगिस कैप्टन	भारतीय डाक-विभागके स्वर्गीय श्री कैप्टनकी सदा बीमार पत्नी।
१०. रमाबहन	गुजरात विद्यापीठकी छात्रा; अहमदाबादके सेठ रणछोड़लाल अमृतलालकी बेटी।
११. प्रभाशंकर पारेख	अपना धन्धा करनेवाले राजकोटके एक सज्जन। आश्रममें रहनेवाली एक बालिकाके पिता।
१२. बहराम खम्भाता और तहमीना खम्भाता	बम्बईके एक अस्थि-विज्ञानी और उनकी पत्नी।
१३. मंजुकेशा मशरूवाला	एक आश्रमवासीकी भतीजी; एक खैराती दवा-खाना चला रही है।
१४. सुशीला कुमारी	दिल्लीके मैडिकल कॉलेजकी छात्रा; आश्रमके श्री प्यारेलालकी बहन।
१५. सुशीला कुमारी	राजकोटके बालिका विद्यालयकी शिक्षिका।
१६. दिनकर मेहता	विद्यापीठका एक बीमार छात्र; इसका इलाज आजकल डॉ० मुथु कर रहे हैं।
१७. पुरातन बुच	विद्यापीठका एक बीमार छात्र।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल संख्या ८०० (४०), भाग–१, पृष्ठ १८७।

४०३. पत्र : प्रेमलीला ठाकरसीको

२१ अप्रैल, १९३२

प्रिय बहन,

कल रुई और शहद मिल गये। आभार मानूँ? पर यह रुई तो मिलकी पिंजी जान पड़ती है। आप जानती तो होंगी कि यह काम नहीं आयेगी। पिछले बरसकी याद दिलाऊँ? तब मैंने आशा तो यह की थी कि आप अच्छी हाथकी ओटी हुई रुईका संग्रह करेंगी और उसे आप अपने यहाँ पिंजवायेंगी और वही कातनेको देंगी। मैंने तो ऐसी ही रुईमें हिस्सा बँटानेकी इच्छा की थी। अगर आप ऐसा न करा सकी हों, तो खादीकी दुकानसे मैं ऐसी रुई मँगा लूँगा। लगता है, यहाँके दफ्तरवाले यह समझाकर नहीं बता सके। ऐसी रुई मिल सके तो तुरन्त भिजवाइए।

आश्रमके लोगोंके सिवा मैं जिन-जिनसे मिलना चाहता हूँ, उनके नाम मुझे देने थे। उनमें से कुछ नाम मैं दे चुका हूँ। उनमें आपका नाम भी दिया था। सरकारकी ओरसे उत्तर आ गया है कि आप मिलने आ सकती हैं। इसलिए जब इच्छा हो तब किसी आश्रमवासीके साथ, जो आ रहा हो, या अपने-आप भी आ सकती हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८२२)से; सौजन्य : प्रेमलीला ठाकरसी।

४०४. पत्र : नारणदास गांधीको

२१/२२ अप्रैल, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक यहाँ नियमसे बुधवारकी शामको मिल जाती है। कल भी इसी तरह मिली। कह सकते हैं, कताईका नतीजा बहुत अच्छा निकला। तुम्हारे तारोंके बारेमें तो मैंने यहीं बैठे-बैठे अनुमान लगा लिया था। किन्तु दूसरोंने भी खूब काता। इसका हमारी पूरी कताईपर असर पड़े तो बहुत अच्छा है।

मेरी बाईं कोहनीमें दाहिने हाथके अँगूठे-जैसा दर्द होता है। और पिछले कुछ दिनोंसे डॉक्टर कातना छोड़कर उसे कुछ समय पूरा आराम देनेको कह रहा है। इसके बारेमें तुम्हें मैंने पिछली बार लिखा था। यह लिखाते समय इतना ही कहता हूँ कि अभी प्रयोग चल रहा है। दाहिने हाथसे सूत ठीक निकाल पाता हूँ। इसलिए अभी यह तो नहीं कह सकता कि कोहनीका दर्द बिलकुल निकल जायेगा या नहीं, किन्तु चिन्ताका कोई कारण नहीं है। हर मंगलवारको जब डाक बन्द करके भेजूंगा, तुम्हें निश्चित समाचार दिया करूँगा। पत्र लिखवानेका प्रारम्भ तो गुरुवारको किया है।

मथुरादास आ गया, यह ठीक हुआ। तिलकम कालीकट जाये तो अच्छा। किन्तु वहाँ इसकी ठीक सार-सँभाल करनेवाला कोई न हो तो हम इसे अपनी जिम्मेदारी पर वहाँ न भेजें। अमतुल्के बारेमें उसे पत्र लिख रहा हूँ; सो पढ़ लेना।[1] दार्जिलिंगसे मेरे पास पत्र[2] आया था। उन्हें जो लिखा था सो तुम्हें सूचित कर चुका हूँ। तुम जब आनेका निश्चय करो, आ जाना। जिन बहनोंसे अभी कोई मिलकर नहीं गया, उनसे तुम्हारी भेंट हो सकेगी।

काकाके बारेमें यहाँसे जितना किया जा सकता है, कर रहा हूँ।

सोनीरामजी के पैसेका जो उपयोग करना योग्य लगे, करना। जब कभी 'गीता' मुफ्त देना जरूरी लगे, इस पैसेका अवश्य ही उसके लिए उपयोग किया जाना चाहिए।

तुम्हारे यहाँ जो चोर घुसा था, उसे सब-कुछ मालूम रहा होगा। यह लिखने का लोभ होता है कि जमनाको यही सबक जरूरी था। किसी भी घरमें एक पैसा तक नहीं होना चाहिए। जो-कुछ हो वह आश्रमकी तिजोरीमें रहना चाहिए। और वहाँ भी रखे बिना काम न चले तभी रखा जाये। किताबें, चरखा और थोड़े-से औजारोंके सिवा हमारे कमरोंमें और कोई असबाब होना ही नहीं चाहिए। कपड़े भी रोज पहनने-भरके रखें। धनी जिस तरह अपने सामानकी सूची बनाता है और जितने ज्यादा पन्ने भरते हैं उतना खुश होता है, उसी तरह हमारे पास सूचीके लिए जितना कम होता चला जाये, हम उतने खुश होते चले जायें।

हमारा आदर्श तो यह है कि लिख रखने लायक कुछ हो ही नहीं। यों तो हम जबतक संग्रह करेंगें तबतक चोर भाई अपना हिस्सा लिए बिना रह ही नहीं सकते। हम स्वेच्छासे नहीं देते, इसलिए वे जोर-जबर्दस्तीसे ले जाते हैं।

मैं कुसुमको जो पत्र लिखूँगा, तुम तो उसे देखोगे ही। कुसुम बीमारोंकी परिचर्या करना सीखे, यह अच्छा तो है ही। श्रीमती लाजरस[3] उसे अच्छी तरह रखेंगी, मैं यह भी मानता हूँ। किन्तु, फिलहाल यह काम कुसुमके वशके बाहरका लगता है। यह जब अपने शरीरको नहीं सँभाल सकती तो दूसरोंकी परिचर्या क्या करेगी। बीमारकी परिचर्यामें शरीरको कम नहीं खटना पड़ता। कई बार रात-दिन काम करना पड़ता है। चलने-फिरनेका तो पार नहीं होता। बीमार सामान्यतया सहनशील नहीं होता। चिड़चिड़ा और अधीर होता है। इसलिए जो गम्भीरताके साथ इस सेवाके कार्यको अपनाता है, उसे अपना शरीर और मन मजबूत बनाना ही चाहिए। यह सब उसके लिए है जो शुद्ध सेविका बनना चाहती है। जिसे बीमारके प्रति कोई सहानुभूति नहीं और जो बेगार टालना चाहती है, ऐसी नर्सको तो दूरसे ही नमस्कार। नर्सका काम, सच कहें तो डॉक्टरके कामसे भी अधिक जोखिमका है। कुशल डॉक्टरोंका तो यह कहना है कि यशके पात्र वे नहीं, नर्सें होती हैं। यह सब समझ लेनेपर और कुसुमका शरीर पूरी तरह समर्थ हो जाये, तो मैं उसे पूरा-पूरा प्रोत्साहन दूँगा।

१. देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", २२-४-१९३२।

२. महावीर गिरिका। देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", १८-४-१९३२।

३. वाडीलाल साराभाई अस्पताल, अहमदाबादकी प्रधान परिचारिका।

मेरा यह विचार तो है ही कि हर नर्सको ब्रह्मचारिणी होना चाहिए। संसारकी अच्छी-से-अच्छी नर्सें कैथोलिक सम्प्रदायमें देखी जाती हैं। अधिक-से-अधिक संख्या भी इसी सम्प्रदायसे प्राप्त होती है और इन सबका ब्रह्मचारिणी होना जरूरी होता है। इस सम्प्रदायकी यह और इसके सिवा दूसरी ध्यान खींचनेवाली विशेषता यह है कि इस सम्प्रदायमें प्राथमिक कक्षासे लगाकर ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देनेवाले सारे शिक्षक ब्रह्मचारी ही होते हैं। इन्हें मात कर सकनेवाले बहुत ही थोड़े शिक्षक देखनेमें आते हैं।

२२ अप्रैल, १९३२

धीरूने मगनचक्र लेकर आने या भिजवानेकी बात लिखी थी। मैं लिख चुका था कि साथ लेकर आये या भिजवाये। अभीतक नहीं आया, यह क्यों? हाथका कष्ट बना हुआ है, इसलिए यह चरखा ज्यादा याद आता है। पद्माके पत्रमें भी इसपर कातनेका आग्रह है, इसलिए धीरूको लिखा और पहले जितना उत्सुक था, उससे अब अधिक उत्सुक हूँ। चरखा तैयार हो तो किसी आते-जातेके साथ भेज देना। बम्बईतक पहुँच जाये तो कोई और आनेवाला न हो तो भी डाह्याभाई ले आयेगा क्योंकि यह हर शनिवारको आता ही है। रूई भेजनेके लिए तो तुम्हें लिखा ही है।

कुसुमके बारेमें वीणाबहनको पत्र लिखा है, वह देख लेना। इसलिए अब कुछ अधिक कहनेको नहीं बचता। मणिबहन बेलगाँवसे १४ मईको छूटेगी। उसका पत्र आया है; उसमें लिखा है कि केशुने उसके लिए एक चरखा बना देनेकी जिम्मेदारी ली थी। वह तैयार हो गया हो तो डाह्याभाईके पास बम्बई भेज दिया जाये। और न हुआ हो तो तैयार करके बादमें भिजवाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२२१ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४०५. पत्र : ई० ई० डॉयलको

२२ अप्रैल, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

यदि आप मेजर मार्टिनकी छोड़ी हुई फाइल उलटायें तो आप देखेंगे कि मैं जिस मामलेका उल्लेख कर रहा हूँ, वह कई दिनोंसे टलता चला आ रहा है। शायद काका कालेलकरको आप उतना ही अच्छी तरहसे जानते हैं जितना कि मैं। वे इस समय बेलगाँव केन्द्रीय जेलमें हैं। वे वीसापुरसे बेलगाँव भेज दिए गए थे। मैं उनके तथा तीन अन्य साथियोंके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें बिलकुल सही खबर पानेकी कोशिश करता रहा हूँ, लेकिन काफी देरके बाद थोड़ी-सी अस्पष्ट जानकारी पानेके अलावा मुझे कुछ भी सफलता नहीं मिल सकी है। मेजर मार्टिनने जानेसे कुछ ही

पहले जो उत्तर मुझे दिया था, उसमें बताया था कि मैं जो सूचना चाहता हूँ, वे उसके बारेमें पता लगा रहे हैं। मेजर भण्डारी-द्वारा प्राप्त पहलेकी सूचना से पता चलता है कि काकासाहब कमजोर हैं। शायद उनका वजन घट गया है और उन्हें गायका दूध नहीं मिलता; उन्हें यहाँ गायका दूध मिला करता था। इसलिए यदि मेरे सुझावके विपरीत कोई राजनैतिक कारण न हो तो मैं उनका तबादला यरवदा कर देनेका सुझाव देता हूँ, और यदि वे मेरे साथ रखे जा सकें, तो मैं आशा करता हूँ कि मैं उनका वजन ११६ पौंडतक पहुँचा दूँगा। १९३० में यहाँ उनका यही वजन था।

मेजर मार्टिनको लिखे मेरे १३ अप्रैलके पत्रमें जिन तीन अन्य कैदियोंका उल्लेख है, उनमें से नरहरि परीखको नाककी तकलीफ है, जिसके कारण उन्हें अक्सर बहुत कष्ट हो जाता है। उनकी पत्नी श्रीमती परीख लिखती है कि यद्यपि उन्होंने जवाबी पोस्टकार्ड भेजे हैं, फिर भी बेलगाँव-जेलसे पत्रकी प्राप्ति-स्वीकृति भी नहीं मिल पाती है। उन्हें अपने पतिका कोई पत्र नहीं मिला। वे चिन्तित हैं, यह स्वाभाविक है। मैंने खुद भी काकासाहबको लिखा और उनके बारेमें पूछनेके साथ-साथ अन्य तीनोंके बारेमें भी पूछा, क्योंकि वे सब आश्रमके निवासी हैं। लेकिन मुझे न तो काका-साहबका जवाब मिला है न उनका। यदि हो सके तो मैं उनके निजी पत्र चाहूँगा। मैं ऐसा मानता हूँ कि मुझे साथी कैदियोंके साथ पत्र-व्यवहार करनेकी अनुमति दिये जानेका उद्देश्य यही था कि मुझे वह मानव-सुलभ सन्तोष दिया जाये जिसकी मुझे जरूरत है और जो मुझे साथियोंकी कुशल-क्षेमकी सूचना पाकर मिल सकता है।

मैं जानता हूँ कि आप अभी-अभी आये हैं और बहुत ही व्यस्त होंगे। यदि इन मामलोंको, जिनकी ओर मैंने आपका ध्यान दिलाया है, जल्दी जाननेकी सख्त जरूरत न होती तो आपके आते ही मैं शायद आपको परेशान न करता।[१]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

१. डॉयलके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट–६।

४०६. पत्र : मीराबहनको

[२२ अप्रैल, १९३२][1]

चि० मीरा,

तुम्हारे पत्रकी राह देख रहा था; अभी मिला। तुम्हारी तरह मैं पत्र देनेमें देर क्यों करूँ?

मुझे बहुत खुशी है कि कमलादेवी[2] तुम्हारे साथ हैं और वे सुबहकी प्रार्थनामें तुम्हारे साथ शरीक होती हैं और शामको भजन गाती हैं। उनके जोरसे रस्सी कूदनेकी बातसे मुझे उन दिनोंकी याद आ जाती है जब मैं इसी तरह कूदा करता था। मैंने लड़कोंको भी सिखा दिया था। रामदास सबसे बढ़िया कूदता था। यह व्यायाम सचमुच बढ़िया है, खास तौरपर जाड़ेके दिनोंमें।

अच्छा है कि तुम्हारा बिना नमकके भोजनका प्रयोग जारी है और वह तुम्हें अनुकूल आ रहा है।

यहाँ एक नये डॉक्टर आये हैं। वे पारसी मेजर हैं। उन्हें अपने कामसे प्रेम है और उनमें वैसी ही सहज गौरवपूर्ण शिष्टता है जो किसी सभ्य पारसीमें प्रायः पाई ही जाती है। वे मेरे दाहिने अँगूठे और बाईं कोहनीपर बिजलीकी सेंक करते हैं। कोहनीमें कुछ समयसे दर्द रहने लगा है। लेकिन यह उसी वक्त होता है जब मैं एक खास ढंगसे काम करता हूँ। उनका खयाल है कि कुछ रोज कातना बन्द करनेकी आवश्यकता हो सकती है। राष्ट्रीय सप्ताहके दिनोंमें मैंने दुगना काम किया है, पर इस वक्त कताईका यह हाल है कि रोज लगभग ८५ तार कात पाता हूँ। डॉक्टर मेहताके कुछ कहनेसे पहले ही मैंने बायें हाथसे चरखा चलाना शुरू कर दिया है। आज चौथा दिन है। मैंने बहुत अच्छी प्रगति की है। दाहिने हाथसे ज्यादा जमकर सूत निकाल पाता हूँ और तार पहलेसे बारीक और समान होता है।

बायें हाथसे इस तरह अभ्यास करनेपर मुझे फिर विचार आता है कि हम लोगोंको दायें हाथके बराबर ही बायें हाथसे काम लेनेकी कोशिश करनेकी जरूरत है। और हमें बच्चोंको[3] अभीसे दोनों हाथोंसे काम करना सिखाना चाहिए। इस बारेमें नारणदासको मैं पहले ही लिख चुका हूँ।

१. "जेल सुपरिंटेंडेंटने पत्रपर इसी दिन हस्ताक्षर किए थे" —मीराबहन।

२. मीराबहन लिखती हैं: "कमलादेवीको सजा 'बी' श्रेणीके कैदीकी हुई थी और वे रखी गई थीं 'बी' श्रेणीकी अन्य कैदी बहनोंकी तरह दीवानी जेलमें 'सी' श्रेणीवाली बहनोंके साथ। वे और मैं बाकी कैदियोंकी तरक्कीमें बहुत अधिक दिलचस्पी लेने लगीं। नतीजा यह हुआ कि हम दोनों बड़े आर्थर रोड वाले जेलमें स्त्रियोंके स्थायी वार्डमें भेज दी गईं। वहाँ हमें तीन छोटी-छोटी बैरकोंमें से एकमें रख दिया गया, जिनका एक ही बरामदा था। अन्य बैरकोंमें अपराधी स्त्रियाँ रहती थीं।"

३. "आश्रमके बच्चे" —मीराबहन।

मेरे खयालसे दो दिनके उपवासके कारण मैंने दो पौंड वजन खोया है। अगर वजन बराबर न घटे, तो इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। अगर घटेगा, तो मैं जरा भी संकोच किए बिना फिर दूध लेने लगूँगा। मैंने सिर्फ जानकारी देनेके विचारसे तुम्हें इतना लिखा है। वजनके इस प्रकार घट जानेकी बातपर तुम परेशान न होती रहना।

धीरे ही सही, पर आश्रमके इतिहासका काम चल रहा है। बकाया पड़े हुए पत्र-व्यवहारको निपटानेके लिए मैंने पिछले तीन दिनसे इतिहासका काम स्थगित कर दिया है। जल्दी ही फिर शुरू करूँगा।

आकाशका अध्ययन चलता रहेगा। अब मुझे उसके सम्बन्धमें कुछ पुस्तकें भी मिल गई हैं। इस अध्ययनसे अनन्तके साथ मैं अधिक एकराग हो जाता हूँ।

मुझे कातनेके लिए पींजनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। महादेवने पहले ही पींजना शुरू कर दिया है। वह हमेशा अपनी जरूरतसे ज्यादा पींजता है। और ऐसा वह मेरे लिए करता है। पूनियाँ इतने नियमित रूपसे मिलती रहती हैं कि यह नहीं लगता कि यह भण्डार कभी खाली होगा।

स्वास्थ्य बिगड़नेके लिए काफी हदतक राधा खुद जिम्मेदार है। वह बहुत कुढ़ती है और सफाईमें जरूरतसे ज्यादा समय लगाती है। और डॉक्टर जिस तरह पूरा आराम करनेको कहते हैं, उस तरह आराम नहीं करती। अब मैं अल्मोड़ा जानेके लिए ज्यादा जोर नहीं देना चाहता। हमें रहन-सहनकी कला गरीबोंसे सीखनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि उस आदर्शकी ओर बढ़नेमें सबसे बड़ी रुकावट मैं हूँ। तुमको और मेरे बादमें बच रहनेवाले दूसरे लोगोंको उन बहुत-सी चीजोंको फिरसे जमाना पड़ेगा जो मेरे साथ सम्बन्ध होनेके कारण छोड़ दी गई हैं या छोड़ दी जायेंगी, पर दरअसल जिन्हें छोड़ना नहीं चाहिए था।

हम सबकी तबीयत अच्छी है। हाँ, वल्लभभाईकी नाक और कब्ज अब भी उन्हें पहलेकी तरह परेशान करते हैं। इन दिनों डॉक्टर मेहता इन दोनों बीमारियोंका इलाज कर रहे हैं, और थोड़े ही अरसेमें कुछ आराम पहुँचा देनेकी आशा रखते हैं।

मैं रुकावटोंके बीच यह पत्र लिख रहा था तभी हमने आये हुए अखबारोंसे यह जाना कि कमलादेवीका तबादला बेलगाँव कर दिया गया है। कैदीकी कोई पसन्द नहीं होती। वह अपने शरीरका आप मालिक नहीं होता।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१८) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६८४ से भी।

४०७. पत्र : अमतुस्सलामको

२२ अप्रैल, १९३२

बेटी अमतुल,[१]

मेरे पास समय होता तो मैं तुझे उर्दूमें लिखता। तू क्यों नहीं लिखती? सिर्फ लिखावट साफ होनी चाहिए। मेरे लिए वह अच्छी मश्क रहेगी। मैंने तेरा नाम[१] ठीक तो लिखा है न?

मुझे डॉ० शर्माकी किताबें अबतक नहीं मिलीं। जब मिलेंगी, तब पढ़ूँगा और उनके बारेमें सब कुछ बताऊँगा।

तेरे बारेमें मैं नारणदाससे लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ[२]। बेशक, तू जब चाहे आश्रम जा सकती है। मुझे ऐसा लगता है कि जहाँ तेरी तबीयत ठीक रहे, तुझे वहीं रहना चाहिए। सेवाके मौके सब जगह मिलते हैं। उचित अवसरपर एक स्नेहपूर्ण बात कह देना भी पर्याप्त सेवा है। किसी सहृदयतासे भरे विचारपर अमल करना भी बड़ी सेवा है। शरीरसे की जाये, सेवा वही है, दूसरी नहीं, ऐसा मानना तो बुत-परस्ती है।

अपना दैनिक कार्यक्रम लिखना। डायरी रखती हो?

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २४९) से।

४०८. एक पत्र

२२ अप्रैल, १९३२

प्रिय,

मुझे लगता है कि तुमने आश्रमके लोगोंको परखनेमें भूल की है। किसी भी दूसरे व्यक्तिके हृदयमें प्रेम है या नहीं, यह कह सकना बहुत कठिन है। मानव हृदयमें अच्छाई-बुराईका जो संघर्ष निरन्तर चलता रहता है, उसके बारेमें हमें क्या मालूम? हम दूसरोंके दोष गिननेके लिए सदा तैयार रहते हैं, पर उन्होंने अपने किन दोषों पर विजय पाई है, यह हम नहीं जान पाते। मेरे कहनेका यह अर्थ नहीं है कि आश्रममें रहनेवाले हम सब लोग पूर्ण हैं। पूर्णतासे तो हम बहुत दूर हैं। किन्तु मैं यह जरूर कहना चाहता हूँ कि आश्रमका एक सदस्य दूसरेको परखनेका अधिकारी नहीं है।

१. गांधीजी ने नाम उर्दूमें लिखा है।

२. देखिए पृष्ठ २४३ और २८९।

उससे तो प्रेमका अभाव प्रकट होता है। मैंने यह भी देखा है कि जो अपने कर्त्तव्य-पालनमें बहुत पक्के हैं, वे अक्सर दूसरोंकी आलोचना करते हैं, खासकर जब उन्हें ऐसा लगे कि वे लोग उनके समान कर्त्तव्यपरायण नहीं हैं। यह बहुत बड़ी भूल है और दूसरोंकी प्रगतिमें बाधा डालती है। हम अपना ध्यान रखें। दूसरे अपना ध्यान नहीं रखते तो उन्हें देखनेवाला ईश्वर है।

मेरे लिखनेका यह अर्थ भी नहीं कि तुम यन्त्रवत् अपनी आँखें और कान बन्द कर लो और जो-कुछ तुम्हारे सामने हो रहा हो, उसे न देखो, न सुनो। मैंने जो सुझाव दिया है, वह यन्त्रवत् व्यवहार करनेका कदापि नहीं कहा जा सकता। यह तो एक मनःस्थिति है जो अभ्याससे प्राप्त होती है। इस बीच जहाँ-कहीं तुम्हें स्नेहका अभाव खटके, जिस किसीमें यह दोष दिखाई दे, तुम, जहाँतक बन पड़े, स्नेहपूर्ण ढंगसे उसका ध्यान इस ओर खींचो। यदि तुममें ऐसा करनेके लिए पर्याप्त कोमलता न हो तो कम-से-कम नारणदासको बता दिया करो। फिर वह जो चाहे करे।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९०४८)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४०९. एक पत्र

२२ अप्रैल, १९३२

चि०,

हम आश्रममें आवारा कुत्तोंको नहीं रखते। रखें तो आश्रम उनसे भर जाये और कुत्तोंके पालनमें लग जायें तो मनुष्योंको भूल बैठें। भोजनके पहले जो मन्त्र हम कहते हैं, वह ईश्वरसे एक प्रार्थना है। हमें हर समय ईश्वरका अनुग्रह मानना चाहिए। जहाँतक बने, हमें चीन, जापानका माल भी काममें नहीं लेना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०५२)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४१०. पत्र : महेन्द्र वा० देसाईको

२२ अप्रैल, १९३२

चि० मनु,

इस बार तूने अक्षर थोड़े ठीक किये हैं; फिर भी अभी बहुत सुधार करने हैं। किसीकी मदद लेकर सुधारना। अगर नानु पत्र पढ़नेके लिए नहीं देता तो उससे छीनना नहीं चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२७) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

४११. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२२ अप्रैल, १९३२

चि० प्रेमा,

धुरन्धरके बारेमें मैं लिख चुका हूँ।[1] उसने अन्न-त्याग नहीं किया है।

मुझे लगता है कि तुम्हें आनन्दी[2] को जबरदस्ती अपने साथ घूमने नहीं ले जाना चाहिए। उसमें उत्साह न हो तो वह यह नहीं कर पायेगी। उसे प्राणायाम सिखा दें और थोड़ी 'पैसिव एक्सरसाइज' करायें तो अभी काफी होगा। पै० ए० तू जानती है?

धर्म-परिवर्तनके बारेमें मैं यह नहीं कहना चाहता कि यह कभी उचित हो ही नहीं सकता। हमें दूसरेको अपना धर्म बदलनेके लिए निमन्त्रण नहीं देना चाहिए। मेरा धर्म सच्चा है और दूसरे सब धर्म झूठे हैं, इस तरहकी जो मान्यता इन निमन्त्रणोंके पीछे रहती है, उसे मैं दोषपूर्ण मानता हूँ। लेकिन जहाँ जबर्दस्तीसे या गलतफहमीसे किसीने अपना धर्म छोड़ दिया हो, वहाँ उस मनुष्यको अपनी गलती सुधारनेमें यानी अपने असली धर्ममें जानेमें बाधा नहीं होनी चाहिए। इतना ही नहीं, उसे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इसे धर्म-परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। मुझे अपना धर्म झूठा लगे तो मुझे उसका त्याग करना चाहिए। दूसरे धर्ममें जो-कुछ अच्छा लगे, उसे मैं अपने धर्ममें ले सकता हूँ — लेना चाहिए। मेरा धर्म अपूर्ण लगे तो उसे पूर्ण बनाना मेरा फर्ज है। उसमें दोष दिखाई दें तो उन्हें दूर करना भी फर्ज है।

१. देखिए "पत्र : प्रेमाबहन कंटकको", १८-४-१९३२।

२. श्री लक्ष्मीदास आसरकी पुत्री।

मीराबहनको मैं ईसाई मानता हूँ। अब तो वह भी अपनेको ईसाई मानती है। ईसाई होनेपर भी 'गीता' को वह आदरसे पढ़े, इसमें मुझे विरोध नहीं दीखता। हमारी प्रार्थना दूसरे धर्मके लोग भी आदरसे गाते हैं।

स्वराज्य मिलनेपर क्या करूँगा, यह मैं सचमुच ही नहीं जानता। उस समय भी ईश्वर मुझे रास्ता दिखायेगा, जैसे आज दिखाता है। श्रद्धालु पहलेसे ही व्यवस्था नहीं करते। पहलेसे व्यवस्था करे, वह श्रद्धा नहीं है, अथवा है तो कमजोर श्रद्धा है।

ज्ञान, उपासना और कर्म — ईश्वर-प्राप्तिके तीन अलग मार्ग नहीं हैं, बल्कि ये तीनों मिलकर एक मार्ग हैं। उसके तीन भाग सुविधाके लिए कर दिये गये हैं। पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजनका बना है; लेकिन पानी न तो हाइड्रोजन है और न ऑक्सीजन। वैसे ही न तो ज्ञान अकेला प्राप्ति-मार्ग है और न अकेली भक्ति। लगभग ऐसा कहा जा सकता है कि प्राप्ति-मार्ग तीनोंका मिला हुआ रासायनिक प्रयोग है। इस उपमामें दोष है, फिर भी मैं जो कहना चाहता हूँ, उसे समझानेके लिए यह काफी है।

द्रौपदीकी लाज रखी, यह पानीकी शराब बनाने-जैसा चमत्कार नहीं है।[1] संकटके समय ईश्वर अपने भक्तोंकी मदद करता है, यह विश्वास उपयोगी है; ऐसे उदाहरण संग्रह करने योग्य हैं। लेकिन अगर कोई ऐसी सहायताकी शर्त लगाकर ईश्वरकी भक्ति करे तो वह निरर्थक है।

जबरदस्ती लोगोंके शरीर मजबूत बनानेकी पद्धति मुझे पसन्द नहीं है। इसमें जबरदस्तीकी जरूरत ही नहीं होती। शरीरको दुर्बल रखना किसीको कभी अच्छा नहीं लगता। यह शिक्षाका विषय है।

जरूरतें कम करनेका आदर्श लोगोंके सामने रखा जा सकता है। फिर उसके परिणामस्वरूप जो होना होगा, वह होगा। इसमें समझौता कहाँ आता है? समझौता करने न करनेकी जरूरत रहती ही नहीं है। जो गरीब भूखों मरते हैं उनकी जरूरतें बढ़नी ही चाहिए। लेकिन यह कोई नई बात नहीं है। आज भी यह कोशिश चल रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८२) से। सी० डब्ल्यू० ६७३० से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

१. बाइबिलमें एक प्रसंग ऐसा दिया गया है कि किसी भोजके समय लोगोंको पिलानेके लिए शराब नहीं थी। उस समय प्रभु ईसा मसीहने पानीकी शराब बना दी थी। **सेन्ट जॉन,** अध्याय २।

४१२. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

२२ अप्रैल, १९३२

चि० परसराम,

गुजराती तुमने किससे लिखवाई ? जिसने भी लिखी, अक्षर सुन्दर बनाये। भाषा तो तुम्हारी ही मान रहा हूँ।

गुरुभाई या दूसरे किसीसे भी मधुर स्पर्धा अवश्य ही की जा सकती है। इसका अर्थ यह कि जो कोई काम ज्यादा अच्छी तरह कर सके, उसे आदर्श मानकर आगे बढ़ते जायें। इसमें द्वेषका लेश भी नहीं होना चाहिए। इसीलिए मधुर विशेषणका उपयोग किया। इस स्पर्धामें हमने जिसे आदर्श माना हो, उसके विषयमें हमारी कामना यह होनी चाहिए कि वह अपने कौशलमें नित्य वृद्धि करे जिससे हमारा आदर्श और अधिक ऊँचा होता चला जाये। ऐसी कामनाका परिणाम हमारे अपने लिए भी अच्छा होता है, यानी हम भी आगे बढ़ते जाते हैं।

किसी एक भी क्षेत्रमें हम नीतिच्युत हो जायें तो उसका असर दूसरे सब क्षेत्रोंपर पड़े बिना नहीं रहता, यह मेरी दृढ़ मान्यता और अनुभव है। दुराचारी व्यक्तिसे राजनीतिके क्षेत्रको नुकसान नहीं पहुँचता, ऐसा मानना बिलकुल गलत है। अथवा कोई व्यापारमें अनीति बरतते हुए अपने व्यक्तिगत या कौटुम्बिक व्यवहारमें नीतिकी रक्षा कर सकता है, ऐसी जो धारणा है वह भी झूठ है। इसलिए जहाँ-जहाँ दोष हों वहाँ-वहाँ उसपर दवा लगानी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४३७) से; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा।

४१३. पत्र : रैहाना तैयबजीको

२२ अप्रैल, १९३२

प्रिय रैहाना,

तुम्हारा खत मिला है। अब्बाजान भले कुछ दिनोंके लिए आराम करें। मैं उम्मीद करता हूँ कि जिस कामके लिए उनको ठहरना होता है, वह कुछ ऐसा कड़ा नहीं है। अब्बाजानको हम सबके बहुत सलाम, वन्देमातरम्। उनको यह भी कहो, मैं हमेशा दुआ करता हूँ कि अब्बाजानको खुदा बहुत बरसों तक जिन्दा रखे और उनके हाथोंसे बहुत सेवा करवाये। अम्माजानको भी बहुत सलाम और वन्देमातरम्। मेरे हाथमें उर्दूकी एक किताब आ गई है; उसमें से लिखता हूँ।[1]

१. यहाँतकका अंश उर्दू लिपिमें है। किताबसे उद्धृत भाग यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

मैं उर्दू अक्षरोंकी बनावटके पीछे न पड़ूँ तो वह सुधर नहीं सकती। इतना समय कहाँसे निकले? फिर बायें हाथको अभ्यस्त बनाना है। इसलिए जितना हो पाता है, उसमें सन्तोष मान लेता हूँ। धीरे-धीरे जो हो जाये वही ठीक।

इस बार हमीदा और उसकी सहेलियोंके बारेमें कोई खबर नहीं दी। इसके बादके पत्रमें मिलनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४१) से।

४१४. पत्र : विद्या रा० पटेलको

२२ अप्रैल, १९३२

चि० विद्या,

रसोईघरमें जानेके पहले नहा लेनेकी टेव डालना ठीक है। खानेवालोंपर भी यह नियम लागू किया जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२५) से; सौजन्य : रवींद्र रावजीभाई पटेल।

४१५. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

२२ अप्रैल, १९३२

भाईश्री खम्भाता,

आपका पत्र मिला। आप दोनोंकी एन्ड्रयूजसे भेंट हो गई, यह अच्छा हुआ। आपसे भेंटकी अनुमति मिल सकी और तबतक तबीयत ठीक नहीं हुई तो आपको तकलीफ दूँगा। मालिशके बारेमें पुस्तकें मिलनेपर हम दोनों उन्हें देख जायेंगे। देखता हूँ, लाक्षादि तैल बहुत अच्छा तैल है।

आप सबको बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६००)से। सी० डब्ल्यू० ४३८६ से भी; सौजन्य : तहमीना खम्भाता।

४१६. पत्र : एक लड़कीको

[२२][1] अप्रैल, १९३२

चि०,

बापके राजमें लूट मची हो, तो वहाँ गरीब बेटा वंचित रह जाता है। माँका चरखा तो उसकी गरीब सन्तानके लिए ही चलता है।[2] जनेऊ या माला पवित्रताके अनुशीलनमें कुछ मदद कर सकते हैं। पर आजकल उनका बहुत उपयोग नहीं रहा है। गाय इसलिए माता मानी जाती है क्योंकि वह माँकी तरह दूध देती है। और फिर माता तो अपने बच्चेको भी एक सालतक दूध देती है; मगर गाय सबको देती है। इसलिए वह सबकी माँ है। माता बच्चोंसे बहुत सेवा लेती है। गायकी सेवा कौन करता है? इसलिए गाय तो बड़ी माँ है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ ११९। सी० डब्ल्यू० ९०५५ भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४१७. पत्र : मणिबहन पटेलको

२२ अप्रैल, १९३२

चि० मणि,

जैसे लोग मौसममें बरसातकी राह देखते रहते हैं, वैसे ही हम लोग वहाँके पत्रोंकी राह देख रहे थे। उनमें से एक-दो मिले। . . .[3] छूटनेके बाद यहाँ हो कर ही जानेका विचार रखना। सोमवार हो तो मंगलवारतक ठहरकर दोपहरको बारहसे या साढ़े ग्यारहसे एक बजेतक मिलनेका वक्त सबसे अच्छा है। उस समय आयेगी तो हम दो तो मिल ही सकेंगे। . . . हम तीनोंकी तबीयत अच्छी है। . . .

मैं देखता हूँ कि तूने अपने अक्षर सुधारनेका प्रयत्न अच्छी तरह किया है। यह बताता है कि प्रयत्नसे अक्षर अच्छे हो सकते हैं। और यह नियम सब बातोंपर लागू होता है।

'गीता' कंठस्थ करनेका अभिप्राय यह है कि वह अर्थके साथ आनी चाहिए और उच्चारण शुद्ध होना चाहिए। शिक्षिका कौन है? शायद यह जवाब तो तू मिलनेके

१. सी० डब्ल्यू० की प्रतिमें दी गई तारीखके अनुसार।

२. लड़कीके प्रश्न थे: बापके राजमें न समाये और माँके चरखेमें समा जाये, इसका अर्थ क्या है? जनेऊ किसलिए पहनते हैं? गाय माता क्यों कहलाई?

३. साधन-सूत्रके अनुसार, यह निशानी पत्रके जेल-अधिकारियों-द्वारा काटे हुए भागको सूचित करती है।

समय ही देगी; अथवा आखिरी खत लिखने दें तो पत्र भी लिख डालना। तन्दुरुस्ती अच्छी है या नहीं, यह प्रमाणपत्र तो हम लोग देखकर दें तब सही होगा। . . .

बाबा और यशोदा एक बार यहाँ आ गये। बाबा तो कुर्सीपर चढ़ बैठा था। और इतना ज्यादा मौजमें आ गया था कि अपने नये जूते भूल गया। उसके सौभाग्यसे या डाह्याभाईके सौभाग्यसे हममें से किसीने देख लिये और तुरन्त भेज दिये। यशोदाकी तबीयत बहुत अच्छी नहीं कह सकते। उसने कुछ वर्षोंसे अच्छा स्वास्थ्य रखा ही कहाँ है? डाह्याभाई हर सप्ताह आते हैं और हम दोनों उनसे मिल सकते हैं।

जीवतरामका[1] काम अभी चलता रहता है। देवदास गोरखपुर [जेलमें] है। उसका पत्र अभी आया है। वह अकेला है, मगर आराममें है। पठन अच्छी तरह कर रहा है। लक्ष्मीको बेचारी हरगिज नहीं कहा जा सकता। पापा (राजाजी की बड़ी लड़की)की देखभाल जरूर करती है। परन्तु पापा अच्छी हो गई कही जा सकती है। राजाजी मजेमें हैं। उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। उनके साथी भी काफी स्वस्थ हैं। इन्दु[2] मुझसे नहीं मिली। अब कहाँ है, यह पता नहीं। बहुत करके पूनामें ही है। कमला (नेहरू) प्रयागमें है। कमलापति [जवाहरलालजी]की प्लूरसी तो कुछ शान्त हुई मालूम होती है। परन्तु थोड़ा बुखार है।

चरखेके बारेमें अहमदाबाद लिखूँगा। परन्तु बढ़िया चरखा चाहिए तो यहाँसे भी दे सकूँगा। . . .

. . . बा को तो पहला पत्र मैंने आज ही लिखा है। परन्तु उसके पत्र मिलते रहते हैं। वह और दूसरी बहनें (यरवदा जेलमें) मजेमें हैं। मीठूबहन अपनी कक्षा चलाती है।

चश्मा टूट गया हो तो वहाँ भी बदलवाया जा सकता है। परन्तु अब निकलनेका समय नजदीक आ गया है। इसलिए इस सुझावमें बहुत सार नहीं है।

तेरा पत्र आज ही यहाँ आया और आज ही मिला है। और यह उत्तर भी आज ही लिखा जा रहा है। कल यहाँसे निकलेगा, ऐसी आशा रखता हूँ। वहाँ कब मिलेगा, यह हम सबके भाग्यपर आधारित है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–४ : मणिबहेन पटेलने, पृष्ठ ८१–३।

१. आचार्य जे० बी० कृपलानी।

२. जवाहरलाल नेहरूकी पुत्री इन्दिरा; उस समय पूनामें पढ़ती थी।

३. मणिबहन पटेल जेलसे १५ मई, १९३२ को छूटी थी।

४१८. एक पत्र

२३ अप्रैल, १९३२

चि०,

कृष्ण भगवानने अर्जुनको हिंसाके पथपर आरूढ़ कराया, ऐसा कहना ठीक नहीं है। अर्जुन अहिंसाके नामपर जो अनर्थ करने जा रहा था, उसे उससे रोका। हिंसा तो अर्जुन कर ही चुका था, क्योंकि वह सेना इकट्ठी कर चुका था। इस तरह अर्जुनके लिए दूसरा मार्ग बचा ही नहीं था। अर्जुनको हिंसासे भय नहीं था। वह तो स्वजनोंको नहीं मारना चाहता था। परजनोंसे युद्ध करनेमें उसे दोष नहीं दिखता था।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०५१)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४१९. एक पत्र

२३ अप्रैल, १९३२

चि०,

कह सकते हैं तूने [राष्ट्रीय] सप्ताहमें अच्छा काम किया।

उपवासमें पेटमें जो आवाज होती है, वह हवा है।

सबको स्वजन मान सकनेके लिए यह भावना पैदा करनी चाहिए कि हम सबका एक ही ईश्वर है।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०६०)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४२०. एक पत्र

२३ अप्रैल, १९३२

चि०

लड़कों और लड़कियोंके साथ खेलते समय कुछ मर्यादाएँ रखी जायें तो मैं इसमें कोई हर्ज नहीं देखता। कबड्डी साथ-साथ नहीं खेल सकते, ऐसा लगता है। इसमें एक-दूसरेका इतना अधिक स्पर्श होता है कि कोई विकारवश हो सकता है। हमें इस खतरेसे बचना चाहिए। हमें यह समझ लेना चाहिए कि जब बड़ी उम्रके लड़के और लड़कियाँ इस तरह मिलते हैं, तो उनके मनमें विकृति आती है। ऐसी बातको छुपा रखनेसे कोई लाभ नहीं।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०६१)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४२१. एक पत्र

२३ अप्रैल, १९३२

चि०,

बीमारकी सेवा तो करनी ही चाहिए। किन्तु उस कारणसे कातना बन्द नहीं किया जा सकता। बीमारकी सेवा बीमारके लिए ही है। कातना तो करोड़ोंके लिए है।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०६७)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४२२. एक पत्र

२३ अप्रैल, १९३२

चि०,

चोटी रखने, न रखनेका धर्मसे कोई बड़ा सम्बन्ध नहीं है। व्यक्तिका जीवन ईश्वरपर अवलम्बित है। जिस चीजके बिना काम न चले, वह विलायती भी हो तो काममें लाई जा सकती है।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०६८)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

४२३. पत्र: दूधाभाई दाफड़ाको

२३ अप्रैल, १९३२

भाई दूधाभाई[1],

तुम्हारी चिट्ठी मिली। सुन्दरभाईकी मददके लिए धन्यवाद। लगता है, तुमने काफी विद्यार्थियोंको आकर्षित कर लिया है। अब धनीबहनका[2] कष्ट ठीक हो गया होगा। लक्ष्मी[3] की खबर मिलती रहती है।

सरदार और महादेव मेरे साथ ही हैं।

दोनोंके यथायोग्य।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ७७५७ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. सन् १९१७ में गांधीजी-द्वारा आश्रममें भरती किये जानेवाले प्रथम हरिजन।

२. दूधाभाईकी पत्नी।

३. दूधाभाईकी पुत्री, जिसका पालन-पोषण गांधीजी की देख-रेखमें आश्रममें ही हुआ था।

४२४. पत्र : कुसुम देसाईको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तू आत्म-विश्वास रखेगी तो मेरे-जैसेकी आशा फलेगी।

गंगाबहन [वैद्य]की फंकी और गोलीके बारेमें आश्रमको लिखा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३५) से।

४२५. पत्र : मणिबहन न० परीखको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। नरहरिकी कोई भी चिन्ता मत करो। उसका पत्र पा सकनेकी आशा अभी रखे हूँ। उसकी खबर तो इस हफ्ते भी मिली है। उसे कोई परेशानी हो, ऐसा नहीं लगता। मैंने आज पत्र लिखा है; फिर भी बेलगाँव जानेकी इच्छा हो तो जा सकती हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९६७) से। सी० डब्ल्यू० ३२८४ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

४२६. पत्र : मंगला शं० पटेलको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० मंगला (लाड़ली),

तू दूसरे नम्बर आई, यह अच्छी बात है। हमारा शरीर तुच्छ है, तू यह समझ गई कि नहीं? यह बात समझमें आ गई हो, तो आगेकी बात समझना सरल है। तुच्छ शरीरमें भी ईश्वर रहता है, क्या यह बड़ी बात नहीं है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८५)से। सी० डब्ल्यू० ४९ से भी; सौजन्य : पुष्पाबहन ना० नायक।

४२७. पत्र : मोहन न० परीखको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० मोहन,

तेरे अक्षर सुन्दर दिखते हैं। तुझे भी ऐसा ही सुन्दर बनना चाहिए। महादेव आनन्दमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१७७) से।

४२८. पत्र : निर्मला ह० देसाईको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० निर्मला,

जहाँतक बने, विदेशकी चीजें नहीं लेनी चाहिए। लेकिन किसी देशकी चीज लें और किसीकी न लें तो इसमें हिंसा हो जाती हो, ऐसी कोई बात नहीं है। यह सारी बात प्रेमाबहनसे समझ लेना।

ताश खेलनेसे जिसे जुआ खेलने लगनेकी आशंका हो, उसे पत्ते कभी नहीं खेलने चाहिए। पत्ते खेलना कोई कर्त्तव्य तो है ही नहीं; न खेलना कर्त्तव्य बना दिया जाये, तो यह ज्यादा अच्छा कहलायेगा। जो बिना खेले रह सकते हैं, वे न खेलें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७१) से। सी० डब्ल्यू० ९०५६ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

४२९. पत्र : पुरातन बुचको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० पुरातन,

मेरा जो-कुछ विकास हुआ है, वह केवल सत्यकी आराधना से। दूसरा सब कुछ मुझे उसीमें से मिला है। फिलहाल जेलका विचार ही छोड़ दो। एक बार शरीर ठीक कर लेना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१६६) से।

४३०. पत्र : पद्माको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० पद्मा,

तुझे लम्बी चिट्ठी तो नहीं लिखूँगा, क्योंकि बायें हाथसे बहुत नहीं लिखते बनता। फिर भी जितना कहना है, सब कह पाऊँगा। मुझे तो लगता है, तुझे आश्रम जाना चाहिए। लेकिन बा की और सीतलासहायकी राय भी जान लेनी चाहिए। मगन चक्रपर कातनेके योग्य हो गया हूँ। सुझाव तूने ठीक उतारकर भेजे। तूने इतनी मेहनत क्यों की? लेकिन अब वह पत्र सँभालकर रखूँगा। यह याद रख कि सेवा केवल शरीरसे ही नहीं होती। तू सच्ची कुमारी और साथमें विदुषी बने तो सेवा कर सकेगी। जिनका शरीर चलता है, फिर भी जो काया बचाते हैं, वे नाहक पैदा हुए। और उनका ज्ञान भी निकम्मा है। तू इसे समझ जाये तो चिन्ता करना छोड़ दे और तेरा स्वास्थ्य भी जल्दी सुधर जाये। शान्तिलालको आशीर्वाद।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१३२) से। सी० डब्ल्यू० ३४८४ से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी।

४३१. पत्र : रामचन्द्र ना० खरेको

२३ अप्रैल, १९३२

चि० रामभाऊ,

तूने हिसाव ठीक लिखकर भेजा है।

एक ही व्यक्ति जिस तरह अलग-अलग घरोंमें जा बसता है, उसी तरह अलग अलग शरीरोंमें भी बसे तो इसमें अजीब कुछ नहीं है।

रामने इतना या कितना विलाप किया था[1], यह कौन जानता है? जो हम पढ़ते हैं, वह तो कविका वर्णन है। ज्ञानीको ऐसा विलाप शोभा नहीं देता, यह तो स्पष्ट ही है; इसलिए हम यह मानें कि हमारी कल्पनाके रामने ऐसा विलाप नहीं किया होगा।

खोया हुआ वजन पूरा कर लो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९१)से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

४३२. सन्देश : यज्ञोपवीत संस्कारके[2] अवसरपर

[२४ अप्रैल, १९३२से पूर्व][3]

मुझे आजकल यज्ञोपवीत संस्कारका कोई महत्त्व नहीं दिखाई देता। फिर भी कोई उसे आवश्यक माने तो यह संस्कार बालकके सयाने हो जानेपर ही किया जाना चाहिए। यज्ञोपवीत संस्कारका अर्थ है, एक नये जीवनमें प्रवेश। उसके बाद आत्मसंयम और सेवाका जीवन व्यतीत करनेका सतत प्रयत्न करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २५-४-१९३२।

१ सीता-हरणके समय।

२. गुजरात विद्यापीठके भूतपूर्व चित्रकला-शिक्षक श्री मझुलीकरके पुत्रका।

३. समाचारपर दी गई तारीख थी : "अहमदावाद, २४ अप्रैल"।

४३३. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको[1]

२४ अप्रैल, १९३२

चि०,

भारतमातामें धीरज, सहनशीलता, क्षमा, वीरता, अहिंसा, निर्भयता, वगैरह गुण होने चाहिए। उन्हें विकसित करनेके लिए तो आश्रम है ही।

हमें इस जन्मका भी सब कहाँ याद रहता है?[2] और रहे तो हम पागल हो जायें। किसी चीजको याद रखकर उसमें से जो लेना हो, वह ले लें। फिर उसे भूल जायें तो उसमें क्या हर्ज? उलटे लाभ ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९०५३) से; सौजन्य : नारणदास गांधी। **महादेवभाईनी डायरी**, भाग–१, पृष्ठ ११९ से भी।

४३४. पत्र : दूधीबहन वा० देसाईको

२४ अप्रैल, १९३२

चि० दूधीबहन,

समय हो तो पत्रोंका उत्तर उसी समय देनेमें कम श्रम है। जब हाथ काम नहीं देगा, तो लिखना अपने-आप छूट जायेगा। पति जिस पथको पकड़े, पत्नी भी उसपर चल सकती है, पर धर्म कई बार अलग ही रास्ता सुझाता है। सच्ची बात तो धीरज है। जो धर्म प्राप्त हो गया, उसका खुशी-खुशी पालन करना चाहिए — ऐसा करना सीखना चाहिए। स्त्री अपनेको निर्बल क्यों गिने? दोनों बराबर हैं और परस्पर मित्र-जैसे हैं। स्त्री अपंग बनकर पतिको भी अपंग बना देती है। इसलिए पतिके विचारसे भी उसके लिए वीरांगना बनना योग्य है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२८) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

१. नाम साधन-सूत्रमें नहीं दिया गया है। लेकिन नाम "पत्र : पुष्पा शं० पटेलको", पृष्ठ २६० से लिया गया है, जिसमें गांधीजी ने पुष्पा शं० पटेलकी नाटकमें भारतमाताकी भूमिकाका जिक्र किया है।

२. पुष्पा पटेलने यह सवाल भी पूछा था कि "हमें पिछले जन्मकी बातें याद क्यों नहीं रहती?"

४३५. पत्र : देवदास गांधीको

२४ अप्रैल, १९३२

चि० देवदास,

तूने अपना विचार खुद झूठा सिद्ध कर दिया। क्योंकि तेरी जो चिट्ठी अभी-अभी मिली है, वह अतिशय संक्षिप्त न सही, पर्याप्त बड़ी भी नहीं है। खैर।

तेरे पत्र तो नहीं आते थे, पर तेरी खबर मिलती रहती थी। तुझे वहाँ एकान्त मिल गया, यह अच्छा हुआ। तुझे इसकी आदत डालनी भी थी। तेरी तबीयत ठीक बनी है, इसलिए मैं निश्चिन्त हूँ।

मैं बेशक चाहता हूँ कि तू अपनी उर्दू खूब पक्की कर ले।

इस समय दो बजनेमें दस मिनट हैं। महादेव अपना काम पूरी तरह निबटा कर आ गया है और चूँकि मैं अभीतक बाँये हाथसे बहुत धीरे-धीरे ही लिख पाता हूँ इसलिए अब यह पत्र उसीसे पूरा करा रहा हूँ। उर्दूको पूरी तरह सीखनेको कहनेमें मेरा अभिप्राय यह है कि तू मौलाना शिबलीकी रचनाएँ पढ़ जाये। इन्होंने पैगम्बर साहबका जीवन-चरित्र और उनके साथियोंके जीवनकी घटनाएँ भी लिखी हैं। और भी बहुत-सा है; मैं मानता हूँ कि यह सब हमारे ध्यानमें रहना चाहिए। इसलिए उत्साह हो तो यह सब पढ़ लेना। तू ये किताबें आजमगढ़से मँगवा सकता है। इनका कार्यालय और मदरसा वहीं है। शायद तू उस यात्रामें मेरे साथ था और तूने यह सब देखा भी होगा। मौलाना शिबलीकी जगह आजकल मौलाना सुलेमान नदवी हैं। शिबलीसाहबका देहान्त हो गया है, सो तो तू जानता ही होगा।

लक्ष्मीके पत्र बराबर आते रहते हैं। यानी, मैं लिखता हूँ तो वह धर्म समझकर जवाब देती है। उसके पत्र तो बहुत ही छोटे होते हैं। पर बेचारी करे भी क्या? वह लिखती है कि कुछ सूझता नहीं है; इसलिए दो-चार वाक्योंसे काम चला लेती है। जितना लिखती है, सुन्दर होता है। और उसकी हिन्दी काफी अच्छी कही जा सकती है। लगता है, लड़की शान्त स्वभावकी है। लेकिन यह सब तुझे किसलिए लिखूँ? फिर भी मुझपर जो छाप पड़ी है, वह ऐसी है। जान पड़ता है, वह आश्रममें भी लोगोंको लिखती रहती है।

हम यहाँ आनन्दसे हैं। जेल-जैसा कुछ भी नहीं है। जो मनमें आये, खाते हैं; जहाँ जी होता है, घूमते हैं; जहाँ चाहते हैं, सोते हैं। यह सब न हो तो 'शाही कैदी' कैसे कहलायें? हर हफ्तेकी मुलाकातोंमें डाह्याभाई आता है। हम दोनों उससे मिल लेते हैं। महादेवको हमारा दर्जा प्राप्त नहीं है, इसलिए वह उससे नहीं मिल पाता। कभी-कभी आश्रमके लोग भी आते हैं; और हम दोनों उनसे भी मिलते हैं। एक बार दुर्गा और जीवनजी महादेवसे मिल गये। फिलहाल तो यह तय किया

है कि दुर्गा पैसा निरर्थक खर्च करके न आये। फिर भी वह इस निश्चयको बदलना चाहे तो बदल सकती है। यह संकल्प नहीं है।

हमारी दिनचर्या यों है : ३–४५ पर तीनों साथ उठ जाते हैं। साथ प्रार्थना करते हैं। फिर महादेव सो जाता है। हम दोनों शहद, पानी लेते हैं और घूमने चले जाते हैं। फिर मैं कोई चौथाई घंटा सोता हूँ। साढ़े छः बजे हम तीनों नाश्ता करते हैं। नाश्तेमें चाय-रोटी आदि होती है। मेरी चाय तो पीसे हुए बादामका पानी। वह मुझे पसन्द है। और अभीतक तो दूधकी जरूरत नहीं लगी। इसके साथ हमारा सह-भोजन समाप्त समझो। दूधवाले लगभग बारह बजे खाते हैं। मैं चार बजे खाता हूँ। बीचमें मैं खजूर और बादाम ले लेता हूँ। चार बजे मैं सब्जियाँ, रोटी और बादाम लेता हूँ। महादेव खूब पींजता और कातता है। समय बचा रहता है तो कुछ पढ़ता है। अभी तो उसे ऑक्सफोर्ड प्रेससे छप रही पुस्तक भी दुबारा देखनी पड़ती है। उसका दो-एक घंटा समय मैं लेता हूँ। हाथके दर्दके कारण मैं राष्ट्रीय सप्ताहसे चरखेका चक्र बायें हाथसे चला रहा हूँ और सूत दाहिने हाथसे खींचता हूँ। ठीक अभ्यास हो गया है; कोई अड़चन नहीं होती। पर गति तो धीमी हो ही गई है। पहले मैं ३७५ तार कात लेता था — उससे ज्यादा भी। अब तो कुछ ठीक नहीं है। दो-तीन घंटोंमें जितने तार हो जायें, उन्हींसे सन्तोष कर लेता हूँ। दाहिने हाथसे अभी तो अधिक-से-अधिक १८२ तार निकाले हैं। किन्तु धीरे-धीरे गति जरूर बढ़ेगी। पढ़नेकी बात यह है कि यहाँ उर्दू-पुस्तकें मिल गई हैं, इसलिए उन्हें पढ़ रहा हूँ; रस्किन भी पढ़ रहा हूँ। आकाश-दर्शनकी धुन लग गई है, इसलिए उस विषयकी पुस्तकोंमें भी थोड़ा समय देता हूँ। दिनमें बीस-पच्चीस मिनट सो भी लेता हूँ। आश्रमका इतिहास लिखना शुरू कर दिया है। 'गीता'[1] के जो अध्याय बच गये थे, वे तो कबके पूरे हो गये। हम दोका तो हिसाब यह हुआ। सरदारकी नाकमें दर्द रहता है, इसलिए वे ज्यादातर अखबार पढ़कर और सुनकर सन्तोष मान लेते हैं। बहुत पढ़ पाते हों, सो नहीं है; नाक जल्दी ही बह उठती है। इस बार ज्यादातर तो मैं पुस्तकें मँगा नहीं रहा हूँ। लोग जो भेज देते हैं, उनसे काम चलाता हूँ। वे भी बहुत हो गई हैं — दो सौ से ज्यादा। इनमें बहुत-सी किताबें पढ़ने योग्य हों, ऐसी बात नहीं है। अपटन सिन्क्लेयरने अपनी नई किताब मुझे भेजी है। वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उपन्यासके रूपमें अमेरिकाके मद्यनिषेध-सम्बन्धी कानूनके अमलका ठीक चित्र प्रस्तुत किया है। यह किताब तुझे भेजता हूँ। नाम है 'वैट परेड'। आश्रममें उनकी दूसरी किताबें तो हैं; लेकिन मेरा खयाल है, यह किताब अभी वहाँ नहीं आई है। पुस्तकें गुम करनेके तेरे पराक्रमकी बात महादेवने बताई है। उसे सुनकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मेरी समझमें तेरी इस शक्तिसे मेरा भी ठीक परिचय है। प्यारेलाल धुलियामें है। प्रभुदास बेलगाँवमें। सुनता हूँ, उसकी तबीयत अच्छी है। वजन दो पौंड बढ़ा है। काका कमजोर हैं। जमनालालजी, विनोबा, गुलजारीलाल, आदि भी धुलियामें हैं। रामदास यहीं है। छगनलाल जोशी, सुरेन्द्र,

१. देखिए "गीता-पत्रावली", २१-२-१९३२।

मोहनलाल, कुरैशी, वगैरह भी यहीं हैं। उनसे कभी-कभी मिलना सम्भव है। मथुरादास नासिकमें हैं। कभी-कभी तारामतीके पत्र आते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१५४) से।

४३६. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

२४ अप्रैल, १९३२

चि० जानकीबहन,

मुझे पत्र लिखना। तुम्हारी तबीयत खराब क्यों रहती है? क्या खाती हो? फल बराबर खाने चाहिए। तबीयत सुधारनी चाहिए। जमनालालकी, कमलनयनकी या और किसीकी फिक्रकी जरूरत नहीं। कुछ पढ़ना होता है क्या? साथमें कौन है?

हम तीनों मजेमें हैं। तुम्हें अक्सर याद करते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २८९८) से।

४३७. पत्र : रामीबहन पारेखको

२४ अप्रैल, १९३२

चि० रामी,

तेरा पत्र आया, इसे मैं अद्‌भुत मानता हूँ। तूने यह तो लिखा कि तेरा जन्म-दिवस है, किन्तु कौन-सा, सो लिखना भूल ही गई। मैं तो याद रखता नहीं हूँ। तेरे बहुत-से जन्म-दिन आयें, पर तू कुछ सेवा करना भी सीख। जब इच्छा हो, तब मिलने आ जाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७१७) से। सी० डब्ल्यू० ६९८ से भी; सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट।

४३८. पत्र : तारामती म० त्रिकमजीको

२४ अप्रैल, १९३२

. . .[1] तुम्हारा अपना स्वास्थ्य कैसा रहता है? किसीसे मिल पाती हो? अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा-बहुत सेवा-कार्य ले लो। मनको शान्त रखनेमें सेवा बहुत सहायक होती है। अपने पड़ोसीकी मदद करना भी सेवा है। संसारमें कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसे कभी दूसरेकी जरूरत ही न पड़े। . . .[2]

[पुनश्चः]

किसी दिन मुझसे मिलनेकी इच्छा हो तो आ जाना।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १०९।

४३९. एक पत्र

२४ अप्रैल, १९३२

भाई,

यदि आप ब्रह्मचर्यका नियम समझ गये हों तो मैं पिताकी खिन्नता या रोषको नगण्य वस्तु मानता हूँ। पिताकी खिन्नता एक पलड़ेमें और धर्म को दूसरे पलड़ेमें रखें तो वह खिन्नता हवा-जैसी हल्की ठहरेगी। अलबत्ता, आप यह पक्का कर लें कि आप ब्रह्मचर्य-धर्मको समझ गये हैं। आप दृढ़ रहें, तो पिता जल्दी ही शान्त हो जायेंगे।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०५७) से। सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. व २. साधन-सूत्रके अनुसार।

४४०. पत्र : आश्रमकी बालिकाओंको

२४ अप्रैल, १९३२

चि०,

बाल कटवा डालनेसे सँवारनेमें लगनेवाला समय बचेगा, तेल-कंघा आदिका खर्च बचेगा। बालोंसे सुन्दरता बढ़ती है, यह भ्रम दूर होगा। बाल काट डालनेसे सिर साफ रहता है। स्त्रीके लिए यह ब्रह्मचर्यकी निशानी है। लड़कियाँ और अन्य स्त्रियाँ बाल कटवा डालें तो इसको वैधव्यका चिह्न माना जाना बंद हो जाये। और भी लाभ सोचे जा सकते हैं। लेकिन फिलहाल तो इतने ही काफी हैं न?

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०५८)से; सौजन्य: नारणदास गांधी। **महादेवभाईनी डायरी**, भाग – १, पृष्ठ १२० से भी।

४४१. पत्र : वत्सला वी० दास्तानेको

२४ अप्रैल, १९३२

चि०,

बाल कटवाना में असी बात नहिं समझता जिसे मातापिताका विरोध किया जाय। उनको समझा कर हि बाल कटवाये जाय। माताजीकी दलीलमें मैं तथ्य नहिं पाता। यदि कटवाना अच्छी बात है तो दूसरी लडकीयोंको उठाना है तो भले उठा लेवे। परंतु धीरजसे तेरा कहना माता मानेगी। अण्णाको[1] मैं लिखुंगा।

सी० डब्ल्यू० ९०५९ से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. देखिए "पत्र: वी० वी० दास्तानेको", २६-४-१९३२।

४४२. लेखा-जोखा रखनेकी आवश्यकता[1]

२५ अप्रैल, १९३२

आश्रमका इतिहास लिखते समय मनमें अनेक विचार आते हैं, अपनी अनेक त्रुटियोंकी ओर ध्यान जाता है। उससे मुझे ऐसा लगता है कि हमें समय-समयपर अपना लेखा-जोखा तैयार करना चाहिए। व्यापारी अपने व्यापारका हर रोज लेखा-जोखा — आर्थिक चिट्ठा — तैयार करता है, हर महीने करता है, हर छठे महीने करता है और बड़ा गोशवारा हर साल बनाता है। हमारा व्यापार आध्यात्मिक माना जायेगा, इसलिए हमें आध्यात्मिक गोशवारा बनाना उचित है। हरएकको अपना-अपना चिट्ठा तैयार करना चाहिए और समाजको सारी संस्थाका। ऐसा न करें तो गोशवारा न बनानेवाले व्यापारीकी तरह हमारा आध्यात्मिक दिवाला निकलेगा। अपने व्रतोंमें और कामों, उद्योगोंमें हम आगे बढ़ रहे हैं या पीछे छूट रहे हैं, यह हम न जानें तो हम यन्त्रकी तरह जड़ बन जायेंगे और अन्तमें यन्त्रसे भीकम काम करेंगे यानी, अपनी हानि करेंगे।

यह गोशवारा हम किस रीतिसे तैयार करें? इसका जवाब मैं कुछ प्रश्न लिखकर दे सकता हूँ:

१. क्या हम असत्य विचारते, बोलते या आचरण करते हैं? हम यानी हरएक।

२. ऐसा है तो वैसा करनेवाला कौन है? कहाँ-कहाँ असत्यका आचरण हुआ? उसके लिए उसने क्या किया? आश्रमने क्या किया?

३. आश्रमके इतने वर्षके जीवनमें हम इस विषयमें आगे बढ़े कि पीछे हटे?

इस प्रकार सब व्रतोंके विषयमें विचार करके जहाँ-जहाँ खोट-खामी दिखाई दे, वहाँ-वहाँ उपाय ढूँढ़ें और करें।

कार्यों, उद्योगोंके विषयमें भी यही कर्त्तव्य है। उनके विषयमें तो दूना विचार करना है। क्या आर्थिक दृष्टिसे जमा-खर्च बराबर आता है? हम मानते हैं कि भौतिक उद्योगमें अगर दोनों मद बराबर आवें तो यह सम्भव है कि वह धार्मिक रीतिसे चलाया गया हो, अगर घाटा आवे या नफा रहे तो अवश्य कहीं नीति-भंग हुआ है। दूसरी दृष्टि यह है कि उस उद्योगके चलानेमें धर्मका ही विचार प्रधानतः रखा गया है? आश्रममें यह बात आवश्यक है, क्योंकि उसके सारे उद्योग धर्मके अर्थात् सत्यके अधीन हैं।

इन दोनों — व्रतों और उद्योगों — के विषयमें य विचार मनमें आये बिना नहीं रहते:

१. आश्रममें ही एक-दूसरेके बीच सूक्ष्म दुराव-छिपाव क्यों होते हैं?

१. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २५-४-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

२. ऐसा वक्त कब और कैसे आयेगा जब हममें एक-दूसरेपर अविश्वास ही नहीं रहे?

३. आश्रममें अब भी बाहरसे चोर क्यों आते हैं?

४. हमारा व्यक्तिगत परिग्रह क्यों बढ़ रहा है?

५. हमने आस-पासके गाँवोंके साथ क्यों सम्बन्ध नहीं जोड़ा? वह किस तरह जोड़ा जा सकता है?

६. आश्रममें अब भी बीमारी क्यों रहा करती है?

७. आश्रमके मजदूर-वर्गके लिए हमने क्या किया? वे क्यों आश्रमवासी नहीं बने? या मजदूर आश्रममें हों ही क्यों? आश्रममें मालिक और मजदूर, ये विभाग ही न हों?

ऐसे सवाल अभी और बहुत-से सोच सकता हूँ, पर मेरे विचार बता देनेके लिए इतने काफी हैं। मैं चाहता हूँ कि छोटे-बड़े सभी विचार करने लग जायें। रोजनामचा रखनेके मेरे आग्रहमें यह हेतु तो था ही।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४४३. पत्र: नारणदास गांधीको

२५ अप्रैल, १९३२

चि० नारणदास,

'आश्रम समाचार' नाम बदल दो। निरर्थक आपत्ति उठाई गई है कि यह तो अखबार हुआ। यह किसी भी दृष्टिसे अखबार नहीं है, इसलिए उस अर्थको सूचित करनेवाला नाम अलग कर दिया जाये।

इसका नाम 'आश्रमवासी और अन्य मित्रोंसे' कर दिया जाये और अन्तमें शंकरभाई 'आपका सेवक शंकर'—इस तरह लिख दिया करें। शुल्कका उल्लेख भी छोड़ दिया जाये। किसी बाहरी आदमीको तो यह दिया ही नहीं जाता। जो लोग आश्रमवासी हैं और जिन्हें इसकी प्रति मिलती है वे तो इसके खर्चके लिए अपना अंश देते ही होंगे। यदि इतना परिवर्तन कर दिया जाये तो तुम जो प्रति भेजते हो, मैं वही प्रति छगनलाल और गंगाबहनको भेज सकता हूँ और मुझे उनकी नकल नहीं करनी पड़ेगी। मैं समझता हूँ कि मैंने बात स्पष्ट रूपसे कह दी है।

रुई न भेजी हो तो मत भेजना। लेडी विट्ठलदासने भेज दी है। वह बहुत दिनोंतक चलेगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

लेखा-जोखा बनानेके विषयमें जो लिखा है, उसपर विचार कर लेना। इस तरहकी कोई चीज हमें हमेशा तैयार करते रहना चाहिए।

दुर्गासे कहना कि महादेवको उसका पत्र मिल गया है। उसका पाँव अब बिल्कुल अच्छा है। दाँतका इलाज हो रहा है। जीवनजी से कहना कि गोलमेज परिषद और लन्दन-निवाससे सम्बन्धित महादेवकी दैनन्दिनीकी बहियाँ और अन्य जो-कुछ भेजनेको लिखा था, वह किसी आते-जातेके साथ भेजना न भूलें। नरहरिसे मिलने जाते हुए मणिवहन यहाँ मिलने अवश्य आये। आश्रमसे आनेवाले लोगोंके साथ आनेका संयोग साध लेना चाहिए।

[जिन ४८ लोगोंके नाम हस्ताक्षर-सहित पत्र लिखे हैं, उनकी सूची और उसके साथ नारणदासभाईके नाम पत्र और 'लेखा-जोखाकी आवश्यकता' नामक लेख संलग्न है][1]।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२२२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

४४४. पत्र : वैरियर एल्विनको

२५ अप्रैल, १९३२

मैं चाहता हूँ कि बिशपकी[2] बातोंसे तुम जरा भी विचलित न हो। तुम्हारा गिरजा तुम्हारे दिलमें है। सारी दुनिया तुम्हारा व्यासपीठ है। यह नीला आकाश तुम्हारे गिरजेकी छत है। और यह 'कैथोलिसिज्म' क्या है? निश्चय ही यह भी दिलकी चीज है। इस नामका उपयोग जरूर है। हालाँकि आखिरमें तो यह मनुष्यका रखा हुआ नाम ही है। अगर सुवार्त्ताओंमें अभिव्यक्त ईसाके सन्देशका अर्थ करनेका मुझे कुछ भी अधिकार हो, तो अपने दिलमें जरा भी शक न रखकर मैं यह कहनेको तैयार हूँ कि आज गिरजोंमें इस सन्देशकी अवमानना की जा रही है, फिर भले ही वह गिरजा रोमन हो या अंग्रेजी हो, बड़ा हो या छोटा हो। लाजरसके[3] लिए तो इन गिरजोंमें जगह ही नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि पुजारियोंको भी इसका कोई अनुमान है कि देवस्थान कहलानेवाले इन स्थानोंमें से करुणासागर ईसाको निकाल दिया गया है। मगर मेरा मत तो यह जरूर है कि [तुम्हारा] यह बहिष्कार इस बातकी अचूक निशानी है कि सत्य तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे पक्षमें है। मगर जब तुम एकान्तमें भगवानके ध्यानमें मग्न हो, उस वक्त अगर ऐसी आवाज न सुनो कि 'तू सच्चे रास्ते पर है,' तो मेरी रायको कुछ भी मत गिनना। सच्ची कसौटी अन्तरकी आवाज है, दूसरी कोई नहीं।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ११६।

१. इतना कदाचित् महादेवभाईने जोड़ दिया था।

२. बिशपने एल्विनको ईसा-द्रोही कहा था और गिरजेमें उनके प्रवचन देनेपर रोक लगा दी थी।

३. आशय साधारण व्यक्तिसे है।

४४५. पत्र: एक बंगाली साधकको

२५ अप्रैल, १९३२

तुम्हारा पत्र मिला। ब्रह्मचर्य मनकी स्थिति है। अलबत्ता, उसे मदद सभी तरहके निग्रहसे मिलती ही है। आवश्यक मनःस्थिति प्राप्त करनेमें आहार बहुत ही कम सहायक होता है; फिर भी गलत आहारसे प्रगति रुकती तो है ही। इस प्रकार मैं यह कहना चाहता हूँ कि आहार योग्य और परिमित मात्रामें लिया जाये। लेकिन यह एक ही साधन ब्रह्मचर्यके पालनमें मदद देनेके लिए काफी नहीं। हाँ, बहुत-से जरूरी साधनोंमें से इसे एक माना जा सकता है। जीभका चटोरापन कमजोर मनः-स्थितिका लक्षण है, और यह चीज ब्रह्मचर्यमें बाधक है। ब्रह्मचर्यके पालनके लिए रामबाण उपाय तो इस बातका अनुभव होना है कि जीव परमात्माका ही अंश है और परमात्माका हमारे हृदयमें वास है। हम यह चीज समझने लग जायें, तो उससे मनकी शुद्धि और दृढ़ता प्राप्त हो जाये। तुम्हें ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए जो इस मुख्य चीजके समझनेमें सहायक हों। तुम्हें ऐसी संगतिमें रहना चाहिए जिसमें तुम्हें सदा ईश्वरके हाजिर-नाजिर होनेका खयाल रहे। 'अनीतिके मार्गपर'[1] नामकी मेरी किताबमें ताजी हवा और कटि-स्नान वगैरहके बारेमें जो सूचनाएँ दी गई हैं, उनपर अमल करो। ये सब बातें नियमितता और लगनसे करो। फिर स्खलन हो तो उसकी चिन्ता न करो, मगर विश्वास रखो कि तुम्हारा प्रयत्न सफल होगा ही।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ११७।

४४६. एक पत्र

२५ अप्रैल, १९३२

तुम्हारा करुण पत्र मिला।[2] ईश्वर तो अन्तरमें रहता है इसलिए भौतिक विज्ञान-सम्बन्धी किसी भी छानबीनसे हमारे मनमें ईश्वरके प्रति जीवन्त श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो सकती। कुछ लोगोंको भौतिक विज्ञानसे सहायता जरूर मिली है। पर ऐसे लोग गिने-चुने हैं। इसलिए, मैं तो तुम्हें यही सलाह देता हूँ कि ईश्वरके अस्तित्वके बारेमें उसी तरह तर्क मत करो, जिस तरह तुम अपने अस्तित्वके बारेमें नहीं करते। यूक्लिडके [स्वयंसिद्ध] सूत्रोंकी तरह बस इतना मान लो कि ईश्वर है, किसी और

१. **सेल्फ-रेस्ट्रेन्ट वर्सेस सेल्फ इन्डल्जेन्स।**

२. पत्र-लेखकने लिखा था: "मैंने विज्ञानका काफी अध्ययन किया है, फिर भी मनमें ईश्वरके प्रति श्रद्धा नहीं जमी और मुझे यही लगता रहता है कि श्रद्धा होनी ही चाहिए। इसका क्या उपाय है?"

कारणसे नहीं तो केवल इसलिए कि असंख्य सिद्ध पुरुष ऐसा कह गये हैं; और उससे भी बड़ी बात यह कि उनका जीवन इसका असन्दिग्ध प्रमाण रहा है। और फिर, तुम्हारे मनमें श्रद्धा है, इसे प्रमाणित करनेके लिए रोज सुबह-शाम कम-से-कम पाव घंटा रामनाम जपो और रामायणके पाठमें पूरी तरहसे रमे रहो।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ११८।

४४७. पत्र : एक बहनको[1]

२५ अप्रैल, १९३२

उसमें आलस्य ही कारण नहीं है। डायरीमें सीधी बात लिखना कठिन है। लिखकर देख लो।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १२० ।

४४८. पत्र : ई० ई० डॉयलको

२६ अप्रैल, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

आपके दो पत्रोंके लिए धन्यवाद। मैं आशा करता हूँ कि बेलगाँव-जेलमें बन्दी अपने चार मित्रोंके सम्बन्धमें मुझे जल्दी ही सूचना मिल सकेगी। पिछली बार जब आपको पत्र लिखा था, तबसे अबतक मुझे दो पत्र मिले हैं, एक मणिबहन पटेलका और एक काकासाहब कालेलकरका। दोनों ही पत्रोंसे यह मालूम पड़ा कि जो खबर मैं चाहता था, वही बेलगाँवके जेल-अधिकारियोंने काट दी है। इसलिए, कह सकते हैं, ये पत्र जिस दृष्टिसे लिखे गये थे उस दृष्टिसे बेकार साबित हुए। और पत्रके मजमूनसे मैं यह अनुमान भी लगा सका कि काकासाहब कतई अच्छे नहीं हैं।

तथापि, चूँकि आपने कृपा करके जल्दी ही ध्यान देनेका वायदा किया है, मैं अपनें मनको अशान्त नहीं होने दे रहा हूँ।[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९ ।

१. इस बहनने लिखा था : "मुझे अपना बेहद आलस्य स्वीकार करना चाहिए। मुझसे डायरी लिखी ही नहीं जाती।"

२. डॉयलके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट-७।

४४९. पत्र : के० नटराजनको[1]

२६ अप्रैल, १९३२

प्रिय श्री नटराजन,

गोकुलदास तेजपाल अस्पतालमें खास तौरपर बुलाई गई सभामें एक भारतीय योगीने अपनी सिद्धियोंका जो प्रदर्शन किया, उसका विवरण तो आपने पढ़ा ही होगा। कहा गया है कि योगी एक जीवित साँपका सिर, कीलें, नाइट्रिक एसिड, आदिको खा गया। और इस विशिष्ट दर्शक-समूहमें मुख्य न्यायाधीश और उनकी पत्नी भी शामिल थे। विवरणमें कहा गया है कि योगीको साँपका सिर खाते देखकर एक महिलाको इतनी घिन हुई कि वह एकाएक ही उठकर चली गई। मैं नहीं जानता कि ऐसे प्रदर्शनोंके बारेमें आपका क्या विचार है। लेकिन मेरी रायमें वह प्रदर्शनकर्त्ता और जनता दोनोंके लिए लज्जाजनक है। यदि प्रदर्शनकर्त्ता मर जाय, जैसा कि ऐसे प्रदर्शनोंके दौरान किसी दिन जरूर होगा, तो जिन लोगोंने वहाँ जाकर उसे प्रोत्साहन दिया, उन्हें मैं नरहत्याका अपराधी मानूँगा। मुझे नहीं लगता कि ऐसे घिनौने प्रदर्शनोंसे विज्ञान या मानवताकी कुछ सेवा होती है। हठयोगकी पुस्तकोंमें साफ लिखा है कि हठयोगीको अपनी सिद्धियोंका न तो प्रदर्शन करना चाहिए और न धन कमानेके लिए उन्हें साधन बनाना चाहिए। यदि आप मुझसे सहमत हों तो क्या आप ऐसे क्रूर प्रदर्शन बन्द करानेके लिए दैनिक समाचारपत्रोंमें आन्दोलन शुरू नहीं कर सकते? शायद आप जानते होंगे कि बम्बईका-सा प्रदर्शन करते हुए एक आदमीने अभी हाल ही में रंगूनमें अपनी जान गँवा दी थी।[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी: भाग – १, पृष्ठ १२३। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल संख्या ८०० (४०) (३), भाग १, पृष्ठ १६९ भी।

१. **इंडियन सोशल रिफॉरमरके** सम्पादक।

२. इसका उत्तर देते हुए नटराजनने लिखा था: "जैसे प्रदर्शनका आपने उल्लेख किया है उसको मैं भी घिनौना मानता हूँ और क्योंकि उससे कुछ लाभ नहीं होता, मैं आपसे सहमत हूँ कि जनताको उन्हें बन्द करवाना चाहिए। इससे रामकृष्ण परमहंसका एक कथन याद आ जाता है। इसे मैंने कहीं पढ़ा था। किसीने उनसे पूछा कि क्या पानीपर चलना सम्भव है। उन्होंने जवाब दिया "हाँ, पर बुद्धिमान माँझीको पैसा दे देते हैं।" देखिए "पत्र: के० नटराजनको", २५-५-१९३२ भी।

४५०. पत्र : मॉड रायडनको

२६ अप्रैल, १९३२

आपका पत्र[1], जिसके साथ आपके और सर एरिक ड्रमंड[2] तथा सर जान साइमनके बीच हुआ पत्र-व्यवहार संलग्न है, मिल गया है। धन्यवाद। जब मैंने आपके आन्दोलनके[3] बारेमें पढ़ा तो मुझे ऐसा नहीं लगा कि आप किसी भी तरह भारतपर चीनको तरजीह दे रही हैं। मुझे लगा कि जिस स्थितिमें ज्यादा रक्तपात होनेकी सम्भावना है, उसे रोकनेमें अपनी पूरी शक्ति केन्द्रित करना आपके लिए ठीक ही है। और फिर जब इसके लिए आपका इरादा सत्याग्रहका साधन अपनानेका है तब तो कहना ही क्या!

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ ९० ।

४५१. पत्र : वी० वी० दास्तानेको

२६ अप्रैल, १९३२

भाई दास्ताने,

शान्ताने पेन्सिलसे लिखा आपका एक पत्र भेजा है। वत्सला अपने बाल कटवा डालनेके लिए अधीर हो गई है, ऐसा जान पड़ता है। मैंने उसे लिखा है[4] कि मैं तो तेरे विचारका समर्थन करता हूँ;[5] किन्तु यह कोई ऐसी बात नहीं है कि माता-पिताकी इच्छाके प्रतिकूल होनेपर भी इसे किया जाये। वत्सला चाहती है कि मैं स्वयं आपको लिखूँ। मुझे ऐसा तो जरूर लगता है कि ऐसी बातोंमें हमें बच्चोंको प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि प्रोत्साहन देनेको तैयार न हों तो उन्हें पूरी स्वतन्त्रता तो दी ही जानी चाहिए। बादमें विचार बदल सकता है। और बाल कोई ऐसी चीज

१. पत्रमें लिखा था: "मुझे यह पत्र-व्यवहार भेजते हुए संकोच हुआ। मुझे भय है कि आप शायद सोचें कि पहले भारतका विचार किया जाना चाहिए था। पर सुदूर पूर्वमें जापान और चीनके बीच हो रहे लड़ाई-झगड़ोंपर ध्यान देनेकी जरूरत हमें ज्यादा बड़ी लगी है। मुझे विश्वास है कि आप इसे समझ सकेंगे और हमें आपकी सहानुभूति प्राप्त होगी। इसलिए मैं यह पत्र-व्यवहार आपकी जानकारीके लिए भेज रही हूँ।"

२. राष्ट्र संघके महासचिव।

३. शान्तिसेनाका संगठन।

४. देखिए "पत्र : वत्सला वी० दास्तानेको", २४-४-१९३२।

५. देखिए "पत्र : आश्रमकी बालिकाओंको", २४-४-१९३२।

नहीं है कि फिर न डगें। लेकिन मेरे विचारको निरर्थक समझें। वत्सलाको अनुमति न देनेके आपके अनेक कारण हो सकते हैं। इसलिए आपको जैसा उचित लगे, वैसा करें। आपकी तबीयत अच्छी रहती होगी। आपको तो जो साथ मिला है, सो ईर्ष्याके योग्य है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०८६) से।

४५२. पत्र : रावजीभाई म० पटेलको

२६ अप्रैल, १९३२

चि० रावजीभाई,

तुम्हारे सारे पत्र मिले हैं। मैंने जवाब भी दिये हैं। अब्बास साहबसे मिलते हो, यह बहुत अच्छी बात है। तुम यहाँ आओगे तो मुझे अच्छा लगेगा। किन्तु तुम न आओ, इसीमें हमारी शोभा है। जहाँ हमपर विश्वास रखा जाये, वहाँ हमें शर्तोंका अपने पक्षके विरोधमें जानेवाला अर्थ लगाना चाहिए। इसीलिए तुम्हें नहीं बुलाता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९७) से।

४५३. पत्र : मैथिलीशरण गुप्तको

२६ अप्रैल, १९३२

भाई मैथिलीशरणजी,

आपका पत्र[1] मिल गया। वह पत्र पत्र नहीं है, परन्तु काव्य है। आपने मुझको हरा दिया है। मैं आपकी बात समझ गया हूं, और उस दृष्टिसे उर्मिलाका विलापको स्थान है। बात यह है कि मुझको कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं था। हमारे शास्त्रोंका मेरा अभ्यास यत्किंचित् है, साहित्यका उससे भी कम, भाषाका ज्ञान वैसा हि। यह सब अपनी त्रुटियोंको जानते हुए मैंने जो असर मेरे दिलपर हुआ आपको बता दिया[2]। मित्रवर्ग मेरी अपूर्णता जानते हैं तो भी क्योंकि मैं सत्यका पुजारी हुं मेरा अभिप्राय कैसा भी हो चाहते हैं। ऐसे प्रेमके वश होकर मैंने आपको अभिप्राय भेज दिया था। इसके उत्तरमें आपके सुन्दर पत्रकी, काव्यकी, प्रतीक्षा कभी नहीं कर

१. १५ अप्रैल, १९३२ का। (एस० एन० १९३१२)।
२. देखिए पृष्ठ २६५-६।

सकता था। इसे मैं रखुंगा, दुबारा पढुंगा। और अब आपने जो दृष्टि दी है उस दृष्टिसे 'साकेत' फिर पढ़ना होगा। मुश्किल यह कि अगरचे आपकी भाषा बहुत आसान है तो भी हिन्दीका मेरा ज्ञान अल्प होनेके कारण कहीं कहीं समझनेमें कठिनता आती है। और हिन्दी शब्दका ज्ञान भी मेरा बहुत परिमित है यह भी कठिनाईका कारण होता है। हिन्दीमें ऐसा कोई शब्दकोष है क्या जिसमें से 'साकेत' आदि ग्रन्थके प्रत्येक कठिन शब्दका अर्थ मिल सके? मैं जानता हूँ कि अधिक परिश्रमसे बहुतसी चीज तो ऐसे हि समझ लुंगा।

अजमेरीजी[1]को मेरे बन्देमातरम्। उनके भजनोंका मुझे खूब स्मरण है। ईश्वर कृपा होगी तो दुबारा किसी दीन सुनुंगा।

हां, 'साकेत' और 'अनघ' दोनों आश्रममें पढ़ानेका मैंने परसरामको लिखा[2] था। सम्भव है उसका आरम्भ भी हो गया हो।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ९४५६ से; सौजन्य : भारत कला भवन, वाराणसी।

४५४. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

२७ अप्रैल, १९३२

बालको और बालिकाओ,

लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ कबड्डी[3] खेलें, यह मुझे ठीक नहीं लगता। उसमें एक-दूसरेको पकड़ना और गिराना पड़ता है। इस तरहका खेल साथ खेलना अनुचित है। जहाँ विकार उत्पन्न होनेकी सम्भावना है, वहाँ जान-बूझकर नहीं जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ९०६३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. एक मुस्लिम कवि; इन्होंने १९२९ में गांधीजी की झाँसी-यात्राके समय स्वरचित कुछ हिन्दी-पुस्तकें गांधीजी को भेंट की थीं।

२. देखिए पृष्ठ २६५–६।

३. देखिए "एक पत्र", २३-४-१९३२ भी।

४५५. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२७ अप्रैल, १९३२

प्रिय मेजर भण्डारी,

विशेषज्ञको यहाँ बुलानेके लिए पत्र लिखना आखिर जब जरूरी ही माना गया है, तो सरदार वल्लभभाईने सोचा कि खुद वे ही पत्र लिख दें। इसलिए उनका यह पत्र संलग्न कर रहा हूँ। आप देखेंगे कि पत्रमें १२ पौंड वजन कम हो जानेका उल्लेख ही नहीं किया गया है। आपकी तथा अन्य डॉक्टरोंकी इस बातसे मैं सहमत नहीं हूँ कि किसी अंग-विशेषमें जो तकलीफ है, पाचन-प्रणालीसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं कोई विशेषज्ञ नहीं हूँ फिर भी मेरा दृढ़ विश्वास है कि नाककी तकलीफका वजन घटनेसे बहुत ताल्लुक है। सरदार वल्लभभाईके मामलेमें मैं जानता हूँ कि मनके मजबूत होनेके बावजूद निरन्तर पीड़ाके कारण जो बेचैनी होती है और इस कारण उसपर जो ध्यान देना पड़ता है, उससे उन्हें उतनी ही परेशानी होती है जितनी कि किसीको भी हो सकती है। यदि और कुछ नहीं तो यह परेशानी ही किसी व्यक्तिके खाना न खानेका पर्याप्त कारण हो सकती है। अपनी हदतक मैं जानता हूँ कि यदि मुझे ऐसी तकलीफ होती तो मैं खाना खाना बन्द कर देता। डॉक्टरी रायके विपरीत होनेके बावजूद, मैं इसका कारण पेटमें कुछ गड़बड़ी होना मानता। लेकिन यह सब तो मैंने सहज ही लिख दिया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

४५६. हरिलाल गांधीको लिखे पत्रका अंश[1]

२७ अप्रैल, १९३२

मैं अभी भी तेरे अच्छे बननेकी आशा नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि मैं आशावादी हूँ। मैं मानता रहा हूँ कि तू जब बा के पेटमें था, उस वक्त तो मैं नालायक था। मगर तेरे जन्मके बाद मैं धीरे-धीरे प्रायश्चित्त करता आ रहा हूँ। इसलिए बिल्कुल आशा तो कैसे छोड़ दूँ? जबतक हम दोनों जीवित हैं, तबतक मैं अन्तिम घड़ी तक आशा रखूँगा। इसलिए अपने ढंगके बावजूद तेरा यह पत्र रख छोड़ रहा हूँ, ताकि जब तुझे होश आये, तब तू अपने पत्रकी उद्धतता देखकर रोये और इस मूर्खतापर हँसे। मैं तुझे ताना मारनेके लिए यह पत्र सँभालकर नहीं रख रहा हूँ। लेकिन अगर ईश्वर कभी ऐसा मौका लाये तो खुद हँसनेके लिए यह पत्र रख रहा हूँ। दोषसे तो हम सब भरे हैं। मगर दोषमुक्त होना हम सबका धर्म है। तू भी हो।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १२५–६।

४५७. पत्र : एक सिखको

२८ अप्रैल, १९३२

केश और दाढ़ी रखनेके मामलेमें मैं आपसे बिलकुल ही भिन्न विचार रखता हूँ।[2] बाहरी निशानियोंका महत्त्व पहले जमानेमें चाहे कुछ भी माना गया हो, लेकिन आप केश और दाढ़ी रखनेको जैसा सर्वाधिक महत्त्व देते दिखाई देते हैं, वैसा महत्त्व उनका न है और न होना चाहिए। इसके सम्बन्धमें मैं आजतक जो करता आया हूँ, उसमें कुछ भी परिवर्तन करनेकी मुझे जरूरत नहीं जान पड़ती। मेरे बाहरी रूपके बजाय मेरे आचरणसे लोग मेरी कीमत लगायें, यही मुझे अधिक पसन्द है।

[अंग्रजीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १२९।

१. हरिलालने लिखा था कि उसकी बेटी मनुको अपनी मौसी बलीबहन वोहराके पास न रहने दिया जाये। हरिलालने बलीबहन-द्वारा अपनेपर हमलेके लिए गांधीजी को दोषी ठहराया था। देखिए "पत्र: मनु गांधीको", ४-४-१९३२ और १०-४-१९३२।

२. पत्र-लेखकने लिखा था: "मुझे सद्‌गुरु नानकदेव और आपमें कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। आजके सर्वश्रेष्ठ भारतीय और संसारके सर्वश्रेष्ठ महापुरुष आप प्राचीन महापुरुषोंकी तरह बाल-दाढ़ी रखें तो उचित ही है।" (**महादेवभाईनी डायरी**, भाग–१, पृष्ठ १२८)

४५८. पत्र : लक्ष्मी जेराजाणीको

२८ अप्रैल, १९३२

चि० लक्ष्मी,

तेरी चिट्ठी मिली। तुझे स्याहीसे लिखनेका अभ्यास कम है, इसलिए वह और कठिन लगता है। स्याहीसे लिखनेका अभ्यास हो जानेपर यही सरल लगेगा। इसके सिवा पैन्सिलका उपयोग करते समय अँगुलियोंपर जोर ज्यादा पड़ता है और उससे हाथ जल्दी थक जाता है।

पत्र तो मैंने लिखा था। जिस पत्रके अक्षर इस पत्रसे मिलते हों उसे बायें हाथका समझना। अक्षर तो मेरे खराब हैं ही। इसमें कोई मेरा अनुकरण न करे। मेरा दाहिना अँगूठा दुखता है।

सरदार, महादेवभाई और मेरे आशीर्वाद।

बापू

गजराती (सी० डब्ल्यू० २८१०) से; सौजन्य: पुरुषोत्तम दा० सरैया।

४५९. पत्र : नारणदास गांधीको

२८ अप्रैल, १९३२

चि० नारणदास,

वहाँ हमारे पास सूखे मेवेके बीज यानी बादाम आदिके पीसनेके लिए दो लोहेके यन्त्र हैं। एक तो ग्रेगने भेजा था, वह बिलकुल नया है, और दूसरेको हम काममें ला चुके हैं। इन दोनोंके बारेमें केशु जानता होगा या प्रेमाबहन जानती होगी। उपयोग तो इनका प्यारेलाल करता था। शायद कुसुमको मालूम हो। अगर मिल जाये तो एक मुझे तुरन्त भेज देना। लेकिन 'तुरन्त' का अर्थ इतना ही है कि किसी आते-जातेके हाथ या आठ आनेमें रेलवे पार्सल हो सकती हो तो उससे। केशु इस यन्त्रकी तलाश करके देखे। केशुने भी इसे चलाया तो है ही। मेरा बादामका प्रयोग फिलहाल तो चल रहा है। एक आदमीको पीसनेमें पाँच घंटे लग जाते हैं और उतनी मात्रा नौ दिनोंतक चल पाती है। अगर लेनेका प्रमाण बढ़ा दूँ तो शायद छः दिन ही चले। ऐसा यन्त्र रहते हुए भी इतनी ज्यादा मेहनत किसी आदमीसे क्यों कराई जाये, यह सोचकर यन्त्र भेजनेके लिए लिखा है। आज बादाम पीसे गये हैं इसलिए अगले शुक्रवारतक तो मेरा गुजारा आसानीसे हो जायेगा। उससे पहले यन्त्र आ

जाये तो समस्या सुलझ जाये। आज ही हरिलालके बारेमें पत्र लिखा है[1], इससे पहले ही शायद मिल जाये। आशा है, यह पत्र कल शुक्रवारकी डाकसे निकलेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२२३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

४६०. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

२८ अप्रैल, १९३२

तुमने पिण्ड-ब्रह्माण्डका बहुत बड़ा प्रश्न पूछा है। मगर थोड़ेमें समझाता हूँ। अभी यह समझ लेना चाहिए कि पिण्डका मतलब यह देह है। और ब्रह्माण्डका अर्थ है यह पृथ्वी। अब जो-कुछ हमारे शरीरमें है, वह सब पृथ्वीमें है; और जो शरीरमें नहीं, वह पृथ्वीमें भी नहीं। शरीर मिट्टीका बना है, तो पृथ्वी भी मिट्टीकी बनी है। पृथ्वीमें पाँच तत्त्व हैं, तो शरीरमें भी पाँच तत्त्व मौजूद हैं। पृथ्वीमें तरह-तरहके जीव हैं, तो शरीरमें भी हैं। शरीर नष्ट होता है और पैदा होता है तो पृथ्वीका भी इसी तरह रूपान्तर होता रहता है। इस तरह इस विचारका और भी विस्तार किया जा सकता है। मगर इतनेसे हम यह कह सकते हैं कि यदि हमारे शरीरका हमें सच्चा ज्ञान हो जाये, तो पृथ्वीका भी सच्चा ज्ञान हो जाये। इस दृष्टिसे देखें तो हमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिए बहुत-सी बेकार कोशिशें करनेकी जरूरत नहीं है। शरीर तो अपने पास है ही। उसका ज्ञान प्राप्त कर लें, तो हमारा बेड़ा पार लग जाये। पृथ्वीका ज्ञान प्राप्त करनेका लोभ रखें, तो वह हमेशा अधूरा ही होगा; और इसीलिए ज्ञानी हमें सिखा गये हैं कि जो पिण्डमें है वही ब्रह्माण्डमें है। और अगर हम आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, तो उसमें सारा ज्ञान आ जाता है। लेकिन यह आत्मज्ञान जुटाते-जुटाते हमें कितना ही बाहरी ज्ञान भी मिल जाता है। इसमें जो रस मिल सके उसे चखनेका हमें अधिकार है। क्योंकि वह रस भी हमें आत्मज्ञानके निमित्त चखना है[2]। . . . मुझे लगता है कि नृसिंहभाई 'गीता'का अर्थ करनेमें गहरे नहीं उतरे। 'गीता'के कृष्णका विचार करते समय हमें उसके साथ ऐतिहासिक कृष्णको नहीं मिला देना चाहिए। कृष्णके पास हिंसा या अहिंसाका सवाल नहीं था। अर्जुन हिंसासे नहीं डरा था, मगर स्वजनोंको मारनेमें उसे अरुचि पैदा हो गई थी; इसलिए कृष्णने उसे समझाया कि कर्त्तव्यका पालन करनेमें स्वजन-परजनका भेद किया ही नहीं जा सकता। गीता-युगमें लड़ाईमें होनेवाली हिंसा की जाये या न की जाये, यह सवाल किसी प्रामाणिक आदमीने छेड़ा ही नहीं था। असलमें यह सवाल इस जमानेमें

१. उपलब्ध नहीं है, परंतु देखिए "हरिलाल गांधीको लिखे पत्रका अंश", २७-४-१९३२।

२. साधन-सूत्रके अनुसार।

ही उठा मालूम होता है। अहिंसा-धर्मको तो उस वक्त सभी हिन्दू मानते थे। लेकिन कहाँ हिंसा है और कहाँ अहिंसा है, यह जैसा आज है वैसा ही उस समय भी चर्चाका विषय तो था ही। आज हम ऐसे बहुत-से काम करते हैं जिन्हें हम हिंसा नहीं मानते हैं, लेकिन शायद हमारी बादकी पीढ़ियाँ उन्हें हिंसाके रूपमें लें। जैसे हम दूध पीते हैं या अनाज पकाकर खाते हैं, उसमें जीव-हिंसा तो है ही। यह बिलकुल सम्भव है कि आनेवाली पीढ़ियाँ इस हिंसाको त्याज्य मानकर दूध पीना और अनाज पकाना बन्द कर दें। आज यह हिंसा करते हुए भी हमें यह दावा करनेमें संकोच नहीं होता कि हम अहिंसा-धर्मका पालन कर रहे हैं। ठीक इसी तरह गीता-युगमें लड़ाई इतनी स्वाभाविक मानी जाती थी कि उस वक्त मनुष्यको यह नहीं लगता था कि लड़ाई करनेसे अहिंसा-धर्मको कुछ भी आँच आती है। इसलिए 'गीता'में लड़ाईका दृष्टान्त लिया है, और वह मुझे बिलकुल निर्दोष लगता है। लेकिन हम सारी 'गीता'का मनन करें और स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मभूत, भक्त या योगीके लक्षण 'गीता'में देख जायें, तो हम एक ही निर्णयपर पहुँच जाते हैं कि 'गीता'के उपदेशक या नायक श्रीकृष्ण साक्षात् अहिंसाके अवतार थे और अर्जुनको यह उपदेश देनेमें उनकी अहिंसाको जरा भी आँच नहीं आती कि तू लड़ाई कर। इतना ही नहीं, वे दूसरा उपदेश देते तो उनका ज्ञान कच्चा कहलाता और मेरी पक्की राय है कि वे योगेश्वरके रूपमें या पूर्णावतारके रूपमें कभी न पूजे जाते। इस विषय पर मैंने 'अनासक्तियोग'[1] में जो लिखा है, उसपर विचार कर लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १२७–८।

४६१. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

२९ अप्रैल, १९३२

चि० परसराम,

(१) मौलाना शौकतअलीके बारेमें जो प्रश्न तुमने पूछा, वह हमारे लिए शोभनीय नहीं है। किसीके छिद्र देखना और किसीका काजी बनना हमारा काम नहीं है। अपनेको परखते रहनेमें ही हमें अपनी शक्ति खर्च करनी चाहिए। जबतक हम एक भी दोष अपनेमें शेष देख पाते हों और इसके बावजूद हमारे सगे-सम्बन्धी, मित्र, आदि हमारा त्याग न करें, ऐसा हमारी अन्तरात्मा चाहती हो, तबतक हमें दूसरोंके दोष देखने अथवा उनकी आलोचना करनेका अधिकार नहीं है। जब कभी हमारी नजरमें – अनिच्छासे – किसीके ऐसे दोष आ जायें तो अगर हममें शक्ति हो और वैसा करना उचित हो तो जिसका दोष देखा है, उसीसे हम पूछें; किसी औरसे पूछना हमारा धर्म नहीं है। वैसा करनेमें कोई लाभ नहीं

१. देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ९२-९।

है। फिर भी मुझसे पूछनेका मन हुआ और पूछ लिया, यह ठीक ही किया। न पूछते तो इतना व्याख्यान देनेका मुझे अवसर न मिलता।

अब उत्तर देता हूँ: बाहरसे देखनेपर और जितनी जानकारी हमें मिली है, उसके आधारपर तो मौलानासाहबका काम हमें उचित नहीं लगता। किन्तु जबतक उन्हींके मुँहसे उनके कामके बारेमें न जान लूँ, तबतक पक्का निर्णय मैं नहीं कर सकता। मेरी समझमें पैगम्बरसाहबने जो-जो काम किये हों, वे सब काम पैगम्बर साहबके अनुयायियोंको करने चाहिए या करना उचित है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। महान पुरुष जो करते हैं, सबको वैसा करनेका अधिकार हो, ऐसा नहीं है। ऐसा करनेके अनिष्ट परिणाम देखे गये हैं। फिर भी, हिन्दू, मुसलमान और अन्य धर्मावलम्बी इस स्वर्ण-नियमका पालन करते नहीं देखे जाते। इतना ही नहीं बल्कि ऐसा मानकर कि अवतारोंने अमुक काम किये थे इसलिए हमें भी वैसा करनेका अधिकार है, उस तरहके काम करते हैं। ऐसी परिस्थितिमें मौलानाने पैगम्बरसाहबका उदाहरण दिया तो मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।

(२) भीष्मादिके बारेमें हम जैसा करते हैं, आधुनिक समाजसेवकोंके विषयमें भी वैसा कर सकते हैं। हम लोगोंमें आजकल जलांजलि देनेकी जो रूढ़ि है, मैं उसमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता देखता हूँ।

तुम 'रामायण' पढ़ा रहे हो। उसके विषयमें जिस किसीने लिखा है, तारीफ ही लिखी है। इसी तरह उन्हें रसास्वादन कराते रहना। आश्रममें सबको हिन्दी सीखनेका शौक हो जाये और सब 'रामायण' में रस लेने लगें तो मैं समझूँगा कि एक बहुत बड़ा काम हो गया। और इसीलिए मुझे बहुत अच्छा लगता है कि तुम उसमें लीन हो गये हो।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४९५)से। सी० डब्ल्यू० ४९७२से भी; सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा।

४६२. पत्र : जमनाबहन गांधीको

३० अप्रैल, १९३२

चि० जमना,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा खयाल है कि अगर बम्बईमें अच्छा लगे तो बम्बई ही जाना चाहिए। नियम-पालन अर्थात् आश्रमके व्रतोंका पालन करते रहना। सबके प्रति विनयभाव रखना और जितनी बने, उतनी सेवा जहाँ रहो वहीं करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५२)से। सौजन्य: नारणदास गांधी।

४६३. पत्र : मंगला शं० पटेलको

३० अप्रैल, १९३२

चि० मंगला (लाड़ली),

आत्मा कहे वही करना, इसका अर्थ यह नहीं है कि जो मनमें आये सो करना। आत्मा अर्थात् हृदयमें रहनेवाला ईश्वर – वह जो कहे सो करना। हृदयमें रहनेवाले ईश्वरको सुन सकें, इसलिए हम प्रार्थना करते हैं, व्रत लेते हैं और संयमका पालन करते हैं। जब हमें ईश्वरकी आवाजका पक्का भरोसा हो जाये फिर चाहे जो नाराज हो, हम उसकी चिन्ता न करें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८४) से। सी० डब्ल्यू० ४८ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन ब० देसाई।

४६४. पत्र : मथुरी ना० खरेको

३० अप्रैल, १९३२

चि० मथुरी,

तेरे अक्षर इस बार ठीक हैं। ऐसे ही अच्छे बल्कि और अच्छे लिखा करना।

भगवान स्वयं पैदा हुआ है। उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। ऐसा हो तो वह भगवान काहेका ?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६५) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

४६५. पत्र : विद्या रा० पटेलको

३० अप्रैल, १९३२

चि० विद्या,

सिरपर पिन लगानेकी कोई जरूरत नहीं है। स्वप्न तो आते ही हैं। उनका कारण कोई नहीं जानता। तू मेहनत करे तो अपने अक्षर सुधार सकेगी। हार मत मान लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२६)से; सौजन्य : रवीन्द्र रावजीभाई पटेल।

४६६. लॉर्ड सैंकीको लिखे पत्रके मसविदेका अंश

१ मई, १९३२

आपने मेरे खिलाफ ऐसे प्रमाणोंके आधारपर फैसला दिया है जिनके विषयमें मुझे अज्ञानमें रखा गया है। और अब आपने फैसला ऐसे समय दिया है जब मैं इस हालतमें नहीं हूँ कि अपना बचाव कर सकूँ।[1]

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १३१।

१. महादेव देसाई समझाते हुए लिखते हैं: "...बापूकी भावनाओंकी गहराई पत्रके मसविदेमें इस वाक्यसे जाहिर है...। **न्यूज लेटर**में सैंकीका लेख पढ़कर बापूके दिलको बड़ी चोट पहुँची थी। उन्होंने कहा कि यह विकृत लेख है और मुझे इसके लेखकको पत्र लिखना चाहिए...।

इस वाक्यका कुछ अंश बादमें इस तरह कर दिया गया था कि आपने फैसला मुझे अपना बचाव कर सकनेमें अयोग्य बना देनेके बाद दिया है...।

सरदारने कहा: 'इतना लम्बा पत्र लिखानेके बजाय आप सीधे शब्दोंमें उन्हें यह क्यों नहीं कहते कि आप झूठे हैं?'

बापू हँसे और जवाब दिया, 'वास्तवमें मैंने कुछ इससे भी कड़ी बात कही है। मैं कहता हूँ कि उनका आचरण शरीफों-जैसा नहीं है कि उन्होंने एक मित्र या साथीको धोखा दिया। यह कुछ ऐसी बात है कि जो एक अंग्रेजको बहुत चुभेगी; लेकिन मैंने जैसा महसूस किया है वैसा लिखा है। शफी और आगाखाँ-जैसे लोगोंने, जो उनसे अक्सर मिला करते थे, ये सब झूठी बातें बतायी होंगी। और उन्होंने न केवल उन बातोंपर भरोसा कर उन्हें सच माना बल्कि मुझसे कभी उनके बारेमें नहीं पूछा और मुझपर उस समय दोषारोपण कर रहे हैं जब मैं जेलमें हूँ...।'

'यह भी सच नहीं है कि हमने अपनी माँग बढ़ा-चढ़ाकर रखी है। हमारी स्वतन्त्रताकी माँगको बढ़ा-चढ़ाकर की गई माँग क्यों माना जाये? ऐसा तब माना जा सकता है जब मेरा खयाल इंग्लैंडको दास बनानेका हो। मैं कांग्रेसकी माँग अपने भाषणोंमें पेश करता हूँ; लेकिन बातचीतोंके दौरान मैंने कई एक उपायोंपर विचार किया।"

(**महादेवभाईनी डायरी**, भाग–१, पृष्ठ १३२)।

४६७. पत्र : भगवानजी पु० पण्डयाको

१ मई, १९३२

चि० भगवानजी,

तुमने मुझे लिख दिया, यह ठीक ही किया। मैं इसके बारेमें लिखने ही वाला हूँ[१], इसलिए यहाँ विस्तार नहीं करूँगा। तुम्हें जहाँ दोष दिखाई दिया, वहाँ एक जवाबदेह आदमीका ध्यान तुमने खींच दिया। अब वे क्या करते हैं, यही देखना रहा। तुम तो अपने धर्मका पालन कर ही चुके।

बापू

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ३४६) से; सौजन्य : भगवानजी पुरुषोत्तम पण्डया।

४६८. पत्र : मोहन न० परीखको

१ मई, १९३२

चि० मोहन,

तेरी उम्रवालोंको तो पढ़ना, खेलना और काम करना चाहिए। ईश्वरकी स्तुति तो करनी ही चाहिए। बेलगाँव जायेगा तो यहाँ होकर ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१७९) से।

४६९. पत्र : मणिबहन न० परीखको

१ मई, १९३२

चि० मणि (परीख),

मैंने तुम्हारे आनेकी आशा इसी अवसरपर की थी। आओगी तो सम्भवत: महादेवसे भी मिलना हो सकेगा। बेलगाँवसे मुझे समाचार मिलने लगे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९७२) से। सी० डब्ल्यू० ३२८९ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

१. यहाँ आशय "सप्ताहका सार" से है। देखिए पृष्ठ ३७२-४।

४७०. पत्र : नारायण देसाईको

१ मई, १९३२

चि० नारायण राव उर्फ नारायण देसाई उर्फ बबलो,

'गीताजी' पढ़ने और समझनेसे हमें अपना धर्म ठीक-ठीक समझमें आयेगा। राष्ट्रीय सप्ताहमें अथवा किसी भी समय कातनेसे देशकी सम्पत्ति बढ़ती है और गरीबों की सेवा बन पड़ती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७९) से।

४७१. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

१ मई, १९३२

चि० पुष्पा,

'गांधीराज' का मतलब होगा, ऐसा राज जिसमें गांधी नामके व्यक्तिका ही हुक्म चले। इससे क्या लाभ? स्वराज्यमें तो सभीका हुक्म चलेगा, अतः उसमें तो मैं और सभी आ गये। यह किस प्रकार हो सकता है, यह बात यदि समझमें न आये तो प्रेमाबहनसे पूछना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८७) से। सी० डब्ल्यू० ३३ से भी; सौजन्य : पुष्पाबहन ना० नायक।

४७२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको[1]

१ मई, १९३२

चि० प्रेमा,

अगर तुझपर कामका बोझा ज्यादा पड़ता हो तो वह कम नहीं हो सकता, यह बात मेरे गले नहीं उतर सकती। इस विचारमें मोह और दुर्बलता है। तेरी चिढ़का कारण तू ही है, कामका बोझ नहीं है, यह मैं सोच सकता हूँ। यही हो तो तू इसे धीरे-धीरे अनुभवसे समझ जायेगी; क्योंकि तू ज्यादा दिनतक अपने-आपको धोखा नहीं दे सकती। इस बारेमें मैं तुझे त्रस्त नहीं करना चाहता। अपनी नाजुक प्रकृतिको सख्त बनाना।

हमारी पुस्तकोंमें कुछ उर्दूकी पुस्तकें हैं। उनमें से कुछ सम्भवतः इमाम साहबके यहाँ होंगी; वहाँ भी देखना। तू न पहचान सके तो परसराम जरूर पहचानेगा। उनमें 'सीरत उन्नबी' हो तो भेज देना। वह मौलाना शिबलीकी लिखी हुई है। एक और पुस्तक डॉ० मुहम्मद अलीका लिखा हुआ नबी का जीवन है। वह भी भेजना। 'सीरत' के दो भाग हैं।

तेरे चारों तरफ मजदूर हैं, यही सच्चा जीवन है। आश्रमकी यही कल्पना है। हाँ, मजदूर सत्यार्थी होने चाहिए। क्या तू सत्यार्थी नहीं है? दूसरे भाई-बहन सत्यार्थी नहीं हैं? मैं मानता हूँ कि सभी यथाशक्ति सत्यार्थी हैं।

तू पूछती है कि 'मैं कब आऊँगी'। अगर अपनी आँखोंको काम में ले, तो तू मुझे देखे बिना न रहे। मेरी आत्मा तो वहीं बसती है। शरीर भले ही यहाँ रहे या राखमें मिल जाये। यह भी बिलकुल सम्भव है कि शरीर वहाँ हो तब भी मैं वहाँ न होऊँ। इस सत्यको तू देख और मायाको भूल जा।

असन्तोष तो होना ही चाहिए। लेकिन वह असन्तोष अपने बारेमें होना चाहिए। 'अब तो मैं पूर्ण हो गया', जिस दिन मैं ऐसा मान बैठूँ उसी दिनसे मेरा पतन शुरू हुआ समझना चाहिए। इसलिए मुझे अपने बारेमें असन्तोष जरूर होना चाहिए। इस असन्तोषका यह अर्थ कभी नहीं है कि मुझे अपने कर्त्तव्योंमें परिवर्तनकी इच्छा करते रहना चाहिए।

लेकिन यह सब दलीलोंसे नहीं समझाया जा सकता। समय अपना काम करेगा ही। आज जहाँ घोर अन्धकार लगता है, वहाँ कल उजाला भी दिखाई देगा। मुझे तो ऐसी स्थितिको पहुँचानेवाला भजन 'प्रेमल ज्योति'[2] ही दीखता है। गुजरातीमें भी उसका ठीक अर्थ उतरा है। अंग्रेजी भजन तो अलौकिक है ही।

१. प्रेमाबहनने अपने पत्रमें मानसिक थकावट, देशकी अवस्थाके प्रति असन्तोष, आदि व्यक्त किया था।

२. 'लीड काइन्डली लाइट' का नरसिंहरावभाई-द्वारा किया हुआ गुजराती अनुवाद।

ऐसा सुना है कि धुरन्धर ठीक है। तेरा वजन कितना है? दूध-दही कुल मिलाकर कितना लेती है?

हमारे पुस्तकालयमें कुल मिलाकर कितनी पुस्तकें होंगी?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८३) से। सी० डब्ल्यू० ६७३१ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

४७३. पत्र : वनमाला न० परीखको

१ मई, १९३२

चि० वनमाला,

गेहूँके एक दानेसे जैसे अनेक दाने पैदा होते हैं, उसी तरह दो व्यक्तियोंसे करोड़ों बन जाते हैं। यह बात तो ऐसी है जो पट्टीपर हिसाब लगाकर भी जानी जा सकती है। हिसाब लगाकर देखना।

बायें हाथसे केवल चरखा चलानेकी ही बात मैंने नहीं कही। बात तो उन सारे कामोंको बायें हाथसे करनेकी आदत डालनेकी है जिन्हें हम दाहिने हाथसे करते हैं। बायें हाथसे लिखना, खाना, दातुन करना और तब और आगे बढ़ना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७२) से। सी० डब्ल्यू० २९९५ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई।

४७४. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

१ मई, १९३२

चि० शारदा,

कातनेके विषयमें सब-कुछ समझ ले। जिन लोगोंको कोई दूसरा उपयोगी धन्धा प्राप्त है, कातना उनका धन्धा नहीं हो सकता। इसीलिए मिल-मजदूरोंसे जीविका पानेकी दृष्टिसे कातनेके लिए नहीं कहा जाता। हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंको सालके सात महींनोंमें कोई काम नहीं रहता। कातना उनकी जीविका है। यों, किसी भी निमित्तसे काता जाये तो देशमें उतनी पूँजी बढ़ती ही है, यह इसका लाभ है।

खादीको श्रेष्ठ माननेका यह कारण है कि उसके द्वारा गरीबोंकी सर्वाधिक सेवा होती है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९१०) से; सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला।

४७५. पत्र : विमल किशोर मेहरोत्राको

१ मई, १९३२

चि० विमल,

स्याहीसे लिखो। तुमने लिखा सो तो बहोत ठीक किया।

यज्ञके बारेमें परसरामसे समझो पीछे जरूरत रहे तो मुझसे पूछो।

बापुका आ०

सी० डब्ल्यू० ४९७३ से; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा। जी० एन० ७४९६ से भी।

४७६. पत्र : संतुको

१ मई, १९३[२][1]

चि० संतु,

हम अहिंसाधर्मका पालन करना चाहते हैं इसलिये हिंसक शस्त्रोंका कम उपयोग करें। लठी लेजीमका मैंने विरोध नहिं किया है। मीणबत्तीमें कोई दोष मैंने नहिं पाया।

बापु

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७१२) से।

४७७. सप्ताहका सार[2]

२ मई, १९३२

अप्रैल मासके आत्मशुद्धि-सप्ताहपर भाई भगवानजी का पत्र आया है। उसमें मेरा ध्यान कपासकी खराब जानेवाली मात्राकी ओर खींचा गया है। उनको शक है कि कुछ लोगोंने जान-बूझकर तार बढ़ाकर लिखे हैं। उनके अनुसार खराब जानेवाली मात्रा दो तरहकी हैं—एक तो सूत जितना टूटना चाहिए उससे अधिक टूटता है; दूसरे, उतावलीमें कातनेसे सूतका नम्बर बहुत कम होता है[3]।

किसीने जान-बूझकर गलत तार लिखे हों तो इसे मैं भारी दोष मानता हूँ। इससे आश्रमके नामपर आँच आती है। गलत लिखनेवालेका काता हुआ ईश्वरकी

१. साधन-सूत्रमें '१९३१' है।

२. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २८-४/२-५-१९३२के साथ भेजा गया था। देखिए अगला शीर्षक।

३. भगवानजी पु० पण्ड्याको गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए पृष्ठ ४६८।

बहीमें यज्ञकी तरह तो लिखा ही नहीं जाता। हमारी बहीमें चाहे जितने तार या गज लिखे गये हों, उनकी तो कोई कीमत ही नहीं है। कीमत तो जो वास्तविक है, वही है; लिखनेसे उसमें घट-बढ़ नहीं होती; और सूतकी कीमत तो कुछ आने ही होती है। असली कीमत तो सूत कातनेमें निहित शुद्ध उद्देश्यकी ही है। यह कीमत हम आँक ही नहीं सकते। यह तो दैवी बहीमें ही आँकी जा सकती है; क्योंकि एक मनुष्यके हेतुको दूसरा कौन मनुष्य समझ सकता है? फिर भी हमारे पास अपना एक माप है। अगर अन्तमें ऐसे यज्ञका सोचा हुआ फल न निकले तो जानना चाहिए कि हममें कहीं-न-कहीं मलिनता है। इस दृष्टिसे हरएक अपने-अपने कामका विचार कर ले और कोई असत्य बात कही हो तो नम्रतापूर्वक उसे स्वीकार करके शुद्ध हो जाये। आश्रममें हम किसीपर चुपचाप निगरानी नहीं कर सकते। बहुत-सा काम विश्वासपर ही चलता है। आश्रम दूसरी रीतिसे चल भी नहीं सकता। इसलिए सबको अपने धर्मका बुद्धिपूर्वक पालन करना है। गलत तार-संख्याके साथ-साथ दूसरे दोष भी सब विचार लें। क्या कातनेमें आलस किया था, बेगार टाली थी, वक्त चुराया था और टूटा हुआ सूत [जोड़नेके बजाय] फेंक दिया था? यज्ञकी शर्त यह है कि याज्ञिक उसमें तन्मय हो जाये तथा कार्यमें अपना सारा कौशल लगा दे।

कोई ऐसा भी न सोचे कि पूरे बरस चाहे जैसा व्यवहार करके आत्मशुद्धि-सप्ताहमें ऊपरके नियमका पालन कर लेंगे। इतना याद रखना चाहिए कि हमारा आश्रम-जीवन ही यज्ञ-रूप होना चाहिए। उसमें कातना महायज्ञ है। इस सप्ताहका अन्य दिनोंसे इतना ही अन्तर है कि इस समय हम कातनेमें अधिक समय दिया करते हैं।

आगेके लिए मैं ये नियम सुझाता हूँ:

१. बीस नम्बरसे नीचेका सूत काता जाये तो वह यज्ञमें न गिना जाये।

२. सूतकी खराबी नियत मापसे अधिक हो तो उस कताईको भी यज्ञ न माना जाये।

३. कस-मजबूती नियत सीमासे नीचे आये तो भी यज्ञमें न गिना जाये।

यज्ञ-कार्य हो या फिर दूसरा कोई, संख्या या वजनसे सफाई-सचाईकी कीमत ज्यादा होगी। पचास अपंग बैल हमारे सिरपर बोझ होंगे, एक मजबूत बैल हमारा पूरा काम कर देगा। पचास भोथरा छुरियोंसे शाक ठीक नहीं कट सकती। एक धारदार छुरी पूरा काम कर देगी। इसलिए हमें अपना ध्यान हर कामकी पूर्णताकी ओर देनेकी आदत डालनी चाहिए। अगली बारके सप्ताहमें हम इस बातपर ही ध्यान दें।

मैं देखता हूँ कि कातनेमें कुछ लोगोंका मन ऊबता है। दूसरे काम वे ज्यादा पसन्द करते हैं। इसमें एक तो स्वाभाविक त्रुटि है। आदमीको जो काम रोज करना पड़ता है, उससे वह ऊबता है और मनको फुसलाता है कि कोई दूसरा काम होता तो मैं न ऊबता। पर वह दूसरा काम भी अगर रोजका हो जाता है तो वह तीसरा माँगता है। फिर कातनेवालेका ध्यान जाने-अनजाने कताईसे मिलनेवाली थोड़ी

मजदूरीकी ओर जाता है। आश्रमकी दृष्टिमे यह दोष है। कातनेकी मजदूरी कम-से-कम रखी जाती है। कारण, कि इस वक्त तो यही एक धन्धा है जिसे करोड़ों कर सकते हैं और जिससे कुछ कमा भी सकते हैं। इसलिए इस कामको व्यापक बनानेके लिए हम सब यज्ञ-रूपमें कातते हैं। यज्ञमें कल्पना यह है कि हम ईश्वरार्पण बुद्धिसे काम करते हैं और फल देना भगवानके हाथ है। यह रहस्य समझकर सबको नित्य तन्मय होकर कताई-यज्ञ करना चाहिए।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४७८. पत्र : नारणदास गांधीको

२८ अप्रैल, [२ मई, १९३२][1]

चि० नारणदास,

हरिलालके विषयमें तो तुम्हें आज ही पत्र[2] लिखा है। आशा करता हूँ कि तुम्हें वह जल्दी ही मिल जायेगा। इसलिए अब उस विषयमें अधिक लिखनेके लिए कुछ नहीं रहता।

गंगाबहनके लिए दस-दस तोला 'चैयार्ज' और हींगकी गोलियाँ और भिजवा देना। पहले जो मँगाईं थीं, वे मिल गई हैं। किसी आते-जातेके हाथ मेरे पास भिजवा दोगे, तो मैं वहाँ पहुँचवा दूँगा।

तिलकमका थाना जाना मुझे तो ठीक लगा। अगर प्यारे अलीको वे बोझ स्वरूप न बन जायें तो दूसरे भी जा सकते हैं। जाना शोभनीय भी है। क्योंकि हम जितने प्रेमसे किसी हिन्दूके घर रह सकते हैं उतने ही प्रेमसे हमें मुसलमानके घरमें भी रहना चाहिए। इसके सिवाय यदि किसीको ऐसा लगे कि तिलकम तो एक बाहरी आदमी था और अन्त्यज माँ-बापसे उत्पन्न है इसलिए उसका वहाँ जाकर रहना चल सकता है, तो इस तरहका विचार असह्य हो जायेगा। यदि जमुना वहाँ खुशी-खुशी जाये तो नूरबानो ऐसी है कि उसपर अपनी जान भी दे दे। नूरबानोकी आँखमें अपार पवित्रताका तेज है, जबसे मैंने उसे देखा, मुझे तभीसे ऐसा लगता है।

गंगादेवी ठीक हो गई होंगी। सन्तोकका पत्र मेरे नाम आया था, उसने लिखा है कि वह अभी राधाको देवलालीमें और चार महीने रखना चाहती है। यदि राधाकी तबीयत सुधर जाये तो यह ठीक ही है। मुझे बा का कोई पत्र नहीं मिला।

मैं यह तो नहीं कह सकता कि कताईमें हाथ बदलनेसे दर्द कम हो गया है। किन्तु देखता हूँ कि अगर हाथ न बदलता तो काम रुक जाता। धीरे-धीरे चक्र फेरनेमें कोहनीके हिस्सेके ऊपर जितना दबाव पड़ता है, तार खींचनेमें उससे बहुत अधिक पड़ता है। यह बात मैं दाहिने हाथसे तार खींचते हुए समझ पाया हूँ। अब

१. पत्रकी सामग्रीके आधारपर तिथिका अनुमान किया गया है।
२. देखिए पाद टिप्पणी, पृष्ठ ३६३।

मैं दाहिने हाथसे रोज २०० तारतक खींच लेता हूँ। अर्थात्, बायें हाथसे एक सप्ताह पहले जितने तार निकालता था, उससे अब दस-पाँच ज्यादा निकालने लगा हूँ। उन दिनों औसतन १८७½ तार कातता था अथवा उतनी औसत रखनेकी कोशिश करता था। अलबत्ता, मैं समय कुछ ज्यादा दे रहा हूँ। किन्तु अधिक समय तो मैं एक सप्ताहसे दे ही रहा था। इसलिए कह सकते हैं कि किसी भी दृष्टिसे फिलहाल तो मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, वह ठीक है। हाथके बारेमें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है।

मैं आकाश-दर्शन इत्यादिपर जो लेख भेजता हूँ, उन्हें छापनेपर कोई प्रतिबन्ध तो नहीं है, फिर भी मैं मानता हूँ कि न छापना अधिक अच्छा है। सर्वोत्तम बात तो यह है कि यन्त्रपर अधिक प्रतियाँ निकालनेके बजाय पाँच, दस या उससे भी अधिक व्यक्ति लिखने बैठ जायें और एक आदमी बोलता या लिखाता चला जाये, यह बात हमारे सिद्धान्तके अधिक अनुकूल पड़ती है। ऐसा करनेसे एक तो अच्छे अक्षर लिखनेकी कला आ जायेगी और ये प्रतियाँ उन लोगोंके बीच वितरित की जा सकती हैं जो उन्हें पढ़नेकी इच्छा करते हों। और फिर यदि पढ़नेवाले चाहें तो स्वयं भी उसकी और प्रतियाँ बना सकते हैं। अथवा उसी दिन जिस आदमीके पास भेजनेकी सूचना दी जाये, उसके पास पढ़नेके बाद भेज सकते हैं। ऐसा किया जाये तो थोड़ी ही प्रतियाँ कई लोगोंमें घुमाई जा सकती हैं। और जो लोग उन्हें इस प्रकार विशेष दिलचस्पी लेकर पढ़ेंगे, उन्हें उससे अधिक लाभ होगा। यह बात सोचकर देखना।

[२ मई, १९३२]

मैंने इस बार सप्ताहमें जो काम हुआ, उसके विषयमें लिखा है, उसे पढ़ लेना। ठीक लगे तो सबको पढ़वा देना। यदि ठीक लगे तो उसपर जितना सम्भव हो उतना अमल भी करना। इसमें कुछ परिवर्तन-परिवर्धन करना हो तो जरूर कर सकते हो। सामान्य रीतिसे तो मेरे पास मुझ अकेलेका अनुभव है। वहाँ तो अनुभवकी खान है। इसलिए सम्भव है कि मेरा कोई सुझाव व्यावहारिक न हो; फिर भी इतना तो ठीक ही है कि अंककी बारीकी, तारकी मजबूती और कम टूटनेपर ध्यान दिया ही जाना चाहिए। परीक्षामें तो हमने एक बार इस पद्धतिको अपनाया था। सूतके अंक और मजबूतीका गुणा करके अंक दिये जाते थे। इन दिनों क्या पद्धति है, मुझे इसकी खबर नहीं है। मैं गुणा करनेकी इस पद्धतिमें सूत टूटनेकी बात भी दाखिल करना चाहता हूँ और तब टूटनेकी मात्राके अनुपातमें अंक कम हो जायेंगे। मैंने और महादेवने पद्धतिके विषयमें इस प्रकार सोचा है: एक रतल रुईमें एक तोलेतक की टूटन माफ। एक तोलेसे ऊपर टूटे तो उसे गुणा करनेसे प्राप्त हुए नम्बरोंमें से सोलह नम्बर घटा दिये जायें अर्थात्, १/१६ तोलेपर एक-एक नम्बर कटता चला जायेगा। और अगर एक रतलमें दस तोला टूट हो, तो विद्यार्थी बिलकुल फेल माना जायेगा। किन्तु इस विषयपर तुम स्वयं विचार करना कि एक रतलपर एक तोला माफ किया जाये या उससे अधिक। यहाँ तो मैंने अभिप्राय स्पष्ट कर देने योग्य उदाहरण ही दिया

है। परीक्षककी दृष्टिसे मैं तो इस बातपर भी गुण देना चाहूँगा कि कातनेवाला किस तरह बैठता है; अपना चरखा किस तरह रखता है; उससे आवाज होती है या नहीं; तकुआ सीधा रख पाता है या नहीं; आस-पास सफाई रखता है या नहीं; चरखा बिगड़ जाये तो उसे सुधारना आता है या नहीं। मैं इन सब बातोंकी जाँच करूँ और नम्बर दूँ। इसका यह अर्थ हुआ कि सूत्र-यज्ञ करनेवालेका काम हमेशा देख-रेखके अन्तर्गत होना चाहिए और निरीक्षकको स्वयं परीक्षक तो होना ही चाहिए। ऐसा करनेमें उत्पादन कुछ कम भले ही हो जाये, मैं उसकी चिन्ता नहीं करूँगा। हमारे मनमें भरोसा होना चाहिए कि हम सावधान हैं और रोज प्रगति कर रहे हैं। साथके कागजमें मैंने लिखा[1] है कि जिसके सूतका नम्बर २० से कम हो, उसका कातना यज्ञ नहीं कहा जा सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि तबतक कातनेके कामकी गिनती ही न की जाये। कातना तो रोज है ही, नम्बर भी मिलने चाहिए। सूत काता ही जाना चाहिए किन्तु इतनेसे ही कातनेवालेको याज्ञिकके रूपमें उत्तीर्ण नहीं माना जा सकता। तबतक वह साधक है, उम्मीदवार है।

डॉक्टर मेहताके नाम जो पत्र लिखा है, वह पढ़ लेना। मगनलाल[2] की पत्नी मंजुलाके नाम लिखा पत्र जैतपुर भिजवा देना। मैं उसके पिताका नाम भूल गया हूँ। यदि तुम्हें याद न हो तो, सम्भव है, चम्पा या रतिलालको याद होगा। पता लगाकर भेज देना और मुझे भी पता लिख भेजना। कुसुमके बारेमें लिख चुका हूँ। सिवा त्रिवेणीबहनके अभी मुझसे कोई मिलने नहीं आया है। बुधाभाईके विषयमें तुम्हें जैसा योग्य लगे, वैसा करना।

हिलके नाम लिखा गया पत्र तुम्हें ठीक लगे तभी भेजना; क्योंकि यदि वह इन दिनों आजाये तो बोझ तुमको ही उठाना है। हरिलालके विषयमें पत्र तुम्हें मिल गया होगा। मनुके पाससे फिर शिकायत-भरा पत्र आया है।

बापू

[पुनश्च :]

इस बारके कुछ पत्रोंमें 'के आशीर्वाद' नहीं लिखा है। उन्हें अध्याहारमें समझना। यह उतना समय बचानेके ध्यानसे किया है। बायें हाथसे लिखते समय जितने अक्षर कम किये जा सकें, उतने कम करनेका लोभ रहता है। तुम देखोगे कि साफ अक्षर बनानेकी ओर अधिक ध्यान दे रहा हूँ। अभी और थोड़ा समय दूँ तो लगता है कि बायें हाथके अक्षर कुछ और अच्छे बनने लगेंगे। मौतकी देहलीपर बैठे आदमीकी इच्छाओंका कुछ पार है?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२२४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. डॉ० प्राणजीवन दासका सबसे छोटा पुत्र जो विदेश गया था।

४७९. तार : डाह्याभाई पटेलको[1]

२ मई, १९३१

इसे जीवित मृत्यु से मुक्ति पाना समझो।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १३२।

४८०. तार : मणिबहन पटेलको

२ मई, १९३२

यशोदा कल गुजर गई। यह मानना चाहिए कि वह जीवित मृत्युसे छुटकारा पा गई।

गांधी

[गुजरातीसे]
बापूना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने, पृष्ठ ८३।

४८१. पत्र : सैम्युअल होरको

२ मई, १९३२

प्रिय सर सैम्युअल,

अपने ११ मार्चके पत्रके जवाबके[3] लिए आपका आभारी हूँ। मैंने उस पत्रके जवाबकी आशा नहीं की थी। मैं आपके प्रति अपना कुछ फर्ज समझता हूँ; पत्र केवल उसी खयालसे लिखा था। हमारे पारस्परिक विचारोंमें चाहे जितना मतभेद हो, फिर भी मैं जो कुछ भी करूँ, यथासम्भव अपनी योग्यता तथा ज्ञानके अनुसार सही-सही करना चाहता हूँ। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि आपके जिस पत्रका जवाब मैं लिख रहा हूँ, उसके पहले भागमें तो जो-कुछ आपने कहा है, उससे अधिक कुछ कहना सम्भव नहीं था। मेरे लिए, एक बन्दीकी हैसियतसे,

१. वल्लभभाई पटेलके पुत्र। यह तार डाह्याभाईके सुबह प्राप्त हुए उस तारके उत्तरमें था जिसमें उन्होंने अपनी पत्नी यशोदाके देहावसानका समाचार दिया था।

३. देखिए परिशिष्ट ३।

आपके पत्रके दूसरे भागके गुण-दोषकी चर्चामें उतरना उचित नहीं होगा। इसलिए मुझे केवल अपना यह मत व्यक्त करके ही सन्तोष करना चाहिए कि जो अखबार मुझे पढ़नेको मिलते हैं, उनके आधारपर भी यह पता चलता है कि इस देशके हालातके सम्बन्धमें आपको कितनी गलत जानकारी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५५६) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी।

४८२. पत्र : अगाथा हैरिसनको

३ मई, १९३२

प्रिय अगाथा,

तुम्हारा गत माहकी १५ तारीखका पत्र मिला। हाँ, महादेव हमारे साथ हैं। तुम्हारे यहाँ अंग्रेजीमें कहावत है कि दो हों तो साथ, तीन हों तो कुछ नहीं।[1] किसी भी रूपमें कहो, हम तीनों उस कहावतको झुठला रहे हैं और काफी अच्छी तरह रह रहे हैं। चूँकि दीनबन्धु अब तुम्हारे साथ हैं, तुम्हें काफी राहत महसूस हो रही होगी।[2] चाहे आप उसे महादेवकी छोटी-सी आशाका—या बड़ी आशाका? —आधार कहें या मास्टर देसाई कहें या कुछ और, उसके लिए एक ही बात है क्योंकि वह अंग्रेजीसे सर्वथा अनभिज्ञ है। लेकिन जो पुस्तक आपने भेजी है, उसमें निस्सन्देह अनेकों तस्वीरें हैं और इनका आनन्द वह यह पूछे बिना उठायेगा कि आपने उसे कैसे सम्बोधित किया है।[3]

हम दोनोंकी तरफसे प्यार।

बापू

[पुनश्च:]

चार्लीको प्यार।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४५३) से।

१. 'टू इज कम्पनी, थ्री इज नन'।

२. अगाथा भारत तथा ब्रिटेनके बीच परस्पर सद्भाव पैदा करनेकी गांधीजी की इच्छाको पूरा करनेके लिए सी० एफ० एन्ड्रयूजकी मदद कर रही थीं। (**अगाथा हैरिसन**, पृष्ठ ३८)

३. यहाँतक पत्र महादेव देसाईकी लिखावटमें है। शेष दो पंक्तियाँ गांधीजी के बायें हाथकी लिखी हैं।

४८३. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

३ मई, १९३२

तुम्हारा पत्र मिला। यदि शक्ति बनी हुई है और किसी प्रकारका कष्ट नहीं है तो बारह रतल वजन कम होनेका मुझे दुख नहीं होगा। मैं तारामतीको पत्र लिखता रहता हूँ और इस बार उसके पत्र भी ठीक-ठीक आ रहे हैं। दिलीपने[1] भी दो पंक्तियाँ लिखी थीं। माँग करनेपर ही इतनी कृपा हुई है। अबतक तारामती मिलकर गई होगी।

मेरी दृष्टिसे पुनर्जन्म शास्त्रीय प्रयोगों और अनुभवसे सिद्ध वस्तु है। अनुभवसे सिद्ध हो चुका है, ऐसा माननेके लिए हमें उन लोगोंपर विश्वास करना होगा जिन्होंने अपने अनुभवोंका वर्णन किया है। इतने ज्यादा लोगोंने इसका प्रमाण दिया है कि उन प्रमाणोंको हम रद नहीं कर सकते। इतना होनेपर भी पुनर्जन्मकी बात किसीको समझानेके लिए मुझे अपना समय बरवाद करने और बहुत बहस करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी बहुत-सी शास्त्र-सिद्ध बातें हैं जिन्हें न माननेसे हमारी गाड़ी रुकती नहीं है। ऐसा भी सम्भव है कि कोई पुनर्जन्मकी ऐसी व्याख्या करे जिसमें जो सामान्य प्रमाण अभी हालमें दिये जाते हैं, उनके आधारपर उसे न माना जा सके। पुनर्जन्मकी जो व्याख्या मैं करता हूँ, वह तो इतनी ही है : देहके अन्तके साथ जीवनका अन्त नहीं होता और जीवको जहाँ-तहाँ भटकना पड़ता है। इसीका नाम पुनर्जन्म है। इसलिए ईसाई, मुसलमान और जरतुश्तके अनुयायी जो कयामतको मानते हैं, कह सकता हूँ कि वे भी मेरी व्याख्याके अनुसार पुनर्जन्मको मानते हैं। मेरी दृष्टिसे इस मान्यताके अनुसार देहान्तर होना लगभग स्वयंसिद्ध है। लेकिन मैं जानता हूँ कि कोई कट्टर ईसाई इसे स्वीकार नहीं कर सकता। यों अब अधिकतर ईसाई लोग मानने लगे हैं कि देहान्तर संभव है।

सम्बन्ध-विच्छेदके लिए 'लग्नान्तर' शब्द नहीं चलेगा। 'लग्नान्तर' का अर्थ होगा दूसरा विवाह। यह तो सम्बन्ध-विच्छेदके बिना भी सम्भव है। यदि इसके लिए कोई शब्द प्रचलित न हो तो मैं 'लग्नभंग' शब्दका सुझाव दूँगा। मैंने महादेवसे पूछा तो उसने कहा, 'मैं भी इसी शब्दका सुझाव देनेवाला था'। इस तरह एक रोगकी दो औषधियाँ हुईं।

हो सकता है कि तारामतीको बम्बईमें 'यरवदा चक्र' ढूँढ़नेमें कठिनाई हो। मैं उसे लिख रहा हूँ कि वहाँ न मिले तो बारडोली या आश्रमसे सीधे भेज देनेके लिए लिख दे। 'गीता' के १८ वें अध्याय [के ६६वें श्लोक]का जो तूने अर्थ लगाया है, वह मेरे अर्थका विरोधी नहीं है। मैंने अपने पत्रमें क्या अर्थ लिखा था, यह कुछ याद नहीं है। किन्तु यदि तू शरण धर्मको एक नया धर्म बना डाले तो मैं तेरा

१. मथुरादासका पुत्र।

विरोध ही करूँगा। मैंने ऐसा कई बार देखा है कि हमें जो कहना है या जो हम कहना चाहते हैं, उसे किसी और व्यक्तिने दूसरे शब्दोंमें कह दिया है। दोनोंमें कोई भेद या विरोध देखनेके बदले मैं तो अर्थका साम्य ही देखता हूँ। भाषा अलग हो तो क्या? ऐसा करनेमें कितनी जोखिम है, यह मैं जानता हूँ। किन्तु यह जोखिम तो उनके लिए है जो किसी-न-किसी तरह ऐक्य देखने या सिद्ध करनेके इच्छुक हैं। ऐसा लगता है कि जो सहज ऐक्य देख पाते हैं, उन्हें कोई जोखिम नहीं उठानी पड़ती। इसलिए, बात तो सिर्फ यह रह जाती है कि ऐक्य देखनेकी आदत डालना अच्छा है या जहाँ शब्दभेद है, वहाँ शब्दभेद है, ऐसा मानना अच्छा है। मुझे लगता है कि शब्दभेदमें अर्थभेद देखना भयंकर है। 'ईश्वर' और 'अल्लाह' में भेद देखनेके बदले उनमें ऐक्य देखना मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है।

किशोरलाल और जयरामदासके सिवा दूसरा कोई तुम्हारे साथ नहीं लगता। उन दोनोंसे कहना कि अपने सामान्य पत्रको छोड़े बिना मुझे लिख सकते हों तो लिखें, या मुझे जो लिखना हो, वह सामान्य पत्रमें ही लिख भेजें। जयरामदासका एक पत्र तो मुझे मिला था। मैंने उसका जवाब भी दिया था। तारामतीको भेजे जानेवाले पत्रके स्थानपर मुझे पत्र लिखनेकी कोई जरूरत नहीं है। तारामतीको लिखो तो उसमें मुझे लिखनेकी सब बातें लिख डालना काफी होगा। या तारामतीको लिखनेकी बातें मेरे पत्रमें लिखनेसे भी काम चलेगा।

हम तीनों मजेमें रहते हैं। मैंने दूध लेना तो तीन महीनेसे छोड़ दिया है। दूधके बदले बादाम और रोटी लेता हूँ। अभी तो वजन टिका हुआ है। कब्जकी बिलकुल शिकायत नहीं है। इसलिए अभी तो इसी तरह निर्वाह कर रहा हूँ।

महादेव कह रहा है कि मराठीमें 'लग्नभंग' को 'विवाह-विच्छेद' कहते हैं। मुझे 'लग्नछेद' या 'विवाह-छेद' शब्दोंका विचार आया था, लेकिन 'लग्नभंग' ज्यादा अच्छा लगा। किन्तु भारतकी भाषाओंके लिए नये शब्द बनायें तो एक ही शब्द होना ज्यादा अच्छा है। इसके पक्षमें होनेके कारण मैं 'विवाह-विच्छेद' शब्दका भी प्रचलन करूँ और शायद उसे पसन्द भी करूँ।

वहाँकी मित्र-मण्डलीको हम तीनोंके यथायोग्य।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १०७–९।

४८४. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

३ मई, १९३२

बहनो,

आज जो डाक गई है उसमें तुम्हें पत्र भेजना था, किन्तु जल्दीमें और समय कम होनेके कारण नहीं लिख सका। डाक दे देनेके बाद याद आया; तब भी पत्र लिखकर भेज सकता था; लेकिन जाने दिया। गंगादेवीकी देख-भालमें सभी बहनें हिस्सा लेती होंगी। हमारा उद्देश्य तो यह है कि आश्रममें बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक किसीको ऐसा नहीं लगना चाहिए कि उसका कोई सम्बन्धी नहीं है। जो धर्मकी रीतिसे चलते हैं, वे पहले उनका ध्यान रखें जिन्हें पराया माना जाता है। जो अपने हैं, उनकी संभाल तो होगी ही। किन्तु यदि परायोंको पहले देखनेकी आदत डाल लें तो अन्ततक पूरा सामंजस्य बैठ जाना सम्भव है। मणिबहनकी कक्षामें रबारियोंके[1] बच्चे आते हैं, इसके लिए उसे शाबाश! बालिकाओंके बारेमें तुमने जो लिखा है वह मुझे अच्छा लगा है। जैसा लिखा है उनके साथ वैसा ही व्यवहार कर सको तो यह बहुत बड़ी प्रगति मानी जायेगी। दो लड़कियोंके पत्रमें यह प्रश्न है: क्या लड़कियाँ सिरके लिए पिन और क्लिप इस्तेमाल कर सकती हैं? रिबनसे बाल बाँध सकती हैं? मैंने उचित उत्तर दे दिया है। परन्तु यह बात तुम्हारे सामने रखता हूँ। मुझे लगता है कि दोनोंमें से एक भी चीज जरूरी नहीं है। पहले तो ये इस्तेमाल नहीं होती थीं। पश्चिममें बाल अनेक प्रकारसे बाँधे जाते हैं। इसलिए एक ही स्त्री कई पिनें और क्लिपें इस्तेमाल करती है। रिबनका तो ठिकाना ही नहीं। लेकिन हमें तो बाहरी साज-शृंगारकी जरूरत नहीं। वह हमारे लिए उचित नहीं। हमारा कर्त्तव्य तो कंजूसकी तरह पाई-पाई बचाना है। क्योंकि हमें जो धन मिलता है उसके हम मालिक नहीं, रक्षक हैं, इसलिए उसमें से देहके लिए केवल अन्न-वस्त्रके लायक धन लेनेका हमें अधिकार है। उसमें पिन आदिके लिए गुंजाइश नहीं है, ऐसा मैं मानता हूँ। हमें अपने और बालकोंके लिए इस तरह आनन्द जुटाना है जो हमें शोभा दे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ९०९१ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१. ग्वालोंकी एक जाति।

४८५. पत्र : ई० ई० डॉयलको

४ मई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

बेलगाँव सेन्ट्रल जेलमें मेरे जो चार मित्र व सहयोगी हैं[१], उनके सम्बन्धमें आपने २ तारीखको ही तुरन्त जवाब[२] दे दिया, इसके लिए धन्यवाद। मैंने सोचा था कि आप मुझे उनका वजन भी बतायेंगे। और अधिक सन्तोषके विचारसे मैं उनका वजन अब भी जानना चाहूँगा।

मैं काका कालेलकरके बारेमें अभीतक चिन्ता-मुक्त नहीं हूँ। उन्हें अक्सर रीढ़के दर्दसे तकलीफ होती है। उन्हें जो खुराक दी जानेकी इजाजत है, उसमें मुझे मक्खनका सर्वथा अभाव दीखता है। शायद आपको याद होगा कि उन्हें यहाँ दूध, रोटी और सब्जियोंके अलावा ४ औंस मक्खनकी भी इजाजत थी, और मैं जानता हूँ कि वह बिना किसी हानिके उतना मक्खन खा लेते थे और उससे उनका वजन भी बढ़ा था और वे महसूस करते थे कि ताकत लौट रही है। यों जब वे यहाँ आये थे, कमजोरी महसूस करते थे और नियमित रूपसे व्यायाम करनेमें उन्हें कष्ट होता था। इसलिए मैं जानना चाहता हूँ कि इस समय उनका वजन कितना है और उनकी रीढ़की हड्डीमें दर्दकी कोई शिकायत है या नहीं। उन्हें मेरे नाम जो पत्र भेजनेकी इजाजत दी गई थी, उसमें उन्होंने साफ लिखा है कि पत्र लिखते समय यानी, पिछली १३ अप्रैलको उनकी रीढ़में दर्द था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

१. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको", २२-४-१९३२ और "पत्र : आर० वा० मार्टिनको", १३-४-१९३२।

२. देखिए परिशिष्ट ८।

४८६. पत्र : पर्सी डब्ल्यू० बार्टलेटको

४ मई, १९३२

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र कविकी अपीलके मसविदेके[१] साथ पिछले शनिवारको[२] ही मिला है। मुझे नहीं मालूम कि क्या आप मुझसे अब कुछ कहनेकी आशा करते हैं। मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि समझौते और शान्तिकी मेरी इच्छा किसीसे कम नहीं हो सकती। इसलिए आप मुझपर यह भरोसा रख सकते हैं कि मैं ऐसा कोई काम नहीं करूँगा जो उनके आड़े आये। मैं वह सभी कुछ करूँगा जिससे राष्ट्रीय सम्मानके अनुरूप समझौते और शान्ति स्थापनाकी सम्भावनायें बढ़ें। जेलकी दीवारोंमें घिरे रहकर मुझे इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहिए।

मुझे खुशी है कि आप तथा अन्य मित्र[३] भारतका दौरा कर सके। आशा करता हूँ कि यहाँकी जलवायुका आपके स्वास्थ्यपर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (३), भाग – १, पृष्ठ १९३।

१. देखिए परिशिष्ट ९।

२. ३० अप्रैलको। भारत सचिव सर सैम्युअल होरने २९ अप्रैलको कॉमन्समें अपने भाषणमें कहा था: "सविनय अवज्ञासे सम्बन्धित किसी भी व्यक्तिके साथ सहयोगका स्पष्टत: ही कोई प्रश्न नहीं हो सकता। यदि श्री गांधी गोलमेज-परिषद्के समय जो सम्बन्ध थे, उन्हें बहाल करनेका रुझान दिखायें तो उन्हें यह तथ्य बिना किसी मध्यस्थके सरकारतक पहुँचानेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। ऐसा करनेपर जो स्थिति होगी, उसपर सरकार ध्यान देगी। परन्तु एक बात बिलकुल स्पष्ट है कि कांग्रेसके सहयोगकी शर्तके रूपमें उसके साथ सौदा करनेका कोई प्रश्न नहीं होगा।" (**हिन्दू**, २४-६-१९३२)

३. रिकंसिलिएशन फैलोशिपके सदस्य, जिन्होंने मार्च, १९३२ में भारतकी यात्रा की थी।

४८७. पत्र : रामदास गांधीको

४ मई, १९३२

चि० रामदास,

कल नारणदासका पत्र मिला। उससे मालूम होता है कि निमु आश्रममें आ गई है।

मुझे डर है कि पिछली बार मुझे जो कहना था, वह शायद मैं समझा नहीं सका। मेरी शुरूसे ही यह राय रही है कि सत्याग्रही भोजनके लिए कहीं भी झगड़ा न करे और जो मिले, उसे ईश्वरकी देन मानकर खा ले।

कैदीके शरीरका मालिक दारोगा है। इसलिए जबतक खुराक इज्जतके साथ मिले, गन्दी न हो और अखाद्य न हो, तबतक उसे ले लिया जाये; और सुपाच्य जान पड़े तो खा ले, नहीं तो फेंक दे। जूठी न की हो तो वापस दे दे। इस जमाने में कैदियोंकी खुराक तय करनेमें थोड़े-बहुत आरोग्यशास्त्रके नियम पाले जाते हैं। लेकिन सिर्फ पानी और रोटी ही दें तो क्या हो?

अधिकारियोंके साथ ऐसे मामलोंमें सन्तुलित चर्चा की जा सकती है, लड़ाई नहीं की जा सकती।

धींगामुस्ती करके बहुत-सी चीजें मिल सकती हैं, मिली हैं; मगर यह हमारे लिए अयोग्य है।

इसलिए मैं मानता हूँ कि सब्जीके बारेमें बिलकुल झगड़ा नहीं होना चाहिए। जिसे अच्छी लगे वह खाये, न लगे वह छोड़ दे। रोटी-दाल मिल जाये, तो भी ईश्वरकी कृपा माननी चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १३५ ।

४८८. पत्र : नानाभाई आई० मशरूवालाको

५ मई, १९३२

भाईश्री नानाभाई,

मणिलाल और सुशीला आयें, तो भी ठीक और न आयें तो भी ठीक। इस बारेमें मैं विवेकपूर्वक तटस्थ हूँ। क्योंकि उसकी प्रतिज्ञाके खयालसे उनके आनेमें ही श्रेय है और उन तीनों[1] की तबीयतकी दृष्टिसे उनका न आना ही श्रेयस्कर है। उसकी प्रतिज्ञाका अर्थ कितनी सख्तीसे लगाते हैं यह तो वे ही जानें; पर मणिलालके स्वभावको मैं जानता हूँ और इसीलिए मुझे पता है कि वह अपनी प्रतिज्ञाका ऐसा स्वतन्त्र और सख्त अर्थ नहीं लेगा और सुशीलाका तो इच्छा-अनिच्छासे उसीमें समावेश हो जाता है। इन दोनोंके बारेमें मेरा विश्लेषण कुछ ऐसा ही है। दोनों ही भोले हैं और भले हैं। अतः वे जहाँ भी होंगे, यथाशक्ति सेवा कर ही लेंगे।

खरी बात तो यह है कि 'अनासक्तियोग'के लिए किशोरलालकी उपस्थिति चाहिए। जबतक मुझे कोई जाग्रत न करे, तबतक 'अनासक्तियोग'को मैं मुँदी आँखों ही देख पाऊँगा। महादेव क्या कर सकेगा, यह मैं देखूँगा। किशोरलालकी टिप्पणियाँ मिलती रहें तो उन्हें मैं अवश्य देख जाऊँगा और जो मुझे सूझते जायेंगे, ऐसे सुधार भी करता जाऊँगा। यह कहना होगा कि तुमने ठीक दिशाओंमें पाँव जमा लिये हैं। क्या सुरेन्द्रका वजन कायम है? ताराके पत्र आते हैं? यहाँसे भी सभीलोग तुम दोनोंको यथायोग्य कहते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६८३) से। सी० डब्ल्यू० ४३२८ से भी; सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला।

१. मणिलाल, सुशीला और उनकी बेटी।

४८९. पत्र : इब्राहीमजी राजकोटवालाको

५ मई, १९३२

आपका पत्र मिला। ईश्वरकी हस्तीके लिए बुद्धिसे प्रमाण माँगो, तो कहाँसे मिले? कारण, ईश्वर बुद्धिसे परे है। अगर ऐसा कहें कि बुद्धिसे आगे कुछ नहीं है, तो जरूर मुश्किल पैदा होती है। बुद्धिको ही सर्वोत्तम पद दे दें, तो हम बड़ी मुश्किलमें पड़ जाते हैं। खुद हमारा जीव या आत्मा ही बुद्धिसे परे है। उसका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिए बुद्धिके प्रयोग हुए हैं। यही बात ईश्वरके बारेमें भी कही जा सकती है। मगर जिसने आत्मा और ईश्वरको बुद्धिसे ही जाना है, उसने कुछ भी नहीं जाना। बुद्धि भले ही किसी समय ज्ञान प्राप्त करनेमें मददगार हुई हो। मगर जो आदमी वहीं अटक जाता है, वह आत्मज्ञानका लाभ तो बिलकुल नहीं उठा सकता। जिस तरह कोई अनाज खानेके फायदे बुद्धिसे जानता हो, तो वह अनाज खानेसे होनेवाला फायदा नहीं उठा सकता। आत्मा या ईश्वर जाननेकी चीज नहीं है। वह खुद जाननेवाला है। और इसीलिए वह बुद्धिसे परे है। ईश्वरको पहचाननेकी दो मंजिलें हैं। पहली मंजिल श्रद्धा और दूसरी तथा आखिरी मंजिल उससे होनेवाला अनुभव-ज्ञान। दुनियाके बड़े-से-बड़े शिक्षकोंने अपने अनुभवोंकी गवाही दी है। और दुनिया मूर्ख समझकर जिनकी अवज्ञा कर सकती है, उन्होंने भी अपनी श्रद्धाका सबूत दिया है। इनकी श्रद्धापर हम अपनी श्रद्धाका निर्माण करें, तो किसी दिन अनुभव भी मिल जायेगा। एक आदमी दूसरेको आँखोंसे देखे, मगर बहरा होनेके कारण उसकी कुछ भी सुने नहीं और फिर शिकायत करे कि मैंने उसे सुना नहीं, तो यह ठीक नहीं है। इसी तरह बुद्धिसे ईश्वरको नहीं पहचाना जा सकता, यह वाक्य अज्ञान-सूचक है। जैसे सुनना आँखका विषय नहीं है, वैसे ईश्वरको पहचानना इन्द्रियोंका या बुद्धिका विषय नहीं है। इसके लिए दूसरी ही शक्ति चाहिए और वह है अचल श्रद्धा। हमने देखा है कि बुद्धिको क्षण-क्षणमें भरमाया जा सकता है। लेकिन सच्ची श्रद्धाको भरमा सके, ऐसा माईका लाल आजतक पृथ्वीपर देखनेमें नहीं आया।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १३६–७।

४९०. तार: गंगाबहन वैद्यको[1]

६ मई, १९३२

गंगाबहनकी मृत्युका समाचार जानकर हम सबको दुःख हुआ। मुझे खुशी है कि उन्होंने अमर श्रद्धाके साथ सुन्दर जीवन जिया और सुन्दर मृत्यु पायी। तोतारामजी[2] आनन्दमें हैं, इसमें आश्चर्य नहीं।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १३८।

४९१. पत्र: सरोजिनी नायडूको

६ मई, १९३२

मैं नहीं कह सकता कि मैं लीलामणिके उत्साहमें उसका साथ दे सकता हूँ या नहीं।[3] वीरता अपेक्षाकृत अधिक कठिन तत्त्वोंसे बनी होती है। उदार सूरमा वह है जिसका व्यवहार उन सर्वथा अनजाने लोगोंके प्रति भी बिलकुल निर्दोष रहता है जिन्हें मददकी जरूरत होती है, लेकिन जो बदलेमें उसे कुछ नहीं दे सकते – यहाँतक कि जो धन्यवादके कुछ शब्द कह पानेमें भी असमर्थ होते हैं। लेकिन इन बातोंके बारेमें किसी और दिन और किसी और मौकेपर कहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १०२।

१. यह गंगाबहन वैद्यके उस पत्रके उत्तरमें भेजा गया था जिसमें उन्होंने गंगादेवी सनाढ्यकी मृत्युकी सूचना दी थी।

२. गंगादेवीके पति तोताराम सनाढ्य।

३. साधन-सूत्रमें महादेव देसाई लिखते हैं: "सरोजिनी देवीने अपनी बेटी लीलाको लिखा था कि गिरफ्तारीके बाद उन्हें ताजमहल (होटल) में सोनेकी अनुमति दी गई थी; इससे लीलाको मध्ययुगीन सूरमाओंकी उदारताकी याद आ गई"। (**महादेवभाईनी डायरी,** भाग १, पृष्ठ १०२)

४९२. पत्र : मीराबहनको

६ मई, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र आशानुसार समयपर मिला।

क्या तुम्हें डाह्याभाईकी दुबली-पतली पत्नी यशोदाकी याद है। वह इतवारको नहीं रही। यह उसके लिए कष्ट-मुक्ति थी। उसे दौरे पड़ते थे और उसकी याद-दाश्त लगभग समाप्त हो चुकी थी। इससे वल्लभभाई पर बोझ और बढ़ जायेगा, क्योंकि वह अपने पीछे लगभग पाँच सालका तेजस्वी बालक छोड़ गई है। लेकिन उनके कन्धे मजबूत हैं।

मेरा वजन १०४ और १०६ के बीच रहता है। इसलिए मैं खुराकमें कोई फेरफार नहीं कर रहा हूँ। बादामकी लुगदीके बजाय मूँगफलीकी लुगदी लेनेकी कोशिश कर रहा हूँ। अगर यह बादामकी तरह माफिक आ गई तो अच्छा रहेगा। और लोग भी सकुशल हैं।

मगनचक्र[1] कल मिला। मैं उसे आजमाऊँगा। इससे मुझे बाईं कोहनीको पूरा आराम देनेका मौका मिल जायेगा। और प्रभुदास जब यह सुनेगा कि मैं उसके आविष्कारकी परीक्षा कर रहा हूँ, तो बड़ा प्रसन्न होगा। हाँ, मैं इधर कुछ समयसे दाहिने हाथसे तार खींचने लगा था। यह अभ्यास इसमें बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

मुझे खुशी है कि तुमने दायें हाथके बजाय बायें हाथसे काम लेना आरम्भ कर दिया है। सिर्फ लिखनेके लिए ही ऐसा नहीं करना चाहिए। बायें हाथसे खानेका भी प्रयत्न करो। थोड़ी-सी सावधानीके सिवाय किसी खास प्रयत्नकी आवश्यकता मालूम नहीं होती।

मुझे प्रसन्नता है कि तुम कुछ दिन सरोजिनीके[2] साथ थीं और उनकी सेवा कर सकीं।

मैंने अपने बाधक बननेके बारेमें जो-कुछ लिखा है, वह बिलकुल सच है। मैं किसी चीजको शुरू करनेमें सहायक हो सकता हूँ, लेकिन उसपर स्वयं अमल न कर सकनेके कारण उसकी आगेकी प्रगतिमें बाधक ही बन जाता हूँ। स्वेच्छापूर्वक अपनाई हुई दरिद्रताका आदर्श बहुत आकर्षक है। हमने प्रगति की है, मगर चूँकि मैं अपने खुदके जीवनमें उस आदर्शपर बिलकुल नहीं चल सका हूँ, इसलिए आश्रममें और लोगोंके लिए बहुत प्रगति करना कठिन हो गया है। उनकी इच्छा तो है, परन्तु उनके सामने

१. "इस चरखेमें दो तकुए होते हैं और वे पैरसे चलते हैं। चूँकि बापू एक ही तकुआ काममें लेते थे, इसलिए उनके एक हाथको इससे पूरा आराम मिल गया था।"—मीराबहन

२. "श्रीमती सरोजिनी नायडू गिरफ्तार करके आर्थर रोड जेलमें लाई गई थीं; थोड़े ही दिनोंके बाद वे यरवदा सेन्ट्रल जेलके महिला-कक्षमें भेज दी गई थीं।"—मीराबहन

काई परिपूर्ण प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं है। हमारे यहाँ दो लुभावने बिल्लीके बच्चे हैं। वे अपनी माताके मूक आचरणसे शिक्षा ग्रहण करते हैं। वह उन्हें अपनी आँखोंसे ओझल नहीं होने देती। असल बात अमल करनेकी है। और अभी तो मैं बहुत-सी बातोंमें पूरी तरह असफल होता रहता हूँ। परन्तु जो अनिवार्य है उसपर शोक करनेसे क्या लाभ?

अभी नारणदासका कार्ड मिला है कि गंगादेवी चल बसीं। वे रामनाम लेती हुई खुशी-खुशी गईं। वे और तोतारामजी आश्रमके भूषण थे।

शायद हम जल्दी ही मिलेंगे।[1]

हम सबकी तरफसे प्यार।

बापू

[पुनश्च:]

मैंने 'मगनचक्र' पर २४ तार काते। नारणदास पूछते हैं कि क्या तुम १८ तारीखको मुझसे मिल सकोगी। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, तुम अवश्य ही मिल सकती हो।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२१९)से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६८५ से भी।

४९३. पत्र : ई० ई० डॉयलको

७ मई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

काका कालेलकरके मेरे नाम लिखे पत्रसे यह पता चला कि यद्यपि वे तथा सर्वश्री नरहरि परीख और प्रभुदास गांधी वीसापुरमें साथ रखे गये थे, पर बेलगाँव सेन्ट्रल जेलमें दाखिल किए जाते समय उन्हें अलग कर दिया गया है। वे सब आश्रमवासी हैं। प्रभुदास गांधी काका कालेलकरका शिष्य था और नरहरि परीख उनके सहायक व साथी। मैं नहीं समझता कि उन्हें एक-दूसरेसे अलग करनेका कोई कारण है। यदि कोई कारण नहीं है, तो आप शायद मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि काका और प्रभुदास गांधी दोनोंके स्वास्थ्यकी इस समय जो हालत है, उसमें यदि वे तीनों साथ हों तो एक-दूसरेके लिए सहायक हो सकते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

१. "मेरी तीन मासकी सजा पूरी होने आ रही थी।" — मीराबहन

४९४. पत्र : ई० ई० डॉयलको

७ मई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

मैं एक मामला आपके ध्यानमें लाना चाहता हूँ जिसके कारण मेरे मनमें खीझ तक पैदा हो गई है। दो महीनेसे ऊपर हुए, सरदार वल्लभभाईने दो पत्र लिखे थे, एक बम्बईमें अपने लड़केको और एक अहमदाबादमें श्री जी० वी० मावलंकरको। दोनों ही पत्र कामकाजी किस्मके थे। वे यथोचित ढंगसे अधिकृत थे, लेकिन उन लोगोंके पास पहुँचे ही नहीं। २६ मार्चको श्रीयुत महादेव देसाईने साबरमती आश्रममें अपनी पत्नीको अपना मासिक पत्र लिखा था। वह उनके पास नहीं पहुँचा। २८ तारीखको मैंने एक पत्र अनुमति प्राप्त करके आश्रममें अपने बच्चेको लिखा था जिससे कोई गलती हुई थी। वह पत्र उसके पत्रके जवाबमें लिखा गया था और अत्यन्त आवश्यक था। वह पत्र आश्रमवालोंको नहीं मिला, हालाँकि उसके बादवाले पत्र वहाँ पहुँच गये। लगभग हमेशा ही आश्रमकी डाक जिस दिन पहुँचनी चाहिए, उसके दो-तीन दिन बाद ही पहुँचती है। मैं इस सबसे यह समझता हूँ कि कुछ पत्र तो एकदम रोक लिये जाते हैं और जो रोके नहीं जाते, उन्हें पहुँचानेमें किसी अधिकारी द्वारा बीचमें ही देर कर दी जाती है। मैं जानता हूँ कि सत्याग्रहियोंके पत्र-व्यवहारकी कड़ी सेंसर की जाती है। मुझे उसके विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। लेकिन मैं समझता हूँ कि जेलसे भेजे जानेवाले पत्रादि, जिनका जेल-अधिकारियोंने यथोचित ढंगसे निरीक्षण कर लिया हो, आगेके सेंसर तथा उससे होनेवाली देर या बिलकुल ही रोक लिए जानेके खतरेसे बरी होने चाहिए। मैं व्यर्थ ही पत्र नहीं लिखता और आशा है कि जिन शर्तोंके अधीन पत्र लिखनेकी अनुमति मुझे मिली है, उनका पालन करनेमें सावधान हूँ। यदि उनके दोहरे सेंसरकी जरूरत हो तो हमें वैसा बता देना बेहतर होगा। यदि जेल-अधिकारियों-द्वारा देखकर भेज दिये जानेके बाद भी वे पत्र रोके जाते हैं, तो मैं समझता हूँ कि हमें यह मालूम होना चाहिए कि वे रोक दिये गये हैं। जो पत्र मैंने अपने बच्चेको भेजा था वह उसके आगेके आचरणको प्रभावित करनेके लिए था और उसके साथ एक मूल पत्र संलग्न था जिसे मेरे बच्चेने मेरे देखनेके लिए भेजा था और यह चाहा था कि वह उसके पास वापस भेज दिया जाये। मुझे एक भी ऐसी पंक्ति लिखनेकी कतई इच्छा नहीं जिसे मैं चाहूँ कि कोई सरकारी अफसर न देखे। लेकिन जब कैदियोंके भेजे गये वे पत्र भी जिन्हें जेल-अधिकारी आपत्तिजनक नहीं मानते, देरसे पहुँचते हैं या बीचमें रोक लिये जाते हैं तो मैं इस बातका जरूर बुरा मानता हूँ।

इसलिए यदि आप कृपया सम्बन्धित अधिकारियोंसे इन पत्रोंके बारेमें पता लगायें, तो मैं आपका आभारी होउंगा। यदि ऐसा पता लगा कि मेरे सन्देह निराधार थे और इस पत्र-व्यवहारके साथ कोई छेड़-छाड़ नहीं हुई और देरी यों ही हो गई

और लापता पत्र मिल गये तथा जिन्हें वे भेजे गये थे उन्हें पहुँचा दिये गये तो मुझे खुशी होगी।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (३०), भाग – १, पृष्ठ २४७–८।

४९५. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

७ मई, १९३२

चि० प्रेमा,

आध्यात्मिक लेखा-जोखा[1] निकालनेकी आदत पड़ जाये तो झूठा संकोच दूर हो जाता है और हम जैसे होते हैं उसी रूपमें दुनियाको दिखाई देने लगते हैं। स्पष्ट है कि यह बात सच्चे मनुष्योंपर ही लागू होती है। झूठे मनुष्य अपना लेखा-जोखा लम्बे अर्सेतक निकाल ही नहीं सकते। उनके लिए यह असम्भव है।

नारणदासके बारेमें तूने जो लिखा है, वह सब मैं मानता हूँ। उसे शक्तिसे ज्यादा काम हाथमें लेना ही नहीं चाहिए। किसीको भी नहीं लेना चाहिए। लेकिन सामान्यतः मनुष्य अपनेको धोखा देता है। वह अपने प्रति बहुत उदार रहता है और अपने किये हुए थोड़े-से कामको भी शक्तिसे बाहरका मान बैठता है। इसलिए सामान्यतः कोई ज्यादा काम करता है तो उसे रोकनेकी इच्छा नहीं होती। लेकिन नारणदासका पन्थ न्यारा ही है। वह हमेशा बहुत काम हाथमें ले लेता है। लेकिन समयपर काम करनेकी आदत होनेके कारण शायद अनजान आदमी उसका काम न देख सके। ऐसा है, इसीलिए नारणदास नया बोझ न उठाये यही ठीक है। मैंने उसे लिखा है[2]। तू ध्यान रखना।

आध्यात्मिक लेखा-जोखा निकालनेके बारेमें मैंने जो लिखा है, उससे कोई जड़-वत् नहीं बनेगा। अगर आश्रममें रहकर एक भी आदमी जड़वत् बने, तो मैं हमारी कार्य-पद्धतिमें दोष मानूंगा। यह मैं जानता हूँ कि हमारी कार्य-पद्धति पूर्ण नहीं है। लेकिन आश्रममें रहनेवाला कोई जड़ नहीं बना है और कितने ही जड़-जैसे आदमी चेतन बने हैं। इससे मैं अनुमान लगाता हूँ कि हमारी कार्य-पद्धति ज्यादा नहीं तो कम-से-कम ५१ प्रतिशत तो कुशल होनी ही चाहिए। आश्रममें विविध प्रवृत्तियोंके संचालक उन प्रवृत्तियोंके विशारद नहीं हैं। इसमें किसीका दोष नहीं है। लेकिन फिर भी आश्रमने नई प्रवृत्ति हाथमें ली है या पुरानीको नई दृष्टिसे चलानेका संकल्प किया है। इसलिए विशेषज्ञोंको आश्रममें तैयार करनेकी जिम्मेदारी हमपर आई है,

१ और २. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ४/९-५-१९३२।

जिससे समयका, द्रव्यका कुछ अनुचित जान पड़नेवाला व्यय हुआ है। और ऐसा करनेके बावजूद आश्रम बहुत बार कीर्ति-लाभ भी नहीं कर सका। लेकिन आश्रम कीर्ति-लाभके लिए नहीं, सेवाके लिए है। सेवा करते हुए उसकी कीर्ति बढ़े तो अच्छा लगे। लेकिन निन्दा हो तो भी उसे सेवा तो करनी ही चाहिए। इसका सार यह निकला कि जैसे-जैसे हम कुशल होते जायेंगे वैसे-वैसे हमारे कार्यका मापदण्ड बढ़ता जायेगा और फिर भी उसका भार हमें कम लगेगा। इसका ताजा उदाहरण यह है। बायें हाथसे चक्र घुमानेके पहले दिन मेरे सिर्फ ९३ तार निकले। समय ज्यादा लगा। थकान ज्यादा मालूम हुई। धीरे-धीरे कुशलता बढ़ी। इसलिए थोड़े समयमें दो सौसे भी ज्यादा तार निकलने लगे और थकान पहलेसे कम लगी। अब मगन-चरखा अपनाया है। कल २४ तार ही निकाले और समय बहुत लगा। आज थोड़े समयमें ५६ तार निकाले; थकान थोड़ी लगी। जो बात एक व्यक्ति और उसके छोटे-से कामके बारेमें सच है, वही संस्था और उसके महान कार्योंके बारेमें भी सच है। 'योगः कर्मसु कौशलम्[1]।' कर्म अर्थात् सेवाकार्य, यज्ञ। हमारी सारी मुसीबतोंकी जड़ हमारी अकुशलतामें है। कुशलता आ जाये तो जो काम हमें अभी कष्टदायी लगता है वही आनन्ददायी लगने लगे। मेरा दृढ़ मत है कि सुव्यवस्थित सात्विक तन्त्रमें कभी कामका बोझ मालूम ही नहीं होना चाहिए।

तू इसी वस्तुको सिद्ध करनेके लिए आश्रममें आई है। यह तुझे कोई सिखानेवाला नहीं है। सबको स्वयं ही वायुमें से यह वस्तु ग्रहण कर लेनी है। जो तेरी तरह ग्रहण नहीं कर सके वह आश्रममें आखिरतक नहीं टिक सकता। जिसे कोई महत्त्वाकांक्षा न हो वह निभ जाये, यह अलग बात है। आश्रम वास्तवमें स्वतन्त्र संस्था है। उसमें जो भी निश्चय करे उसके लिए जितना ऊँचा चढ़ना हो उतना ऊँचा चढ़नेका अवकाश है। उसे कोई यह चीज दे नहीं सकता। तुझे अपने अनुकूल वातावरण खुद पैदा करना है। अपनी सहेलीको तू वहाँ खींच सकती है। लेकिन सच बात तो यह है कि यह स्वार्थीपन कहा जायेगा। तेरे लिए तो वहाँ जो लोग हैं वे ही तेरे सखा और सखी हैं। तुझमें जो गुण हों वे उनमें उँड़ेल। उनमें हों वे गुण तू ले। अगर तू यह मानती हो कि एक-दोके सिवा और किसीके पास तेरे लिए लेने-जैसा कुछ है ही नहीं, तो तू मोहकूपमें पड़ी हुई है। मुझे लगता है कि जगतमें ऐसा कोई भी नहीं है जिससे हम कुछ भी न ले सकें।

रामकृष्णके[2] बारेमें तूने जो लिखा है, उसके सत्य होनेकी पूरी सम्भावना है। मैं अपनेको किसी भी तरह सिद्ध नहीं मानता। इसलिए भूलें भी मुझसे हुआ ही करती होंगी। लेकिन मेरी भूलें निर्दोष होनेके कारण आजतक हानिकर सिद्ध नहीं हुई हैं। इसलिए मैं निश्चिन्त होकर रास्ता तय कर रहा हूँ और साथियोंको भी साथमें लेता जा रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

१. **भगवद्गीता**, अध्याय २, श्लोक ५०।
२. श्री रामकृष्ण परमहंस।

[पुनश्चः]

निश्चेष्ट व्यायाम[1] दुर्बल आदमीसे उसका सहायक करवाता है; जैसे, मालिश या अर्ध-शीर्षासन, अर्ध-सर्वांगासन, सिर्फ पैर या हाथ धीरे-धीरे ऊँचे करना। इसमें बीमार पड़ा रहता है और मानसिक सहयोग-भर देता है। तू समझी ?

प्रार्थनापर बहुत बार हमले हुए हैं। लेकिन वह १६ वर्षसे टिकी हुई है। इसमें कितना समय जाता है ? कितना बचाया जा सकता है ? जो प्रार्थनाकी आवश्यकताको मानता है, वह उससे द्वेष नहीं करेगा। दोष सभीमें देखे जा सकते हैं। लेकिन यह प्रार्थना कुल मिलाकर ठीक मालूम हुई है। मुझे बता कि तू क्या परिवर्तन करना चाहती है ?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८४) से। सी० डब्ल्यू० ६७३२से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

४९६. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

७ मई, १९३२

चि० परसराम,

रिपोर्ट सुन्दर है। किशोरीकान्त नाम अपनाना ठीक नहीं है[2]। और फिर ऐसा नाम रखनेके पीछे जो हेतु है वह भी दूषित है। मेरे सम्बन्धमें लेख न लिखा गया होता तो ठीक था। पर अब जो हो चुका उसके लिए खेद नहीं करना चाहिए। अब भविष्यमें न लिखना। पुस्तकें रखना परिग्रह नहीं माना जाता। वे 'तुम्हारी' हैं भी नहीं। यही बात परचियोंकी है।

यह कोई नियम नहीं है कि जिसके सन्तान नहीं होती वह शुष्क हृदय होता है। रसायन इत्यादिके द्वारा ईश्वरकी खोज की जा सकती है, पर वह कुछ ही लोगोंके लिए सम्भव है। आकाश-दर्शन तो सहज-साध्य है। 'डायरी' जैसी रखी जायेगी वैसा ही उसका प्रभाव होगा।

बापू

[पुनश्चः]

हिन्दीकी रिपोर्ट बढ़िया है। बिक्री-विभागमें कौन है ?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७९७) से। सी० डब्ल्यू० ४९७४ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा।

१. देखिए "पत्र : प्रेमाबहन कंटकको" २२-४-१९३२।

२. परशुराम मेहरोत्रा अपनी स्वर्गीय पत्नी राजकिशोरीकी यादमें अपना नया नाम 'किशोरीकान्त' रखना चाहते थे।

४९७. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

८ मई, १९३२

चि० भगवानजी,

नारणदास तुम्हारी बात नहीं सुनते, ऐसी शिकायतकी ध्वनि तुम्हारे पत्रसे निकलती है। पर ऐसा मत मानो। तुमने बात कह दी, अतः तुमने अपना फर्ज अदा कर दिया। तुमने अपनी बात अनासक्तिपूर्वक कही है न?

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३४७) से; सौजन्य: भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्या।

४९८. पत्र : बनारसीलाल और रुक्मिणी बजाजको

८ मई, १९३२

चि० बनारसी,

तुमने जो लिखा वह मैं पढ़ गया। मेरे नाम पिताजीका पत्र भी है, वह तुमने पढ़ा ही होगा। यह वहाँ होकर यहाँ आया है। यह मैं ठीक तौरसे समझ नहीं पाया।

चि० रुक्मिणी,

तेरा पत्र मिला। [पहाड़से] नीचे उतरे कि तुम दोनोंकी तन्दुरुस्ती बिगड़ी। क्या इसका मतलब यह समझें कि दोनोंको अब पहाड़ी स्थानमें ही रहना चाहिए? मुझे उम्मीद है, अब स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया होगा। क्या माधवको घुमाने ले जाती है? किसी भी वजहसे बच्चेकी तबीयत बिगड़ने न पाये। मुझे नियमपूर्वक लिखती रहना। मीराबहनकी तरह पत्र लिखनेका दिन ही मुकर्रर करले तो भूलनेका प्रश्न ही न रहे।

[पुनश्च:]

गंगादेवीके देहान्तका समाचार मिला होगा।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४४२) से; सौजन्य: बनारसीलाल बजाज।

४९९. एक पत्र

८ मई, १९३२

किसी चीजको स्वादके लिए लेना इस व्रतका भंग होगा। जितना शरीरको नीरोग और सशक्त बनाये रखनेके लिए जरूरी हो, खाद्य पदार्थोंमें से केवल उतना ही खाया जाये, यही अस्वाद-व्रतका पालन है। इस व्रतके पालनसे देह नीरोगी और स्वस्थ बनी रहती है। इससे ब्रह्मचर्यका पालन सहज सध जाता है और अन्य प्रकारसे भी मनपर संयम प्राप्त होता है।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०८७)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

५००. एक पत्र

८ मई, १९३२

पिताजी की आज्ञा होते ही चले जाना तेरा धर्म था। आश्रम सभीको अच्छा ही लगता है, सो बात नहीं है। जिसे संयमपूर्वक स्वतन्त्रता रुचती है, आश्रम उसीको अच्छा लगता है।

विशुद्ध दयाके कारण इस जगतमें किसी दिन कोई नुकसान नहीं हुआ। पृथ्वी-राजके बारेमें हमें ठीक तथ्योंका पता नहीं है, इसलिए उस सम्बन्धमें कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। इस तरहकी बातोंमें प्राचीन दृष्टान्तोंका उपयोग कम ही करना चाहिए। जिस औषधिकी परीक्षा आज भी की जा सकती है, उसके भूतकालमें क्या परिणाम हुए, इसे जानकर क्या लाभ?

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०९७)से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

५०१. पत्र : दुर्गा म० देसाईको

८ मई, १९३२

चि० दुर्गा,

'साकेत' का पठन रोनेके लिए नहीं है। उर्मिलाके विषादमें भी ज्ञान भरा है। 'साकेत' को तो रामकी स्तुतिकी दृष्टिसे ही पढ़ा जाना चाहिए। और फिर कहाँ तो उर्मिला और लक्ष्मणका वियोग और कहाँ दुर्गा-महादेवका। इसे भला वियोग कौन कहेगा? [यहाँ तो] पत्र लिखे जा सकते हैं, मिलनेकी इच्छा होनेपर मिला भी जा सकता है। समाचार मिलते हैं। उर्मिलाके लिए तो इसमें से कुछ भी उपलब्ध नहीं था। कहाँ वन और कहाँ मन्दिर! कहाँ दो और कहाँ चौदह वर्ष!

बापू

[पुनश्च :]

मसालोंके बिना शरीर ठीक न रहता हो तो मसालोंका सेवन किया जाये।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४८५) से।

५०२. पत्र : कुसुम देसाईको

८ मई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

अब तुझे पत्र लिखे जायें या नहीं, यह सवाल है। परन्तु तेरा कार्ड आया है इसलिए इतना लिख रहा हूँ। जवाबकी प्रतीक्षा किये बिना धूलिया हो आये[1] तो अच्छा है। परन्तु तेरे पास समय है या नहीं, यह तू जान।

बापू

[पुनश्चः]

लेख[2] में पूरी सावधानी रखना। बेगार न टालना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३६) से।

१. धूलिया-जेलमें कैद प्यारेलालजी तथा श्री गुलजारीलाल नन्दासे मिलने।
२. देखिए "पत्र: कुसुम देसाईको", ८-४-१९३२।

५०३. पत्र : मणिबहन न० परीखको

८ मई, १९३२

चि० मणि (परीख),

मिलना हो गया, यह बहुत अच्छा हुआ। बच्चोंके साथ बात न हो सकी, पर यह जगह जेल जो ठहरी। यहाँ आखिर कितना समय लिया जा सकता है? तुम्हें कमजोरी छोड़ देनी चाहिए। आँखोंसे आँसू नहीं टपकाने चाहिए। शंकरलालको लिख देना कि उससे भेंट न हो सकी, इसका दुःख है पर यह तो यों ही चलेगा। बाबू मिल गया यही बहुत है, पर उसे भी लाड़-प्यार नहीं कर सका।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९६८)से। सी० डब्ल्यू० ३२८५ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई।

५०४. पत्र : महेन्द्र वा० देसाईको

८ मई, १९३२

चि० मनु,

विलायतकी वे सभी बातें जो लिखने योग्य थीं, मैं लिख चुका हूँ। पर भला मैं तेरे-जैसा वर्णन कहीं कर सकता हूँ? हाँ, यदि तू सुन्दर अक्षरोंमें लिखने लगे तो मैं विलायतके अपने और अनुभवोंको सोचकर लिखूँ।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४२९)से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

५०५. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

८ मई, १९३२

चि० पुष्पा,

भारतमाताके गुणोंको समझकर उन्हें धीरे-धीरे अपने [जीवन]में उतारना चाहिए।

केवल एक दिनकी ही घटनाओंको याद रखा जाये तो सर चकराने लगता है। फिर बरसोंकी बातें याद रखी जायें तो क्या हम पागल ही न हो जायें?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८८)से। सी० डब्ल्यू० ३४से भी; सौजन्य: पुष्पाबहन ना० नायक।

५०६. पत्र : विद्या रा० पटेलको

८ मई, १९३२

चि० विद्या,

इस बार तूने अक्षर ठीक ढंगसे लिखे हैं, यह मानना चाहिए। हर बार यदि ध्यानपूर्वक लिखे जायें, तो अक्षर सुधरेंगे ही। यह किससे बनता है, वह कैसे बनता है, ऐसे प्रश्न मैं नहीं जानता। ये प्रश्न तो प्रेमाबहन या अन्य किसीसे वहीं पूछ लेने चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२७)से; सौजन्य: रवीन्द्र रावजीभाई पटेल।

५०७. पत्र : रैहाना तैयबजीको

८ मई, १९३२

ओ रैहाना,

वहाँ बैठी-बैठी क्या कर रही है – कैसी उस्तादनी है – अब हरफ अच्छे बनानेके लिए कापी-बुक मँगवा ली है। आजकलमें शुरू हो जायेगी। उर्दू किताब तो पढ़ रहा हूँ। बात यह है, लोभ बहुत और वक्त कम। खुदाके नामसे और उसीके कामके लिए सब कर रहा हूँ। वह जहाँ चाहेगा, वहाँ ले जायेगा। तुमने तो गाया है ना :

टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा
ए गाफिल रबसे ध्यान लगा
जो काल करे वह आज तू कर
जो आज करे वह अब कर ले ––

'अब कर लेने' की कोशिश हो रही है। अंजाम [पर] पहुँचाना उसीके हाथ है।[1]

इससे अधिक उर्दू-पाठ नहीं लिखूँगा। अन्य कामोंके कारण जितना चाहता हूँ, उतना समय नहीं दे सकता। आबूकी हवासे अब्बाजानको, तुझे और सभीको खूब लाभ हुआ होगा। क्या हमीदाको अभीतक हाजमेकी तकलीफ है? आबू कौन-कौन गये हैं। मैंने तो आबू कभी देखा ही नहीं।

तू सरदार काकाके डाह्याभाईको ठीक पहचानती है? अब्बाजान तो पहचानते ही हैं। उसकी पत्नी यशोदाका देहान्त हुए आज ९ दिन हो गये। एक बच्चा छोड़ गई है। डाह्याभाईको काफी दुःख हुआ है। वे शनिवारको मुझसे मिल गये। यदि अब्बाजानको यह खबर न हो, तो उन्हें बताना।

यदि तुम सब बड़ोदा पहुँच गये हो, तो अब्बाजानकी किताबोंमें अमीर अलीकी लिखी 'स्पिरिट ऑफ इस्लाम' है। यह किताब सरदारके लिए भेजना। मैंने और महादेवने तो पढ़ ली है। सरदारने नहीं पढ़ी।

हम तीनों ही मजा करते हैं। साधारण तौरपर जैसी पड़ती है, उससे इस बार गर्मी कहीं अधिक है।

सोहेला आबू आई थी? या आई है? कमाल तो दिनोंदिन बड़ा हो रहा होगा। उसे खूब प्यार करना।

तुम सभीको हम तीनोंकी ओरसे जो चलते हों – सलाम, आदाब, वन्देमातरम्, दुआ, आशीर्वाद और अब्बाजानको मेरे भुर्र्र्र्।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४३) से।

१. यहाँतक पत्र उर्दूमें है।

५०८. सफाई, सचाई, पवित्रता, स्वच्छता[1]

९ मई, १९३२

धीरू जो मगनचरखा लाया था, उसपर आज मैंने सन्तोषजनक प्रारम्भिक काबू पा लिया है। अतः वल्लभभाईकी तीखी आँखोंने उसके ऊपर लगा हुआ मकड़ीका जाला देखकर उसका जो मजाक किया, उसपर मेरा ध्यान गया। मणिबहन के अत्यधिक सुघड़ होनेका मूल कारण भी मैंने इस बातमें पाया। जिस लिफाफेमें मैं आश्रमकी डाक बन्द किया करता हूँ, वह सरदारकी कुशलताका एक नमूना है। जिसने इन लिफाफोंको न देखा हो, वह देख ले। उनमें सुघड़पनके साथ भारी किफायतशारी भी है। यह बता देना चाहिए कि यहाँकी डाकके लिए बहुत लम्बे लिफाफेकी जरूरत नहीं होती, इसलिए वे एक लिफाफेमें से दो बना लेते हैं। जो बादामी कागज पैकेट आदिमें आता है, वह भी काममें लिया जाता है और उसमें से लिफाफोंके लिए कागज निकल आता है।

यह तो हुई प्रस्तावना। वल्लभभाईकी आलोचनापर मैंने ध्यान दिया; पर मैं तब इस चरखेसे काम लेनेके लिए अधीर हो रहा था। डाक्टर कहा ही करते थे कि बायें हाथसे चरखेका चक्र भी न घुमाओ। मैंने सोचा अगर उसे पाँवसे चलाऊँ तो चरखे के काममें शायद एक दिनकी भी नागा न हो। इसलिए उसपर जल्दी काबू पा लेनेकी धुनमें मैंने वह जाला लगा रहने दिया। आज दाहिने हाथसे काम करनेकी हिम्मत हुई तब चरखेकी सफाईपर ध्यान दिया और एकके बजाय सात जगह जाला देखा। धूल तो जमी ही थी। पीतलके मोढ़ियेपर तेल और धूलका मरहम-जैसा मोटा कीट जमा हुआ था। पिढ़ईपर भी खासा मैल था। यह क्षन्तव्य नहीं माना जाना चाहिए। चरखा दरिद्रनारायणका चक्र है; यह उनकी पूजाका मुख्य साधन है। इसपर मैल चढ़ने देकर हम दरिद्रनारायणका अनादर करते हैं। सामान्यतः मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, आदि स्थानोंकी सफाई रखी जाती है। हम तो मानते हैं कि सारा संसार मन्दिर है। यहाँ एक भी कोना ऐसा नहीं है जहाँ ईश्वर न हो। इसलिए हमारे मतसे तो शयनगृह, भोजनगृह, पुस्तकालय, पाखाना — सभी मन्दिर हैं और मन्दिरकी तरह साफ-सुथरे रहने चाहिए। तब फिर चरखेका तो कहना ही क्या! चरखेकी शक्तिको हम सचमुच ही मानते हों तो बच्चेसे लगाकर बूढ़ेतक कोई भी उसे साफ रखे बिना न रहे।

बिल्लीकी सफाईके बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूँ। इस वक्त उसका अधिक अवलोकन हुआ है। कोई डेढ़ महीने पहले उसके दो बच्चे हुए। उनका रहन-सहन अलौकिक लगता है। तीनों शायद ही कभी अलग देखनेमें आते हों। जब बच्चे चाहते

१. यह "पत्र : नारणदास गांधीको", ४/९-५-१९३२ के साथ भेजा गया था। देखिए अगला शीर्षक।

हैं तब माँ दूध पिलाती है। साथ-साथ दौड़ते हैं और दूध भी पीते जाते हैं; यह दृश्य भव्य होता है। माँको इसमें कोई अटपटापन नहीं लगता। किन्तु बिल्ली सारे काम इसी तरह सबके सामने या चाहे जहाँ नहीं करती। बच्चे जहाँ चलने-फिरने और खेलने योग्य हुए कि माँ ने उन्हें तुरन्त शौचका नियम सिखाया। खुद एकान्तमें जाकर नरम जमीन पंजोंसे खोदकर गढ़ा किया और बच्चोंको उसके ऊपर बैठाया, फिर धूलसे मैलेको ठीक तौरसे ढककर जमीन जैसी थी वैसी कर दी। अब बच्चे रोज इसी रीतिसे निवटते हैं। वे भाई-बहन हैं। चार दिन पहले उनमें से एक जमीन खोदने लगा; पर वह कठिन थी। दूसरा मददको पहुँचा और दोनोंने मिलकर जैसा चाहिए था वैसा गढ़ा खोद लिया। शौचके बाद जमीन ढाँककर चले गये। छोटे-बड़े ऐसे प्राणी जो-कुछ कर सकते हैं, वह हम सहज ही क्यों न करें?

ऊपर शीर्षकमें मैंने एक भावको स्पष्ट करनेके लिए चार शब्दोंका उपयोग किया है। हमें आत्माका बोध है, इसलिए हमारी सफाई भीतर-बाहर दोनोंकी होनी चाहिए। पर अन्दरकी सफाई तो सचाई है। सचाई ही सबसे बड़ी पवित्रता, इसलिए स्वच्छता है। हम बाहरसे साफ-सुथरे हों और अन्तर मैला हो, तो या तो यह आडम्बरमात्र है या दम्भ है या विषयभोगकी निशानी है। इसलिए संयमी स्त्री-पुरुषोंकी स्वच्छता यदि अन्तरकी पवित्रताका लक्षण हो, तभी योग्य है।

हमारा शरीर हमारा महामन्दिर है। हम उसमें बाहरसे कोई मैल न भरें। भीतर मनको कुविचारोंसे मलिन न करें। इस शुचिताको साधनेवाला अपने हरएक काममें स्वच्छता प्रकट करेगा। यह उसके लिए स्वाभाविक वस्तु हो जानी चाहिए।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

५०९. पत्र : नारणदास गांधीको

४/९ मई, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला और उसके साथ प्रेमाबहनकी टीका भी। यह दोनों बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। मुझे लगता है कि तुम कुछ अधीर हो गये हो। तुम्हारा सबसे बड़ा गुण मैं यह मानता हूँ कि तुम अपनी शक्तिसे ज्यादा काम हाथमें नहीं लेते हो। जो लेते हो उसे अच्छी तरह करते हो और मानसिक शान्तिका त्याग नहीं करते। एक ही व्यक्तिमें इन तीनोंका समावेश कम देखनेमें आता है। मुझे लगता है कि तुममें यह दिखाई देता है। उतावलीमें यह गुण खो न जाये, इसका पूरी तरह ध्यान रखना जरूरी है। सभी व्यक्ति हरेक काम नहीं कर सकते। हम देखते हैं कि थोड़े मनुष्य ही सभी कुछ कर पाते हैं; ज्यादातर लोग तो कुछ काम ही कर सकते हैं। तुम बहुत-से काम कर सकते हो, इतना ही काफी है। स्वास्थ्य

और मानसिक शान्ति तथा आनन्द बनाये रखनेके लिए चाहे जितनी जिम्मेदारी उठाओ। उसमें मैं हस्तक्षेप करूँगा, ऐसा नहीं है। किन्तु अधीर होनेपर व्यक्ति यह मर्यादा भूल जाता है। मगनलाल भूल गया था और उसे इसकी पूरी-पूरी कीमत देनी पड़ी। हम उसके उदाहरणसे सीखें। प्रेमाबहन तो मानती है कि तुमने इतना ज्यादा बोझ उठा रखा है कि स्वास्थ्य इसे ज्यादा समयतक बर्दाश्त नहीं कर सकता।[1] लगता है कि कुसुम भी ऐसा ही मानती है। इस सबपर विचार करके जो परिवर्तन ठीक लगे सो कर डालो। दूसरेके विषयमें तुमसे कहीं कुछ उतावली हो गई हो तो उसे सुधार लेना। मुझे लगता है कि इन नियमोंका पालन किया जाना चाहिए।

१. जो मनमें आये सो करनेके लिए एक घंटेका समय मिलना ही चाहिए। नित्यका कोई नियत काम करनेमें इसका उपयोग न किया जाये।

२. प्रार्थनाके समय हमने एक मिनिटका समय मौनके लिए रखा है। इसे पाँच मिनिट कर देना चाहिए। एक व्यक्ति आँखें खुली रखे और पाँच मिनिट पूरे होनेके बाद धीरे-से घंटा बजाये।

३. आवश्यक मजदूरीके काम करते हुए जो समय बचे, उसीमें से कताई आदिके लिए समय निकालो। आवश्यक मजदूरीके काम, जैसे रसोई, पाखाना सफाई, दुग्धालय, खेती और अपने नहाने-धोनेके काम किये बिना छुटकारा ही नहीं है। ये काम अच्छी तरह हों, इसकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

४. एक कामसे दूसरा काम हाथमें लेनेके बीच पर्याप्त समय देना चाहिए।

५. ऐसा प्रबन्ध करनेमें मजदूरोंकी आवश्यकता हो तो आवश्यक संख्यामें मजदूर रखने ही चाहिए। पर मजदूर रखकर भी हमें उन्हें मजदूरकी तरह नहीं मानना है। उनके खान-पानका ठीक प्रबन्ध हो, इसकी हमें पूरी व्यवस्था करनी चाहिए। और उन्हें धीरे-धीरे आश्रम-नियमोंकी ओर आकर्षित करना चाहिए। हम उन्हें ये नियम शुरूसे ही समझा दें।

६. प्रवृत्तियोंको कम करके मजदूरोंके बिना ही काम चला सकें तो यह सर्वोत्तम रहेगा।

क. छोटे-बड़े सभी लोगोंको नौ बजते ही सोनेके लिए चला जाना चाहिए। बारह वर्षसे कम आयुके बालकोंको आठ बजे सो जाना चाहिए। वहाँके अनुभवके आधारपर इसमें सुधार आदि करते रहना। इस विषयमें मैं यहाँ विचार भले ही करता हूँ और तुमको भी विचार करनेके लिए कहता हूँ, तो भी उसमें से जितनेपर अमल हो सके, उतनेपर ही करवाना है। मनमाने ढंगसे रहनेकी अनुमति तो हम मजदूरोंको नहीं दे सकते। मैं ऐसा मानता हूँ कि वे वेतन लेते हुए भी आश्रमवासी हैं।

कुसुमके साथ काफी बातें कर ली हैं; इसलिए अब यहाँ और कुछ नहीं लिखता। इस बार गिरधारी मिल गया। मणिबहन पारेख भी आई थी। मुझे धीरूका स्वास्थ्य ठीक नहीं लगता। डॉक्टर शर्माकी पुस्तक मिल गई है। शब्दकोश भी मिल

१. देखिए "पत्र : प्रेमाबहन कंटकको", ७-५-१९३२।

गया है। छक्कड़दासका सूत बहुत बढ़िया है; एकदम रेशम-जैसा लगता है। देखता हूँ कि उसने इस विषयमें बहुत ध्यान रखा है। अंक तो २० से ज्यादा नहीं होगा, ऐसा महादेव मानता है। तो भी बीस अंकका सूत-सा और मजबूत हो तो मैं इसे ४० अंकके कमजोर और मोटे-पतले सूतसे बहुत ज्यादा अच्छा मानता हूँ।

अच्छा हुआ नीमू आ गई। उसकी माँ क्या वहाँ रहेगी? रहे तो अच्छा है। नीमू हर सप्ताह पत्र लिखे। उस हालतमें रामदासके पास भेजने योग्य खबर भी लिख सकती है।

जमनाको बम्बई भागना ही चाहिए। मैथ्यूका दाँत किसने निकाला था? मुझे लगता है कि वह चाहे तो अपने पिताके घर हो आये। सम्भव है, किसी दिन वह विकसित हो उठे। वह भला है, नम्र है और उसमें अच्छा करनेकी इच्छा तो बहुत है।

गंगाबहनको फिर हींगका चूर्ण और 'चैयार्ज' जितना पहले भेजा था उतना ही और चाहिए। मैं इसके सम्बन्धमें लिख[1] ही चुका हूँ। महादेववाला पार्सल मिल गया है। जेठालालवाला पैकेट[2] तो खो ही गया दिखाई देता है। उसमें क्या-क्या था? रसीदपर किसके हस्ताक्षर हैं?

जेलसे बाहर जानेवाले कैदियोंको हथकड़ियाँ पहनानेका नियम हो और पहनाई जायें तो उसका विरोध न करके आनन्दपूर्वक उन्हें पहनना स्वीकार कर लेना चाहिए। शुरूसे ही मेरा यही विचार है। प्रिटोरियामें जब मुझे गवाही देनेको [जेलसे] कचहरी भेजा गया था, तब हथकड़ियाँ पहनाईं थीं। मुझे तो यह अच्छा लगा था। क्योंकि मनमें ऐसा विचार नहीं था कि मैं दूसरे कैदियोंसे अच्छा हूँ; और किसी भी दिन दूसरे कैदियोंसे भिन्न व्यवहारकी इच्छा भी नहीं थी। आज भी नहीं है। कैदियोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारमें सुधार होना चाहिए, यह अलग प्रश्न है। और बहुत करके इसे बाहरसे हल किया जाना चाहिए। जेलमें रहनेवाले कैदी तो जेलके कठिन-से-कठिन नियमका पालन करके ही नियमोंमें सुधार कर सकते हैं। इसमें एक ही अपवाद है, अच्छी तरहसे देखें तो अपवाद भी नहीं है, और वह यह कि जिसमें कैदीका अपमान हो, ऐसी कोई बात कदापि सहन न की जाये। किन्तु नियमोंमें अपमानका स्थान है ही नहीं। कह सकते हैं कि साधारण तौरपर मेरा यही विचार है। कातनेका आग्रह वही व्यक्ति कर सकता है जिसने संघर्षसे पूर्व नित्य कताई करनेकी प्रतिज्ञा की हो। इतना तो निश्चित ही है। इस विषयमें इससे ज्यादा नहीं लिखा जा सकता। पार्वतीके सम्बन्धमें मैं लिख चुका हूँ। चम्पाको डेढ़ सौ रुपया भेजकर अच्छा किया। इस विषयमें हम बहुत आग्रह नहीं कर सकते। रुई अभीतक नहीं मिली। उसकी जल्दी भी नहीं है, क्योंकि लेडी विट्ठलदासके पाससे चार रतल मिल गई है।

१. देखिए पृष्ठ ३७४।

२. इसमें अनन्तपुरके खादी-केन्द्रकी रिपोर्ट थी।

९ मई, १९३२

रुई मिल गई है। पपीता अच्छा था। रोटी भी अच्छी थी। रुई भेजनेमें खर्च बहुत ज्यादा पड़ा। पर कई बार ऐसा हो जाता है। बादामका साँचा दूसरे दिन ही काममें आया। बहुत मेहनत बची। इस बार सफाईके बारेमें लिखा है।[1] वह बहुत ध्यान देन लायक है। धीरु इतनी गन्दी दशामें चरखा कैसे लाया? तोतारामजी का कोई ऐसा काम हों जो गंगादेवी करती रही हो और जिसे बहनें कर सकती हों तो मालूम करना और उसे किसी बहनको सौंप देना। उनकी खुराककी आवश्यकताओंका ध्यान तो रखते ही हो न? जमनाको बम्बई जल्दी पहुँच जाना चाहिए। ३८ पत्रोंकी सूची साथ ही है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२२५ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५१०. पत्र : रैहाना तैयबजीको

९ मई, १९३२

बिस्मिल्लाह

चिरंजीवी रैहाना,

यह सब देखकर तुम्हारे हँसना नहीं; याद रखो कि मैं काफी बुक लिख रहा हूँ। जिस तरह बच्चे लिखते हैं ठीक उसी तरह मैं भी कोशिश कर रहा हूँ। थककर यह लिख रहा था इतनेमें तुम्हारा खत जिसकी इन्तजारीमें था, आ गया। अब्वाजान और अम्माजान बड़े चालाक हैं, वे जानते हैं कि मेरी राय उनसे मिलती आती है, इससे फरमाते हैं कि तुम्हारे जैसा मैं कहूँ ऐसा करना। ऐसा गोलमाल कर तुम्हारी आजादी छीन ली। और यह भोली पागल लड़की बूढ़ोंके पंजोंमें। अब देखें क्या होता है। आखिर तुम-हम भले ऐसोंके पंजेमें फँस जायें। तुमको आबू जानेसे कुछ फायदा हुआ नहीं लगता।[2]

आजके लिए इतना काफी है न? ऐसे अक्षर लिखनेमें भी बहुत समय लगता है। तुझे ईश्वरने भजन गाना सिखाया है। उन्हें गाया कर और बड़ोंकी जितनी सेवा कर सके, उतनी करनेके बाद सन्तुष्ट रह। सन्तोष भी एक स्वतन्त्र सेवा है। पाशाभाईका लेख भेजना। पाशाभाई चाहे तो अमेरिका जाये। हरएक कदम सोच-समझकर उठाये, इतना ही काफी है। फिर तू उसे सलाह देनेवाली वहाँ है ही। हमीदा जाये तो फौरन पत्र लिखनेके लिए कहना। रोहिणीके पत्रकी मुझे आशा थी।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. पत्र का यह अनुच्छेद् उर्दूमें है।

कमाल मियाँको बहुत-सी दुआएँ। बहुत . . .[1] आशा लगाये हूँ कि किसी दिन दो-चार तमाचे जड़ पाऊँगा। सफेद दाढ़ीको मेरा भुर्रर्र्। सबसे कहना हम रोज याद करते हैं। कोई-न-कोई बात तो निकल ही आती है। हसरतकी गज़लकी तरह है। याद न करनेकी इच्छा होनेपर भी याद आ जाती है। कोई बात याद रखनेकी इच्छा होते हुए भी याद नहीं रहती। कोई बात भुलानेपर भी भूलती नहीं। खुदा कितना खराब है। हमारी मनकी बात कभी होने नहीं देता। गजल गुजरातीमें लिख डाली, यह ठीक किया।

बापूकी दुआएँ

[पुनश्च :]

इस तरह लिफाफे बनाकर देशकी दौलत बढ़ाना सरदार काका का खास काम हो गया है, क्या मैंने यह लिखा है?

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४२)से।

५११. पत्र : तोताराम सनाढ्यको

९ मई, १९३२

भाई तोतारामजी,

गंगादेवी जाने[2] से तुमने दुःख नहिं माना सुनकर मुझे बहोत आनंद हुआ। दुःख माने तो स्वार्थका ही हो सकता था। गंगादेवी तो दुःखसे मुक्त हुई और उनकी तो सद्गति हि है। हम सब तुमको धन्यवाद देते हैं। छगनलाल और गंगाबहेन दुःख प्रदर्शित करते हैं। छगनलाल अपने लडकोंके लिए गंगादेवीने जो कुछ किया उसका स्मरण करके दुःख मनाता है।

मेरे नजदिक गंगादेवी त्यागकी मूर्ति थी और उनके त्यागमें वैराग था। इस लिये वह स्थायी था। हम सबके लिए अनुकरणीय था। तुमारेमें तटस्थ रहनेकी शक्ति मैंने पाइ है। यदि मेरे मंतव्यमें कोई अतिशयता है तो बतलाईये। यदि मेरा मंतव्य ठीक हो तो गंगादेवीके पुण्य स्मरणोंका संग्रह संक्षेपमें करके मुझे भेज दिजीये।

बापु

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० २५३१) से।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।
२. देखिए "तार: गंगाबहन वैद्यको", ६-५-१९३२।

५१२. पत्र : रामचन्द्र ना० खरेको

१० मई, १९३२

चि० रामभाऊ,

तू अब अपनी जवाबदारियोंको ठीक ढंगसे उठाता जान पड़ता है। जिस हाथमें चोट लगी है उसे पूरा आराम देना। मगनचरखेपर अब मेरा हाथ ठीक बैठ गया है। सभ्यताकी पहली सीढ़ी सत्य है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९२) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे।

५१३. पत्र : विद्या रा० पटेलको

१० मई, १९३२

चि० विद्या,

हमें किसी बहसमें नहीं पड़ना चाहिए। बाल कटानेकी इच्छा हो तो कटा लेने चाहिए। कटा लें, तो भार हलका होगा, समय बचेगा, मैल निकलेगा। पर बाल रखना है तो रखें। यदि सब इस कारण रीछ कहने लगें तो चिन्ता नहीं; यह तो विनोद ही हुआ।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४४३) से; सौजन्य : रवीन्द्र रावजीभाई पटेल।

५१४. एक पत्र

१० मई, १९३२

कर्त्तव्यका निश्चय करते समय बहुत-से प्रश्न उठ सकते हैं। परन्तु 'गीता' का निरीक्षण करते वक्त तो इतना ही विचार करना है कि प्रश्न करनेवालेका प्रश्न क्या था? प्रश्नसे बाहर जाकर जो शिक्षक उत्तर देने लगे, वह अनाड़ी कहा जायेगा; क्योंकि पूछनेवालेका ध्यान तो अपने सवालमें ही रहेगा, और दूसरा कुछ सुननेके लिए वह तैयार नहीं होगा। उसमें योग्यता न हो तो उसे अरुचि हो जायेगी। और जिस तरह अनाजका पौधा आस-पास उगे हुए घास-पातमें दब जाता है, वैसे ही उस सवालके जवाबकी इधर-उधरके विवादमें दब जानेकी सम्भावना रहती है। इस दृष्टिसे कृष्णका जवाब परिपूर्ण है। और जब पहला अध्याय छोड़कर हम दूसरेमें प्रवेश करते

हैं, तो उसमें से खालिस अहिंसा ही टपकती है। कृष्णको पूर्ण अवतार मानकर या मनवा कर हमें यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि जैसे किसी शब्दकोशमें शब्दोंका अर्थ मिल जाता है, वैसे ही हमारे मनमें जो-जो प्रश्न उठें उनका अर्थ उनके वचनोंसे सीधा मिल जायेगा। इस तरह मिल भी जाये, तो उससे नुकसान ही होगा। फिर तो मनुष्यके लिए आगे बढ़नेकी बात ही नहीं रह जाती, खोज करनेकी गुंजाइश ही बाकी नहीं रहती। उसकी बुद्धि कुंठित हो जाती है। इसलिए मनुष्योंको अपने-अपने समयकी समस्याएँ खुद ही बड़े प्रयत्नसे और तपश्चर्या करके हल करनी पड़ेंगी। इसलिए अभी हमारे सामने युद्ध आदिके प्रश्नको लेकर जो कठिनाइयाँ आती हैं, उनका निराकरण हम 'गीता' जैसे संस्कारी ग्रन्थमें पाये जानेवाले सिद्धान्तोंकी मददसे करते हैं। सच पूछा जाये तो ऐसी मदद भी बहुत थोड़ी ही मिल सकती है। असली सहायता तपश्चर्यासे होनेवाले अनुभवसे ही मिलती है। आयुर्वेदमें औषधियोंके अनेक गुण बताये गये हैं। रास्ता बतानेके लिए हम उन औषधियों और उनके गुणोंको जानें, यह ठीक है। मगर वे औषधियाँ अनुभवकी कसौटीपर खरी न उतरें तो हमारा ज्ञान बेकार है। इतना ही नहीं, वह भार भी बन सकता है। ठीक इसी तरह हमें जिन्दगीके बड़े सवाल भी हल करने हैं। अब इस विषयमें और कोई बात पूछनेको रही हो तो पूछ लेना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १४६–७।

५१५. पत्र : देवदास गांधीको

११ मई, १९३२

चि० देवदास,

पहली तारीखका लिखा तेरा पत्र कल १०को मिला। यहाँ तो पड़ा नहीं रहा। मेरी दृष्टिसे इतने दिनोंका समय कैदीके लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। उसके समयका मूल्य ही क्या? १३/१२ रुपया प्रति घंटा, क्योंकि एक कैदीके पीछे कुल मिलाकर १३ रुपया खर्च होता है, ऐसी मेरी मान्यता है। मेरे दुर्बल हाथ तो, मुझे लगता है, वृद्धावस्थाकी निशानी हैं। ऐसा कुछ-न-कुछ कई लोगोंको हो जाता है न? यह कमजोरी तो जब मैं दूध लेता था तब भी थी, इस बातको याद रखना चाहिए। यदि ऐसा न होता तो मैं ही घबराकर फिर दूध लेना शुरू कर देता। मेरा ऐसा कौन-सा प्रयोग है जिसका अन्तमें अनिष्ट परिणाम हुआ हो? केवल पिछले एक प्रयोगका[1] मुझे स्मरण है अर्थात्, गोपालरावका। उस प्रयोग को करनेमें मैंने जल्दबाजीकी और उसे छोड़नेमें परिणामकी बड़ी देर राह देखता रहा।

१. आशय सन् १९२९ में किये गये अनपके भोजनके प्रयोगोंसे है; देखिए खण्ड ४१।

उसमें एकके-बाद-एक सभी गिरते गये। फिर भी मैं लगा रहा। आर्थिक दृष्टि से वह प्रयोग अच्छा था। गोपालरावको तो बड़ी श्रद्धा थी। उसको छोड़कर अन्य प्रयोगोंके बारेमें मेरा खयाल ऐसा है कि उनसे मुझे शारीरिक और आत्मिक लाभ हुआ है। इस बार मैं सावधान हूँ। मेरा दुराग्रह नहीं है। बाहर निकलनेपर तो कदाचित् दूध लेना ही पड़ेगा। अतः [यह प्रयोग] यहाँ चलाया जा सके, तभी जारी रखना है। मेरा वजन बना है, इसलिए मेरी तबीयतके बारेमें चिन्ताका कारण जरा भी नहीं है।

तुमने जिन उर्दू-पुस्तकोंका जिक्र किया है, वे जब आ जायेंगी, जरूर पढ़ूँगा। इस बार उर्दूको मैं बहुत देरसे ही हाथमें लेनेवाला था। दूसरा बहुत-कुछ पढ़ जाना था। किन्तु चूँकि रैहाना अपने पत्रोंमें थोड़ी-थोड़ी उर्दू लिखा करती थी, अतः मुझे लगा कि मैं भी उसका जवाब उर्दूमें ही लिखूँ तो ठीक होगा। यों करते हुए मैंने उसे अपनी उर्दू-शिक्षिका ही करार दे दिया और कहा कि वह प्रति सप्ताह मेरी लिखावटकी गलतियाँ सुधार कर भेजे। पर इतनेसे ही मुझे सन्तोष कैसे मिलता। अतः जो उर्दू-पाठ्यपुस्तकें जेलमें थीं, वे लीं और उन्हें पढ़ना शुरू किया। मेरे अक्षर तो बहुत ही खराब हैं, अतः अब एक कापी-बुक और ट्रेसिंग पेपर लिया है। अब देखता हूँ कि उसके सहारे कितना सीख पाता हूँ। एक तरफ यह उर्दू है और दूसरी तरफ मगनचरखा है। प्रभुदासका मन रखनेके लिए और उसकी शक्ति देखनेकी दृष्टिसे इसका प्रयोग तो करना ही था। इस बीच बायें हाथको पूरा आराम देनेका डॉक्टरने आग्रह किया। यह तभी सम्भव था जब दाहिने हाथसे तार खींचूँ और पैरसे चरखा चलाऊँ। यों मगनचरखेके पीछे परेशान हूँ। पैरसे चरखा चलाना और दाहिने हाथसे तार खींचना कठिन लग रहा है। पर अन्ततोगत्वा विजय तो प्राप्त होगी ही। बीचमें जरूर ऐसा लगा था कि मैंने इसपर काबू पा लिया है, किन्तु पुनः वह जाता रहा। आज फिर लगता है कि कुछ जम रहा है, पर यह समय बहुत खा लेता है। तीसरी ओर रस्किन हैं। चौथी तरफ अर्थशास्त्रका अभ्यास प्रारम्भ किया था; पर उसे अभी एक तरफ धर दिया है। पाँचवीं ओर मैथिलीशरणका 'साकेत' है, जिसे ध्यानपूर्वक पढ़नेकी इच्छा है। एक बार तो मैं और महादेव पढ़ गये हैं। वल्लभभाईने भी पढ़ा है। पुस्तक उत्तम लगती है। तू भी वहाँ लेकर पढ़ना, अच्छी लगेगी। तुझे तो यह सरल प्रतीत होगी। 'कल्याण' कार्यालयसे न मिल सके तो मैं भिजवा दूँ। और छठा कार्य है आकाश-दर्शनका; इसमें तो मैं बराबर डूबा हुआ हूँ। प्रायः रोज ही कुछ-न-कुछ पढ़ लेता हूँ। और रातमें [तारोंका] ठीक परिचय पा लेता हूँ। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि मैं इसमें पहलेसे ही क्यों नहीं डूबा। इच्छा तो सदासे बनी रहती थी, पर इतनी प्रबल नहीं थी कि इसे तत्परतापूर्वक कर ही लेना चाहिए। अब तो मुझे लगता है कि आकाश-निवासियोंका परिचय जितना-कुछ सध सके, कर ही लेना चाहिए। और आत्म-सन्तोष के लिए जितना पर्याप्त हो उतना परिचय तो करोड़ों मनुष्य बिना किसी प्रकारका कष्ट उठाये प्राप्त करके उर्ध्वगामी बन सकते हैं। आत्मिक दृष्टिसे, इस परिचयसे

व्यक्तिको सहज ही हृदयका आनन्द मिलता है और उसमें भक्ति-रसकी वृद्धि होती है। यह बात सब लोगोंके विषयमें खरी उतरती हो या नहीं, यह मैं नहीं जानता, पर मुझपर इसका ऐसा ही असर हुआ है इसलिए मैं इसमें लगा हुआ हूँ। तुझसे तो रात्रिमें आकाश-दर्शनका कार्य बिलकुल ही नहीं बन पड़ता होगा। कितने बजे बन्द कर दिये जाते हो? हम तीनों तो खुले आकाशके नीचे सोते हैं। सामने ही शुक्र जगमगाता रहता है। दाहिनी ओर सप्तर्षि, बायीं ओर स्वस्तिक और सिरपर सिंह गरजता होता है और गुरु भी ठीक मस्तकपर ही होता है। मैं हसन निजामीका 'कवण चरित' पढ़ गया हूँ। इसकी जैसी छाप तुझपर पड़ी है, वैसी मुझपर नहीं। जब मैंने इसे पढ़ा, तब तो इसके प्रति मेरे मनमें कोई भ्रम नहीं था। ऐसा होते हुए भी मुझे लगा कि इसके लिखनेमें [लेखकका] हेतु निर्मल नहीं है। इसकी भाषा तो सुन्दर है ही। पर भाषाकी दृष्टिसे तो अन्य उर्दू-पुस्तकें भी बहुत हैं। कठिन शब्दोंका विचार न किया जाये तो शिबलीकी भाषा कोई साधारण थोड़े ही है। अप्टन सिंकलेअरका 'वेट परेड' तुझे जरूर अच्छा लगेगा। अन्य किताबें भी आश्रममें पड़ी ही हैं। दो पुस्तकें मैंने मँगाई हैं। बाकी तो सभी वहीं हैं। पुस्तकोंके खो जानेके सम्बन्धमें महादेवका खयाल क्या है, वह इसमें मिल सकेगा। चरखेके सम्बन्धमें 'नकार' को सहज ही मत मान लेना। मीठी लड़ाई लड़ते जाना। आरोग्य-सम्बन्धी पुस्तक आनेपर देख लूँगा। दिल्लीसे महादेवको लिखा गया पत्र उसे नहीं मिला। लक्ष्मीके पत्र नियमित रूपसे आते रहते हैं और मैं उसी प्रकार नियमपूर्वक लिखता रहता हूँ।

'तेरी दृष्टिसे' तो महादेव दुर्गाको पत्र लिखेगा तब लिखेगा, पर इस पत्रमें वह इतना लिखवाना चाहता है: पुस्तकें खो देनेका जो दोषारोपण उसने तुझपर किया था वह तो सन् १९३० में जो अस्सीके लग-भग पुस्तकें जेलके फाटकसे गुम हो गई थीं, उन्हींको लेकर था। उन्हें कोई लौटा गया, यह तो लौटानेवालेकी भलमनसाहत मानी जायेगी; परन्तु उसकी भलमनसाहतके कारण हमारी लापरवाही कम नहीं हो जाती। तेरे-जैसा साथी मिलता — जैसा कि पहले दो बार मिल चुका था — तो महादेवको विशेष आनन्द मिलता। कभी-कभी रसोई बनाते समय उसे लखनऊमें तेरे साथ रसोई बनानेके दिन याद आ जाते हैं और साथ ही तुम्हारा स्मरण भी। पींजते समय तो वह तुम्हारी याद रोज ही करता है (क्योंकि तुम उसे सहयोग देते थे)। जब कुछ अच्छा-सा पढ़नेके लिए मिल जाता है तब तो वह तुम्हें अवश्य याद करता है (यद्यपि सुबह कातना और पींजना मिलाकर चार-पाँच घंटे लग जाते हैं और फिर मेरे साथ भी दो घंटे बिताता है, फिर विस्तारपूर्वक दैनन्दिनी भी लिखता है, उसमें भी समय लगता है; अतः पढ़नेकी दृष्टिसे अधिक समय नहीं मिल पाता। बाकी, पुस्तकें तो उसके पास भी ढेर पड़ी हैं)। विलायतके प्रसंगमें भी याद करता है; प्रार्थनाके समय गाते हुए, सायंकाल सोडा पीते हुए और इसी तरहके अन्य प्रसंगोंपर भी याद करता रहता है। तुमने 'गीता रहस्य'[1] हिन्दीमें पढ़ा, तो मराठीमें क्यों नहीं पढ़ गये? शिबली यदि पूरा पढ़ सको तो उसमें से सार रूपमें

१. बाल गंगाधर तिलक-द्वारा रचित।

पैगम्बरके जीवन-प्रसंगोंको लेकर गुजरातीमें एक सुन्दर पुस्तक तैयार की जा सकती है। काका, नरहरि, मणि, प्रभुदास, इन चारोंको बेलगाँवमें काफी तकलीफ उठानी पड़ी, पर अब सब-कुछ व्यवस्थित होता जा रहा है। अब तो सभीके साथ पत्र-व्यवहारका सम्बन्ध जुड़ गया है; (यद्यपि जैसा तुम्हारे साथ जुड़ा है, वैसा नहीं) पर यह है तो निरी गाजरकी पुंगी।[१] 'टाइम्स' के अलावा अखबार यहाँ 'लीडर', 'क्रॉनिकल', 'हिन्दू', 'ट्रिब्यून' आते हैं। महादेवके पास इन्हें पढ़नेको अधिक समय नहीं रहता। इस सम्बन्धमें उसकी उदासीनतासे तुम परिचित हो; पर कतरनें वह बराबर काटता-चिपकाता है। (हम दोनोंको पढ़कर ठीक-ठीक सुनानेवाले तो सरदार हैं)। डाकका बोझ भी काफी बढ़ता जा रहा है, यही कहा जायेगा। आश्रमके अलावा बाहरकी डाक (यानी, विलायत और अमेरिकाकी भी) पर्याप्त आती है। रोमाँ रोलाँने अपने एक अमेरिकी मित्रको उनके साथके हमारे निवासके बारेमें एक बहुत ही मनोरंजक पत्र लिखा है। वह यहाँ छपा है। महादेवकी चिपकायी हुई कतरनोंकी कापीमें तुम्हें बहुत-कुछ मिल सकेगा। उसीमें कामके पत्रोंकी नकलें भी रहती ही हैं। जमनालालजी, प्यारेलाल, विनोबा, मणिलाल कोठारी — ये सब धूलियामें आनन्दसे हैं। मथुरादास और किशोरलाल नासिकमें; रामदास, छगनलाल, सुरेन्द्र, आदिकी मण्डली यहाँ; कान्ति आदि लड़के बीसापुरमें; बाको छोड़कर आश्रमकी सारी बहनें प्रायः यहाँ हैं — उनके साथ भी (पत्र-द्वारा) ठीक-ठीक सम्बन्ध बना है। सरदारके डाह्याभाईका घर भंग[२] हो गया, इसकी तुम्हें खबर मिली या नहीं। बेचारी यशोदा तो मुक्त हो गई, यही कहना ठीक होगा, क्योंकि जीवन उसके लिए मृत्युके समान ही था।

इस पत्रका लिफाफा वल्लभभाईने बनाया है। इस प्रकार हम पाई-पाईकी बचत करते हैं। हम सभीके आशीर्वाद तो सदा ही हैं, यों समझना।

श्रीयुत देवदास गांधी
'ए' श्रेणी कैदी
जिला-जेल
गोरखपुर, यू. पी.

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०१६) से।

५१६. पत्र: आश्रमके बच्चोंको

११ मई, १९३२

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनोंके बाद आया है। तुमने जो काम हाथमें लिया है, उसे छोड़ना नहीं। इस कामको अपनी शिक्षा समझना।

१. अभिप्राय ऐसी वस्तुसे है जो चाहे जब धोखा दे सकती है।

२. श्री डाह्याभाईकी पत्नी यशोदाका देहान्त हो गया था।

हम सबको अपना मित्र मानकर क्यों न चलें? विशेष मित्रतामें कटुता भी हो जाती है। किन्तु सभीको मित्र मानें तो हमारा जीवन हर समय आनन्दपूर्ण रहेगा।

संवाद आदिकी तैयारीके लिए उद्योगके समयसे वक्त निकालना पड़े तो तुम्हारे बिना काम चल सकता है या नहीं, इसका विचार करना। किसानों और चरवाहोंके लड़के जैसा करते हैं, वैसा हम भी करें। संवादके लिए अक्षर-ज्ञानके समयसे थोड़ा समय क्यों न निकाल लो। इसपर विचार करना और लिखना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

५१७. पत्र : महेन्द्र वा० देसाईको

११ मई, १९३२

चि० मनु,

इस बारके तेरे अक्षर ठीक हैं। वजन और बढ़ना चाहिए। तू कात रहा है, यह ठीक है। कितने तार?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४३०)से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

५१८. पत्र : पद्माको

११ मई, १९३२

चि० पद्मा,

तेरा पत्र मिला। जो तूने लिखा, वही रामभाऊ और धीरूने लिखा है। जब हाथ काम नहीं देता है तब मैं चक्रको पाँवसे घुमाता हूँ। पूनियाँ बहुत खराब हैं इसलिए मेरी गति सौ तारसे ज्यादा नहीं होती। अच्छी पूनियाँ मिलनेपर १५० तो हो ही जायेगी।

पेटके बारेमें जो सरोजिनीको लिखा है, उसी तरह करना। इसके साथ-साथ रोज सुबह एक गिलास गरम पानी १० ग्रेन सोडा डालकर पी जाया करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१३३) से। सी० डब्ल्यू० ३४८५ से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी।

५१९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

११/१२ मई, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरे वजन और खुराकके बारेमें इसलिए पूछा[1] कि मुझे तेरे स्वास्थ्यके बारेमें शंका हुई। ज्यादा-से-ज्यादा वजन कितना था? सब्जियोंमें क्या वहाँ टमाटर या पालक आदि बिलकुल नहीं पैदा होते? सलाद बोना था, उसका क्या हुआ? सलाद या मेथी तू खुद ही एक छोटी क्यारीमें बो सकती है। वे थोड़े ही दिनमें आ जाते हैं। कोई-न-कोई हरे पत्तोंकी सब्जी तो होनी ही चाहिए। इन्हें कच्चा लें तो बहुत थोड़ेमें काम चल जाता है, इसलिए बो लेना ही ठीक रहता है। टमाटर बारहों महीने क्यों नहीं होते, यह मैं नहीं जानता। पूछकर मालूम करना।

धुरन्धरसे मैं तुरन्त मिला। और अब भी उसके हाल मालूम करता रहता हूँ। क्योंकि कूचमें उसका अच्छा परिचय हुआ था। फिर तेरी खातिर भी उसके जीवनमें रस लेता हूँ, क्योंकि तेरे जीवनमें लेता हूँ। यह व्यक्तिगत प्रेम-विशेषका उदाहरण नहीं है, बल्कि अहिंसाका है। अगर किसी खास व्यक्तिके लिए ही प्रेम हो और दूसरेके प्रति द्वेष, या दूसरेके प्रति प्रेम हो ही न सके, तो वह प्रेम-विशेष है। मुझमें ऐसा प्रेम-विशेष नहीं है, ऐसा मैं मानता हूँ। तेरे लिए मैं जो करता हूँ वह तेरी जरूरतको समझकर, तू मुझसे आशा रखती है, इसलिए; और मेरी अपनी गरजसे भी। क्योंकि मैं तुझसे बहुत आशा रखता हूँ। इसमें तू व्यवहार-बुद्धि देखे तो मैं उससे इनकार नहीं करूँगा। मैं इसे अहिंसक स्वभाव मानता हूँ।

उर्दू-पुस्तकोंकी बात तू भूली नहीं होगी।

आश्रमसे सब एक ही साथ जानेको तैयार हो गये हों, तो मैं उसे ठीक नहीं मानता। लेकिन अब आश्रमको चलते इतने वर्ष हो गये हैं कि मैं उसकी चर्चा नहीं करूँगा। दुखड़ा भी नहीं रोऊँगा। कहीं कुछ गलत हो रहा है, यह समझकर जब मौका आता है तब उसे सुधारनेका प्रयत्न करता हूँ; और जो बात आसानीसे रोकी जा सके उसे रोकता हूँ। आश्रम बिलकुल खाली होता जाता हो और तू आनन्दसे रुक सकती हो, तो रुक जाना और काम करनेवाले वापस आ जायें तब जाना। लेकिन ठीक तो वही होगा जो तू और नारणदास सोचें। मुझे यहाँ बैठे-बैठे क्या मालूम?

१२ मई, १९३२

इसके साथ साप्ताहिक 'हिन्दू' से निकाला हुआ मॉन्टेसरीका लेख भी है। वह महादेवको अच्छा लगा इसलिए उसकी कतरन कटवा ली। देख लेना। कुछ ग्रहण करने-जैसा हो तो करना, नहीं तो जाने देना।

१. देखिए पृष्ठ ३७०-१।

सुशीलाको आनेकी इजाजत मिल गई है। इसलिए जब तू आनेवाली हो तब उसे आना हो, तो साथ ला सकती है।

तेरे किसी भी प्रश्नका उत्तर मैंने जान-बूझकर नहीं टाला है। क्या प्रश्न था, यह मुझे अभी भी याद नहीं आ रहा है। फिरसे पूछेगी तो उत्तर दूँगा।

आश्रममें दी जानेवाली शिक्षाका प्रश्न पुराना है। मैं यह मानता हूँ कि छात्रा-वासोंके साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। नारणदासपर सारा भार है। वह अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार कर सकता है। निर्णय करनेमें तू मदद कर सकती है। मैं खुद एक नियम लागू करना चाहूँगा। बच्चोंके गले हमारी बातें उतरनी चाहिए। वे जितना मजबूर होकर करेंगे वह निरर्थक ही जायेगा और जोर-जबरदस्तीकी परम्परा कायम हो जायेगी। छुट्टी न रखनेकी बात बच्चोंको पसन्द होनी चाहिए।

आश्रमकी पाठशालामें तूने जो-जो किया, उसका काजी मैं नहीं बनूँगा। वहाँ बैठा होता तो जरूर छान-बीन करता, लेकिन यहाँ बैठे-बैठे कुछ नहीं कहूँगा। तू आत्म-निरीक्षण करनेवाली है। इसलिए जहाँ दोष होगा वहाँ आखिर तू उसे सुधार ही लेगी।

मैंने तुझे ब्रह्मज्ञान सिखाना चाहा या क्या चाहा, यह तो दैव ही जाने। लेकिन उसे तू जानती है, ऐसा कहकर ही तूने अपना अज्ञान प्रकट किया है और फिर जो दलीलें दी हैं, वे तेरा अज्ञान सिद्ध करती हैं। बुद्धिसे जो ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्मको जानता ही नहीं। ब्रह्मज्ञान हृदयमें होता है। ब्रह्मज्ञानमें प्रवृत्ति-मात्रका त्याग होता ही नहीं। बाहरसे तो ज्ञानी-अज्ञानी दोनों एक-से होते हैं, लेकिन दोनोंकी प्रवृत्तिके हेतु उत्तर-दक्षिण-जैसे होते हैं। रामनाम ब्रह्मज्ञानका विरोधी नहीं है। वे दोनों एक हो सकते हैं। जो ब्रह्मज्ञानी रामनामसे दूर भागता है, वह अज्ञान-कूपमें पड़ा हुआ है और धोखा खा रहा है। जो मनुष्य ओंठोंसे रामनाम बोलता है, वह ओठोंको सुखाता है और समयका खून करता है। ब्रह्मज्ञान और मेरी शारीरिक उपस्थितिका अच्छा लगना — ये दो विरोधी वस्तुएँ ही हों, ऐसा जरूरी नहीं है। लेकिन मेरी अनुपस्थिति यदि कर्त्तव्य-परायणताको कम करे, तो वह ब्रह्मज्ञान नहीं, मोह है। मुझे ब्रह्मज्ञान है, ऐसा कहनेवालेको बहुत सम्भव है ब्रह्मज्ञान न हो। यह मूक ज्ञान है — स्वयं-प्रकाश है। सूर्यको अपने प्रकाशका प्रमाण अपने मुँहसे बोलकर नहीं देना पड़ता। प्रकाश है, ऐसा हम देख सकते हैं। यही बात ब्रह्मज्ञानके बारेमें है।

मैं जब ब्रिटिश शासनको ठीक मानता था, तब मुझे ऐसा लगता था कि इससे इस देशको अन्तमें लाभ ही होगा और इसके हेतु शुभ हैं। लेकिन इस प्रश्नमें ज्यादा गहरा नहीं उतरा जा सकता।

अमेरिकामें स्त्री-पुरुष-व्यवहारके बारेमें जो साहित्य छपता है, वह मुझे पसन्द नहीं है।

बापू

[पुनश्च:]

इस बारेमें मैं लिखना जरूर चाहता हूँ। बच्चे प्रश्न पूछें तब उन्हें सीधा जवाब देना चाहिए। सिनेमाके बारेमें मैं नहीं जानता। नाटकके लिए स्थान है।

ईश्वर-प्राप्तिके लिए मुझे तो अनासक्ति ही पसन्द आई है। उसमें सब-कुछ आ जाता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८५) से। सी० डब्ल्यू० ६७३३ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

५२०. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१२ मई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

मैंने अपने ४ तारीखके पत्र[1] में जो पूछ-ताछ की थी, उस सिलसिलेमें तुरन्त जवाब भेज देनेके लिए मैं हृदयसे आपका आभारी हूँ। काका कालेलकरकी खुराकमें ३ औंस घी शामिल कर देनेसे, कह सकते हैं, उनके शरीरको जो जरूरत थी, वह पूरी हो जाती है। आपके पत्रमें जो आश्वासन दिये गये हैं, उनसे उन मित्रोंकी चिन्तासे मुझे काफी राहत मिली है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई-सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल सं० ९।

५२१. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको[2]

१२ मई, १९३२

तेरा पत्र मिला। बहुत सुन्दर है। 'जैन दर्शनमें शुद्ध न्याय[3] पर जोर है' इस वाक्यके बारेमें जरा गलतफहमी हुई है। 'शुद्ध न्याय' का अर्थ शुद्ध नीति और शुद्ध निर्णय हो सकता है। और आम तौरपर हम इस शब्दका यही अर्थ समझते हैं। मगर मैंने इस मानीमें इस्तेमाल नहीं किया है। मेरा मतलब यह कहनेका था कि जैन दर्शनमें 'तर्क' पर ज्यादा जोर दिया जाता है। लेकिन 'तर्क' से कभी-कभी उल्टे निर्णय हो जाते हैं और भयंकर परिणाम निकल आते हैं। इसमें दोष तर्कका नहीं

१. देखिए पृष्ठ ३८२।

२. पुरुषोत्तमने लिखा था कि जैन धर्मके शुद्ध न्यायके अनुसार दयाको भी राग ही समझा जाता है फिर उसका रूप कितना ही सात्विक क्यों न हो। इसलिए आपने दयासे प्रेरित होकर बछड़ेके साथ जो हिंसा की है, वह कोई वीतराग मनुष्य नहीं करेगा, अर्थात् वह राग-रहित होनेका लक्षण नहीं है।

३. देखिए पृष्ठ ३१६-७।

है, मगर शुद्ध निर्णयपर पहुँचनेके लिए जो-जो सामग्री प्राप्त होनी चाहिए, वह हमेशा प्राप्त नहीं होती। फिर, यह भी नहीं होता कि लिखने या बोलनेवाला खास शब्दका खास अर्थमें इस्तेमाल करे, तो पढ़ने या सुननेवाला भी वही अर्थ समझे। इसलिए हृदयको यानी भक्ति, श्रद्धा और अनुभवजन्य ज्ञानको आगे रखा गया है। तर्क केवल बुद्धिका विषय है। हृदयको जो चीज सिद्ध हो गई है, वहाँ तर्क यानी बुद्धि नहीं पहुँच सकती, यह बिलकुल जरूरी नहीं है। लेकिन इसके विपरीत यदि किसी बातको बुद्धि मान ले, मगर वह हृदयमें न उतरे, तो त्याज्य हो जाती है। मैंने यह जो कहा है, उसे स्पष्ट करनेके लिए तू अपने-आप अनेक उदाहरण गढ़ सकेगा। मैंने अभी जिस अर्थमें 'न्याय' शब्दका इस्तेमाल किया है, उस अर्थमें यह कभी साध्य वस्तु नहीं हो सकती। न्याय और निष्काम कर्मयोग दोनों साधन हैं। न्याय बुद्धिका विषय है, निष्काम कर्मयोग हृदयका। बुद्धिसे हम निष्कामको नहीं पहुँच सकते।

अब तेरे प्रश्नपर आता हूँ। दया और अहिंसा अलग चीजें नहीं हैं। दया अहिंसाकी विरोधी नहीं है। और विरोधी हो तो वह दया नहीं है। दयाको अहिंसाका मूर्तस्वरूप मान सकते हैं। 'दयाहीन वीतराग पुरुष' यह प्रयोग बिलकुल गलत है। वीतराग पुरुष दयाका सागर होना चाहिए। और जहाँ करोड़ोंके प्रति दयाकी बात है, वहाँ यह कहना कि ऐसी दया सात्त्विक होनेपर भी रागरहित नहीं है, दयाका अर्थ न समझना या दयाका नया अर्थ करना है। आम तौरपर हम दयाका वही अर्थ करते हैं जिसमें तुलसीदासजी ने 'दया' शब्द इस्तेमाल किया है। तुलसीदासजी का अर्थ नीचेके दोहेमें साफ जाहिर है:

दया धर्मका मूल है, पाप (देह) मूल अभिमान।

यहाँ दया सिर्फ अहिंसाके मानीमें ही है। अहिंसा अशरीरी आत्मामें ही सम्भव है। मगर जब आत्मा शरीर धारण करती है, तब उसमें अहिंसा दयाके रूपमें मूर्तिमान होती है। इस दृष्टिसे देखनेपर बछड़ेपर की गई क्रिया शुद्ध अहिंसाका मूर्त रूप[1] थी। आत्मा खुद कष्ट सहन करे, यह उसका स्वभाव ही है। लेकिन दूसरेसे कष्ट सहन कराना आत्माके स्वभावसे उल्टी बात हो गई। अगर बछड़ेके दुःखसे मुझे होनेवाले दुःखको दूर करनेके लिए मैंने उसे मरवाया होता तो वह अहिंसा नहीं होती, मगर बछड़ेको होनेवाला दुःख दूर करना अहिंसा थी। अहिंसाके मूलमें ही दूसरोंको होनेवाला दुःख सहन न करनेकी बात है। इसीसे दया पैदा होती है, वीरता प्रगट होती है और अहिंसाके साथ लगे हुए जितने गुण हैं, वे सभी देखनेमें आते हैं। दूसरोंको होनेवाला दुःख देखते रहनेकी बात कहना उल्टा तर्क करना है। और यह भी निरपवाद सत्य नहीं है कि मनुष्यको जीवनमें होनेवाले दुःखोंसे मरणदुःख अधिक होता है। मेरे खयालसे हमने ही मौतको इतनी भयंकर चीज बना डाला है। जंगली माने जानेवाले लोगोंमें मौतका इतना डर नहीं होता। लड़ाकू जातियोंमें भी यह डर कम ही है। और पश्चिममें तो आज ऐसा सम्प्रदाय बन रहा है जो दुःख पाकर जीनेसे मरना ही पसन्द करेगा। मौतका जो बहुत ज्यादा भय मान लिया गया है,

१. देखिए खण्ड ३७।

यह मुझे तो अज्ञान या शुष्क ज्ञानकी निशानी लगती है। और इस मान्यतासे अहिंसाने हममें और हमसे भी ज्यादा जैनोंमें वक्र रूप धारण कर लिया है। और इससे सच्ची अहिंसाका लग-भग लोप हो गया है। क्रोधके आवेशमें आकर कुएँमें गिरनेवाली स्त्री रस्सा मिलनेपर भले ही उसका सहारा ले ले। मगर जो, किसी भी खयालसे सही, निश्चय करके कुएँमें गिरती है, उसे रस्सेका सहारा मिले तो भी वह उसका तिरस्कार ही करेगी। जापानियोंकी 'हाराकिरी' इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। 'हाराकिरी' ज्ञानमूलक है या अज्ञानमूलक, यहाँ यह प्रश्न प्रस्तुत नहीं है। यहाँ तो मैं इतना ही बता रहा हूँ कि ऐसी बेशुमार मिसालें हैं, जब इन्सान जीनेसे मरना ज्यादा पसन्द करता है। और पश्चिममें अपंग होकर दुःख पानेवाले जानवरोंको देहमुक्त करनेका जो रिवाज है, उसके पीछे यही खयाल रहता है कि पशुओंको मौतका डर कम होता है। और एक खास हदसे ज्यादा दुःख पड़े तो वे मरना पसन्द करेंगे। ऐसा हो सकता है कि यह खयाल सच्चा न हो। इसलिए यह समझकर बरताव करना हमारा धर्म है कि पशुको भी मनुष्यकी तरह ही अपने प्राण प्यारे हैं।

अगर यहाँतक बात तेरे गले उतरी हो, तो समाजकी दृष्टि या समाजके धर्मका बहुत विचार करनेकी बात नहीं रह जाती। जहाँ लोगोंकी वृत्ति अहिंसाकी तरफ हो, वहाँ बछड़ेके उदाहरणके दुरुपयोगकी कम सम्भावना है। जहाँ अहिंसावृत्ति नहीं है, वहाँ पशुहिंसा तो हुआ ही करती है। इसलिए मेरे-जैसोंकी मिसालसे उसमें कुछ बढ़ती होना सम्भव नहीं है। बछड़ेके शरीरका नाश करनेमें परिणामके पूर्ण ज्ञानकी जरूरत नहीं थी। अगर बछड़ेकी मौत किसी दूसरी तरह किसी भी समय आनेवाली न होती, तो जरूर यह बात सोचने लायक थी। यानी, यह स्थिति होती कि मेरे सिवा बछड़ेके शरीरका अन्त और कोई कर ही नहीं सकता, तो बादके परिणामकी पहले से पूरी जानकारी होना बेशक जरूरी था। यहाँ तो बछड़ा और हम सब जीव रोज ही देहान्तको साथ लिये फिरते हैं। इसलिए इसमें सबसे बड़ी बात तो इतनी ही रह जाती है कि यह देह थोड़े दिन या महीने या साल ज्यादा बनी रहे। यह सब यहाँ अयुक्त नहीं है, क्योंकि हेतु बिलकुल निःस्वार्थ है और बछड़ेका ही सुख देखनेकी बात है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यदि कहीं कोई विचार-दोष हुआ भी हो, तो भी बछड़ेके लिए ऐसा कोई खराब नतीजा नहीं निकला जो किसी-न-किसी दिन न निकलता[1]। बात जबतक समझमें न आये तबतक बार-बार पूछते रहना। विषय समझने लायक है, समझा जा सकता है और एकबार समझमें आ जाये तो उसमें से अनेक फलितार्थ अर्थ निष्पन्न किये जा सकते है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस विचारधारामें कितनी ही प्रचलित मान्यताओंपर प्रहार होता है। मगर मैं मानता हूँ कि हममें यानी हिन्दूधर्ममें इतना ज्यादा कायरपन और इसलिए इतना ज्यादा आलस्य आ गया है कि अहिंसाका सूक्ष्म और मूल रूप भुला दिया गया है और वह सिर्फ तुच्छ जीवदयामें समा गया है, जबकि मूल रूपमें अहिंसा अन्तरकी अत्यन्त प्रचंड भावना है और वह कई तरहके परोपकारी

१. अनुच्छेदका शेष भाग सी० डब्ल्यू० की नकलसे लिया गया है।

कामोंकी शक्लमें प्रगट होती है। अगर यह एक मनुष्यमें भी पूरी तरह प्रगट हो, तो उसका तेज सूर्यसे भी बड़ा होगा। लेकिन आज ऐसा कहाँ है?[१]

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १५०–३। सी० डब्ल्यू० ९११२ भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

५२२. पत्र : मीराबहनको

१३ मई, १९३२

चि० मीरा,

इस आशासे कि यह पत्र तुम्हें सोमवारको या उससे पहले मिल जाये, मैं तुम्हारे आज अचानक मिले पत्रका उत्तर अभी दे रहा हूँ।

फाउंटेनपेनके बिना तुम्हारा काम चल जाये तो अच्छा है। लेकिन हमारा लक्ष्य तो सम्यक् वृत्ति होना चाहिए। उससे स्थायी और भारी परिवर्तन हो जाते हैं। मूल कारण स्वामित्वकी कामना है। मूल कारणपर सूक्ष्म दृष्टि रखनेके साथ-साथ तफसीलमें अलग-अलग वस्तुओंका त्याग किया जाना चाहिए। ऐसे मनुष्यकी कल्पना की जा सकती है जिसके पास कुछ नहीं है, पर जिसने वृत्तिसे गरीबी नहीं अपनाई है। कारण, वह सम्पत्तिवालोंसे ईर्ष्या करता है। उसके पास कुछ नहीं है, परन्तु इसका उसे दुःख है। दूसरा व्यक्ति ऐसा मिल सकता है जिसके पास सोनेका पादपीठ हो और जिसे वह गरम राखसे बचनेके लिए काममें लाता हो। मगर वह दूसरे ही क्षण उसे गरीबोंकी खातिर बेच डालता है और इस त्यागसे उसे प्रसन्नता होती है। यह तुम्हारे कामकी टीका नहीं है, बल्कि इसलिए लिखा है कि अगर इसपर अमल करना जरूरी या सम्भव हो, तो कर लो।

तुम जितनी जल्दी आ सको, आ जाना और जो कोई भी आना चाहे और जिसे आनेकी इजाजत हो, उसे भी अपने साथ ले आना। प्यारे अली और नूरबानू आ सकते हैं। अभी दामोदरदास नहीं आ सकता क्योंकि उसका नाम विचाराधीन

१. महादेव देसाई लिखते हैं कि यह लिखवाते समय तुलसीदासके दोहेके पाठपर भी काफी चर्चा हो गई। बापूने कहा : "'पापमूल' पाठ मैंने सुना है और 'देहमूल' भी सुना है। और मुझे दूसरा पाठ ज्यादा अच्छा लगता है"। उत्तरमें मैंने कहा : देहका मूल अभिमान है, इसके बदले शायद यहाँ यह विचार है कि धर्मका मूल दया और पाप अर्थात् अधर्मका मूल अभिमान है। बापू बोले : "इसमें देहमूल अभिमानका अर्थ इस तरह है जैसे दया धर्मका मूल है उस तरह देह अभिमानका मूल होनेके कारण दयाकी विरोधी है। परन्तु देहको पूरी तरह मिटा देना यही शुद्ध दया है। ऐसी दया तबतक न छोड़ें जबतक तनमें प्राण हैं। सेवा करते हुए या करने जाते हुए देहका पूर्ण त्याग शुद्धतम दया है। यह बात अनुभव-सिद्ध है।" मैंने कहा कि प्रस्तुत वाक्यसे यह अर्थ नहीं निकलता और साधारण मनुष्य भी शायद इस सूक्ष्म भेदको न समझ पाये जबकि अधर्मका मूल अभिमान है, वह स्पष्ट समझ सकता है। अन्तमें निर्णय यह हुआ कि पत्रमें 'दया धर्मका मूल है' इतना ही लिख देना काफी है।

है। तुमको प्यारे अलीके घर जाना चाहिए और अमीनाके बच्चों और तिलकसे मिलना चाहिए। यदि तिलक आना चाहे तो अवश्य आ सकता है। यहाँ तंगदस्तीका सवाल उपस्थित है; लेकिन अगर अपनी इच्छाको वह रोक नहीं सकता तो मैं उसके मामलेमें इस बातको उठाना नहीं चाहूँगा।

तुम्हारी बायें हाथकी लिखावट मुझसे बेशक ज्यादा स्थिर है। थोड़े ही समयमें तुम बायें हाथसे उतना ही अच्छा लिखने लगोगी जितना दायें हाथसे लिखती हो।

मुझे खुशी है कि सोफिया तुम्हारे साथ है। मैं उससे मिला हूँ। प्रार्थनामें इतने हृदयसे तुम्हारा साथ देना उसके अनुरूप है। उसे मेरा स्नेह देना। उसके खयालसे मेरा मन तो यहाँतक जाता है कि उसे तुम्हारा जितना साथ मिलेगा, उससे कहीं ज्यादा मिलता! यदि कभी कोई ऐसा महीना हो जब उसे किसी खास व्यक्तिको न लिखना पड़े तो वह मुझे लिखे। मुझे निश्चय है कि ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन कौन कह सकता है?

मगनचक्रने मुझे तंग तो किया, मगर मैं उसपर काबू पा रहा हूँ। मूँगफली छोड़ दी। वल्लभभाई और महादेवने मुझे डरा दिया और मैं उस धमकीमें आ गया। मेरा वजन बढ़कर फिर १०५$\frac{३}{४}$ हो गया है।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२१) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६८७ से भी।

५२३. अद्भुत त्याग[१]

१५ मई, १९३२

शालाओंकी सामान्य पाठ्यपुस्तकोंसे भी हमें कई बार अचूक उपदेश मिल जाते हैं। इन दिनों मैं उर्दूकी रीडरें पढ़ रहा हूँ। उनमें कोई-कोई पाठ बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं। ऐसे एक पाठका असर मुझपर तो जबर्दस्त हुआ है। दूसरोंपर भी वैसा ही हो सकता है। अत: उसका सार यहाँ दिये देता हूँ।

पैगम्बर साहबके देहान्तके बाद कुछ ही बरसोंमें अरबों और रूमियों (रोमनों) के बीच महासंग्राम हुआ। उसमें दोनों पक्षके हजारों योद्धा खेत रहे, बहुत-से जख्मी भी हुए। शाम होनेपर आम तौरसे लड़ाई भी बन्द हो जाती थी। एक दिन जब इस तरह लड़ाई बन्द हुई तब अरब-सेनामें एक अरब अपने चाचाके बेटेको ढूँढ़ने निकला कि उसकी लाश मिल जाये तो दफनाये और जिन्दा मिले तो सेवा करे। शायद वह पानीके लिए तड़प रहा हो, यह सोचकर इस भाईने अपने साथ लोटा-भर पानी भी ले लिया।

१. यह सम्भवत: "पत्र : नारणदास गांधीको", १३/१५-५-१९३२ के साथ भेजा गया था। देखिए अगला शीर्षक।

तड़पते घायल सिपाहियोंके बीच वह दीपक लिए उसे ढूँढ़ता चला जा रहा था। उसने अपने भाईको खोज लिया और तब सचमुच ही वह पानीकी रट लगाये था। जख्मोंसे खून बह रहा था। उसके बचनेकी बहुत ही थोड़ी आशा थी। भाईने पानीका लोटा उसके पास रखा कि किसी दूसरे घायलकी 'पानी-पानी' की पुकार सुनाई दी। उस दयालु सिपाहीने अपने भाईसे कहा, "पहले उस घायलको पानी पिला आओ; मुझे फिर पिलाना।" जिस ओरसे आवाज आ रही थी, भाई उस ओर तेजीसे कदम बढ़ाकर पहुँचा।

यह जख्मी कोई बहुत बड़ा सरदार था। उक्त अरब उसको पानी पिलाने और वह सरदार पीनेको ही था कि इतनेमें तीसरी दिशासे पानीकी पुकार आई। यह सरदार भी पहले सिपाही-जैसा ही दयालु व्यक्ति था। अतः उसने बड़ी कठिनाईसे कुछ बोलकर और कुछ इशारेसे यह समझाया कि पहले जहाँसे पुकार आई है वहाँ जाकर पानी पिला आओ। निःश्वास छोड़ते हुए वह भाई वायुवेगसे दौड़कर वहाँ पहुँचा जहाँसे आर्त्तनाद आ रहा था, किन्तु तबतक वह घायल सिपाही आखिरी साँस खींच चुका था; उसकी आँखें मुँद गई थीं। समयपर उसतक पानी नहीं पहुँच सका, इसलिए अब वह भाई उक्त जख्मी सरदार जहाँ पड़ा था, झपटकर वहाँ पहुँचा। पर देखता क्या है कि उसकी आँखें भी मुँद चुकी हैं। दुखभरे हृदयसे खुदाकी बंदगी करता हुआ वह अपने भाईके पास पहुँचा तो उसकी नाड़ी भी बन्द पाई; उसके प्राण भी निकल चुके थे।

यों तीन घायलोंमें से किसीने भी पानी न पाया; पर पहले दो अपने नाम अमर करके चले गये। इतिहासके पन्नोंमें ऐसे निर्मल त्यागके दृष्टान्त बहुतेरे मिलते हैं कि जिनका वर्णन जोरदार कलमसे किया गया हो तो उसे पढ़कर हम दो बूंद आँसू गिरा देते हैं; पर ऊपर जो अद्भुत दृष्टान्त दिया है, उसके देनेका हेतु यह है कि उक्त वीर पुरुषों-जैसा त्याग हममें भी आये और जब हमारी परीक्षाका समय आये तब दूसरेको पानी पिलाकर पियें, दूसरेको जिलाकर जियें और दूसरेको जिलानेमें खुद मरना पड़े तो हँसते-हँसते कूच कर जायें।

मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पानीकी तड़पसे अधिक तड़प एकमात्र हवाकी है। हवाके बिना तो आदमी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। इसीसे सम्पूर्ण जगत हवासे घिरा हुआ जान पड़ता है। फिर भी, कभी ऐसा वक्त भी आ जाता है जब आलमारी-जैसी किसी छोटी कोठरीके अन्दर बहुत-से आदमी ठूँस दिये गये हों, एक ही सुराखसे थोड़ी-सी हवा आ रही हो, उसे जो पा सके वही जिये, बाकी लोग दम घुटकर मर जायें। हम भगवानसे प्रार्थना करें कि ऐसा समय आये तो हम उस सुराखकी हवा दूसरेको लेने दें।

हवाके बाद पानीकी आवश्यकता आती है। पानीके प्यालेके लिए मनुष्योंके एक-दूसरेसे लड़ने-झगड़नेकी बात सुननेमें आई है। हम यह इच्छा करें कि ऐसे मौकेपर उक्त बहादुर अरबोंका त्याग हममें आये। पर ऐसी अग्नि-परीक्षा तो किसी एककी ही होती है। तथापि, हम सबकी रोज सामान्य परीक्षा तो हुआ ही करती है। हम

सबको अपने-आपसे पूछना चाहिए कि जब-जब कोई ऐसा अवसर आता है, तब-तब क्या हम अपने साथियों, पड़ोसियोंके सुखके विचारसे उन्हें आगे करके खुद पीछे रहते हैं ? न रहते हों तो समझो हम गिर गये, हमने अहिंसाका पहला पाठ नहीं सीखा।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

५२४. पत्र : नारणदास गांधीको

[१३/१५ मई, १९३२][1]

चि० नारणदास,

इस बारके तुम्हारे दो बड़े लिफाफे मिले। १६ अंकका सूत सस्ता पड़ेगा और २० का महँगा, यह मैं समझ गया। किन्तु फिर भी कुल मिलाकर बीस नम्बरका सूत ही सस्ता पड़ेगा। क्योंकि उस स्थितिमें हमें कातते हुए सदा सावधान रहना जरूरी है। उसमें तकुए आदि सब अच्छे होने चाहिए। मैं सस्तेका अर्थ तात्कालिक दृष्टिसे अथवा केवल आर्थिक दृष्टिसे ही नहीं लगाता। यहाँ सस्तेका जो अर्थ मैंने लगाया है, वह आध्यात्मिक है। इसलिए यदि तुम्हें इस कथनके विरोधमें और कोई तथ्य दिखाई न देता हो तो २० नम्बरका आग्रह रखनेको कहना और स्वयं भी ऐसा ही आग्रह रखना। इसके सिवा, मैंने जो अन्य आनुषंगिक शर्तें भेजी हैं, उनका भी पालन कराना। परिणामस्वरूप, फिलहाल उत्पादन कम होता हुआ जान पड़ेगा। किन्तु इसकी चिन्ता मत करना। मैंने एक बात कही थी — शायद तुम्हें याद हो कि हमें सभी प्रकारकी मजदूरीकी दर एक ही लगानी चाहिए; अर्थात्, जो एक घंटे कातता है, जो एक घंटे पींजता है, एक घंटे बुनता है या बढ़ईका काम करता है या लिखा-पढ़ी करता है, या खेत सँभालता है — उन सबकी प्रतिघंटा मजदूरी एक-सी ही होनी चाहिए। इसके सिवा मैंने अपने हिसाबके विचारसे मजदूरी प्रतिघंटा एक आना सुझाई थी। इसके अनुसार दस वर्षके ऊपरका प्रत्येक व्यक्ति, जो खाट न पकड़े हो, यदि औसतन आठ घंटे काम करे तो मैं आश्रमको आत्मनिर्भर गिनता हूँ। फिलहाल इसके अनुसार आर्थिक दृष्टिसे हानि भले ही दिखाई दे, किन्तु अन्तमें आर्थिक दृष्टिसे भी इस हिसाबको ठीक उतरना ही चाहिए। यह हिसाब प्रस्तुत करते हुए इतना तो मान ही लिया गया है कि हरेक व्यक्ति प्रामाणिक है। प्रत्येकको चाहिए कि वह अपने एक-एक घंटे समयका प्रामाणिक उपयोग करे। और हमें इस बातकी कसौटीके रूपमें यह देख लेना चाहिए कि उसने एक घंटेमें प्रत्येक व्यक्ति-द्वारा अपेक्षित कामको सफाईसे किया है कि नहीं। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि दूसरे प्रकारका जो हिसाब रखा जाता है वह न रखा जाये। इस प्रकारके हिसाबके लिए किसी बड़ी लिखा-पढ़ीकी जरूरत नहीं है। हरेकके नामके सामने कोई अंक लिख दिया जाये अर्थात्, किसीके सामने एक, तो किसीके सामने दो। यह अंक उसके कामके घंटे सूचित करेगा।

१. **बापुना पत्रो–९: श्री नारणदास गांधीने,** भाग–१, पृष्ठ ३६८ से।

और ये अंक उनके नामके सामने तभी लिखे जायेंगे जब हमारे मापदण्डके अनुसार उनका काम ठीक उतरेगा। इसे आध्यात्मिक दृष्टिका हिसाब कहता हूँ। इस प्रकारके काम करते हुए हम अन्न, दूध, आदिकी जितनी भी उपज कर सकें, वह आत्मनिर्भर होने-जैसी होगी। इसके साथ इसमें कल्पना यह भी है कि मजदूरको आश्रमवासीकी तरह होना चाहिए। साथ ही जो शाक-भाजी, फल, दूध, इत्यादि हम आश्रममें पैदा कर पायें, हमें उतनेसे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। ये सारी बातें मेरे मनमें आज ही पैदा हुई हों, सो नहीं है। ये आश्रमके आरम्भसे ही चलती आ रही हैं। सम्भव है, मैंने तुम्हारे साथ इस विषयकी भरपूर चर्चा न की हो। मगनलालके साथ तो बार-बार की थी। फिर भी आजतक यह बात अधिकांशतः मनोरथके रूपमें ही रही है। राष्ट्रीय सप्ताहके सूत्र-सत्रके दरमियान जो विचार उत्पन्न हुए, उनकी धारा चल रही है और मैं उसे तुम्हारी ओर प्रवाहित करता चला जा रहा हूँ। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि तुम्हें आज ही इनमें से प्रत्येक बातपर अमल कर डालना है। तुम समर्थ हो इसलिए मनमें जो नये-नये विचार आते हैं, उन्हें सामने रखते हुए संकोच नहीं करता। मैं किसी भी प्रकारसे तुम्हारी स्वतन्त्र विचारबुद्धिको भ्रमित नहीं करना चाहता और न यही चाहता हूँ कि तुम किसी प्रकारकी चिन्तामें पड़ जाओ। कई लोग ऐसे स्वभावके होते हैं कि उनके सामने कोई भी नया विचार रखा कि वे आतुर हो जाते हैं, उसपर अमल कर बैठते हैं। जब अमल नहीं हो पाता तो परेशान हो जाते हैं और अपनेको दीन और दुनिया दोनोंसे गया मान लेते हैं। तुम्हारे स्वभावमें ऐसी कोई बात नहीं है, ऐसा मैं मानता हूँ और इसीलिए अपनी नई-नई तरंगें तुम्हारे सामने फेंकता रहता हूँ। जब तुम्हें लगे कि बहुत हो गया तब तुम तुरन्त इशारा कर देना और मैं चुप हो जाऊँगा। यहाँ बैठकर मैं काममें तो कोई मदद कर नहीं सकता। मर्यादामें रहकर सोचनेमें मदद कर सकता हूँ। यह मदद भी तभी पहुँच सकती है जब तुम उन विचारोंको समझकर, आत्मसात करके उनकी उपयोगिताको अनुभवकी कसौटीपर कसते रहो। किन्तु यदि ये विचार बुद्धिपर भारस्वरूप हो जायें तो इन्हें निरर्थक ही गिनना चाहिए।

अब मैं थोड़ी देरके लिए फिर बीस अंककी बातपर आता हूँ। यह सोचना सब तरहसे ठीक नहीं हैं कि सोलह अंकके सूतका बना कपड़ा, बीस अंकके सूतके बने कपड़ेके मुकाबलेमें ज्यादा टिकता है। यदि रूई बीस नम्बरके योग्य हो, ठीक पींजी गयी हो, और ठीक मजबूत बीस नम्बरका सूत निकल सका हो, उसे काफी घना बुना गया हो तो अवश्य ही सोलह नम्बरके सूतसे बने हुए कपड़ेकी अपेक्षा वह अधिक टिकेगा। आज सोलह नम्बरके सूतसे बना हुआ कपड़ा अधिक टिकता है, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि हमारे सोलह और बीस नम्बरके काते हुए सूतका कस ठीक नहीं है। दोनों ही कच्चे हैं। और उसमें भी स्वाभाविक रूपसे सोलह अंकका सूत उतना कच्चा नहीं है, क्योंकि उसमें घटिया कपाससे भी काम चल जाता है और इसलिए ऐसा लगता है कि उससे बना हुआ कपड़ा बीस

नम्बरवाले कपड़ेसे अधिक टिकता है। यदि हम अपनी इस मान्यतासे चिपके रहेंगे तो उससे इस प्रकारका भ्रम पैदा होगा कि सोलह नम्बरसे बना हुआ कपड़ा अधिक मजबूत होता है। और यदि बीस नम्बरके विषयमें मेरा हिसाब सही हो तो उक्त मान्यता घटिया कामको प्रोत्साहन देनेवाली कही जायेगी। हम जिस हदतक अधिक बारीक सूत कातनेमें समर्थ होंगे उस हदतक गरीब व्यक्तिकी सेवा होगी, क्योंकि इस तरह खादीकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

लोगोंके सामने हम यह सिद्ध कर सकेंगे कि बुनने योग्य बारीक सूत आसानीसे पैदा किया जा सकता है। मैं तो फिलहाल मगनचरखेमें अपना सारा ध्यान लगाये हुए हूँ, किन्तु महादेव छक्कड़दासकी पूनियोंपर प्रयोग कर रहा है। उसने चरखेके मोढ़ियामें कुछ परिवर्तन किये हैं। इन परिवर्तनोंके ही कारण इन्हीं पूनियोंसे बिना अतिरिक्त श्रमके छत्तीस नम्बरसे भी ऊपरका सूत उसने काता है। पहले बीस निकलता था फिर पच्चीस अब छत्तीस। ये परिवर्तन किस प्रकार हुए सो मैंने कल लक्ष्मीदासके नाम लिखे पत्रमें विस्तारसे बताया है। उस पत्रको मँगा लेना। महादेवकी गतिमें अवश्य कुछ कमी हुई है। पच्चीस अंकके समय गति ३०० तारकी थी। ३२ के समय २४० और ३६ के समय २१० हो गई। यह कमी मुझे किसी भी रूपमें आघात पहुँचानेवाली नहीं लगती। जब महादेव किसी विशेष अंकपर स्थिर हो जायेगा तब थोड़ी-बहुत गति तो बढ़नेवाली है ही। मेरे कहनेका मतलब इतना ही है कि बारीक नम्बरके सूतपर जानेका अर्थ सार्वजनिक दृष्टिसे लाभदायक ही होगा। मगनलालकी पुण्य-तिथि, जान पड़ता है, तुमने बहुत उचित रूपमें मनाई।

पण्डितजी, लक्ष्मीबाई, यशवन्तप्रसाद, मथुरी मिल कर गये। जो लोग आये थे उनमें मणिबहन सबसे बड़ी थी इसलिए मैंने हरिलालके नाम पत्र उसे सौंप दिया। सौंपते हुए पूछा तो मालूम हुआ कि सभी साथ ही पहुँचेंगे। पत्र हाथों-हाथ यह मानकर भेजा कि इस प्रकार वह डाकसे पहले पहुँचेगा। लाचार हूँ। हरिलालका दूसरा पत्र भी मिला है। मुझे तो दोनों पत्रोंमें केवल उद्दण्डता और बेशर्मी ही दिखाई देती है। यह बलीपर जो दोषारोपण करता है, मुझे तो उसमें वे दोष दिखाई नहीं देते। इसके सिवा वह मनुके लिए माँके समान रही है, इसलिए मनुके पाससे हटा देना मनुके प्रति अत्याचार होगा। फिर भी जो तथ्य तुम्हारे सामने आ सकते हैं, वे तथ्य यहाँ मेरे सामने नहीं आ सकते, इसलिए मेरे विचारोंको जानकर तुम्हें जहाँ जो निर्णय देना हो उसीके अनुसार करना।

मेरे हाथके बारेमें चिन्ताका कारण नहीं है। दर्द होता है किन्तु काम करते समय ही, दूसरे समय दर्द नहीं होता। जब ऐसा लगेगा कि दूध लेनेसे लाभ होता है तो मैं दूध अवश्य लूँगा। दर्द तो उन दिनों भी था जब मैं दूध लेता था।

देखता हूँ, रतिलालका भार पूरी तरह तुमपर आ गया है। चम्पाके दो पत्र मिले हैं। किसी बातसे दुखी मालूम होती है। जैसी जो सान्त्वना देने योग्य हो, सो देना। चम्पा लिखती है कि उसका छोटा भाई आश्रममें रहना चाहता है। लड़का

रहने लायक हो तो रख लेना। यदि हरिहर शर्मा आ सकें और रतिलालको ले जा सकें तो उन्हें लिखकर देख लेना। मुझे तो भय है कि रंगून जाकर भी, यदि चम्पा वहाँ न हो तो, वह वहाँ भी नहीं रह सकेगा। और चम्पा वहाँ नहीं जाना चाहती। मैं मानता हूँ कि न जानेकी इस इच्छाके सबल कारण हैं।

रंगनाथ कुलकर्णीको गुजराती-अनुवादकी अनुमति दे देना। जेठालाल गोविन्दजी के पत्रोंमें अनन्तपुरका विवरण नहीं मिला। उनका एक पत्र अवश्य मिला है। जेलवाले कहते हैं कि विवरण आया तो होगा किन्तु गुम हो गया है, उसकी नकल मँगवा लेना।

बहनोंके विषयमें जो शिकायतें आयी हैं, बहुत सम्भव है, उनमें अतिशयोक्ति हो। फिर भी मैं जाँच करूँगा।

जो पाँच नाम मिलनेवालोंकी सूचीमें मंजूर हुए हैं सो तुम्हें लिख भेजे थे। अब जो अन्य नाम मंजूर किये गये हैं, वे इस प्रकार हैं :

इन्दु नेहरू, जहाँगीर वकील (पूनाके, इन्दुके शिक्षक) और उनकी पत्नी, हेमप्रभा देवी, रैहाना, हीरावन्ती, मनसुखलाल, छगनलाल, रमा (रणछोड़भाईकी), प्रभाशंकर (चम्पाके पिता), बहराम खम्भाता और उनकी पत्नी, मंजुकेशा सुशीला (प्यारेलालकी बहन), सुशीला (प्रेमाबहनकी सखी), दिनकर मेहता, पुरातन बुच। इन लोगोंको सूचित करना तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। पुरातन वहाँ आता हो तो कह सकते हो कि जब उसकी इच्छा हो आ जाये। यों तो यह सूची तुम्हारी जानकारीके लिए भेजी है। कोई दूसरा आनेकी इच्छा रखता हो और तुम्हारे ध्यानमें ऐसा कोई नाम हो जो सरकार-द्वारा निश्चित मर्यादामें आ जाता है, तो नाम भेज देना।

महावीरका पत्र आया है, उसमें उसने लिखा है कि सबकी तबीयत ठीक है, इसलिए उन्हें कुछ और महीने रहने दें। मुझे लगता है कि रहने देना ही ठीक है। इनका खर्च निश्चित कर देना ठीक होगा। दार्जिलिंगमें ये लोग कोई काम कर सकें तो अच्छा। तुम्हें कोई काम सूझे तो सूचित करना। तुमने लिखा तो था, किन्तु मैं भूल गया हूँ कि हर महीने कितना खर्च आता है। मुझे लगता है कि मैत्रीको वहाँ ब्याह दें तो ठीक हो। उसकी उम्र विवाहके योग्य तो हो ही गई है। इन लोगोंका इरादा तो था ही कि खड्गबहादुरसे विवाह कर दें। किन्तु मेरा खयाल है कि खड्गबहादुर विवाह नहीं करना चाहता। इस बारेमें मैंने सीधे मैत्रीको लिखा है। वह पढ़ लेना। अन्तमें यदि ये लोग वहाँ बस जायें और महावीर कमाने लगे तो वह भी वांछनीय है। यदि इस विषयमें तुमने कोई विचार किया हो अथवा अब करो तो लिखना।

रामदासका कुछ पैसा किसी बैंकमें है। रामदास कहता है कि वह पैसा वहाँ रहने दिया जाये। मैंने सुना है कि विद्यापीठके स्नातक गोपालदासको कोई बड़ी चोट[1] आई है। इस विषयमें पता लगाकर तथ्य सूचित करना। यदि वह लिख सकता हो

१. गोपालदास जीवाभाई पटेल; इन्हें दिल्लीमें कांग्रेसकी एक सभामें पुलिसकी लाठीसे सख्त चोट आई थी।

तो लिखे। चन्द्रशंकरसे कहना कि मगनभाई द्वारा लिखी 'मीमाँसा'[1] रजिस्ट्रीसे भेजे। उसकी तबीयत कैसी रहती है, यह भी लिखे।

मैंने बा के नाम जो पत्र भेजा था, वह पहुँचा या नहीं? मेरे पास बा का कोई पत्र नहीं आया। हरिलालके विषयमें तुमने जमनादासका पत्र पढ़ लिया होगा? मुझे तो ऐसा लगता है कि हरिलालने तो धोखा दिया है। मुझे तो बहुत लोगोंने लिखा है कि वह सारी मर्यादाओंका उल्लंघन कर चुका है। हरिदास गांधी[2] साधारणत: ठीक है। उसकी सार-सँभाल ठीक ही हो रही है। किन्तु उसका रोग मानसिक है। क्या उसके पिता उससे मिलते हैं? कमला कहाँ है?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२२६ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५२५. पत्र: मानशंकर ज० त्रिवेदीको

१५ मई, १९३२

चि० मनु,

तेरी चिट्ठी मिली। मेरी दृष्टिसे वहाँ[3] जानेमें तेरा सबसे बड़ा लाभ तो शरीरकी दृष्टिसे है। इसके सिवा तुझे बहुत-से मीठे-कड़वे अनुभव मिलेंगे। वैसे भी डाक्टरीमें जबर्दस्त कुशलता प्राप्त की जा सके तो अच्छा ही है। किन्तु उसे हासिल करनेमें न शरीर बिगाड़ना चाहिए, न अन्य अनुभवोंकी उपेक्षा करनी चाहिए। जर्मन तो सीखनी ही पड़ेगी, इसीलिए उसे इस हदतक ले जाना जिससे कि जर्मन-साहित्य भली-भाँति समझ सके। वहाँ अपनी अर्थात् हिन्दुस्तानीकी कीर्ति तो फैलाते ही रहना। वाल्स[4] की चिट्ठी अभी-अभी मिली। उसने तेरे विषयमें लिखा है। मुझे यह तथा जिमरमैन दोनों भले आदमी लगे।

क्या वहाँ अपने यहाँके लोगोंसे मिलना-जुलना होता है?

हम तीनों सकुशल हैं। सरदार तथा महादेवके आशीर्वाद भी लो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १००५) से

१. मगनभाई देसाई-द्वारा लिखित **सत्याग्रहनी मीमाँसा** नामक प्रबन्ध जिसके आधारपर उन्हें विद्यापीठकी ओरसे 'समाज-विद्या-पारंगत'की पदवी दी गई थी।

२. एक कैदी जो साबरमतीसे यरवदा-जेल भेज दिये गये थे।

३. जर्मनी।

४. कार्लाइल वाल्स।

५२६. पत्र : महावीर गिरिको

१५ मई, १९३२

चि० महावीर,

तेरा पत्र मिला। मेरा क्यों नहीं मिलता, यह समझ नहीं पाता। आगेसे आश्रमकी मार्फत ही लिखूँगा। तुम सब भी ऐसा ही करना। खर्च तो भेज दिया गया होगा। कालिमपाँगका इरादा छोड़ देना। तुम सबकी तबीयत ठीक ही रहे तो फिलहाल जहाँ-का-तहाँ बना रहना ठीक है। तुम सभी लोगोंको कोई-न-कोई काम करना चाहिए। दिन किस तरह बिताते हो? क्या तुम सब ठीक-ठीक दैनन्दिनी लिखते हो?

मैत्रीकी चिट्ठी क्यों नहीं आई? कृष्णमय्या देवीकी तबीयत अच्छी हो गई? तुम सब किसके साथ रह रहे हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२३५) से।

५२७. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

१५ मई, १९३२

चि० परशुराम,

दैनन्दिनीमें जितना लिख सकते हो उतना लिखो। गुह्यतम विचार भी लिखो। हमारे पास छुपाने योग्य कोई चीज नहीं होनी चाहिए। इसलिए कोई पढ़ेगा, इसकी चिन्ता मत करो और इसीलिए दूसरोंके दोष या विश्वासमें कही गई बातें उसमें न लिखी जायें। दैनन्दिनी पढ़नेका अधिकार तो मंत्री या उसके किसी प्रतिनिधिको हो सकता है; फिर भी उसे किसीसे छुपाकर नहीं रखना है।

तकलीका अभ्यास कदापि न छोड़ना। भले ही रोज आधा घंटा ही क्यों न दे पाओ। सुगढ़ता हासिल हुई या नहीं?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४९८) से। सी० डब्ल्यू० ४९७५ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा।

५२८. पत्र : पद्माको

१५ मई, १९३२

चि० पद्मा,

तूने पूछा था, इसीलिए मैंने आते रहनेको लिखा था। लेकिन अगर तेरी इच्छा वहाँ रुके रहनेकी है तो मैं क्या कह सकता हूँ। सीतलासहायके आनेपर उससे मुझे लिखनेके लिए कहना।

मगनचक्र चलाता हूँ। तूने जो सुझाव दिया था वह बहुत काम नहीं आया। मेरी कठिनाइयोंका हल उससे नहीं निकला।

जहाँ चाहिए, चक्र वहाँ न रुके तो फिर उसे हाथसे उस स्थानपर लाना पड़ता है। मैं तो एक ही हाथ काममें ला सकता हूँ। दाहिनेकी कोहनी दुखती है, इसलिए वह बेकाम है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१४१) से। सी० डब्ल्यू० ३४९३ से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी।

५२९. पत्र : सुशीलाबहन गांधीको

१५ मई, १९३२

चि० सुशीला,

तू सरासर चालाक है। आज रवाना हो जानेका पत्र लिखनेके बाद तू मेरे पत्रकी राह देख ही कैसे सकती है। इसके बाद चिट्ठी न आये तो शिकायत कर सकती है। तूने सीताके विचारसे वहाँ रुक जानेका विचार किया, यह मुझे ठीक लगा। मेरे मनमें भी उसके और तेरे विचारसे पशोपेश तो होता ही था। तू वहाँ किस तरहकी मदद करती है; पूरे दिनके कार्यक्रमकी तफसील लिखना। तुझे संग तो अब ठीक ही मिल गया होगा। प्रागजी से विस्तारके साथ लिखनेको कहना। पार्वती कैसी रहती है? तुम लोग साथ-साथ रहते हो या अलग-अलग?

हम तीनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह चिट्ठी जिस लिफाफेमें रखी है, वह सरदारका बनाया हुआ है। पार्सलों आदिके जो कागज बच रहते हैं, उनका इन्हें बनानेमें उपयोग कर लेते हैं।

उन्नत देशमें रहनेवाले तुम लोगोंकी नजरमें गरीब देशकी ऐसी भेंट भले ही न जँचे, लेकिन हम क्या कर सकते हैं। क्या हम तुम्हारे महल देखकर अपनी झोंपड़ियाँ गिरा बैठें।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७८८) से

५३०. पत्र : भाऊ पानसेको

१५ मई, १९३२

चि० भाऊ,

तुमारा खत मिला। विनोबाका १ अ० पर प्रवचन भी मिला। ऐसे हि दूसरा भेजते रहो।

तकलीकी नयी पद्धति सब सीख लेवे तो बहोत अच्छा होगा। किस किसने सीख लिया। तुमारी प्रकृति अच्छी रहती होगी।

बापु

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७२७) से। सी० डब्ल्यू० ४४७० से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे।

५३१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१५ मई, १९३२
(जी० एन० ६७२७)

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मुझे कल मिला। ग्वालहेरसे लिखा हुआ पत्रका उत्तर मैंने शीघ्र ही भेजा था। पता ग्वाल्हेर दिया था। इस सबबसे शायद न मिला हो। मेरे थोड़े पत्र गुम हुए हैं सही। मालवीजीका उत्साह और उनका आशावाद दोनों अनुकरणीय है। हम सब मजेमें है। मेरा खुराक अब तक तो वही है। और वजन भी करीब करीब कायम है। रामेश्वरदास अच्छे होंगे।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ७८९८ से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला।

५३२. पत्र : मैथिलीशरण गुप्तको[1]

१५ मई, १९३२

भाई मैथिलीशरणजी,

आपका पत्र मिला शब्दकोष भी मिला। और आपकी टिप्पणीके साथ साकेत की एक और प्रति भी मिल गई। टिप्पणीसे मुझको बहुत साहाय्य मिलेगी। हिंदी शब्दसागर भेजनेका मैं आपको कष्ट नहीं दुंगा। संभव है कि कल्याण कार्यालयसे शब्दसागर आ जायगा। ऐसे भी आपकी टिप्पणी और शब्दकोषसे मेरा निर्वाह भली-भांति हो जायगा। साकेतके बारेमें जो-कुछ लिखा पढ़ी हुई है उसे इस समय प्रकट नहीं कर सकते हैं। आजकल जो पत्र लिखनेकी मुझको इजाजत मिलती है उसमें एक प्रकारकी मर्यादा भी मानी जाती है कि मेरे पत्र प्रकट नहीं होंगे जहांतक मैं कैदमें हूं। और कुछ समयतक यह लिखा पढ़ी अप्रकट रहनेसे कोई हानि होने वाली नहीं है। "साकेत" में भरी हुई शक्ति ही "साकेत" को आगे ले जायगी। आपके प्रेमका अनुभव श्री महादेवको मिला था उसका सब वर्णन उससे सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ९४५७ से; सौजन्य: भारत कला भवन, वाराणसी।

५३३. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

१५ मई, १९३२

चि० ब्रजकिसन,

तुमारा खत मिला है। मैंने पहेले पत्रका लंबा उत्तर दिया था। सब प्रश्नोंका उसमें उत्तर था। लेकिन उस बारेमें तुमने कुछ उल्लेख नहीं किया है उससे मालुम होता है तुम्हें न मिला हो। हम सब अच्छी तरह है। वहां सब भाईयोंको सलाम, बं० मा० व० कहो। तुमारा शरीर अच्छा रहता होगा। बाकी तुमारा खत आनेपर।

बापूके आशीर्वाद

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० २३९२) से।

१. उनके पत्र (सी० डब्ल्यू० ९४५८) के उत्तरमें, जिसमें उन्होंने गांधीजी से हुए इस पत्र-व्यवहारको **साकेत** के पाठकोंके लाभके लिए प्रकाशित करनेका सुझाव दिया था।

५३४. पत्र : बबलभाई मेहताको

१६ मई, १९३२

चि० बबलभाई,

तुम अबतक २० अंकका सूत कातने लगे होगे। 'गीता' का नित्य पाठ नीरस लगता है, क्योंकि उसपर मनन नहीं होता होगा। यह हमें रोज रास्ता दिखानेवाली माता है, ऐसा समझकर पढ़ोगे तो नीरस नहीं लगेगी। पाठ करनेके बाद रोज एक मिनट उसपर विचार कर लिया करना। रोज कुछ-न-कुछ नया मिलेगा। केवल सम्पूर्ण मनुष्यको उसमें कुछ नहीं मिलेगा। किन्तु जो नित्य कुछ-न-कुछ दोष कर जाता है, उसे तो ऐसा ही लगेगा कि यह 'गीता-माता' उद्धार करनेवाली है और वह नित्य पाठसे थकेगा नहीं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४५१) से।

५३५. पत्र : जमनादास गांधीको

१६ मई, १९३२

चि० जमनादास,

बहुत दिनोंके बाद तेरा पत्र मिला। हरिलालके जुल्मकी कथा तो मैंने सुन ही ली थी। मगर मैं चाहता था कि यह बात तुमसे जान लूँ। आनंदलालने मुझे लिखा था; मैंने उसपर किसी तरहका भरोसा नहीं किया। हरिलालके दोषोंके बारेमें मैंने मौन धारण कर लिया है, यह तू किस आधारपर कहता है? मैंने कभी कुछ नहीं ढका। कोई उसे कुछ देता है, तो मैं उसपर भी अपनी नापसन्दगी जाहिर करता हूँ। तू इससे अधिक क्या चाहता या सुझाता है? मैंने उसे यह लिखा अवश्य था कि मेरा विश्वास है कि उसे पश्चात्ताप होगा[1]। कई लोगोंके बारेमें ऐसा हुआ है। जबतक आदमी जीवित है, तबतक हमें उसके सुधरनेकी आशा रखनी चाहिए।

शालाके विषयमें तफसीलसे लिखना। तू अपना आत्मविश्वास मत खोना, लिया हुआ काम मत छोड़ना। तेरे स्वास्थ्य सुधरनेकी कुंजी भी मैं तो वहीं देखता हूँ। वहाँका वातावरण कैसा है? राज्य-शासन ठीक चल रहा है या नहीं? प्रजा सुखी है?

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४४४) से।

१. देखिए पृष्ठ ३६१।

५३६. एक पत्र

१६ मई, १९३२

मन चंचल हो तो भी प्रार्थना जारी रखो। एकान्तमें बैठकर आसनबद्ध होकर विचारोंका निग्रह करनेपर भी अगर वे आते रहें तो भी प्रार्थना पूरी करो। मन धीरे-धीरे ठिकानेपर आ जायेगा। 'गीता' ही कहती है कि मन चंचल है; किन्तु सिखाती यह है कि उसपर धैर्यपूर्वक काबू हो जाता है। 'हार हम कभी नहीं मानें, जान भले ही जावे।'

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९११४)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५३७. पत्र : खुशालचन्द गांधीको

१६ मई, १९३२

आदरणीय भाईसाहबकी सेवामें,

आपने तो, लगता है, चमत्कार ही कर दिया। पत्रोंसे तो सब आशा ही छोड़ दी थी। किन्तु अब जो पत्र आ रहे हैं, उनसे मैंने यही आशा बाँधी है कि अभी हम इसी देहके रहते मिलेंगे। लिख सकें तो लिखिए; नहीं तो लिखवा दीजिए।

महादेव मेरे साथ है।

आपको हम दोनोंके दण्डवत् प्रणाम।

मोहनदास

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. खुशालचन्द जीवनजी गांधी, नारणदासके पिता।

५३८. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१६ मई, १९३२

चि० जमना,

वहीं तबीयत सुधर जाये तो फिर क्या चाहिए?

कुसुम पूछकर नहीं गई, यह बड़ी गलती है। उसका ध्यान इस तरफ खींचा या नहीं? कई बार लड़कियोंके मनमें कुछ नहीं होता, सरल भावसे नियमका उल्लंघन कर जाती हैं। हमारी शिक्षाका यह कच्चापन मैं स्वीकार करता हूँ।

बड़ी बहनें सब छोटी लड़कियों और लड़कोंको अपना मानकर उनके प्रति बरतें तो वे बहुत उन्नति करें।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५३) से; सौजन्य : नारणदास गांधी।

५३९. पत्र : कुसुम देसाईको

१६ मई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

पत्र बहुत अधूरा है। फुरसत मिलनेपर मैं सवाल तैयार कर दूँगा। तू उनके जवाब देगी तो मैं जो बन सकेगा करूँगा। यह हो जानेके बाद कागज यहाँ मंगवाऊँगा। अभी जल्दी तो है नहीं। बात मुझे फुरसत मिलनेपर लिखनेकी ही है।

मैंने तुझे बोलकर जो पत्र लिखवाये, तू उन्हींकी चर्चा कर रही है न? यदि यही है तो किसी दिन जब लिखवाये गये पत्रोंका संग्रह प्रकाशित होगा तो उसमें तुझसे लिखवाये गये ये पत्र भी आ जायेंगे। क्या अलग प्रकाशित करनेमें कोई खास हेतु है?

तू जून मासतक निश्चित जगहपर न चली जाये और पहले हफ्तेमें यहाँ आये तो महादेवसे भी मिल लेना। प्यारेलालका क्या हुआ? सुशीला मुझसे मिलना चाहे तो मिल सकती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३७) से।

५४०. पत्र : फूलचन्द बापूजी शाहको

१६ मई, १९३२

भाईश्री फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र पाकर हम सबको बहुत खुशी हुई। हमें ऐसी बातोंपर दुःख नहीं करना है।[1] कैदी हैं इसलिए जितना पानी पीनेके लिए दें उतना पियें। ऐसा भी समय था जब कैदीको पत्र नहीं लिखने देते थे, न पूरा खाना देते थे और न पढ़ने देते थे। उन्हें चौबीसों घंटे बेड़ियाँ पहनाते थे और पुआलपर सुलाते थे। इसलिए हमें तो जो-कुछ मिले उसे ईश्वरका अनुग्रह मानें। अपमान हो तो उसके लिए प्राण दे दें; किन्तु देह-दुःखको तो सहन करना ही है।

तुम सब वहाँ सुखसे हो, यह जानकर हम लोगोंको प्रसन्नता हुई। फिर सुख-दुःख तो मानसिक स्थिति है। तुम और मामा नियमोंका पालन करते हो और करवाते हो, स्वच्छताका ध्यान रखा है——यह सब तुम्हें शोभा देता है।

मैं आशा करता हूँ कि वहाँ सब भाई अपने समयका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करते होंगे। ऐसा एकान्त और इतना अवकाश बार-बार नहीं मिलते। पढ़नेको कुछ मिले तो पढ़ो, विचार करनेका समय तो मिलता ही है। और ऐसे अनेक दूसरे काम हैं जिनमें से कुछ-न-कुछ तो हाथमें ले सकते हो। हम सब एक गम्भीर भूल करते हैं। वह यह कि सरकारी समय या वस्तु मानो हमारी नहीं है, ऐसा मानकर हम उसे बरबाद कर देते हैं। थोड़ा विचार करनेपर हमें तुरन्त समझमें आ जायेगा कि सारी सरकारी वस्तुएँ या सारा सरकारी समय प्रजाका है। वे सरकारके अधिकारमें हैं, इस कारण उन्हें नष्ट होने दें तो कह सकते हैं कि हमने प्रजाका धन और प्रजाका समय नष्ट किया। इसलिए हमारे हाथमें जो आये उसका हम सदुपयोग करें। जेलमें हम जो-कुछ बनाते हैं, वह भी प्रजाके धनमें वृद्धि करना है। विदेशी सरकार है उससे भी इस विचारसारिणीमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इससे आगे कुछ कहूँ तो वह राजनीतिकी बात हो जायेगी; और कैदी होनेके नाते हम राजनीतिकी चर्चा नहीं कर सकते। इसलिए यह बात यहीं समाप्त करता हूँ। वहाँ मेरे जान-पहचानवाले और कौन-कौन व्यक्ति हैं, यह लिखना या जिसकी पत्र लिखनेकी पारी आई हो, वह लिख दे? क्या दीवान मास्टर और आश्रमका माधवलाल वहाँ हैं?

कह सकते हैं कि हम तीनों जने तो मौज कर रहे हैं। खाने-पीनेमें जितना अंकुश हम स्वयं रखें उतना ही है। और इसी तरह सोना, बैठना, कातना, पींजना सब ठीक-ठीक चल रहा है। पढ़ते तो हैं ही? अखबार भी ठीक मिल जाते हैं।

१. यह वाक्य **महादेवभाईनी डायरी**, भाग-१, पृष्ठ १५६ में प्रकाशित पत्रांशसे उद्धृत किया गया है। वीसापुर-जेलसे गांधीजी को लिखे फूलचन्द बापूजी के पत्रकी १३ पंक्तियाँ अधिकारियोंने काट दी थीं।

पुस्तकें तो रोज ही कोई-न-कोई भेजता रहता है। प्रार्थना नियमपूर्वक चलती है। यही हमारा कार्यक्रम है।

सबको हमारे यथायोग्य।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४४५) से; सौजन्य : चन्द्रकान्त फूलचन्द शाह।

५४१. पत्र : विद्या रा० पटेलको

१६ मई, १९३२

चि० विद्या,

तू अच्छी तरह ध्यान लगाकर कातेगी तो बीस अंकका सूत जरूर कात पायेगी।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२८) से; सौजन्य : रवीन्द्र रावजीभाई पटेल।

५४२. पत्र : विमल किशोर मेहरोत्राको

१६ मई, १९३२

चि० विमल,

अबकी बार तुमारा खत अच्छा है। ऐसा हि लिखा करो। खेलते खेलते सबको हिंदी सीखा दो। महीन कातनेकी कोशीश करो।

बापू

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४९९) से। सी० डब्ल्यू० ४९७६ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा।

५४३. एक पत्र

१६ मई, १९३२

भाई,

यज्ञसे माँगना।

आचार्य वह जो अपने सदाचारसे हमें सदाचारी बनावे सच्चा व्यक्तित्व अपनेको शून्यवत् बनानेमें है।

जीवनका रहस्य निष्काम सेवा है। सबसे ऊँचा आदर्श है कि हम वीतराग बनें।

अन्तर्बाह्य नियमोंका निश्चय प्राय: ऋषि-मुनियोंने अपने अनुभवसे किया है।

ऋषि वह जिसने आत्मानुभव किया है। काम्य कर्मके त्यागको 'गीता' संन्यास कहती है।

पुरुष वह जो अपने देहका राजा बना है। सौन्दर्य आंतरिक वस्तु होनेसे उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता।

सब प्रश्नोंके उत्तर दिये गये हैं।

बापू

सी० डब्ल्यू० ९१२२ से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५४४. एक पत्र[1]

१७ मई, १९३२

किसी भी उथल-पुथलसे हीन जीवन बहुत ही नीरस चीज बन जायेगी। ऐसी अपेक्षा ही न रखें। इसलिए, जीवनके सारे विक्षोभोंको सह लेना ही समझदारी है। यह 'रामायण' से मिलनेवाली बहुमूल्य शिक्षाओंमें से एक है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १५८।

१. प्रश्नकर्त्ताने गांधीजी से अपने पत्रमें पूछा था क क्या उन्होंने ऐसा कोई व्यक्ति देखा है जो कभी अशान्त न होता हो।

५४५. पत्र : निर्मला बी० मशरूवालाको

१७ मई, १९३२

चि० निर्मला,

तूने पत्र लिखा, यह बहुत अच्छा किया। अब लिखते रहना और किशोरलाल और गोमतीके समाचार देते रहना। क्या तू कभी उनसे मिलने जाती है? लिखना, गोमती इन दिनों खुराकमें क्या-क्या लेती है। वहाँ उसके साथ कौन-कौन हैं? किशोरलालके साथियोंकी तो मुझे खबर है। मैंने मंजुको तो लिखा है कि उसे अस्पताल नहीं छोड़ना चाहिए। यह जवाबदारी उसने स्वेच्छासे ली थी। मेरा ऐसा मत है कि अब यह बिना किसी सबल कारणके नहीं छोड़ी जा सकती। नाथजी क्या कहते हैं? तुम सब लोग क्या सोचते हो? हम तीनोंकी तबीयत ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६६१) से; सौजन्य: कनुभाई नानाभाई मशरूवाला।

५४६. पत्र : कैदी बहनोंको

१७ मई, १९३२

ईश्वरके दर्शन आँखसे नहीं होते। ईश्वरका शरीर नहीं है, इसलिए उसके दर्शन श्रद्धासे ही होते हैं। हमारे दिलमें जब किसी भी तरहके विकारी विचार न हों, किसी भी प्रकारका भय न रहे और नित्य प्रसन्नता रहे, तब यह जाहिर होता है कि हृदयमें भगवान निवास करते हैं। वे तो सदा वहाँ हैं ही, मगर हम उन्हें नहीं देखते, क्योंकि हममें श्रद्धा नहीं है। और इसलिए हमें कई तरहके संकट उठाने पड़ते हैं। सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हो जानेपर बाहरसे लगनेवाले संकट भी ऐसी श्रद्धावालेको संकट नहीं लगते। ऊपर जो लिखा, वह तारादेवी वाजपेयीपर लागू होता है। प्राणायाम ऐसा और इतना करना चाहिए जिससे शरीरको कहीं भी कष्ट न हो। हठयोगके प्राणायामका मुझे कुछ भी अनुभव नहीं है। इसलिए इस मामलेमें मैं उन्हें रास्ता नहीं दिखा सकता। ऐसे प्राणायामकी जरूरत भी नहीं है। भगवान शारीरिक क्रियाओंसे नहीं मिलता। भगवानसे मिलनेके लिए भावना चाहिए और इस भावनाके अनुसार आचरण चाहिए। प्राणायाम वगैरह क्रियाओंसे शरीरकी शुद्धि होती है और उससे थोड़ी-बहुत शान्ति मिलती है। इनका इससे ज्यादा उपयोग नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १५७–८।

५४६. पत्र : ई० ई० डॉयलको

[१८][१] मई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

मेजर भण्डारीने आज मुझे बताया कि उन्हें निर्देश दिया गया है कि यदि मीराबाई (स्लेड) मुझसे मिलना चाहें तो वे उन्हें रोक दें। हुआ ऐसा कि कल आर्थररोड-जेलसे रिहा कर दिये जानेपर वे आज मुझसे मिलने आईं। यदि उन्हें सरकार पहले ही सूचित कर देती कि उन्हें मुझसे मिलनेकी इजाजत नहीं दी जायेगी तो शिष्टता होती। लेकिन शायद यह एक छोटी-सी बात है। मेरे लिए सबसे अधिक महत्त्वकी बात जो है वह यह कि आश्रमके किसी भी व्यक्तिको अभीतक मुझसे मिलनेकी मनाही नहीं की गई है; तब केवल एक मीराबाईको ही क्यों रोका जाये। मैं हमेशा ही ऐसा समझता रहा हूँ और आभारी रहा हूँ कि सरकारने अव्यक्तरूपसे न केवल इस तथ्यको स्वीकार किया है कि मीराबाई आश्रमकी अन्तेवासिनी हैं बल्कि आश्रमके किसी भी अन्तेवासीसे, यदि यह सम्भव हो सकता है तो, मेरे कहीं ज्यादा नजदीक हैं। मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि उन्हें मौजूदा राजनैतिक आन्दोलनमें सक्रिय भाग न लेने और जान-बूझकर जेल न जानेकी कड़ी हिदायत है। उनका काम खादीका रचनात्मक आन्दोलन चलाने और विदेशोंमें मित्रोंको मौजूदा राजनैतिक घटनाओंकी सूचना देनेतक सीमित है। यदि ये काम भी निर्योग्यताएँ हैं तो शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बचता है जिससे मैं मिल सकूँ।

इसलिए, यदि मैं मीराबाईसे नहीं मिल सकता तो मैं नही समझता कि अन्य मिलनेवालोंसे मुलाकातकी इजाजतका और लाभ उठाना मेरे लिए कहाँतक उचित होगा। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मैं मीराबाईसे या किसी भी अन्य मिलनेवालेसे राजनीतिपर चर्चा नहीं करता। यदि ऐसा करना सम्भव होता तो भी मुझे जेलके अन्दरसे आन्दोलनका संचालन करनेकी रंचमात्र भी इच्छा नहीं है। सभी मुलाकातें सुपरिंटेंडेंटकी उपस्थितिमें होती हैं। इसलिए यदि सरकारको मेरी या मीराबाईकी भावनाओंका जरा भी खयाल है तो मैं आशा करता हूँ कि वह अपने निर्णयपर पुन: विचार करेगी और उन्हें पहलेकी तरह मुझसे मिलनेके लिए आनेकी अनुमति प्रदान करेगी।

१. देखिए अगला शीर्षक। साधन-सूत्रमें पत्रके डाकमें छोड़नेकी तिथि '१९' है; देखिए "दैनन्दिनी, १९३२" में '१९ मई' की प्रविष्टि।

क्या आप कृपया यह पत्र सरकारके सामने रखेंगे और शीघ्र निर्णयका अनुरोध करेंगे ?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (२), भाग – १, पृष्ठ ९५।

५४८. पत्र : मीराबहनको

१८/१९ मई, १९३२

चि० मीरा,

मुझे एकाएक यह जानकर दुःख हुआ कि तुम मुझसे नहीं मिल सकोगी।[1] मुझे पहला विचार तो यही आया कि अगर मैं तुमसे न मिल सकूँ, तो किसीसे भी कतई न मिलूँ। लेकिन मैंने संयम रखा और दूसरोंसे मिला। मैंने सरकारको लिखा[2] है कि वह अपने निर्णयपर पुर्नविचार करे। मेरा खयाल है कि वह ऐसा न करे तो मुझे और लोगोंसे मिलना बन्द कर ही देना चाहिए। मैंने सरकारसे अपने पत्रमें लग-भग ऐसा कह भी दिया है। उसके पास मनाहीका कोई उचित कारण हो तो दूसरी बात है। मिलनेकी इजाजत मिलनेतक तुम्हें पत्र लिखते रहना चाहिए। आशा है, इस अप्रत्याशित निर्णयका तुम्हारी तबीयतपर खराब असर नहीं हुआ होगा। शेष फिर।

बम्बईकी घटनाएँ[3] हृदयविदारक हैं। ईश्वरेच्छा बलीयसी।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्चः]

१९ [मई], [१९३२]

जब मैंने यह पत्र सुपरिन्टेन्डेन्टको दिया, तो उन्होंने मुझसे कहा कि वे तुम्हारा पत्र मेरे पास भिजवा रहे हैं। वह अभी मिला है। इस समय मैं और कुछ नहीं लिखूँगा। असलमें यह आघात-जैसी[4] कोई चीज नहीं है। अपनेको ईश्वरके हवाले

१. मीराबहन अपनी रिहाईके बाद अन्य लोगोंके साथ बापूसे मिलने गई थीं। जेल-अधिकारियोंने दूसरोंको तो बापूसे मिलने दिया, किन्तु मीराबहनको जेलके फाटकके बाहर ही रखा।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. हिन्दू-मुस्लिम दंगे।

४. आशय फाटकके भीतर न आने देनेसे है।

कर देनेके बाद आघातकी गुँजाइश ही कहाँ रह जाती है? इसलिए कष्ट सहनेमें खुशी मानो।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२२)से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६८८ से भी।

५४९. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ मई, १९३२

चि० नारणदास,

मीराबहनको तो भेंट करनेकी अनुमति नहीं मिली। अब मेरे सामने यह प्रश्न है कि मैं मुलाकातें लूँ या नहीं। मैंने सरकारको पत्र तो लिखा है और इसमें मैंने यह बात लगभग स्पष्ट कर दी है कि यदि इसपर पुनर्विचार न किया गया तो दूसरोंसे मिलनेकी बात मेरे लिए गम्भीर प्रश्न बन जायेगी। इसलिए अगर प्रेमाबहन, सुशीला और तुम मिलने आना चाहो तो जल्दी आना। तब शायद मैं मिल सकूँ। इस बीच अगर अस्वीकृतिका पत्र आ गया तो मैं तुम्हें शायद न आनेके लिए तार दूँगा। तुम चाहो तो मंगलवारको आ सकते हो।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२२७ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५५०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ मई, १९३२

चि० प्रेमा,

यद्यपि अगले सप्ताह तेरे मिलने आनेकी सम्भावना है, फिर भी पत्रका उत्तर दे देना ही ठीक है। इसके सिवा, कलकी घटना बताती है कि मेरा मिलना हमेशा अनिश्चित ही माना जाना चाहिए।

वाली बहुत अच्छी निकली। ऐसा लगता है कि इसका यश आश्रम नहीं ले सकता। मालूम होता है, वह ऐसी ही आई थी।

आश्रममें पली हुई लड़कियाँ इतनी दुर्बल दीखती हैं, यह एक पहेली ही है। मैं इसे सुलझा नहीं सका हूँ। मेरे पास इसके लिए अनुमान हैं। लेकिन जबतक मैं इसके लिए अच्छा आधार न बता सकूँ, तबतक इसकी चर्चाको मैं निरर्थक

मानता हूँ। हमसे हो सके तो हम कारणकी खोज करें। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि ये लड़कियाँ बाहर जाकर अच्छी ही हो जाती हैं, ऐसा नियम नहीं है।

नारणदासका ध्यान रखनेका अर्थ है कि जब वह शक्तिसे ज्यादा बोझा उठाये[1] तब उसे सावधान करना और मुझे भी सावधान कर देना। अपने वचनोंमें मैंने कहीं भी व्यामिश्रता नहीं देखी। अगर हो तो वह अनजाने और भाषापर मेरे बहुत कम अधिकारके कारण हुई होगी। मेरे वचन छोटे होनेके कारण उनमें अध्याहार तो होते ही हैं; लेकिन जैसे भूमितिमें होते हैं, वैसे ही।

जो लड़कियाँ अंग्रेजी सीखना चाहती हैं, उन्होंने अगर हिन्दी और संस्कृतपर ध्यान दिया हो और गुजराती अच्छी कर ली हो तो वे जरूर सीखें। सिखानेकी सुविधापर तो यह आधारित है ही। लेकिन वह सुविधा हमारे पास होनी चाहिए।

निश्चेष्ट व्यायामका मेरा अर्थ तू शायद नहीं समझी। मनुष्य स्वयं करे वह निश्चेष्ट नहीं कहलाता। यह व्यायाम बीमारके लिए है। मैं बीमार होऊँ, मेरी आँतोंको व्यायाम देना हो और कोई उनकी मालिश करे; अथवा मेरे पैरोंको कमरसे समकोण बनने-जितना ऊँचा करे, फिर सीधा करे और ऐसा करता रहे और मुझे उन्हें ऊँचा-नीचा करनेकी जरूरत न रहे, तो वह निश्चेष्ट व्यायाम कहलायेगा। तू इसी तरह समझी है, ऐसा नहीं लगता।

मौन प्रार्थनामें दोनों हेतु थे। मनको आराम देनेका तो था ही। लेकिन उसके बिना मनको अन्तर्मुख करना भी कठिन था। जब भी हम किसी एक कामको छोड़कर दूसरा हाथमें लें, हमें ऐसा लगना चाहिए कि हमारे पास पर्याप्त अवकाश है। हममें अधीरता, अशान्ति नहीं होनी चाहिए। इसीमें से तटस्थता आती है।

मेरे अन्दर एकाग्रता होनी ही चाहिए। लेकिन मुझे सन्तोष दे सके उतनी नहीं है। उसके लिए मैं प्रयत्नशील हूँ, लेकिन अधीर नहीं हूँ।

बच्चोंको सारी प्रार्थनामें रस न आता हो तो उनके लिए कोई अलग प्रार्थना रखी जा सकती है, जैसा कि प्रभुदासने किया था। बच्चे श्रद्धा और शान्तिसे बैठ सकें तो उसे मैं अच्छा मानूँगा।

१६ वर्षोंसे यहीं प्रार्थना होती रही है, यह स्तुति नहीं है। यह वस्तुस्थिति है। कहनेका हेतु यह नहीं है कि इतने वर्षोंसे सब लोग प्रार्थनामें आये हैं। बहुत-सी असुविधाओं और आलोचनाओंके बीच आश्रम इसी प्रार्थनासे चिपका रहा है और उसमें से बहुतोंने शान्तिका अनुभव किया है। बहुत सबल कारणोंके बिना उसका त्याग या उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता, इतना ही कहनेका हेतु था।

बहनोंकी प्रार्थना शामको ठीक नहीं रहेगी। शामका समय वाचन वगैरहमें भी दिया जाता है।

तूने अपने विषयमें जो लिखा, वह ठीक है। तेरी बुद्धि और तेरे हृदयको जो सच्चा लगे वैसा ही तुझे करना है। मुझे जल्दी नहीं है। मैं तो, जो मुझे उचित लगता है,

१. देखिए पृष्ठ ३९१-२।

कह देता हूँ। उस चीजको मैं जबरदस्ती तेरे गले नहीं उतार सकता। मैं मित्रकी आवश्यकता ही पूरी कर सकता हूँ। मेरे लम्बे अनुभवोंका बड़े-से-बड़ा दावा हो सकता है। लेकिन उनमें से एकका भी प्रतिबिम्ब तेरे हृदयपर न पड़े, तो मेरे हजारों अनुभव तेरे लिए निरर्थक हैं। आश्रमके बारेमें मेरा एक दावा है। वह आनेवालेको पंख देता है; फिर वह जहाँ चाहे उड़ सकता है। वह स्वेच्छासे रहे तो रह सकता है; न रहे तो भी आश्रमने अपने एक धर्मका पालन किया। ऐसा ही हुआ है, यह बहुतोंके बारेमें सिद्ध किया जा सकता है। स्त्रियोंके बारेमें अधिक किया जा सकता है। ऐसी लड़कियाँ आश्रममें आ चुकी हैं जिनमें जरा भी उमंग, उत्साह नहीं था। आज वे अपनेको स्वतंत्र मानती हैं, और हैं। ऐसी लड़कियाँ गुलबदन, उमिया, विद्यावती, रूखी, इत्यादि हैं। व्यक्ति-प्रेमका मैं हमेशा विरोध नहीं करता। वह विश्वप्रेमका, प्रभुप्रेमका विरोधी नहीं होना चाहिए। बा के प्रति मुझे आज जो प्रेम है वह प्रभुप्रेममें समाया हुआ है। मैं विषयी था तब वह प्रभुके प्रेमका विरोधी था, इसलिए त्याज्य था।

तेरा वजन घटा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है, बशर्ते कि दूसरी तरह तेरा शरीर ठीक हो। सुशीला आ सकती है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८६) से। सी० डब्ल्यू० ६७३४ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

५५१. एक पत्र[1]

१९ मई, १९३२

. . .[2] जो दो विशेष सुविधाएँ भोग रही है, वे उसपर दबाव डालकर नहीं छुड़वाई जा सकतीं। उसे खुद ही इस बारेमें दिली उत्साह न हो, तबतक ये चीजें नहीं छुड़वाई जा सकतीं। मेरा उदाहरण लेते हो, वह ठीक भी है और ठीक नहीं भी है। ठीक इसलिए कि जबतक मैं कार्यक्षेत्रमें मौजूद हूँ, तबतक मेरा उदाहरण दिया ही जायेगा और बुद्धि-भेद पैदा होगा ही। क्योंकि कई कारणोंसे जो बरताव मैं औरोंसे चाहता हूँ, वह आजकल अपने जीवनसे प्रत्यक्ष नहीं कर सकता।

१. **महादेव देसाईकी डायरी,** भाग-१ में यह पत्र जिसे लिखा गया था, उसका नाम 'एस' दिया हुआ है। प्रश्नकर्त्ताने गांधीजी से पूछा था कि जिन सुविधाओंका आप उपभोग करते हैं, दूसरोंको उनका त्याग करनेकी सलाह कैसे दे सकते हैं; हम किसी बीमार या मरणासन्न व्यक्तिको देखकर दुखी क्यों होते हैं; यदि वह बच जाता है तो हम ईश्वरको धन्यवाद क्यों देते हैं; जब मणिलाल ठीक हो गये थे तो आपने ईश्वरका आभार क्यों माना था। मानव-जीवनकी आयु-सीमा क्या है, आदि-आदि।

२. साधन-सूत्रके अनुसार नाम छोड़ दिया गया है।

मैं जानता हूँ कि मेरे नेतृत्वमें इतनी खामी है। मेरा उदाहरण देना इसलिए ठीक नहीं है कि मेरी स्थिति दूसरे साथियोंसे भिन्न हो गई है। उसका एक कारण मेरी शारीरिक कमजोरी, दूसरा कारण महात्माका पद और तीसरा कारण मेरी विशेष परिस्थिति है। मैं 'सी' श्रेणीमें होऊँ, तो भी मेरी खुराक दूसरी ही होगी। उसका कारण मेरा शरीर और मेरा व्रत है। यह बात कुछ हदतक हर कैदीपर लागू होती है। यह अलग सवाल है कि जितनी जल्दी खुराककी सुविधाएँ मझे मिल जाती हैं, उतनी दूसरोंको नहीं मिल सकतीं। मैं हर तीसरे महीनेके बजाय हर हफ्ते मुलाकातें करता हूँ और पत्र लिखनेकी तो लग-भग कोई भी मर्यादा नहीं है। इस बारेमें मैंने अपने मनको यों समझा लिया है कि मेरा कोई निजी मित्र नहीं है और सगे-सम्बन्धियोंसे मैं उन्हें सगा मानकर मिलता नहीं। मैं मिलता हूँ तो उससे नैतिक काम निकलता है। मैं लिखता हूँ तो उसका भी उद्देश्य यही है। भीतर-ही-भीतर इसमें कोई भोग होगा तो वह मैं जानता नहीं। होनेकी सम्भावना कम ही है, क्योंकि पत्र लिखना या मिलना बन्द हो जाये तो मुझे आघात नहीं पहुँचेगा। सन् १९३० में मेरी शर्त मंजूर नहीं हुई, तो मैंने मिलना बन्द कर दिया था।[1] सन् १९२२ में पत्र लिखना बन्द कर दिया था।[2] इसके सिवा मुझे जो अलग रखा जाता है, वह भी एक कारण है। इस कारण यदि मुझसे तुलना की जाये तो ठीक नहीं होगा। मगर जिसे यह बात स्वयंसिद्ध न लगती हो, उसे दलील देकर समझाना मैं ठीक नहीं समझता। जिसे बाहरसे बन्दोबस्त होनेके कारण 'ए' श्रेणी मिली हो और जिसे अपने आप 'ए' श्रेणी मिली हो, उन दोनोंके बीच थोड़ा फर्क तो जरूर है। लेकिन वह भेद करनेमें कोई सार नहीं है। आदर्श तो बेशक यही है कि श्रेणियाँ होनी ही नहीं चाहिए; और जिनका वर्गीकरण किया गया हो, उन्हें ऊँचे कहलानेवाले वर्गको छोड़ देना चाहिए। इस आदर्शकी रक्षा जब अभी बहुत ही कम लोग करते हैं, तब . . .[3] -जैसी लड़कीपर जरा भी जोर डालनेकी इच्छा नहीं होती। वह बहुत विचारवान है। अपने-आप जितना संयम रखनेकी उसकी शक्ति होगी, उतना वह जरूर रखती ही होगी।

मणिलालके लिए मैंने प्रार्थना की, वह ज्ञानसूचक नहीं थी, मगर पिताके प्रेमकी सूचक थी। प्रार्थना तो एक यही शोभा देती है – 'ईश्वरको जो ठीक लगे सो करे।' यह प्रश्न उठ सकता है कि ऐसी प्रार्थना करनेका अर्थ क्या? इसका जवाब यह है कि प्रार्थनाका स्थूल अर्थ नहीं करना चाहिए। हमारे हृदयमें बसनेवाले ईश्वरकी हस्ती के बारेमें हम जाग्रत हैं और मोहसे छूटनेके लिए घड़ी-भर ईश्वरको अपनेसे अलग समझकर उससे प्रार्थना करते हैं यानी, मन हमें जहाँ खींच ले जाता है, वहाँ हम जाना नहीं चाहते। मगर ईश्वर हमसे भिन्न हो, तो हमारा स्वामी होनेके कारण वह हमें जहाँ खींचकर ले जायेगा, वहीं हमें जाना है। हम नहीं जानते कि जीनेमें

१. देखिए खण्ड ४३, पृष्ठ ४५५ और ४५७।

२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १४८।

३. साधन-सूत्रके अनुसार नाम छोड़ दिया गया है।

भला है या मरनेमें। इसलिए न तो जीकर खुश हों और न मरनेसे डरें। यह समझकर कि दोनों एक-से हैं, हम तटस्थ रहें। यह आदर्श है। वहाँतक पहुँचनेमें देर लगती है, शायद ही कोई पहुँच सकता है। इसलिए हम आदर्शको कभी न छोड़ें और ज्यों-ज्यों उसकी कठिनाई हमें महसूस होती जाये, त्यों-त्यों हम अपना प्रयत्न बढ़ाते जायें।

पूर्णायु १०० वर्षसे भी ज्यादा हो सकती है। मगर कितने ही वर्ष हों तो भी काल-चक्र अनन्त है और उसमें मनुष्यके एक आयुष्यकी गिनती एक बिन्दुका करोड़वाँ भाग भी नहीं है। इसके लिए मोह क्या या हिसाब क्या? और हम हिसाब लगायें भी तो वह किसी भी तरह निश्चयात्मक नहीं हो सकता। अनुमानसे इतना कहा जा सकता है कि ज्यादा-से-ज्यादा उम्र कितनी हो। वैसे तो हम तन्दुरुस्त बच्चोंको भी मरते देखते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि विषयी दीर्घायु नहीं हो सकता। अधिक-से-अधिक यह कह सकते हैं कि जिनका जीवन शुरूसे ही सादा होगा और विषय-रहित होगा, वे ज्यादातर दीर्घजीवी होंगे। मगर जो आदमी सिर्फ दीर्घजीवी बननेके लिए ही विषयोंपर काबू करता है, उसके लिए यही कहा जायेगा कि उसने चूहेके लिए पहाड़ खोदनेका काम किया। विषयोंको हमें जीतना है आत्माको पहचाननेके लिए। विषयोंको जीतनेकी कोशिशमें शरीर ज्यादा दिन रहनेके बजाय थोड़े दिन रहे, तो वैसा होने देना चाहिए। शरीरका नीरोगी या दीर्घायु होना विषय-रहित होनेका छोटे-से-छोटा परिणाम है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १६२–४।

५५२. पत्र : बबलभाई मेहताको

२० मई, १९३२

चि० बबलभाई,

पूर्वजोंको खुश रखनेके लिए ऐसा काम जिसमें अनीति न हो, करनेमें शोभा है। ऊँचे स्वरमें सामुदायिक प्रार्थना करना धर्म नहीं है। इसलिए इस बातपर सत्याग्रह नहीं किया जा सकता। जेलमें अँगुलियोंकी छाप देनेमें मानभंगकी कोई बात नहीं है। छाप लेनेका भागने न भागनेकी बातसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४५२) से। सी० डब्ल्यू० ९११५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

५५३. एक पत्र

२० मई, १९३२

तुम्हारे कार्यका कोई तात्कालिक परिणाम भले ही न दिखाई दे, उससे तनिक भी निराश नहीं होना चाहिए। शुभ हेतुसे, निःस्वार्थ भावसे तथा ईश्वरार्पणकी इच्छासे की गई सेवा कभी निष्फल नहीं होती। इतना विश्वास रखकर हमें एकाग्र चित्तसे हाथमें लिये गये काममें जुटे रहना चाहिए। ऐसी घटनाएँ भी हम जानते हैं जहाँ कई बार मनुष्योंने अपना सारा जीवन शुभ कार्योंमें लगा दिया है और उस कामका परिणाम बादमें ही दिखाई दिया है। उत्कल-जैसे हताश, गरीब प्रदेशमें, जहाँ कई लोग सेवाके बहाने आकर उसे लूट गये हों, हम-जैसे चार-छः वर्ष काम करें और कोई परिणाम न दिखाई दे, तो इसमें कोई विचित्रता नहीं माननी चाहिए। इतने कम समयमें कुछ परिणाम दिखाई दे जाये तो उसे आश्चर्यकी बात माननी चाहिए। किन्तु तुम तो कुछ-न-कुछ परिणाम भी देख पा रहे हो। तुम्हारा सेवा-क्षेत्र वहीं है, आत्म-दर्शनका स्थान भी वही है, यह समझकर तुम और तुम्हारे साथी जुटे रहना। तुम सबके स्वास्थ्यके बारेमें खबर अच्छी है, इससे प्रसन्नता होती है। जैसे-जैसे वहाँकी जलवायु अनुकूल पड़ेगी और मन प्रफुल्लित रहने लगेगा, वैसे-वैसे उसका शुभ प्रभाव शरीरपर भी होगा।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९११६)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५५४. एक पत्र

२० मई, १९३२

इधर-उधरका विचार न करके सिर्फ जीवमात्रके कल्याणका ही विचार करना। ज्यों-ज्यों इस विषयमें ज्यादा चिन्तन करोगे त्यों-त्यों शान्ति बढ़ती जायेगी।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९११३)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५५५. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२० मई, १९३२

चि० जमना,

कुसुमकी बुद्धि अभी भी बच्चोंकी-सी है। कई बार बच्चे अनुभवकी ठोकर लगनेपर ही सीखते हैं। यदि वह अभी राणावाव जाकर आराम करे तो ठीक हो जायेगी।

तुम्हारा स्वास्थ्य न सुधरे तो तुम्हें भी बाहर हो आना चाहिए।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५४)से। सौजन्य : नारणदास गांधी।

५५६. पत्र : पुष्पा शं० पटेलको

२० मई, १९३२

चि० पुष्पा,

तेरे अक्षर अब सुधरने लगे हैं। नन्हे बच्चोंको प्रार्थनासे सीधे बिस्तरपर [illegible]ना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९८९)से। (सी० डब्ल्यू० ३५)से मी; सौजन्य : पुष्पा ना० नायक।

५५७. पत्र : प्रभुदास गांधीको

२० मई, १९३२

तेरे चरखेमें मैं जो रस ले रहा हूँ वह तू अपनी आँखों देख ले, तो तुझे इतना आनन्द हो कि तेरा खून एक-दो सेर तुरन्त बढ़ जाये। हाथको जब कुछ भी नहीं हुआ था, तभी तेरे चरखेका प्रयोग करनेका संकल्प कर चुका था। अब तो जबर्दस्तीका पुण्य करना पड़ रहा है। या तो कातना छूटे या इसी चरखेपर कते। इसलिए जैसे आफतमें फँसनेपर मनुष्यको नई बातें सूझा करती हैं वैसे ही इस वक्त आफतमें फँसनेके कारण मैं चरखेपर पाई हुई गति बढ़ानेकी युक्तियाँ खोजा करूँगा। इस बीच तू छूट जाये और उस वक्त मैं मुलाकातें करता होऊँ, तो मुझसे मिल जाना और कुछ नई बात हो तो सिखा जाना।

"मत्परः" यानी सत्यपरायण। "चरणपद्मे मम चित्त निष्पंदित करो हे", इसमें चरणपद्मका अर्थ है सत्यनारायणका चरणकमल — यह शब्द इस्तेमाल करके भक्तने सत्यको मूर्त्तिमान बना दिया है।[1] सत्य तो अमूर्त है। इसलिए सब लोग अपनेको ठीक लगे, वैसी सत्यकी मूर्तिकी कल्पना कर लें। यह समझ लेनेके बाद असंख्य मनुष्य असंख्य मूर्तियोंकी कल्पना कर सकते हैं। जबतक ये सब कल्पनाएँ ही रहेंगी, तबतक सच्ची ही हैं; क्योंकि इस मूर्तिसे मनुष्यको अपने लिए जो-कुछ चाहिए, सो मिल जाता है। असलमें तो विष्णु, महेश्वर, ब्रह्मा, भगवान, ईश्वर — ये सब नाम बिना अर्थके या अधूरे अर्थवाले हैं। सत्य ही पूरे अर्थवाला नाम है। कोई यह कहे कि मैं भगवानके लिए मरूँगा, तो इसका अर्थ वह खुद नहीं समझा सकता और सुननेवाला भी शायद ही समझेगा। मैं सत्यके लिए मरूँगा, यह कहनेवाला खुद समझता है और बहुत-कुछ सुननेवाला भी समझ सकेगा। तू यह पूछता है कि रामका अर्थ क्या? इसका अर्थ मैं समझाऊँ और उसका तू जाप करे, यह लगभग निरर्थक है। मगर तू जिसे भजना चाहता है वह राम है, यह समझकर रामनाम जपेगा तभी वह तेरे लिए कामधेनु हो सकता है। ऐसे संकल्पके साथ तू जप, फिर भले ही तोतेकी तरह ही रटता हो। तेरे जपके पीछे संकल्प है, तोतेके पीछे संकल्प नहीं है। यह बड़ा फर्क है, यहाँतक कि संकल्पके कारण तू तर सकता है। तोता संकल्प-रहित होनेके कारण थककर अपनी रटन छोड़ देगा या मालिकके लिए करता होगा तो अपना रोजका खाना-पीना लेकर चुप हो जायेगा। इस दृष्टिसे तुझे किसी प्रतीककी जरूरत नहीं और इसीलिए तुलसीदासने रामसे रामके नामकी महिमा ज्यादा बताई है। यानी, यह बताया कि रामका अर्थके साथ

१. प्रभुदासने पूछा था कि **गीता**में 'मामेकं शरणं व्रज' आता है, 'मत्परः' आता है, उसमें 'मत्परः' का क्या अर्थ है? और आप ईश्वरका अर्थ सत्य बताते हैं, तो मनुष्य सत्यका प्रतीक क्या बनाये? रामनाम जपे, मगर राम कौन?

कोई सम्बन्ध नहीं। अर्थ तो भक्त अपनी भक्तिके अनुसार बादमें पैदा कर लेगा। यही तो इस तरहके जपकी खूबी है। नहीं तो यह कहना साबित ही नहीं हो सकता कि जड़-से-जड़ मनुष्यमें भी चेतनता आ सकती है। शर्त एक ही है कि नामका जप किसीको दिखानेके लिए न हो, किसीको धोखा देनेके लिए न हो। मैंने बताया, उस ढंगसे संकल्प और श्रद्धाके साथ जपना चाहिए। इसमें मुझे कोई शंका नहीं कि इस तरह जपते हुए जो आदमी थकता नहीं, उस आदमीके लिए वह कल्पतरु हो जाता है। जिन्हें धीरज है वे सब अपने लिए इसे सिद्ध कर सकते हैं। पहले-पहल किसीका दिनों और किसीका वर्षोंतक इस जपके समय मन भटका करेगा, बेचैन रहेगा, और नींद आयेगी और इससे भी ज्यादा दुःखद परिणाम आयेगा। तो भी जो आदमी जपता ही रहेगा, उसे यह जप जरूर फल देगा — इसमें सन्देह नहीं है। चरखे-जैसी स्थूल वस्तु भी हमें तंग किये बिना हाथ नहीं आती; इससे मुश्किल दूसरी चीजें इससे भी ज्यादा कष्टके बाद सिद्ध होती हैं। तब फिर जो उत्तम वस्तुको पाना चाहता है, वह दी हुई दवाका लम्बे अर्सेतक धीरजके साथ सेवन न करे और निराश होकर बैठा रहे, उसके लिए क्या कहा जाये। मेरा खयाल है कि इतनेमें तेरे सब सवालोंका जवाब आ जाता है। क्योंकि इस तरह लिखनेके बाद तेरे लिए पूछनेको कुछ भी नहीं रह जाता। श्रद्धा दृढ़ हो जाये तो चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-उठते यही रटना लगा और हारनेका नाम न ले। भले ही सारा जन्म इसीमें बीत जाये। यह करता रह और इस बारेमें जरा भी शंका न कर कि तुझे दिन-दिन अधिक शान्ति मिलेगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १६४–६।

५५८. पत्र : छगनलाल गांधीको

२० मई, १९३२

चि० छगनलाल,

इसके साथ प्रभुदासका एक पत्र रख रहा हूँ। उसकी आध्यात्मिक शंकाओंके समाधान उत्तरमें[1] लिख दिये हैं। अल्मोड़ाकी जमीनके बारेमें लिखा है कि परिस्थिति ऐसी नहीं है कि इस समय कोई जिम्मेदार आदमी वहाँ रह सके। पंतजी[2] भी नहीं हैं; इसलिए जमीन खरीदनेका खयाल छोड़ दिया गया है। मगनचक्र चला रहा हूँ और लगभग चार दिनोंसे उसपर हाथ जम भी गया है। इस विषयमें प्रभुदासको विस्तारसे लिखा है। इससे उसे खुशी होगी। यह भी लिखा है कि छूटनेपर, अगर

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. गोविन्दवल्लभ पंत।

मैं मुलाकातें लेता होऊँ, वह आकर मिल जाये। देवीदत्तकी वहन लक्ष्मीके बारेमें लिखा है कि जो उचित होगा, करूँगा। शेष सभी बातोंका जवाब तुम्हें देना है। उसकी तबीयत अच्छी है और फिलहाल किसी तरहकी तकलीफ है, ऐसा तो नहीं लगता। चौमासा जब डटकर बैठ जायेगा, लगता है, तब वह जगह बदलना चाहेगा। उसका पत्र अधिकारियोंने कई जगह काट दिया है; उस कटे-छँटेपरसे यह मेरा अनुमान ही है। किन्तु बदलीकी माँग नहीं की जा सकती। यहाँसे तो वह नहीं ही की जायेगी। डॉ० तलवलकरको ठीक लगे और वे चाहें तो ऐसा सुझाव रख सकते हैं। प्रभुदासको भय है, वह भय मुझे नहीं है; किन्तु कुछ कहा नहीं जा सकता। रोगी जब खुद भयभीत हो तो यह भयभीत रहना ही भयको उपस्थित कर देता है।

खुशालभाईके बारेमें मिले हुए पत्रोंसे मेरा अनुमान है कि कुछ समयके लिए उन्हें नया जन्म मिल गया है। हम तीनों सकुशल हैं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० ३७) से।

५५९. पत्र : दूधीबहन वा० देसाईको

२१ मई, १९३२

चि० दूधीबहन,

मावो[1] अबतक बिलकुल अच्छा हो चुका होगा। वालजीको मेरी तरफसे लिखो कि वह जो खुराक आवश्यक है, माँगे। कदापि नहीं मिलेगी, ऐसा तो नहीं है। बीमारीके कारणसे 'सी' श्रेणीके लोगोंको भी दूध आदि मिलता है। नानूको[2] पढ़नेके बारेमें लिख रहा हूँ।

तुम्हें गंगादेवीकी सेवाका अवसर मिला, यह अच्छा हुआ। यह बहन तो मरकर अमर हो गई।

मुझे पत्र लिखती रहना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४३१) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

१. व २. सुदर्शन देसाई और विमलचन्द्र देसाई, दोनों दूधीबहनके पुत्र।

५६०. पत्र : रैहाना तैयबजीको

२१ मई, १९३२

चि० रैहाना,

तुम्हारा खत मिला, तहमीना बहनको[1] हम सबकी तरफसे हमदर्दी भेजो। जनम के साथ मरन खुदाने रखा है। इसलिए हम एकसे खुश न हों और दूसरेसे नाखुश न हों। सबके दो बाजू, माने, दोनों एक ही चीज हैं। जानके मोहमें हम मौतको अलग व बुरा मानते हैं। हसरतकी गजल दो बार पढ़ चुका। अच्छी तरह समझनेके लिए और पढ़ूँगा।[2]

आज इतने सबकसे सन्तोष मान लेना। सरकंडेकी कलमसे लिखा है और अक्षर ठीक करनेके विचारसे धीरे-धीरे लिखा है; इसलिए देर लगती है। तेरे सवालका जवाब रह ही गया; उसके लिए माफ करना। मुझे कुछ ऐसा खयाल था कि मैं जवाब दे चुका हूँ। इसमें शक नहीं कि तेरा धर्म अम्माजानके पास रहना ही है। यह तेरी साधना है, तेरी सेवा है। इसलिए तूने जो बात पसन्द की, वह मुझे पसन्द आई। तू उससे सदा प्रसन्न रहना। तुम सबको आबूकी हवासे फायदा हुआ होगा। अब्बाजान नाचते हैं या नहीं? वहाँ तो फिरसे जवान हो गये होंगे। बम्बईके पागल-पनके बाद हमने नाच-गान भुला दिया है। मैं समझ ही नहीं पाता कि आदमी इन्सानियत रखकर धर्मके नामपर लड़ कैसे सकता है। किन्तु मैं मनको और कलमको रोकता हूँ। अभी तो जहरका प्याला पी रहा हूँ।

किताब, जब बड़ौदा जाओ, तब भेजना।

अब्बाजान और अम्माजानको हम सबके खूब-खूब सलाम और वन्देमातरम्।

हमीदाके छूटनेका वक्त कब आ रहा है?

बापूके आशीर्वाद और तमाम दुआएं

[पुनश्च:]

सुना है, शनिवारको हमीदा छूट गई। क्या यह खबर ठीक है? अगर ठीक है तो वह मुझे सब हाल लिखे।[3]

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४४) से।

१. तहमीना खम्भाता।

२. यहाँतक पत्र उर्दूमें है।

३. पत्रका पुन: लिखा अंश भी उर्दूमें है, यह २३ मई को लिखा गया था; देखिए "दैनन्दिनी, १९३२", में '२३ मई' की प्रविष्टि।

५६१. पत्र : विमलचन्द्र वा० देसाईको

२१ मई, १९३२

चि० नानु,

इस बार तेरा पत्र नहीं आया। तू अब मन लगाकर पढ़ना कब शुरू करेगा। बच्चे तो जैसे खेलते हैं उसी तरह पढ़ते भी हैं। हमारे यहाँ जेलमें तो बिल्लीके बच्चे भी पढ़ते हैं। उनकी माँ उन्हें पढ़ाती है। सो कैसे, यह तो मैंने किसी दूसरे पत्रमें[1] लिखा है, उसे सुन लेना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७५६) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई।

५६२. बिल्ली – एक शिक्षिका[2]

२२ मई, १९३२

यहाँकी बिल्लीके सफाई-पसन्द[3] होनेके बारेमें तो मैं लिख चुका हूँ। उसको और उसके बच्चोंको देखकर मुझे ऐसा दिखाई देता है कि बिल्ली आदर्श शिक्षिका है। बिल्लीके बच्चोंको जो-कुछ सीखना चाहिए, वह यह माता बिना किसी परेशानीके और बिना मुँहसे एक शब्द बोले सिखा देती है। तरीका निहायत आसान है। वह जो सिखाना चाहती है, उसे खुद उनके सामने करके दिखाती है। बच्चे भी वैसा करने लगते हैं। इस तरह वे दौड़ना, पेड़पर चढ़ना, संभलकर उतरना, शिकार करना, अपने शरीरको चाटकर साफ कर लेना सीख गये। माँ जितना जानती है, उतना बच्चे देखते-देखते सीख गये हैं।

माँ बच्चोंको अक्सर बेकार भटकनेके लिए नहीं छोड़ती। उसका प्रेम मनुष्यके प्रेम-जैसा ही दिखाई देता है। वह बच्चोंको बगलमें लेकर सोती है। जब वे दूध पीना चाहते हैं, तब खुद लेट जाती है और उन्हें दूध पीने देती है। कोई शिकार

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. यह "पत्र : नारणदास गांधीको", १९/२३-५-१९३२ के साथ भेजा गया था। देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", १९/२३-५-१९३२।

३. देखिए "सफाई, सच्चाई, पवित्रता, स्वच्छता", पृष्ठ ४००-१।

किया हो तो उसे बच्चोंके पास ले आती है। वल्लभभाई रोज इनको दूध पिलाते हैं। छोटी-सी रकाबीमें तीनों दूध पीते हैं। अक्सर माँ देखा करती है, पर खुद उसमें से हिस्सा नहीं बटाती। वह बच्चोंके साथ बच्चोंकी तरह क्रीड़ा करती है, कुश्ती लड़ती है।

इससे मैंने यह सार निकाला कि हम बच्चोंको शिक्षा देना चाहते हैं तो जो बात उनसे कराना चाहते हों, वह खुद करनी चाहिए। बच्चोंमें अनुकरणकी भारी शक्ति होती है। मुँहसे कहा हुआ वे कम समझेंगे। हम उन्हें सत्य सिखाना चाहते हों तो खुद हमें बहुत सावधानीसे सत्यका पालन करना चाहिए। अपरिग्रह सिखाना हो तो हमें परिग्रह त्याग देना होगा। जो बात नीतिके विषयमें है, वह शारीरिक कार्योंके विषयमें भी है।

इस रीतिसे विचार करते हुए हम जल्दी ही यह देख सकते हैं कि आज जिस रीतिसे शिक्षा दी जाती है, उसमें पैसे और समयके व्ययके परिमाणमें फल नगण्य मिलता है। फिर हम यह भी देख सकते हैं कि बड़ी उम्रके सभी व्यक्तियोंका स्थान शिक्षकका है। हम अपने इस स्थानके साथ न्याय नहीं करते। हम अपने इस कर्त्तव्य पर उचित ध्यान नहीं देते और इससे शिक्षा सरल न रहकर, एक टेढ़ी चीज बन गई है।

बिल्ली आदि पशुओंमें बुद्धि नहीं है या कहिए, मनुष्य-जैसी बुद्धि नहीं है। तब वे जो करते हैं, उससे हमें तो बहुत आगे जाना चाहिए; पर इसके लिए पहले, भावी सन्तानकी नीतिके रक्षक होनेके नाते, हमें खुद उसका पालन करना होगा। जिस बातको हम चाहते हों कि आनेवाली सन्तान सीखे, उसे खुद भी यथाशक्ति सीखना चाहिए।

आश्रममें जो लोग शिक्षक और शिक्षिका हैं, वे इस दृष्टिसे विचार करने लगें और जहाँ अमल करना उचित हो वहाँ करने लगें, इसी उद्देश्यसे यह लेख लिखा है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

५६३. पत्र : एस्थर मेननको

२२ मई, १९३२

रानी बिटिया,

तुम जो-कुछ कर रही हो, मैं वह सब समझता हूँ। केवल, तुम्हें व्यर्थकी चिन्तामें पड़नेसे बचना चाहिए। यदि हम अपने आपको उसकी इच्छाका निमित्त-मात्र बना लें तो चिन्ताके क्षण हमारे पास फटकें ही नहीं।

हाँ, यह ठीक है कि बिना झंझावातके निस्तरंगता और अशान्तिके बिना शान्ति प्राप्त नहीं होती। शान्तिमें अशान्ति अन्तर्निहित है। अशान्ति न हो तो शान्ति क्या चीज है, यह हम जान ही न सकें। जीवन इस अशान्तिके विरुद्ध एक शाश्वत संघर्ष है, चाहे वह अशान्ति भीतरकी हो या बाहरकी। अशान्तिके बीच शान्ति महसूस करनेकी जरूरत इसीलिए है।

इस बार पूनामें गर्मी रही है। वैसे, सामान्यतः पूनामें कभी इतनी गर्मी नहीं होती। लेकिन अब बरसात होने लगी है और हमें सुन्दर सूर्यास्त तथा चिड़ियोंके मीठे संगीतका आनन्द मिल रहा है।

क्या तुम उस मरीजके[1] पास फिर गई थीं?

मैंने तुम्हें बताया था कि महादेव मेरे साथ है। वह नित्य पाँच घंटे कातता और पींजता है। अब वह बहुत बारीक सूत कातता है। अपने हाथोंकी कमजोरीके कारण मैं ज्यादा कताई नहीं कर पाता। आशा है कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक चल रहा होगा।

हम सबकी ओरसे प्यार और बच्चोंको चुम्बन।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सं. ११०) से; सौजन्य: भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९० से भी।

१. एक अपाहिज लड़की; देखिए "पत्र: एस्थर मेननको", २१-१-१९३२।

५६४. पत्र : नान और टाँगाई मेननको[1]

२२ मई, १९३२

प्रिय नान और टांगाई,

मुझे तुम्हारा मधुर पत्र मिला।

देखता हूँ कि तुम चिड़ियोंसे दोस्ती जमा रहे हो। हमने एक बिल्ली और उसके बच्चोंसे दोस्ती जमाई है। मैं उसे बहन कहता हूँ। उसका अपने बच्चोंके प्रति प्रेम देखकर आनन्द होता है। वह उनको सारी बातें खुद करके सिखाती है।

ईश्वर तुम्हें खुश रखे।

चुम्बनों सहित,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ११७।

५६५. पत्र : प्रफुल्लचन्द्र रायको[2]

२२ मई, १९३२

आप जो काम कर रहे हैं, वह कठिन है। मगर हमारे यहाँके लोगोंकी मदद करनेका उपाय यही है। सबको राहत पहुँचानेके लिए चरखे-जैसी और कोई चीज नहीं है।

जबतक आप सेवाकी दौड़में जवानोंको भी हरा देते हैं, कठिनाईकी घड़ियोंमें भी कमरेको अपनी हँसीसे गुंजा देते हैं, और जब नवयुवक निराश होने लगते हैं तब उनमें आशाका संचार कर देते हैं, तबतक आपका बुढ़ापा आनेकी बात करना कोई अर्थ नहीं रखता।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १६९-७०।

१. एस्थर मेननके बच्चे।

२. वैज्ञानिक एवं शिक्षाशास्त्री डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय, जो आचार्य रायके नामसे प्रख्यात थे। देखिए "श्रद्धाञ्जलि: प्रफुल्लचन्द्र रायको", २४-५-१९३२ भी।

५६६. पत्र : अरुणदास गुप्तको[1]

२२ मई, १९३२

माँ[2] कहती है कि तू बीमार है और फिर भी पढ़ने और काम करनेका हठ करता है। क्या तू आराम लेकर शरीरको पुनः स्वस्थ होनेका मौका नहीं देगा? वैसे तो मरना और जीना एक ही सिक्केके दो पहलू हैं और हम जितने आनन्दसे जीते हैं, उतने ही आनन्दसे हमें मरना चाहिए; फिर भी जबतक जीवन है तबतक शरीरको उसका प्राप्य हमें देना ही चाहिए। यह तो हमारे लिए ईश्वरकी दी हुई धरोहर है और हमें इसकी उचित देखभाल करनी चाहिए। तू लिख सके तो मुझे लिखना। भगवान तुझे सुखी रखे।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १६८।

५६७. पत्र : कुसुम देसाईको

२२ मई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

प्यारेलालके सवालका जवाब मैंने दिया था; वह तूने उसे पहुँचा दिया था? प्यारेलालको मेरी तरफसे कुछ मिला है, ऐसा नहीं दीखता।

तेरे नाम लिखे पत्र[3] छपवाने ही चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३८)से।

१. सतीशचन्द्र दासगुप्तका पुत्र।

२. हेमप्रभा देवी।

३. कुसुमबहनके नाम उनके पतिके पत्र।

५६८. एक पत्र

२२ मई, १९३२

चि०,

मोहके प्रेरक हम हैं। हममें दो शक्तियाँ वास करती हैं–दैवी और आसुरी, पाण्डव और कौरव। आसुरी शक्ति मोहको जन्म देती है। मिट्टीके महादेवमें मन लगानेके बदले सच्चे महादेवमें क्यों न लगायें? अथवा मिट्टीसे चेतनकी ओर बढ़ें। पेड़के तनेको पकड़े रहें तो डाल भी उसीमें आ जाती है। डालको पकड़नेपर डालके साथ हम भी टूटते हैं। अपने सम्बन्धियोंको याद करना पाप नहीं है। किन्तु हमें अपने सम्वन्धियोंकी व्याख्यामें पराये लोगोंका समावेश भी करना है। अपने-परायेका भेद करते हुए हम अनेक दुःख मोल लेते हैं। दोनों एक ही हैं, यह जान लें तो वियोग या मृत्युका दुःख नहीं रहता। इसे भारी या कठिन ज्ञान मानकर डरना नहीं। यह बात समझमें आने लायक है। इससे प्रेम कम नहीं होता, बल्कि और बढ़ता है। अच्छी तरहसे देखें तो हम जाने-अनजाने अपने 'स्व' का विस्तार करते ही जाते हैं। यदि इस अमूल्य नियमको अच्छी तरह समझ लें तो इसके बहुत बड़े परिणाम होते हैं।

यह सब लिखा है, इसमें से जो समझ आये उतना लेकर बाकी छोड़ देना। जो नियम भोजनपर लागू होता है, वही यहाँ भी लागू होता है।

आशा करता हूँ, जलवायु-परिवर्तनसे लाभ होगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९११७)से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५६९. पत्र: शारदाबहन चि० शाहको

२२ मई, १९३२

चि० शारदा,

पाँच मिनटके मौनका भी बहुत अर्थ होता है। उससे आराम भी मिलता है। यदि आश्रमकी बिल्ली यहाँ-वहाँ गन्दा करती फिरती है तो समझना चाहिए कि उसने हमसे बुरी आदत ले ली है। यहाँकी बिल्लीपर किसी मनुष्यका कुप्रभाव नहीं है।[1]

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९४७)से; सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला।

१. देखिए पृष्ठ ४००-१ और ४४९-५०।

५७०. पत्र : नारणदास गांधीको

१९/२३ मई, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक बुधवारको सबेरे मिली। यदि हरिलालपर मेरे द्वारा कोई अन्याय होता लगे तो लिखना। हरिलालके नाम मेरा पत्र[1] पढ़कर तुमने क्या सोचा, इस विषयमें कुछ नहीं लिखा, इसलिए मैंने यह लिखा है। मेरी तीन शर्तोंको मानकर जितना कर सकते हो करो। मेरी ओरसे उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

पाँच मिनटके मौनका कोई विशेष परिणाम देखनेमें आया हो तो लिखना।

लेडी विट्ठलदास, मैथ्यू और मणिबहन मुझसे मिलकर गईं। मीराबहनको तो मनाही हो गई है। उसे इससे बड़ा आघात लगा है। मुझे लगता है कि यदि मीरा बहनके लिए द्वार न खोले जायें तो मुझे किसी दूसरेसे भी मिलना नहीं चाहिए। मैंने (लगभग) इस अभिप्रायका पत्र[2] भी सरकारको लिख दिया है। इसलिए कदाचित अब लोगोंसे मिलनेके लिए अगला एक हफ्ता ही बच गया। यह भी निश्चयपूर्वक तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि बीचमें ही अस्वीकृति-सूचक जवाब आ जाये तो मिलना तभीसे बन्द कर दिया जायेगा। इसलिए मैं एक पोस्टकार्ड तुम्हें लिख देना चाहता हूँ। समयसे मिले तो रविवारतक वह तुम्हें मिल जाना चाहिए और यदि न मिले तथा मेरी तरफसे न आनेका तार भी न पहुँचे तो तुम जल्दी आकर मिल जाओ। यह कदाचित ठीक रहेगा। किन्तु तुम्हें मिलनेकी आवश्यकता महसूस हो, तो। यह बात प्रेमाबहन और सुशीलापर भी लागू होती है।

मजदूरोंका तम्बाकू छुड़वाना कठिन काम है, हो सके तो बहुत अच्छा है। यदि मजबूरीके डरसे या किसी और जरूरतको सोचकर वे इसे स्वीकार कर लें और फिर पीते रहें तो यह बहुत बुरी बात होगी। कोई तम्बाकू पीता हो और दूसरी बातोंमें भला हो तो वह उस बुरे आदमीसे अच्छा है जो तम्बाकू नहीं पीता। तम्बाकू पीनेवाले आदमी और तम्बाकू न पीनेवाले बुरे आदमीमें पहला दूसरेसे बहुत अच्छा है; इसलिए बाह्याचारका ध्यान रखनेके साथ-साथ मजदूरोंके अन्तराचारका विचार भी यथासम्भव करना।

धीरू और कुसुम राणवाव गये, यह बहुत अच्छा हुआ। अब उन्हें वहाँसे बहुत जल्दी मत लौटने देना। जो आश्रम-जीवनको समझ गये हैं और जिन्हें उससे स्नेह हो गया है, वे आश्रमको साथ लेकर घूमते हैं, ऐसा कहा जा सकता है। यदि कुसुम और धीरू-जैसे लोग, जिन्होंने वर्षों आश्रममें बिता दिये हैं, बाहर आश्रमके नियमोंका

१. यह उपलब्ध नहीं है। फिर भी देखिए "पत्र : हरिलालको", २७-४-१९३२।

२. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको" १९-५-१९३२।

पालन न कर सकें तो उनका आश्रममें रहना लगभग व्यर्थ गिना जायेगा। आश्रम-जीवनके रहस्यको समझनेवाला व्यक्ति तो जहाँ रहेगा, वहीं सेवा कर सकेगा। सेवाका क्षेत्र व्यापक है, अवसर भी व्यापक हैं, इसलिए इन भाई-बहनोंको अधीर होनेकी कोई जरूरत नहीं है। राणावावका पानी माफिक आ जाये और तबीयत सुधर जाये तो वे वहाँ तबतक बने रहें जबतक कि बिलकुल अच्छे न हो जायें।

प्यारे अली, नूरबानो और तिलकम नहीं आये। मैथ्यूके साथ तुमने यदि कुछ सन्देश भेजे थे तो ऐसा समझो कि वे उसीतक रह गये; क्योंकि मैथ्यू अधिक बात-चीत नहीं कर पाया।

मुझे अभीतक बा का पत्र नहीं मिला है। सम्भव है, वे वहाँसे भेजे ही न गये हों। कोई यहाँ रोक लेता है, ऐसा नहीं लगता। यदि तुममें से कोई सुपरिंटेंडेंटसे पूछताछ कर सकता हो तो देखना कि वे भेजे गये हैं या नहीं। बा तो यह बात पूछ ही सकती है।

२० मई, १९३२

क्या अभीतक छारा लोग आश्रमके पास रहते हैं? यदि रहते हैं तो क्या उनसे कोई सम्बन्ध बनाया है? क्या उनकी ओरसे कोई दिक्कतें पेश की जाती हैं? वहाँ चौकीदारी रखी जाती है, इसका क्या अर्थ है? चौकीदारी कितने घंटे की जाती है? यह काम कौन-कौन करते हैं? डॉक्टरके बंगलेपर कौन रहता है? ज्योतिर्भवनमें कौन रहता है? छगनलालका पत्र इसके साथ है। उसके साथ मेरे नाम लिखा प्रभुदासका पत्र भी है। इन दोनोंको पढ़ जाना। इसमें लक्ष्मीके विषयमें लिखा है। यदि बालकृष्ण उसे वर्धामें रखनेके लिए तैयार हो तो वह वहाँ जा सकती है। यदि बालकृष्ण न तैयार हो या लड़कीकी इच्छा साबरमतीमें रहनेकी हो और यदि तुम्हें कोई आपत्ति न लगे तो उसे वहाँ रख लेना[1]। तुम न रख सको और बालकृष्ण जवाबदारी लेनेको तैयार न हो, तो देवीदत्तको तदनुसार सूचित कर देना और प्रभुदासको भी।

कह सकते हैं कि मगनचक्रपर मैंने अब काबू पा लिया है। आज लगभग ढाई घंटेमें १८३ तार निकले। सूत १६ नम्बरका होगा। रामजीभाईवाली पूनियोंमें काफी कचरा है नहीं तो, सम्भव है, अधिक तार निकल सकें। अभी कठिनाई महसूस तो करता हूँ। चक्रको कई बार हाथसे ठीक जगहपर लाना पड़ता है। इसे दोष ही गिना जाता होगा। पैडल कर्कश आवाज करता है। केशुको यह बता देना। यदि वह कोई सुझाव रखना चाहे तो रखे।

२२ मई, १९३२

यदि तुमने तोतारामजी-द्वारा भेजे गये गंगादेवीके संस्मरण अथवा उनका भावार्थ अबतक आश्रमवासियोंको न सुनाया हो तो सुना देना उचित होगा।

१. देखिए पृष्ठ ४४७ भी।

२३ मई, १९३२

आज पचास मिनटमें ८९ तार निकले। सूतका अंक भी २० है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

५७१. पत्र : एलिजाबेथ एफ० हॉवर्डको[1]

२३ मई, १९३२

प्रिय बहन,

आपका पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। हमने आपके यहाँ[2] जो अत्यन्त सुखद और शान्तिमय समय बिताया, वह मुझे बहुत ही अच्छी तरहसे याद है। उन चन्द घंटोंमें और पतझड़की ऋतुमें भी मैंने जो-कुछ देखा, उससे वसन्त कालमें 'एपिंग फारेस्ट' की शोभाके विषयमें आप जो-कुछ कहती हैं, उसकी मैं आसानीसे कल्पना कर सकता हूँ।

मेरा उन मित्रोंसे मिल न सकना, जो हाल ही में परिस्थितिका अध्ययन करने भारत आये थे, मेरे लिए एक खेदकी बात रही। कृपया श्री बार्टलेटको मेरा अभिवादन कहिए और उन्हें बताइए कि कविकी अपीलके सहित जैसे ही उनका पत्र मुझे मिला था, मैंने उन्हें अपना जवाब[3] भेजा था। वह उन तक केन्द्रीय सरकारके जरिए ही जा सकता था। मैं नहीं जानता कि वह उनके पास भेजा गया या नहीं। निश्चय ही मैं उसमें कही बातें यहाँ दुहरा नहीं सकता।

जॉर्ज फॉक्सके लेखोंके उद्धरणोंके लिए आपको धन्यवाद।

कृपया अपनी माताजी को मेरा अभिवादन कहें। आशा करता हूँ कि वे सौ वर्ष पूरे करेंगी। आप अपने लिए भी मेरी ऐसी ही शुभ कामना स्वीकार कीजिए। हाँ, देसाई मेरे साथ हैं और चाहते हैं कि आपको उनकी याद दिला दूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६२) से।

१. जी० एन० रजिस्टरके अनुसार।

२. गांधीजी एलिजाबेथ एफ० हॉवर्डसे आर्डमोर बुकहर्स्ट हिल, लन्दनमें सितम्बर २०, १९३१ को मिले थे।

३. देखिए "पत्र : पर्सी बार्टलेटको" ९-५-१९३२।

५७२. पत्र : मनु गांधीको

२३ मई, १९३२

चि० मनुड़ी,

तेरी चिट्ठी मिली। तेरे बारेमें खबर तो मुझे मिलती ही रहती थी। मैंने तेरे लिए बहुत-से चित्र इकट्ठे कर रखे हैं। पिछली बार भी किये थे किन्तु तुझसे मिलना सधा ही नहीं कि तुझे दे सकता। उनमें से कुछ बच गये हैं; उन्हींमें जोड़ता रहता हूँ। किसी दिन तुझे मिलेंगे। जितनी देरसे मिलें, उतनी बड़ी किस्मत कही जायेगी ना? तू गहने नहीं पहनती, यह ठीक है। बाल झड़ गये तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है। फिर आ जायेंगे। शोभा बालोंमें नहीं है। ऐसा हो तो उन्हें ऊपरसे लगाकर भी शोभित हो सकते हैं। शोभा तो अन्तरके गुणोंमें है। बात ऐसी न हो तो काँच या मोमकी पुतलियोंसे हम प्रसन्न रहें और शरीरमें से जीवके चले जानेके बाद भी उसे मढ़कर रख छोड़ें। हम ऐसा नहीं करते, इसका यही मतलब हुआ कि जो-कुछ है, वह जीवमें है और जीवकी शोभा तो उसके गुणोंमें ही होती है न? कोई इतना समझे तो शरीर आत्माके विकासका साधन है, वह यह भी समझ जाये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

इसमें जो लिखा, सो तू समझी या नहीं, मुझे लिखना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५१३) से; सौजन्य: मनुबहन मशरूवाला।

५७३. पत्र : बनारसीलाल और रुक्मिणी बजाजको

२३ मई, १९३२

चि० रुक्मिणी,

यह तुम दोनों[1] के लिए है, ऐसा मानना। तेरी चिट्ठी मिली है। बाबा अच्छा हो गया, यह सन्तोष हुआ। किसी तरह घूमने जा सके तो अच्छा हो।

रामेश्वरदासके[2] पत्रसे पता चलता है कि वे बड़ी परेशानीमें हैं। कारण, बनारसी मुझसे ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता है। अगर कुछ कर सकता है तो करे।

१. पत्रके पतेपर भी रुक्मिणी देवी और उनके पति बनारसीलाल दोनोंका नाम लिखा था।

२. बनारसीलालके पिता।

गंगादेवीके कुछ संस्मरण मुझे भेजे गये हैं। उसका जीवन बहुत पवित्र और परोपकार-परायण था। वहाँ 'आश्रम पत्रिका' क्यों नहीं पहुँचती? शायद तू मँगाती नहीं है।

डाह्याभाईकी यशोदाके देहान्तकी भी शायद तुझे खबर हो। अखबार वगैरह पढ़ती है?

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती रुक्मिणी देवी और श्रीयुत वनारसीदास[1]
२३/९६ पंचगंगा
काशी, बनारस, यू० पी०

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१३९) से।

५७४. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दारको[2]

२३ मई, १९३२

ऐसी कोई अवधि मुझे याद नहीं जब ईश्वरके लिए मेरी श्रद्धा खास तौरपर बढ़ गई हो। एक समय श्रद्धा नहीं थी; लेकिन धर्म-विचार और चिन्तनसे आने लगी और तबसे बढ़ती ही गई है। ज्यों-ज्यों यह ज्ञान बढ़ता गया कि ईश्वरका विशेष निवास हृदयमें है, त्यों-त्यों श्रद्धा बढ़ती गई। मगर ये सवाल तुम किसलिए पूछ रहे हो? क्या आगे चलकर 'कल्याण' में छापनेके लिए? तो यह बेकार है। और अगर खुद अपने लिए पूछते हो, तो मुझे कहना चाहिए कि इस मामलेमें पराया अनुभव काम नहीं देता। ईश्वरके प्रति श्रद्धाके साथ लगातार प्रयत्नसे ही श्रद्धा बढ़ती है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १७०।

१. गांधीजी ने भूलसे यह नाम लिख दिया था; यहाँ बनारसीलाल होना चाहिए था।

२. महादेव देसाई लिखते हैं: "हनुमानप्रसाद पोद्दारने बापूसे पूछा था कि क्या उनके जीवनमें ऐसी कुछ विशेष घटनाएँ घटी है जिनसे उनका ईश्वरपर विश्वास दृढ़ हुआ है"। (**महादेवभाईनी डायरी**, भाग–१, पृष्ठ १७०)

५७५. पत्र : अभयदेव शर्माको

२३ मई, १९३२

भाई अभय,

आपके पत्रकी मैं रोज प्रतीक्षा करता था इतनेमें कल आया और वैदिक विनयकी दो प्रति मिली। एक पहले भी आइ थी। मैं अवश्य पढुंगा और बादमें कुछ कहने जैसा होगा तो लिखुंगा। आपके अचार्य होनेसे अच्छा लगता है बुरा भी लगता है। किन्तु सहज प्राप्त धर्म है इसलिये मेरा विश्वास है कि यह ठीक हि है। आपके हाथसे इस मार्गसे कुछ बड़ी सेवा होगी। जयदेव कहां है? दयाके खतोंसे उस लड़कीका मेरे पर बहोत प्रभाव पड़ा है। उसमें सच्ची सेविका बननेके लक्षण दिखाई देते हैं।

रामदेवजीका शरीर अच्छा है? विद्यावती कैसे हैं?

बापूके आशीर्वाद

श्री अभय आचार्य
गुरुकुल कांगड़ी
डिस्ट्रिक्ट सहारनपुर

सी० डब्ल्यू० ९६६१ से।

५७६. श्रद्धांजलि : प्रफुल्लचन्द्र रायको[1]

२४ मई, १९३२

आचार्य रायको जाननेका सौभाग्य मुझे पहली बार उस समय मिला जब १९०१ में गोखले उनके पड़ोसी थे और मैं गोखलेकी देख-रेखमें काम कर रहा था। यह विश्वास करना कि सादी भारतीय पोशाकमें और बिलकुल ही सादे ढंगसे रहनेवाला वह व्यक्ति कोई महान वैज्ञानिक और प्रोफेसर हो सकता है, कठिन था। हालाँकि तब भी वे आजकी तरह ही महान थे। और जब मैंने सुना कि अपने राजसी वेतनमें से वे केवल कुछ ही रुपये अपने लिए रखते हैं और बाकी सार्वजनिक उपयोगमें और विशेषरूपसे गरीब विद्यार्थियोंकी मददमें लगा देते हैं, तब तो आश्चर्यसे मेरी साँस ही रुक गई। तीस वर्षोंमें भारतके इस महान और अच्छे सेवकमें कोई

१. उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठपर।

अन्तर नहीं आया है। आचार्य रायने हमारे सामने अथक सेवा, उत्साह और आशावादिताका जो उदाहरण रखा है, उसपर हमारा गर्व करना उचित ही होगा।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (३), भाग–१।

५७७. पत्र : सत्यचरण लॉ को

२४ मई, १९३२

प्रिय मित्र,

आचार्य रायकी सत्तरवीं वर्षगांठके सम्बन्धमें आपकी गश्ती चिट्ठी मिली है। मैं इसके साथ अपनी विनम्र श्रद्धांजलि भेज रहा हूँ। आशा है, अधिकारियों-द्वारा इसे आपके हाथोंतक पहुँचनेकी अनुमति मिल जायेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० सत्यचरण लॉ
सचिव
आचार्य राय जन्मोत्सव समिति
कलकत्ता

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (३), भाग–१।

५७८. पत्र : मूलचन्द पारेखको

२४ मई, १९३२

हरिजन समितिका प्रस्ताव मुझे भयानक लगा। यहाँ बैठे-बैठे तो क्या बता सकता हूँ? मगर क्या समितिके सदस्योंके जीते-जी एक भी पाठशाला बन्द हो सकती है? खुद बिक जाये, खुदका घर-बार बिक जाये और पाठशाला चलाये, तब उसका नाम समिति है। इसलिए हारनेके बजाय आशावादी बनो; और जब तुम अपनेको बेचनेके लिए तैयार हो जाओगे, तब समितिको जरूरी खर्च देकर लोग तुम्हें खरीद लेंगे। इस बारेमें भले ही तुम्हें शंका हो, मुझे हरगिज नहीं है। भोजा भगतकी कविता याद है न कि 'भक्ति शीश तणुं साटुं आगल वसमी छे वाटुं।'[1]

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १७१।

५७९. पत्र : एक बहनको

२४ मई, १९३२

बच्चे बड़े हो जायें, तभी उनके विवाह होने चाहिए। एक-दूसरेको पसन्द करें और माँ-बापकी भी सम्मति हो, ऐसे विवाह होने चाहिए। इसलिए उनमें कहीं भी कृत्रिम प्रतिबन्ध नहीं आता। मगर मेरी पसन्द कोई पूछे तो विधर्मियोंके बीच विवाह होना मैं जोखिमभरा प्रयोग मानता हूँ। क्योंकि दोनों ही अपने-अपने धर्मको मानने और उसका पालन करनेवाले हों, तो दोनोंके बीच दिक्कतें पैदा होनेकी सम्भावना रहती है। इस दृष्टिसे मैं उस भाटियाबहनकी शादी जोखिमभरी समझता हूँ। यह नहीं समझता कि वह धर्म-विरुद्ध है। दोनोंके बीचका प्रेम निर्मल हो, भाटियाबहन अपने धर्मका पालन कर सके और वह मुसलमान भाई अपने धर्मका, और फिर खाने-पीनेके बारेमें दोनोंके विचार मिलते हों, तो मेरा दिल ऐसे विवाहका विरोध नहीं कर सकता। मगर, जैसे मैं उपजातियोंका नाश चाहनेके कारण जातिसे बाहर शादी पसन्द करता हूँ, उसी तरह धर्मके बाहर विवाह पसन्द नहीं करता। उसके विरोधमें आन्दोलन भी नहीं करूँगा। यह सारी बात सब स्त्री-पुरुषोंको अपने-अपने लिए सोच लेने-जैसी है। इसमें एक ही कानून नहीं चल सकता।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १७१।

१. भक्ति सिरका सौदा है। आगे राह कठिन है।

५८०. पत्र : के० नटराजनको

२५ मई, १९३२

मैंने जब यह कहा था कि तान्त्रिक सिद्धियोंके दुरुपयोगके विषयमें लिखते हुए तुम्हें ज्यादा कड़ा होना चाहिए था[1], तब मैंने उस विशेषणका प्रयोग ठीक उसी अर्थमें किया था जिसमें मैं उसका प्रयोग मानी हुई बुराइयोंके बारेमें करता हूँ। मेरा खयाल है कि दुष्ट मनुष्यको तो हम क्षमा करें, मगर उसकी दुष्टताको धिक्कारनेमें जरा भी रियायत न करें। अगर हमने किसी चीजको बुरा मान लिया है तो जबतक हमारा यह खयाल कायम रहे, तबतक उस बुरी बातकी साफ-साफ शब्दोंमें निन्दा करना सौम्य स्वभावसे असंगत नहीं है। और यदि आगे चलकर हमें ऐसा मालूम पड़े कि हमारा वह खयाल गलत था, तो उसपर भी अफसोस करनेका कोई कारण नहीं। क्योंकि पूर्ण सत्यके पास पहुँचनेकी कोशिशमें हमें समय-समयपर सापेक्ष सत्यसे सन्तोष करके काम चलाना पड़ेगा। इस सापेक्ष सत्यको हम उस समय तो पूर्ण सत्य-जैसा ही मानकर चलेंगे। यह आसानीसे साबित किया जा सकता है कि हममें यदि इस तरहका विश्वास न हो तो हम प्रगति नहीं कर सकते। अलबत्ता, जहाँ हमें अपनी बातकी सचाईपर अपने दिलमें जरा भी शक होगा, वहाँ हमारी भाषा सावधानीकी होगी और निश्चयात्मक नहीं होगी। मौजूदा मामलेमें प्रयोग करनेवालेका हेतु कितना ही अच्छा हो, तो भी मेरी रायमें उसके प्रदर्शनोंका समर्थन नहीं किया जा सकता। फिर, ऐसे प्रदर्शनोंमें हाजिर रहनेका क्या परिणाम होगा, इस बारेमें सोचनेकी प्रेक्षकोंने जो जरा भी तकलीफ नहीं उठाई, इसके पक्षमें भी कुछ कहना सम्भव नहीं है। मगर इस बातको और विस्तार नहीं दूंगा। मैंने सोचा कि तुमने अपने पत्रमें[2] जो सफाई दी है, चूँकि मैं उससे सहमत नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हारे विचारके लिए मैं अपनी दलील तुम्हारे सामने रख दूँ।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १७७।

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है, इसी विषयपर पहलेके एक पत्रके लिए देखिए पृष्ठ ३५६।

२. पत्र इस प्रकार था: "तान्त्रिक सिद्धियोंके बारेमें मेरा वह अनुच्छेद जिसके बारेमें आपको लगता है कि उसे ज्यादा कड़ा होना चाहिए था, सचेत करनेवाला तो था; लेकिन लगता है कि मुझे कड़ा लिखनेमें, विशेषकर लोगोंकी आलोचना करते समय, बिलकुल रुचि नहीं रह गई है और मैं उसका ढंग भी भूल गया हूँ। मैं जब कड़ी चोट करनेके इरादेसे कलम उठाता हूँ तो दूसरे व्यक्तिकी तस्वीर मेरी आँखोंके सामने खड़ी हो जाती है और वह ऐसा कहती लगती है: 'तुम नहीं जानते कि मुझे अपने बारेमें क्या कहना है। मेरे भी अपने सिद्धान्त हैं, चाहे वे मेरे आचरणसे कितने ही अस्पष्ट रूपमें व्यक्त क्यों न हो रहे हों। मुझे उसी तरह परखो जैसे कि तुम अपनेको परखते।' मैं अपने निर्णयानुसार सभी विशेषणोंको जहरकी तरह बचा जाता हूँ और जो-कुछ भी कहता हूँ, उसमें सर्वथा व्यक्ति

५८१. पत्र : छगनलाल जोशीको[1]

२५ मई, १९३२

यहाँ पानी ले जानेवालेकी न स्तुतिका सवाल है, न निन्दाका। मगर विचार करके देखोगे तो मालूम हो जायेगा कि पानी पिलानेकी बात पानी ले जानेवालेके हाथमें थी ही नहीं। यहाँपर यह सवाल भी मुख्य नहीं है कि पानी तीनोंके लिए काफी था या नहीं। मगर पहले दो सिपाहियोंका आर्तनाद सुनकर उन दुखियोंको पानी मिले बिना उन्होंने खुद पानी पीनेसे इनकार कर दिया। ऐसी हालतमें पानी ले जानेवालेके स्वधर्म छोड़नेकी बात ही नहीं थी। ऐसा मालूम होता है कि इस दृश्यका चित्र तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हुआ। प्यास ऐसी चीज है कि मनुष्य दूसरेकी परवाह नहीं करता और पानी मिले तो खुद पी लेता है। ये लोग तो बेचारे मौतके किनारेपर खड़े थे। मगर ऐसे समय भी उन्होंने अपनी उदारता नहीं छोड़ी और इस तरह अन्तकालतक ब्राह्म स्थिति रखी। पानी ले जानेवाला केवल निरुपाय था, और जहाँ प्राण निकलनेमें कुछ पल बाकी हों, वहाँ कहीं यह हो सकता है कि घायलों के साथ बहस की जाये? इन सब बातोंपर दुबारा विचार कर लेना, और विचार करोगे तो मालूम होगा कि यह ऐतिहासिक घटना भव्य और सम्पूर्ण त्यागका दृष्टान्त है और इसमें निमित्त बननेवाले पानी ले जानेवालेकी आलोचना करनेका कुछ भी कारण नहीं रह जाता। ज्यादातर इतिहासमें ऐसे सम्पूर्ण दृष्टान्त नहीं मिलते। कुछ-न-कुछ खामी कहीं-न-कहीं रहती ही है। मगर मेरी दृष्टिसे इसमें कहीं खामी नहीं पाई जाती।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १७२–३।

निरपेक्ष रहता हूँ। यह मेरी आदत बन गई है और यह, निस्सन्देह, हर हालतमें एक अच्छी आदत है। मैं इस मामलेके सम्बन्धमें यह कहूँगा कि आखिरकार आदमी इसमें अपनी जानकी बाजी लगा देता है, ऐसा सोचकर ही मैंने यह बात तय की। रही उत्सुक भीड़की बात, तो मैं समझता हूँ कि वह ऐसे अवसरोंपर उन घटनाओंको देखकर, जो यह साबित करती हैं या साबित करनेका आभास देती हैं कि कम-से-कम एक आदमी परिस्थितियोंसे ऊपर उठ सकता है, नित्यकी परिस्थितियोंकी क्रूरतासे राहत महसूस करती है।"

१. छगनलाल जोशीने गांधीजी के लेख "अद्‌भुत त्याग" का सही अर्थ नहीं लगाया था और पूछा था "क्या पानी ले जानेवाला अपने कर्तव्य-पालनमें चूक नहीं गया? वह तो सबको पानी दे सकता था।"

५८२. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

२५ मई, १९३२

चि० शान्तिकुमार,

बहुत दिनोंके बाद तुम्हारी चिट्ठी आई। मेरा आशीर्वाद तो है ही। दीर्घायु होओ और तुम्हारे हाथसे शुद्ध सेवा बन पड़े। हमारे यहाँ एक उत्तम श्लोक है, उसे याद रखो :

विपदो नैव विपदः संपदो नैव संपदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥[1]

अर्थात्, दुःख सचमुचमें दुःख नहीं है और सुख उसी प्रकार सुख नहीं है। सच्चा दुःख भगवानका, सत्यका विस्मरण है और सुख सत्यनारायणका स्मरण।

माजी को मेरे प्रणाम। गोकीबहन[2] ठीक होगी। सुमतिको आशीर्वाद।

सरदारके आशीर्वाद, महादेवकी राम राम।

मुझे जो लिखना चाहो, लिखना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७९६) से; सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी।

५८३. पत्र : दरबारी साधुके सम्बन्धियोंको

२५ मई, १९३२

दरबारीसे कहना कि उसे कसती[3] और सदरा[4] छोड़नेकी कुछ भी जरूरत नहीं थी। और यही अच्छा है कि जब वह वापस जाये तब पहन ले। इसके पहननेमें पाप नहीं है और न अन्धविश्वास है। पहननेसे किसीका नुकसान नहीं और न पहननेसे पारसियोंको चोट पहुँचती है। इस तरह बिना कारण चोट पहुँचाना सेवकका काम नहीं होता और इससे अहिंसा खण्डित होती है। इतना काफी है कि अपने दिलमें इनके बारेमें गलत आदर न हो। इसमें जो बुतपरस्ती है, वह निकल जानी चाहिए।

१. देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ३९७।
२. शान्तिकुमार मोरारजी की चाची।
३. जनेऊ, जिसे पारसी पहनते हैं।
४. पारसियोंकी एक पोशाक।

और वह तो है भी नहीं। ये चीजें पारसी होनेके बाहरी निशान हैं। इन्हें छोड़ देना मुझे किसी तरह भी उचित नहीं लगता। इसके लिए जरथुस्त्रकी पुस्तकें ले आनेको डाह्याभाईसे कहा है। मैंने जरथुस्त्रके वचन पढ़े हैं। बहुत वर्ष पहले 'वेंदीदाद'[१] का अनुवाद पढ़ा था। यह नीतिसे भरा हुआ है। बहुत पुराना धर्म होनेके कारण सम्भव है कि सारे पारसी-ग्रन्थ आज मौजूद न हों और इसलिए सम्भव है कि जो ज्ञान उपनिषदों वगैरहसे मिलता है, वह जरथुस्त्रके बचे हुए साहित्यसे न मिल सके। जो मिल सकता है उसे पढ़कर दरबारीको विचार लेना चाहिए। मगर इतना तो आज भी माना हुआ है कि जरथुस्त्रका आधार वेद हैं। जहाँतक मुझे याद है, 'वेंदीदाद' के अनुवादकने जेंद और संस्कृतके बीच बहुत साम्य बताया है। इसलिए आज जो चीज पारसी-धर्मग्रन्थोंमें न पाई जाये, उस कमीको वेदों और उपनिषदोंसे पूरा कर लेनेमें पारसी-धर्म या पारसीपनको कुछ भी बट्टा नहीं लगता। असलमें तो अपने धर्मपर कायम रहते हुए किसी भी दूसरे धर्ममें जो विशेषता दिखे, उसे ले लेनेका हमारा अधिकार है। इतना ही नहीं, ऐसा करना हमारा धर्म है। दूसरे धर्मोंसे कुछ भी न लिया जा सके, इसीका नाम धर्मान्धता है; और उसे दरबारी और हम सब पार कर चुके हैं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १७३।

५८४. पत्र : भुस्कुटेको[२]

२५ मई, १९३२

जगतका कोई कर्ता नहीं है, इसका क्या अर्थ हो सकता है? हम कैसे कह सकते हैं कि कोई कर्ता नहीं है? मेरे कथनका इसमें कुछ अनर्थ-सा प्रतीत होता है। मैंने तो कहा है कि सत्य ही ईश्वर है। इसलिए ऐसा मानो कि वही कर्ता है। परंतु यहाँ कर्ताका जो अर्थ हम करते हैं ऐसा नहीं है। इसलिए सत्य कर्ता अकर्ता दोनों है। परंतु यह केवल बुद्धिवाद है। जैसा जिसके हृदयमें लगे ऐसा माननेमें इस बारेमें कोई हानि नहीं है। क्योंकि हरेक पुरुष ईश्वरके बारेमें न संपूर्ण जानता है और न जितना जानता है वो बता सकता है। यह बात ठीक है कि कुछ भी कार्यके निर्णयके लिये मैं अपनी बुद्धिपर विश्वास नहीं करता हूँ। जबतक हृदयमें से आवाज न निकले, वहाँतक बुद्धिकी बातको रोक लेता हूँ।

१. अवस्ती भाषामें लिखा हुआ एक ग्रंथ।

२. महादेव देसाई कहते हैं: "भुस्कुटेने पूछा था, गांधीजी का जब यह विश्वास है कि सत्य ही ईश्वर है और स्रष्टा कोई नहीं है, तो वे अन्तरात्माकी आवाजके अनुसार कैसे काम करते होंगे।"

इसको कोई गूढ़ शक्ति कहे या क्या कहे, वो मैं नहीं जानता। उस बारेमें मैंने कभी सोचा नहीं है, न उसका पृथक्करण किया, करनेकी आवश्यकता भी नहीं मालूम हुई है। बुद्धिसे पर ऐसी यह वस्तु है, इतना मुझमें विश्वास है, और ज्ञान भी है। और मेरे लिए काफी है। इससे अधिक स्पष्टीकरण मेरेसे हो ही नहीं सकता क्योंकि इससे अधिक मैं जानता नहीं हूँ।"

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १७३-४।

५८५. पत्र : मीराबहनको

[२६ मई, १९३२][1]

चि० मीरा,

मैं तुम्हारे पत्रकी वाट देख रहा था। आज मिला। तुम्हें जो आघात पहुँचा, उसे यह सोचकर स्वीकार कर लेना चाहिए कि जो अपने अन्तःकरणके अनुसार ही चलना चाहते हैं, उन सबके भाग्यमें यही लिखा होता है। मैं जल्दबाजीमें कोई कदम नहीं उठाऊँगा। व्यक्तिगत दृष्टिभेदकी बातके अलावा, अगर मुझे यह न लगे कि तुमसे न मिल सकनेके कारण दूसरोंसे भी मिलना बन्द कर देना मेरा धर्म है, तो मैं यह कदम नहीं उठाऊँगा। लेकिन धीरज रखकर देखें, क्या होता है?

तुलसीदासजी की 'रामायण' मेरी नजरमेंम हान धार्मिक गुणोंसे युक्त पुस्तक है। मैंने खुद ग्रिफिथका अनुवाद[2] नहीं पढ़ा है, लेकिन मुझे मालूम है कि प्राप्य अनुवादोंमें वही उत्तम है और मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हें वह इतना अच्छा लगा।

तुम वहाँ लिफाफे[3] बनानेकी कोशिश न करना। जब हमारे पास समय हो, तब उसे भरनेके लिए यह एक सुन्दर साधन है। अगर तुम्हारे पास ऐसे कमजोर लोग हों जिनके पास कोई काम न हो, तो वे इस कामको करके देख सकते हैं। मगर तुम नहीं। तुम्हारे लिए यह समयका दुरुपयोग होगा।

मैं आज फिर १०५$\frac{3}{4}$ पौंड था। तो देख लो, चिन्ताका कोई कारण नहीं है।

अब मगनचक्रपर मेरा इतना काबू हो गया है कि उसे चलानेमें आनन्द आता है। मैंने ८२ मिनटमें २०२ तार यानी, फी घंटे १४७ तार निकाले। यह मेरे लिए बुरा नहीं है। अभी मुझे और भी ज्यादा निकाल पानेकी उम्मीद है।

१. "यरवदा डाक-मुहरकी तारीख" —मीराबहन।

२. वाल्मीकि रामायणका।

३. "उन दिनों बापू, और खासकर सरदार बापूके पत्रोंके लिए लिफाफे बनाते थे"। —मीराबहन

रोलाँ-परिवारको मेरा वन्दे लिखना और उनसे कहना कि अमेरिकी मित्रके नाम उनके पत्रको[1] मैंने बड़े चावसे पढ़ा। उसमें कोई बेजा बात नहीं है। ईमान-दारीसे राय प्रकट करनेमें कोई बुराई हो ही कैसे सकती है?

हम सबकी ओरसे तुम सबको प्यार।

बापू

[पुनश्चः]

राधाको अलगसे कोई पत्र नहीं लिख रहा हूँ।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२३) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६८९ से भी।

५८६. एक पत्र

२६ मई, १९३२

छोटूभाईसे कहना कि यहाँ उसके पिताजी की बीमारीका विचार करना व्यर्थ है — तब फिर उसे लेकर चिन्ता क्यों? उसके पिताको बचानेवाले तो हम सबके महान पिता हैं। जब उसने सेवासे मुक्ति दे दी है तब फिर सोचनेको कुछ नहीं बचता। अशान्त होना दोष है। इस दोषसे हममें से कोई भी एकदम मुक्त नहीं रह सकता। किन्तु हम कर्त्ता-हर्ता नहीं हैं, यह बात जैसे-जैसे मनमें दृढ़ होती जाती है, वैसे-वैसे अधिकाधिक शान्ति मिलती जाती है।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९१२१) से; सौजन्य: नारणदास गांधी।

५८७. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

२६ मई, १९३२

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिल गया। जो पत्र ग्वालियर भेजा वह कुछ लंबासा रहा। इतना तो स्मरण है लेकिन उसमें क्या क्या लिखा था उसका स्मरण नहीं है। तीन शिफ्टके बारेमें मजदूर लोगोंकी क्या दृष्टि है और उससे उन लोगोंको कितना आर्थिक और नैतिक लाभ होता है देखना चाहिए। आर्थिक लाभ और नैतिक हानि होवे तो भी मुझको तीन शिफ्ट अच्छे नहीं लगेंगे। मजदूरोंकी आँखोंसे देखनेका मेरे पास कोई सामान नहीं है इसलिये ऐसा समजा जाय कि मैं तटस्थ हूं। इतनी ही आशा रखता हूं कि मजदूरोंकी दृष्टिका खयाल रखकर यह परिवर्तन किया गया है। मुझेको दो पुस्तक मिल गये हैं। दो पुस्तकका अर्थ तो यह है ना कि एक पैम्फलेट और दूसरा आपके व्याख्यानका प्रूफ? यह दोनों मिले हैं। अबतक मैं उसे पढ़ नहीं सका क्योंकि

१. इस पत्रके लिए, जिसमें गांधीजी और रोमाँ रोलाँकी भेंटका वर्णन था, देखिए खण्ड ४८, परिशिष्ट–२।

दूसरा व्यवसाय जो हाथोंमें है उसमेंसे समय नहीं बचा सका हूं। बांये हाथमें तकलीफके कारण पैरोंसे चलानेके चर्खेसे कातनेकी कोशिशमें मुझको काफी समय देना पड़ा और कुछ उर्दु अभ्यासमें मन लग गया है। अब संभव है कि थोड़ा वख्त मैं बचा सकुंगा उसमें ये दोनों चीज पढ़ लुंगा। आशावाद और भोलापनमें भेद करता हूं। पंडितजीमें[1] दोनों हैं। दृष्टिमर्यादापर निराशाके चिन्ह होते हुए भी और उसे जानते हुए भी जो आशा रखता है वह आशावादी है। यह गुण पंडितजीमें काफी मात्रामें है। आशाकी बातें कोई कह देवे और उसपर विश्वास लाना वह भोलेपन है। यह भी पंडितजीमें है। उसे मैं त्याज्य समजता हूं। पंडितजी महान व्यक्ति हैं इसलिये उनको ऐसे भोलेपनसे हानि नहीं हुई है। इसलिये हमारे ऐसे भोलापनका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिये। आशावाद अंतर्नाद पर निर्भर है। भोलापन वाह्य बातों पर निर्भर है।

विदेशगमनके बारेमें अभिप्राय देनेको मुझको कोई अधिकार नहीं है। सामान्यतया इस बारेमें मेरे खयाल जाहिर है।

मेरा खुराक अब तक वही कायम है। वजन भी कायम है।

बापूके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ७९०० से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला।

५८८. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२६ मई, १९३२

भाई कृष्णचंद्र,

आपका खत मिला। जो मनुष्य ईश्वरपर विश्वास करता है वह ज्योतिषीके पास कभी नहीं जायगा। इसलिये उन लोगोंको भविष्य बतानेके मुताबिक हम कोई भी कार्य कर बैठें वह मेरी दृष्टिसे बिलकुल अच्छा नहीं है। मैंने तो बहुत ही दफ़े देखा हैं कि उन लोगोंने जो कहा है उससे उलटा बना है और ऐसे भी ज्योतिषी लोग जो भले रहते हैं वे कबूल करते हैं कि वे भविष्य बताते हैं उसका अर्थ इतना हि है कि ऐसा बननेका संभव है। इसलिये पुरुषार्थको काफी जगह है इसमें कोई संदेह नहीं है। गी० ३–३३ का अर्थ स्पष्ट है। जो चीज़ बदल नहीं सकते हैं वह स्वभाव है जैसे कि अंग्रेजीमें कहावत है चीता अपनी खालकी विचित्रता बदल नहीं सकता। जो खालके लिये सही है वह भीतरके लिये भी सही है। इसी कारण हम अनुभव करते हैं कि वह मनुष्य बहुत प्रयत्न करते हुए भी जो चीज स्वभाव बन गई है उसे नहिं बदल सकते हैं खजूर मुनक्का ईके अभावमें गुल ले सकते हैं लेकिन खजूर मुनक्का जितना लाभकारी कभी नहीं हो सकता है। मात्रा बताना मुश्किल है प्रत्येक मनुष्यको अपनी लिये अनुभव करके देख लेना अच्छा है।

मोहनदास गांधी

मूलकी फोटो-नकल (एस० जी० ३८) से; जी० एन० ४२६१ से भी।

१. पण्डित मदनमोहन मालवीय।

५८९. पत्र : वेरियर एल्विनको

[२७][1] मई, १९३२

प्रिय वेरियर,

'माँगो और तुम्हें मिलेगा' की फिर एक बार परीक्षा हो गई। तुम्हारा प्यारा पत्र आज यहाँ आया है। मैंने पाँचके बाद उसे पढ़ा और आज शुक्रवार होनेके कारण मेरी तरफसे किसी इशारेके बिना महादेवने तुम्हारे सहभाव-सम्बन्धी सुझावको, 'लीड काइन्डली लाइट' का बहुत सुन्दर गुजराती अनुवाद गाकर क्रियान्वित किया। शामकी प्रार्थनामें भजन गानेका काम हमेशा ही महादेवका होता है। समय लगभग सात बजकर चालीसका होगा। प्रार्थना साढ़े सात शुरू होती है और 'गीता' के द्वितीय अध्यायके अन्तिम १९ श्लोकोंसे शुरू होती है। उसके बाद राम-धुन होती है और उसके बाद भजन। मैंने जैसे ही आपका सुझाव पढ़ा, उसके अनुमोदनमें कोई संकोच नहीं किया; लेकिन कौन-सा गीत चुना जाये, उसपर विचार कर रहा था। मेरे मनमें अंग्रेजीका पाठ गानेकी ही बात थी और इसलिए चुनावकी गुंजाइश कम थी। या तो 'लीड काइन्डली लाइट' या 'व्हेन आई सर्वे द वन्डरस क्रास' या 'टेक माई लाइफ ऐंड लेट इट बी' गाया जा सकता था। कारण यह है कि मैं खुद भी अपने अन्य प्रिय गीतोंमें से कोई और ठीक-से नहीं गा सकता; अलबत्ता, ऐसा नहीं है कि इन तीन गीतोंको मैं बिल्कुल ठीक ही गा लेता हूँ। लेकिन मैं उन्हें लगभग वैसा ही गा सकता हूँ जैसा मैंने उन्हें सुना है। महादेव अंग्रेजी गीतोंकी धुनोंका आदी नहीं है; लेकिन 'लीड काइन्डली लाइट' का गुजराती अनुवाद गानेकी बात सोचकर उसने चुनाव और गानेकी समस्या हल कर दी। न्यूमैनके इस गीतको चुनना एक दृष्टिसे विशेष उपयुक्त है। जोहानिसबर्गमें स्वर्गीय रेव० डोकके घरमें आलिव डोकने मुझे, जब मुझे शारीरिक कष्ट था, यही गीत सुनाया था। इसलिए आप यह मान सकते हैं कि हर शुक्रवारकी शामको सात बजकर चालीसपर हम यहाँ यह गीत इस एहसासके साथ गायेंगे कि भले ही अन्य मित्र इस सुझावको मानें या न मानें, कम-से-कम तुम जहाँ-कहीं भी होगे, हमारा साथ दे रहे होगे। फिलहाल इसके बारेमें समाचारपत्रोंमें कोई चर्चा नहीं होनी चाहिए। मैं नहीं जानता कि सरकार इसे पसन्द करेगी या नहीं और कैदीकी हैसियतमें रहते हुए मैं एक भी ऐसा काम, जिसे वह ठीक न समझे, तबतक नहीं करना चाहूँगा जबतक कि किसी महत्त्वपूर्ण मामलेमें उससे सीधी लड़ाई ही जरूरी न हो जाये। मैं नारणदाससे शुक्रवारको यह भजन आश्रमकी प्रार्थनामें गानेको कहूँगा; गर्मीके महीनोंमें वहाँ प्रार्थना हमेशा साढ़े सात बजे शुरू होती है।

१. शुक्रवारके उल्लेखसे, जो २७ मईका था। परन्तु साधन-सूत्रमें '२६ मई' है।

हाँ, और नहीं तो केवल बूढ़ी माँ और एल्डिथकी खातिर, कुछ महीनोंके लिए इंग्लैंड जानेका तुम्हारा विचार मैं बहुत पसन्द करता हूँ। वैसे भी अपने स्वास्थ्यके लिए तुमको जलवायु परिवर्तनकी जरूरत तो है ही। और जब तुम्हारा जाना जरूरी है, तो तुम जितनी जल्दी रवाना हो जाओ उतना ही बेहतर होगा।

माँ और एल्डिथका ग्राम्य भारत अथवा किसी अन्य भारत आनेका विचार मैं पसन्द नहीं करता। उनका मन भले ही इसे चाहता हो, लेकिन उनके शरीरको यह माफिक नहीं आयेगा। इस मामलेमें स्वयं तुम्हारा उदाहरण भी बहुत अच्छा सिद्ध नहीं हुआ है; फिर उनपर भारतमें बसनेका बोझ डालना बुद्धिमानी नहीं होगी। यदि वे, तुमसे या किसी औरसे किसी भी प्रकार प्रेरित हुए बिना अन्तरात्मासे ऐसी स्पष्ट पुकार महसूस करें तो वह अवश्य एक बिलकुल ही अलग बात होगी। लेकिन उस हालतमें किसीकी राय लेने या माननेका कोई सवाल ही नहीं उठता। ऐसा पहले कई लोगोंके विषयमें हुआ ही है। उस प्रकारके मामलेमें आत्मा शरीरपर हावी हो जाती है।

शामरावके बीमार रहनेकी बात सुनना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। उसे अपने-आपपर शर्म आनी चाहिए। दरिद्रनारायणके सच्चे सेवकके अनुरूप जीवन जीनेकी कला उसे अवश्य सीखनी चाहिए।

प्लाटिनससे जो उद्धरण[१] तुमने दिये हैं, वे बहुत ही लुभावने और सुन्दर हैं। पहला हर जमानेपर लागू होता है; दूसरेमें आधुनिक विचारधारावाले लोग छिद्रान्वेषण करेंगे। खुद मुझे लेखकका अर्थ समझनेमें कोई कठिनाई नहीं है।

तुम्हारी और शामरावकी अनुपस्थितिमें करंजियाकी देखभाल कौन करेगा? हम सबकी ओरसे तुम्हारे मेजबानों-सहित तुम सबको स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (३), भाग–१, पृष्ठ २३३।

५९०. देवदास गांधीको लिखे पत्रका अंश

२७ मई, १९३२

देवदास गांधीको लिखे लम्बे पत्रमें बापूने आश्रमके सचिव नारणदास गांधीकी बहुत प्रशंसा करते हुए लिखा कि उसने अपनी दृढ़ता, धैर्य, साहस, त्याग और विवेकसे उन्हें आश्रम-सम्बन्धी समस्त चिन्तासे मुक्त कर दिया . . .। उर्दूके अध्ययनके सम्बन्धमें बापूने देवदास गांधीको लिखा:

हरएक पाठमालामें ऐतिहासिक भाग होता है। इसमें कुछ पैगम्बर और उनके जमाने और कुछ उन मुसलमान बादशाहोंसे सम्बन्धित होता है, जो भारतमें हुए हैं।

१. उद्धरणों तथा उन परकी चर्चाके लिए देखिए **दि डायरी ऑफ महादेव देसाई**, भाग–१, पृष्ठ १३३-५।

ये जिस दृष्टिकोणसे लिखे गये हैं, उसे मेरे विचारसे सभीको समझ लेना चाहिए। उर्दूके अध्ययनका महत्त्व मैं अधिकाधिक देख रहा हूँ। किसी भाषाकी लिपि सीख लेनेसे उसमें चिट्ठी-पत्री तो लिखी ही जा सकती है, साथ ही इससे भी ज्यादा और सच्चा लाभ यह है कि उससे हम भाषापर ज्यादा काबू पा जाते हैं और मिलने-वाले पत्र पढ़नेमें और समझनेमें भी मदद मिलती है। मैं यह मानता हूँ कि हमें मुसलमान साथियोंके साथ उर्दूमें पत्र-व्यवहार करना चाहिए। उन्हें अंग्रेजीमें ही लिखना पड़े, तो हिन्दी किसी दिन भी राष्ट्रीय भाषा नहीं बन सकती। इसलिए मेरे खयालसे तो उर्दूमें लिखनेकी शक्ति हमारे मानसिक बलके लिए जरूरी है।

फिर रैहाना तैयबजी को पत्र लिखनेके लिए किस तरह उर्दू लिखना शुरू हुआ, इसका इतिहास बताते हुए लिखा:

मुसलमानोंके साथ शुद्ध सम्बन्ध स्थापित करनेके ये अहिंसक और सूक्ष्म उपाय हैं।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १८१-२।

५९१. पत्र : अमतुस्सलामको

२८ मई, १९३२

प्रिय अमतुल,

मैंने तुम्हारे दोनों पत्र पढ़ लिये हैं। तुम्हारी उर्दू-लिखावट मेरे लिए काफी साफ नहीं है। मैंने पत्रपर लगभग एक घंटा लगाया और केवल उसका सार ही समझ सका। देखता हूँ कि यह तुम्हारे अंग्रेजी पत्रका भावानुवाद ही है। यदि तुम अपना दिमाग शान्त और स्थिर रख सको तो मैं समझता हूँ कि तुम्हें फिलहाल परिवारके साथ रहना चाहिए और तब आश्रम जाना चाहिए। यदि तुम्हें लगे कि अपने लोगोंके साथ रहते हुए तुम्हारे मनका शान्त रह सकना असम्भव है तो तुम्हें नूरबानूके साथ रहना चाहिए।

क्या इससे तुम्हारे सभी सवालोंका जवाब मिल जाता है? यदि नहीं तो फिर लिखो और अंग्रेजीमें लिखो। अंशतः उर्दूमें भी लिखो।

मैं डॉ० शर्माको लिखूँगा।

तुम्हारे आ सकनेकी मुझे खुशी हुई। तुम्हें अपना खोया हुआ वजन फिर हासिल करना चाहिए।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५०) से।

५९२. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

२८ मई, १९३२

चि० पण्डितजी,

स्व० पण्डितजीके[1] प्रति कर्त्तव्यकी दृष्टिसे शिष्योंपर कोई बन्धन होनेकी बात पर मुझे सन्देह है। किन्तु तुम सबको ऐसा लगा इसलिए तुम्हारा कुछ-न-कुछ करना आवश्यक ही हो गया, ऐसा कह सकते हैं।

लक्ष्मीबहनको जब वहाँसे ही कोई आये तब पत्र लिखवा भेजना। या फिर नारणदास लिखे। मुझे कई बार बिलकुल अन्तमें ही खबर लगती है।

रामभाऊ अब ठीक हो गया होगा। यह सच है, जो घोड़ेपर चढ़ता है, वह गिरता भी है।

अस्पृश्यताको मैं पूरी तरह धार्मिक दृष्टिकोणसे ही देखता हूँ। इसलिए अलग निर्वाचन-मण्डल कदापि नहीं बनना चाहिए। और अगर उनके स्थान सुरक्षित करना कायदेमें आ जाता है तो उससे सवर्ण हिन्दुओंकी परीक्षा नहीं होती और वह अपने कियेका प्रायश्चित्त भी नहीं कहा जा सकता। 'अस्पृश्य'के साथ सौदेबाजी नहीं करनी है। उनके मनमें जो सन्देह है, वह निकलना चाहिए। अभी बात समझमें न आई हो तो फिर पूछना। भूल-चूकसे भी ये विचार प्रकाशित न होने पायें।

मुलाकातें बन्द कर दी जायें, यह भी सम्भव है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२७)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

५९३. पत्र : रामचन्द्र ना० खरेको

२८ मई, १९३२

चि० रामभाऊ,

हड्डीपर जरब आ गई, इसकी चिन्ता मत करना। व्यायाम करनेवाले सभी लोगोंको ऐसी अकस्मात् चोटें आ जाती हैं। अब तो हड्डी ठीक बैठ गई होगी।

तेरे जवाबसे मुझे ठीक मदद मिली है। उस तरह चलानेसे चक्रको हाथ लगाकर रोकना मुमकिन हो गया है। युक्ति समझ गया हूँ, उसपर अभी पूरा अधिकार नहीं कर पाया हूँ।

१. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर।

तेरी गुजरातीमें अभीतक गलतियाँ होती हैं। उन्हें, और अक्षरोंको सुधारना। वजन जितना था फिर उतना हो गया, इसके लिए धन्यवाद।

जब कोई अधिकार मिले तो यह समझना चाहिए कि अधिक सेवा करने और नम्र बननेका अवसर मिला है।

जिसे सचमुच आवश्यकता हो, दान उसे ही दिया जाना चाहिए। और ठीक समयपर दिये जानेपर ही वह योग्य होता है; और देनेका अभिमान रखे बिना दिया गया हो तो 'दिया', ऐसा कहलायेगा।

अहिंसा अर्थात्, अपने स्वार्थके लिए किसीको दुःख न देना; मनकी ऐसी वृत्ति और ऐसा आचरण अहिंसा कहलाती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९३)से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन ना० खरे।

५९४. लक्ष्मी जेराजाणीको

२८ मई, १९३२

चि० लक्ष्मी (बोरिवली)[1]

अगर छोटा कागज काट-कसरके विचारसे ही काममें लाया गया हो और अगर सभीको तू इसी तरह पर्चियोंपर लिखती है तो तेरा ऐसा करना ठीक है।

काका को छाजन कैसे हो गई? इस समय उनके पास कौन है?

गंगाबहनको हर हफ्ते पत्र लिखता हूँ।

स्याहीसे लिखते हुए गलती हो जाये तो उसे जरूर काट देना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८११)से; सौजन्य: पुरुषोत्तम दा० सरैया।

१. बम्बईका एक उपनगर।

५९५. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

२८ मई, १९३२

चि० शारदा,

बीमारी तेरा पीछा ही नहीं छोड़ती, यह क्या बात है? सत्यकी जय होती है, इसका यह अर्थ नहीं किया जा सकता कि हम जब चाहें तभी उसे जय मिलनी चाहिए। इसके सिवा यह भी नहीं कहा जा सकता कि हम जिसे सत्य मान रहे हैं, वही सत्य है। इसलिए हमें ऐसा ही कहना चाहिए, 'हमने जो सोचा है, यदि वह सत्य होगा तो उसकी अवश्य जय होगी'।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९११)से; सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला।

५९६. पत्र : एस्थर मेननको

२९ मई, १९३२

रानी बिटिया,

यह मेरे मौनका समय है। तुम्हारा लम्बा-सा पत्र, जो मेरे लिए कोई खास लम्बा नहीं है, मिला है। पिछली बार मैं तुम्हें यह बताना भूल गया कि मुझे तुम्हारी भेजी हुई पुस्तक मिल गई है। मैं जितनी जल्दी हो सकेगा उसे पढ़ूँगा। पहलेसे ही हर मिनट किसी कामके लिए नियत होता है। इसलिए पढ़नेको कुछ भी नया या करनेको कोई नया काम सामने आता है तो जबतक वह इतने अधिक महत्त्वका नहीं लगता कि उसके लिए चल रहे कामको रोकना जरूरी हो, उसे अपनी पारी आनेका इन्तजार करना पड़ता है।

भावना तो हृदयकी होती है। यदि हम हृदयको शुद्ध न रखें तो भावना हमें गलत रास्तेपर ले जा सकती है। हृदय शुद्ध रखना घर तथा घरकी हर चीजको साफ रखने-जैसा है। हृदय वह स्रोत है जिससे भगवानका ज्ञान मिलता है। यदि स्रोत ही दूषित हो तो अन्य हर उपाय व्यर्थ है। और यदि उसका विशुद्ध होना निश्चित हो तो किसी अन्य चीजकी जरूरत नहीं है।

यह पत्र दाहिने हाथसे लिखा है; क्योंकि बायाँ हाथ दाहिनेसे भी बदतर हो गया है। चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। केवल उसे पूरा आराम मिलना चाहिए। इसलिए मैं ऐसे चरखेसे कातता हूँ जिसमें पैडिल हैं और दाहिने हाथसे सूत निकालता हूँ।

हम तीन हैं; और सब अच्छे हैं।

हमारी सबकी तरफसे स्नेह। बच्चोंको चुम्बन।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सं० १११) से; सौजन्य : भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९१ से भी।

५९७. पत्र : गोसीबहन कैप्टेनको

२९ मई, १९३२

तुम्हारे खतसे खुशी हुई। जालभाई मुझे लिखनेका कष्ट करे, ऐसी आशा मैं नहीं करता। यह तो परिचारिकाओंका, तुम्हारा, काम है। बीमार तो खाता है, सोता है, शिकायतें करता है और धौंस जमाता है। पिछली दो बातें न करे तो उसे देवता कहना चाहिए। मैं आशा रखता हूँ कि बादमें बैसाखी नहीं रखनी पड़ेगी।

दूसरोंके लिए पुस्तकें चुननेमें मैं बिलकुल निकम्मा हूँ, तुम्हारे लिए भी; हालाँकि तुम मेरे इतने नजदीक हो। असलमें पढ़ने लायक पुस्तक तो जीवनकी पुस्तक है, और उसे तो तुम थोड़ा-बहुत पढ़ ही रही हो। फिर किताबें तो, जिनके पास कोई सेवाका काम न हो, उनके मनोरंजनकी चीज हैं। कोई सोच सकता है कि कम-से-कम यहाँ पढ़नेको बहुत समय मिलता होगा। मगर कातने और कामकी तैयारीकी पढ़ाईके बाद विनोदके लिए पढ़नेका समय ही नहीं मिलता। लेकिन मुझे अपना व्याख्यान बन्द करना चाहिए।

तुम्हारी तबीयत तो अच्छी है? नरगिसबहनका सिरदर्द बन्द हुआ? उनके बारेमें सरकारका जवाब आया है कि मैं उनसे नहीं मिल सकता। सरकार जरूर यह सोचती होगी कि वे राजनीतिक मामलोंमें सक्रिय भाग लेती हैं या उन्हें राजनीतिकी छूत लगी हुई है।

अब मेरे बायें हाथसे काम न करनेकी बारी है। बुढ़ापा बहुत जोरसे द्वारपर खटखटा रहा है?[1]

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १८५-६।

१. साधन-सूत्रमें ये दो पंक्तियाँ गुजरातीमें हैं।

५९८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२९ मई, १९३२

चि० प्रेमा,

इस बार तेरा पत्र नहीं आया, फिर भी मैं लिख रहा हूँ। क्योंकि इस पत्रके आश्रम पहुँचनेतक तू भी वहाँ पहुँच चुकी होगी। और सम्भवतः मेरे पत्रकी आशा रखेगी।

तुम सब मिलकर गयीं, यह ठीक हुआ। बातें तो करनेके लिए हो ही क्या सकती थीं? और थोड़े समयमें हो भी क्या सकती थीं? सुशीलाको मैंने जान-बूझकर खास समय नहीं दिया। क्योंकि जितना बने उतना समय तुझे, अम्तुलको और शारदाको देना था। सुशीलाको कोई खास बात तो शायद पूछनी ही नहीं थी?

लड़के और लड़कियाँ मुझे जो पत्र लिखते हैं, उनमें ऊटपटाँग सवाल पूछते हैं; और मुझे डर है कि वे भी सिर्फ पूछनेके लिए ही पूछते हैं। उन्हें एक बार अच्छी तरह समझाना। पत्र लिखनेकी कला भी कुछ अंशतक सीखनी जरूरी है।

तू यात्राके अनुभव लिखेगी, ऐसी आशा रखता हूँ।

क्या तू धुरन्धरसे मिली थी? और किसीसे मिली?

वजन तो बढ़ाया ही होगा?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८७)से। सी० डब्ल्यू० ६७३५ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

५९९. पत्र : वेणीलाल गांधीको

२९ मई, १९३२

चि० वेणीलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा कष्ट ऐसा ही था जिसमें शक्ति लौटनेमें देरी अनिवार्य है। धीरज रखकर शक्ति पानेकी कोशिश करो। यह नया जन्म पाने-जैसा हुआ। इसका अधिक-से-अधिक सदुपयोग करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९१७)से; सौजन्य: वेणीलाल गांधी।

६००. पत्र : दाऊदभाईको

२९ मई, १९३२

तुम्हारा पत्र अच्छा आया। बुरे विचारों और वृत्तियोंके खिलाफ शेरकी तरह जूझना। जुझना हमारा धर्म है। जीत होना ईश्वरके हाथ है। हमारा सन्तोष जूझनेमें ही है। हमारा जूझना सच्चा होना चाहिए। सत्संगमें रहना। उसके लिए सद्वाचन चाहिए। बम्बई-जैसे शहरमें सद्वाचन ही सत्संग है। और मेरे खयालसे बहन नूरबानूका दर्शन भी सत्संग ही है। वह निहायत नेक और पवित्र औरत है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १८७।

६०१. पत्र : मगनलाल प्रा० मेहताको[1]

२९ मई, १९३२

वैनिससे तेरा पत्र मिला है। जहाजमें समय कैसे बिताया, रास्तेमें क्या-क्या देखा, क्या खर्च किया, वगैरह बातें लिखे, तो मुझे तेरी वर्णन करनेकी शक्ति, सादगी और तेरे विचारोंका पता चलेगा। . . .[2] घूमने-फिरनेके व्यायामको अपनाकर शरीर खूब मजबूत बना लेना। जो काम खुद कर सके, वह दूसरेसे न कराना। जहाँ पैदल जा सके, वहाँ सवारीका इस्तेमाल न करना। शरीरमें गर्मी अँगीठीके पास बैठकर न लाना, कसरतसे लाना। . . .[3]

डॉक्टरको पत्र नियमित रूपसे लिखना। उन्हें हिसाब भेजना। यह याद रखना कि माँ-बाप अपने बच्चोंके पत्रोंसे कभी अघाते नहीं हैं। तेरी छोटी-से-छोटी खबर भी आयेगी, तो उन्हें अच्छी लगेगी। डॉक्टरकी नजर तुझपर है, उन्हें सन्तोष देना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १८६-७।

१. डॉ० प्राणजीवनदास मेहताका कनिष्ठ पुत्र।

२. और ३. साधन-सूत्रके अनुसार।

६०२. पत्र : भाऊ पानसेको

२९ मई, १९३२

चि० भाउ,[१]

तुम्हारा पत्र मिला। विनोबाके प्रवचनमें से जितना आसानीसे भेज सकते हैं इतना हि भेजो। यदि शक्य है तो श्याहिसे लिखो। विनोबा बोलते थे ऐसे तुमने लिखे कि विनोबाने हि लिख रखे थे? तकली शिक्षा अच्छी हो रही है। आश्रममें सब सीख लेवे तो बहोत ठीक होगा।

मौनकी एक मिनिट थी उसकी पांच करनेका अर्थ यह था कि सबको ज्यादा शांति[२] मिले। ऐसा प्रतीत होता था कि सब विव्हलचित रहते थे। यदि सब सद्‌भावसे मौन रखेंगे तो अंतर्ध्यान होनेमें बहोत सहाय मिलेगी।

जीवित लोगोंकी मूर्तिका ध्यान अच्छी बात नहिं है। जिसका ध्यान करें उसमें पूर्णताका आरोपण होता है, होना चाहिए। जीवितोंमें किसीको पूर्ण न कहे जाय। रामायणादिमें जो चित्र आते हैं वे अच्छे नहिं होते हैं। किंतु मूर्तिकी आवश्यकता क्यों? ईश्वर निराकार निर्गूण है। उसका ध्यान क्यों न करें? यदि यह अशक्य है तो आकारका ध्यान किया जाय। अथवा अपनी कल्पनाकी मूर्तिका। गीता माताका हि ध्यान क्यों नहिं? उसे कामधेनुकी उपमा दी है। इस धेनुका ध्यान किया जाय, और इसमें बहोत अर्थ पाये जाते हैं। कैसे भी हो जीवितोंकी मूर्तिका ध्यान हानिकर हो सकता है इसलिए त्याज्य समजो।

रामेश्वरजीसे लिखो मैंने तीन चार पत्र उनको लिखे हैं। विनोबाने चक्की पीसनेका आरंभ किया और जमनालालजीने २० रतल गमाया यह खबर कृष्णदासने दी थी।

बद्ध कोषके लिये इतने उपचार हैं। सब साथ चल सकते हैं।

(१) प्रातःकालमें गरम पानी नमक और लिंबु पीना, नमकके बदल गुड या मध हो सकता है।

(२) रात्रीको पेट पर मिट्टीकी पुल्टीस बाधकर सोना।

(३) थोड़े दिन दालका त्याग करना।

ऐसे तीन दिन करनेसे अच्छा न हो तो तीन दिन तक केवल पानीमें उबाली हुइ भाजी हि खाना। गरम गरम खा जाना। जिसको तांदलजा कहते हैं वह भाजी उत्तम। उसके साथ लिंबु और नमक ले सकते हैं।

बापुके आशीर्वाद

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७२९) से। सी० डब्ल्यू० ४४७२ से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे।

१. विनोबाजी के साथी कार्यकर्त्ता।
२. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ४/९-५-१९३२।

६०३. मृत्यु-बोध[1]

३० मई, १९३२

आश्रममें अबतक मुझे नीचे लिखी मौतोंकी बात याद है:

फकीरी, व्रजलाल, मगनलाल, गीता, मेघजी, वसन्त, इमाम साहब, गंगादेवी (इन सबकी तारीखें लिख रखना अच्छा होगा)।

फकीरीकी मौत तो जैसी हुई, उसे आश्रमके लिए शोभनीय नहीं कहा जा सकता। आश्रम तब नया ही था। फकीरीपर आश्रमके संस्कार न पड़े थे। फिर भी फकीरी बहादुर लड़का था। मेरी उक्त टीकाका अभिप्राय यह है कि वह अपने खाऊपनकी बलि हो गया। उसकी मृत्यु मेरी परीक्षा थी। मुझे ऐसा याद है कि मैं आखिरी दिन सारी रात उसके पास ही बैठा रहा। सबेरे मुझे गुरुकुल जानेके लिए ट्रेन पकड़नी थी। उसे अरथीपर सुलाकर, पत्थरका कलेजा करके मैंने स्टेशनका रास्ता लिया। फकीरीके पिताने फकीरी और उसके तीन भाइयोंको यह समझकर मुझे सौंपा था कि मैं फकीरी और दूसरोंके बीच भेद न करूँगा। फकीरी गया तो उसके तीन भाइयोंको भी मैं खो बैठा।

व्रजलाल बड़ी उम्रमें, शुद्ध सेवाभावसे आश्रममें आये थे और सेवा करते हुए ही मृत्युका आलिंगन करके अमर हो गये और आश्रमकी कीर्तिको बढ़ाया। एक लड़केका घड़ा कुएँसे निकालते हुए डोरमें फँसकर फिसल गये और उनके प्राण छूट गये।

गीता शान्तिसे 'गीता'का पाठ सुनती हुई चली गई। मेघजी नटखट लड़का माना जाता था; पर बीमारीमें उसने अद्भुत शान्ति रखी। बच्चे अक्सर बीमारीमें बहुत हैरान होते हैं और पास रहनेवालोंको हैरान करते हैं। मेघजी को लगभग आदर्श रोगी कह सकते हैं। वसन्तने बिलकुल सेवा ली ही नहीं। प्राणघातक चेचकने एक या दो दिनमें ही उसके प्राण ले लिये। वसन्तकी मृत्यु पण्डितजी और लक्ष्मीबहनकी कठिन परीक्षा थी; उसमें वे पास हुए।

मगनलालके विषयमें क्या कहूँ? हम आश्रममें हुई मौतोंकी ही गिनती कर रहे हैं, इसलिए मगनलालका नाम यहाँ नहीं होना चाहिए। पर यह नाम कैसे छोड़ा जा सकता है? उन्होंने आश्रमके लिए जन्म लिया था। सोना जैसे अग्निमें तपता है वैसे मगनलाल सेवाग्निमें तपे और कसौटीपर सौ-फीसदी खरे उतरकर दुनियासे कूच कर गये। आश्रममें जो कोई भी है, वह मगनलालकी सेवाका साक्षी है।

इमाम साहबका अकेला ही मुसलमान कुटुम्ब अनन्य भक्तिसे आश्रममें बसा। उन्होंने अपनी मृत्युसे हमारे और मुसलमानोंके बीच अटूट गाँठ बाँध दी है। इमाम साहब अपने-आपको इस्लामका प्रतिनिधि मानते थे और इसी रूपमें आश्रममें आये।

१. यह "पत्र : नारणदास गांधीको", २६/३०-५-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

(यहाँ अमीनाके दो बच्चे याद आते हैं। वे बहुत छोटे थे, इसलिए उनके बारेमें कोई कहने लायक बात नहीं। उनकी मृत्यु हमें संयमकी आवश्यकताका पाठ अवश्य पढ़ाती है।)

गंगादेवीका चेहरा अब भी मेरी आँखोंके सामने घूमता रहता है, उनकी बोलीकी भनक कानोंमें पड़ती है। उनकी बातोंका स्मरण मुझे आता ही रहता है। उनके जीवनसे हम सबको और बहनोंको खास तौरसे बहुत सबक सीखने हैं। वह लगभग निरक्षर होनेपर भी ज्ञानी थीं। हवा-पानी बदलनेके लिए जाने लायक होनेपर भी स्वेच्छासे इसके लिए अन्ततक इनकार करती रहनेवाली वे अकेली ही थीं। जो बच्चे उन्हें मिले, उनकी सँभाल उन्होंने अपने बच्चे मानकर की। वे किसी दिन किसीके साथ झगड़ी हों या किसीपर क्रोधित हुई हों, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। उनको जीनेका उल्लास न था, मरनेका भय न था – उन्होंने हँसते हुए मृत्युको गले लगाया। उन्होंने मरनेकी कला हस्तगत कर ली थी। जैसे जीनेकी कला है, वैसे ही मरनेकी भी कला है।

मैंने इन सभी मृत्युओंका स्मरण अपनेको जगाये रखनेके लिए किया है। पृथ्वी इस विश्व-मण्डलमें एक कण-जैसी है। उस कणके ऊपर हम देह-रूपमें तुच्छ कण हैं। हम एक बिलमें रहनेवाली चींटियोंको गिननेमें असमर्थ हैं। चींटीसे छोटे कीटाणुओंको तो हम देख भी नहीं सकते। विराट पुरुषके सामने तो हम इन अदृश्य कीटाणुओंसे भी अधिक छोटे हैं। इससे इस देहको जो क्षणभंगुर कहा है, वह अक्षरशः सत्य है। उसका मोह क्या? उसके लिए एक भी प्राणीको हम क्यों दुःख दें? काँच से भी कमजोर – जरा-सी चोटसे टूट जानेवाली – देहको बनाये रखनेके लिए इतना उपद्रव क्यों मचायें? मौतके मानी हैं इस देहसे जीवका उड़ जाना। मौतका डर किसलिए? उस क्षणको दूर रखनेके लिए यह महाप्रपंच क्यों? इन बातोंपर बार-बार विचार करके छोटे-बड़े सब दिलसे मौतका डर निकाल दें और देहमें रहकर, जबतक वह रहे तबतक, सेवाके कार्यमें उसे प्रयुक्त करें। ऐसी तैयारी करनेकी शक्ति हममें आये, इसके लिए नित्य 'गीता' के दूसरे अध्यायके अन्तिम उन्नीस श्लोकोंका हमें पाठ करना चाहिए। उनका पाठ दिलसे हो तो जो चाहिए, वह उसमें मौजूद है।

[पुनश्च :]

यह लेख लिखा जा चुकनेके बाद महादेवने फातिमा, काकी[1] और वालजी की माताजी के मरणकी याद दिलाई; पर जो निष्कर्ष निकालना चाहता था, उसमें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए यह लेख जैसा है, वैसा ही रहने देता हूँ। इन शेष तीनों मौतोंके बारेमें जो-कुछ मैंने सुना है, वह सब पुण्य स्मरण ही है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से।

१. काका कालेलकरकी पत्नी।

६०४. पत्र : नारणदास गांधीको

२६/३० मई, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा बड़ा लिफाफा मिलनेके पहले प्रेमाबहन, सुशीला, अमतुलबहन, शारदा, नूरबानू और प्यारे अली मिलकर गये। अगर कभी बहुत लोग आना चाहें तो पाँचकी जगह छः और साततक व्यक्ति भी भेजे जा सकते हैं। आम तौरपर पाँचपर दृढ़ रहना ठीक है। इसी बार छः हो गये थे और अमीनाके बच्चे तो थे ही। फिर भी मैंने तुम्हें जो संख्या सूचित की है, उसपर दृढ़ रहना अच्छा होगा जिससे कभी किसीको बुरा लगनेकी गुँजाइश न रहे। वल्लभभाईने तो यह देखकर कि पाँचकी संख्या पूरी हो गई है, तुम्हारा नाम काट दिया था। यदि इसी कारण तुम न आये हो अथवा आना जरूरी नहीं था, इसलिए नहीं आये हो तो यह ठीक ही है। मुमकिन है, यह सब लिखना निरर्थक भी हो। मीराबहनके विषयमें अभीतक निर्णय नहीं आया। फिर भी यदि अस्वीकृति आ जाये तो मिलना बन्द ही समझना चाहिए।

लक्ष्मीदेवी, जो यहाँ जेलमें हैं, आश्रममें चश्मा छोड़ आई हैं। यह बात उन्होंने मेरे द्वारा लिखवाकर भेजी है। मिल जाये तो किसीके साथ भेज देना। अगर कोई आनेवाला न हो तो डाकसे भेज देना। उसीके साथ २० तोला हींगकी गोलियाँ भी भेज देना। 'बा का पत्र सीधा भेज दिया गया'—इसका यही अर्थ है न कि सुपरिंटेंडेंटकी मारफत? यदि यही अर्थ हो तो वहाँ तलाश करवाना। तुम यहाँ जो डाक भेजते हो, उनमें लिफाफेके दो सिरोंमें से एक सिरेपर ही टिकट लगाते हो। जबतक दूसरे सिरेपर भी न लगाओ, तबतक काम नहीं चलता। इसलिए अच्छा यही होगा कि दोनों सिरोंपर टिकटें लगाई जायें या फिर दूसरे सिरेपर मुहर लगा दी जाये। दोमें से जो ठीक लगे वही करना।

प्रति घंटा एक आना देनेकी बातके विषयमें तुम वहाँ चर्चा भले ही करो, किन्तु स्वयं अपने अनुभवके विचारसे यदि एक बहीखाता स्वतन्त्र रूपसे रख लो तो इससे बहुत मदद मिलेगी। फिलहाल जो बहीखाता रहता है, वह तो रहेगा ही। यह तो एक अतिरिक्त वस्तु होगी। यदि अपनी बात मैं ठीक-से समझा सका होऊँ तो इसमें लिखा-पढ़ीके योग्य बहुत ही कम होगा। अर्थात्, कामके बहुत बढ़नेकी गुंजाइश नहीं है और हमें यह भी मालूम हो जायेगा कि सचमुच मेरे कथनमें कोई तथ्य है अथवा नहीं। यदि एक महीनेका हिसाब मिलानेपर यह मालूम पड़े कि सचमुच जो खर्च होता है उसमें, और मैंने जो हिसाब रखनेकी रीति बताई है, उसके आधारपर आनेवाले खर्चमें बहुत अन्तर है और अगर हम यह समझें कि यह अन्तर कभी समाप्त नहीं किया जा सकता और हमारा यह समझना ठीक सिद्ध हो, तो

मेरा मन कुछ दूसरी ही तरहसे सोचने लगेगा। मेरा ऐसा विश्वास है कि इस तरह हिसाब रखनेसे ऐसे परिणाम दिखेंगे जो हमें आश्चर्यचकित कर देंगे। कई बार हम अपने आलस्यके कारण बड़े अज्ञानमें पड़े रह जाते हैं, ऐसा मैंने अनुभव किया है और इसकी सम्भावना अधिक है कि अगर हम इस तरह हिसाब लिखकर देखें तो हमने जो झूठी कल्पनाएँ की होंगी, वे दूर हो सकेंगी। हम इसके आधारपर अपनी भूल सुधार सकेंगे। इसलिए फिलहाल तो मैं यही मानता हूँ कि मेरी विचार-सरणीमें भूल नहीं है और इसका परिणाम सुन्दर होगा। हमारे मनमें इस भ्रमके उत्पन्न होनेका मेरी समझमें यह कारण है कि सैकड़ों वर्षोंसे प्रत्येक धन्धेकी मजदूरी अलग-अलग आँकी जाती है और हिसाव लगानेकी इसी पद्धतिको ठीक समझा जाता है।

क्या तुमने हरिलालका वह पत्र देखा था जो इस बार आया था? वह ठीक-ठीक अक्षरतक नहीं लिख सका। काँपते हुए हाथसे पत्र लिखा है अर्थात्, या तो वह अत्यन्त आवेशमें लिखा गया है अथवा शराबके नशेमें। भाषामें तो आवेश और उद्दण्डताके सिवाय और कुछ है ही नहीं। सामान्य व्याकरणकी ओर भी ध्यान नहीं दिया है। शब्द अधूरे छोड़ दिये हैं और हस्ताक्षर भी पूरे नहीं किये। मेरा खयाल है कि अब हम इसे भूल जायें। ईश्वरकी इच्छा होगी तो सुधरेगा। इसकी आँख खोलनेके विचारसे भी यह आवश्यक है कि यह हम सबके अभिप्रायको स्पष्ट रीतिसे समझ ले। तुमने लिखा है, हरिलालके नामके 'दोनों' पत्र मिल गये। जो पत्र हमने गुम हो गया माना था[1] क्या वह मिल गया? यदि मिला हो तो क्या तुमने उसकी मुहर वगैरहकी जाँच की?

बिजली लगवानेसे हाथके दर्दमें कोई लाभ हुआ नहीं लगता। शुरूमें एक-दो दिन ऐसा लगा कि शायद कुछ लाभ हो जायेगा। किन्तु फिलहाल परेशानी दायें हाथको लेकर नहीं, बायें हाथकी कोहनीको लेकर है। डॉक्टर इसमें बिजली नहीं लगा रहा है। रेडियमका इलाज करनेकी बात सोच रहा है। मैं मगनचरखा चलाते हुए बायें हाथको किसी भी प्रकारका काम कदापि नहीं देता; फिर इस विषयमें चिन्ताका कोई कारण नहीं है। अभीतक जो तकलीफ है, वह हाथसे काम लेते समय ही होती है अन्यथा दर्द बिल्कुल नहीं होता। खम्भाताको हड्डीके विशेषज्ञके रूपमें बुलवानेके बारेमें जो हो जाये, वही ठीक है। यों उसके लिए मंजूरी तो आ गई है। किन्तु यदि मीराबहनके विषयमें मंजूरी नहीं मिलती तो इस मंजूरीका उपयोग नहीं हो सकता। मुझे ऐसा कुछ ध्यान था कि पहलेके मंजूर-शुदा पाँच नाम मैंने तुम्हें भेज दिये थे। उनमें से तीन तो तुम्हें मालूम हो ही गये हैं, बाकीके दो हैं — त्रिवेदी और लेडी ठाकरसी। यदि जयन्तीप्रसादकी कन्याको तुम सँभाल सको तो बहुत अच्छी बात है। दाँडी-कूचमें मेरे ऊपर ऐसी छाप पड़ी थी कि जयन्तीप्रसाद नियमोंका पालन करनेकी दिशामें प्रयत्नशील हैं।

१. ई० ई० डॉयलके नाम अपने ७ मई, १९३२ के पत्रमें गांधीजी ने २८ अप्रैलके अपने एक पत्रका उल्लेख किया है जो उन्होंने आश्रममें अपने पुत्रको भेजा था किन्तु जो उसके पास पहुँचा नहीं था। यहाँ शायद संकेत उसी पत्रकी ओर है।

चिमनलाल और शारदा ठिकानेपर आते ही नहीं हैं, यह बात दुःखदायी है। तत्काल इस विषयमें जो विचार सूझ रहे हैं, उनको यही लिखे दे रहा हूँ। अलग पत्र नहीं लिखूँगा। यही उनके नाम लिखा है, वे ऐसा मान लें। शिवाजी की तबीयत नरम-गरम रहती थी। उसने, जितना तत्सम्बन्धी साहित्य मिल सका, उसे पढ़ा और खान-पान तथा व्यायामके उपचारोंका सहारा लेकर वह अपने शरीरको ठिकानेपर ले आया। चिमनलालको भी कुछ ऐसा ही करके देखना चाहिए। शिवाजी ने जैसा किया, वे दोनों भी ऐसा ही करें, कहनेका यह उद्देश्य नहीं। किन्तु चिमनलाल आश्रममें पर्याप्त रहा है, उसने विचार भी किया है, मेरे प्रयोग भी देखे हैं, इसलिए सम्भव है कि वह अपने शरीरको माफिक आनेवाली चीज खोज निकाले। इसमें विचित्र कुछ नहीं हैं। आश्रममें इस विषयकी बहुत-सी पुस्तकें हैं। सूर्य-किरण-चिकित्सा (क्रमोपैथी) से सम्बन्धित एक छोटी पुस्तक भी अवश्य है। इसका प्रयोग तो बहुत सरल है। जिस डॉक्टर[1] ने अमतुलबहनका इलाज किया था, वह इसका बहुत उपयोग करता है। हलके आसनोंका असर भी हो सकता है। थोड़ा समय निकालकर इनके विषयमें पढ़ जाना चाहिए। मेरी समझमें डॉक्टरके इलाजकी अपेक्षा यह अधिक अच्छे और सात्विक उपाय हैं। यह तो हम रोज ही देखते हैं कि डॉक्टरी इलाज भी अनेकोंपर लागू नहीं होता। यह सारा शास्त्र ही अत्यन्त अधूरा है। और बहुत कुछ तो अनुमानपर आधारित है। चूँकि हर शरीरकी प्रकृति अलग-अलग होती है, इसलिए सबपर लागू होनेवाला कोई एक इलाज है ही नहीं, ऐसा कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है। शारदाके विषयमें मेरा यह खयाल है कि हम उपाय जानते हैं किन्तु फिर भी उनका उपयोग नहीं किया। इसमें शारदाकी त्रुटि भी रही होगी। उसे आहिस्तासे समझाकर इलाजकी दिशामें प्रोत्साहित करना चाहिए।

मैं मानता हूँ कि जमनाका राणावाव जाना अच्छा हुआ और पुरुषोत्तम साथ थे इसलिए उसके विषयमें चिन्ताका कोई कारण नहीं बचता। पारनेरकरका मामला बड़ा उलझा हुआ है। जो हो सके सो करना। टाइटसके नाम मेरा पत्र पढ़ लेना। वहाँकी गर्मीके सामने यहाँकी गर्मी हँसकर उड़ा देने योग्य ही कही जायेगी। इसलिए हमारी बाहरी और भीतरी दोनों ही प्रकारकी तपश्चर्या मिथ्या है। तुम्हारी तपश्चर्या ईर्ष्या करने योग्य है। तुम इसमें उत्तीर्ण हो सकोगे, ऐसी आशा है और यही आशीर्वाद भी।

यदि मेरे पत्रोंका हिन्दीमें नियमपूर्वक अनुवाद न किया जाता हो तो इसको एक पक्का नियम ही बनवा देना; भले ही गुजराती न समझनेवाले दो-तीन लोग ही क्यों न हों। यदि वे लोग अनुवाद न माँगें तो बात अलग है।

३० मई, १९३२

सावित्रीबहन अर्थात्, श्रीमती स्टेंडेनैथको मैंने पत्र लिखा था, उसने जो पता दिया था, उसी पतेपर। किन्तु डाकखानेसे वापस आ गया है। उसे तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। लिफाफा भी साथमें है। यदि तुम्हारे पास उनका अधिक विस्तृत पता

१. डॉ० हीरालाल शर्मा।

हो तो ठीक पता लिखकर इस पत्रको रजिस्ट्रीसे भेज देना। वह अवश्य ही मेरे पत्रका रास्ता देख रही होगी। जवाब न मिलनेसे दुःखी हो रही होगी। मिल जाये तो मुझे उसका विस्तृत पता लिख भेजना।

फादर एल्विनने सुझाया है कि हम यहाँ हर शुक्रवारको एक निश्चित ईसाई भजन गायें और उसी समय उसी दिन हर हफ्ते उनके ईसाई मित्र भी वही भजन गायेंगे। इस तरह हार्दिक सहयोग विकसित हो सकेगा। यह सुझाव पिछले शुक्रवारको जब उनका पत्र मिला, तभीसे महादेवने स्वीकार कर लिया और इस पत्रके उत्तरस्वरूप ही 'प्रेमल ज्योति'[1] गाया। अर्थात्, यही भजन निश्चित हुआ है। पण्डितजी से सलाह लेकर, यदि वे पसन्द करें तो वहाँ भी हर शुक्रवारको शामकी प्रार्थनाके समय इसे गाना। तुम देख पाओगे कि अब मैंने दाहिने हाथसे लिखना शुरू कर दिया है। यहाँके डॉक्टरोंका निश्चित मत है कि मुझे बायें हाथकी कोहनीको पूरा आराम देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया तो दर्द धीरे-धीरे बढ़ेगा। इसलिए मैंने बायें हाथसे लिखना भी छोड़ दिया है। एक-दो दिनमें पूरा हाथपर फ्लस्तर बाँध दिया जायेगा। वैसे यह पढ़कर चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि अभीतक इस हाथकी कोहिनीके पास काम लिये बिना दर्द नहीं हुआ। वर्षाके पहले छप्पर सुधारनेके विचारसे ही पट्टी बाँधी जायेगी। डॉक्टरोंको पूरा विश्वास है कि इसका खुराकसे सम्बन्ध नहीं है। इस तरहका दर्द कई बार टेनिस खेलनेवालोंको भी हो जाता है और डॉक्टरोंका खयाल है कि मैं अनेक वर्षोंसे कातते रहनेके कारण टेनिस खेलने वालोंकी अपेक्षा इस हाथकी कोहनीसे अधिक काम ले चुका हूँ। इसलिए अब उसे ये लोग पूरा आराम देना जरूरी मानते हैं।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८८२९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए "पत्र : वेरियर एल्विनको", २७-५-१९३२।

६०५. पत्र : गुलचेन लम्सडनको[1]

३० मई, १९३२

प्रिय बहन,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे अच्छी तरहसे याद है कि सर हेनरी लॉरेंस १९२२ या २३ में इस जेलको देखने आये थे और उनका यह खयाल सही है कि तब मैं अपना समय मुख्यत: 'डिक्लाइन एण्ड फाल ऑफ दि रोमन एम्पायर' पढ़ने या चरखा कातनेमें बिताता था। यह भी सच है कि उन्होंने मुझे काफी खुश पाया था। लेकिन यहाँ कोई 'सुन्दर बगीचा' न तो तब था, और न अब है। हाँ, आसपास कुछ लम्बे पेड़ थे, जो अब भी हैं। एक साधारण हिन्दुस्तानी जेलकी सीखचोंवाली सपाट कोठरियाँ ही इसके कमरे हैं। कोठरियोंकी दृष्टिसे इनमें हवा और प्रकाशकी ठीक व्यवस्था है। इसलिए जहाँतक आसपासके दृश्यका सम्बन्ध है, ऐसी कोई बात नहीं कि मेरी याददाश्त मुझे धोखा दे रही हो। कारण, यह लिखते समय मेरे आसपास ठीक वही दृश्य है, जो सर हेनरीके मुझसे मिलनेके समय था। इसलिए सर हेनरीने जो वर्णन किया है उसका यदि तुम्हारे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा हो कि यह कोई परी-लोक है तो वह निश्चय ही भ्रमोत्पादक है। आखिर खुशी तो एक मानसिक अवस्था है; और जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं एक युगसे कठिन जीवनका अभ्यस्त हो चुका हूँ। इसलिए मैंने अपनी खुशीको आसपासके हालातसे अलग रखना सीख लिया है।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५२७) से; सौजन्य: श्रीमती ह्यू लम्सडन, कनाडा।

१. नाम **महादेवभाईनी डायरी,** भाग–१, पृष्ठ १८९ के अनुसार।

६०६. पत्र : ए० आर० तिजारेको

३० मई, १९३२

प्रिय तिजारे,

मुझे अभी आपका पत्र मिला। पिछले जिस पत्रका आपने उल्लेख किया है, वह मुझे मिला ही नहीं। मैं उसी वक्त तुरन्त उसका जवाब देता। सरदार वल्लभभाईको भी, जो यह पत्र लिखाते समय उपस्थित हैं और जिन्होंने मेरा सारा पत्र-व्यवहार देखा है, ऐसी कुछ याद नहीं कि आपका कोई भी पत्र आया हो। जो भी हो, मैं वियनामें किसीको नहीं जानता। मैं वहाँ कभी नहीं गया। लेकिन मुझे कोई सन्देह नहीं कि जब आप विशेषज्ञको अपनी पूरी कहानी बतायेंगे तो वह आपका इलाज उसी तरह करेगा जैसा कि उसने ऐसे रोगियोंका पहले किया होगा। यदि इसका कोई लाभ हो तो तिलक विद्यालय, नागपुरका प्रधानाचार्य होनेके सबूतके तौर पर आप इस पत्रका उपयोग कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आपको वहाँके इलाजसे लाभ होगा। मुझे खुशी है कि विट्ठलभाईके स्वास्थ्यमें सुधार हो रहा है। कृपया उन्हें मेरा प्रणाम कहिए।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

ए० आर० तिजारे
(प्रिंसिपल, तिलक विद्यालय, नागपुर)
द्वारा पेंशन बी० फेफर
विलहेम एक्सनर्गेस २८
वियेन ९, आस्ट्रिया

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्सट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाईल सं० ८०० (४०) (३), भाग–१, पृष्ठ २४१।

६०७. एक पत्र[1]

३० मई, १९३२

मेरी रायके अनुसार एकता यान्त्रिक उपायोंसे स्थापित नहीं होगी; उसके लिए तो लोक नेताओंके हृदय और रवैयेमें परिवर्तन होना चाहिए। मैं धर्मको मनुष्यकी अनेक प्रवृत्तियोंमें से एक नहीं मानता। हर काम धर्म-वृत्तिसे भी हो सकता है और अधर्म-वृत्तिसे भी। इसलिए मेरे लिए धार्मिक कामोंको हाथमें लेनेके लिए राजनीतिक काम छोड़नेकी बात है ही नहीं। मेरा तो प्रत्येक काम, छोटी-से-छोटी प्रवृत्ति भी, उसीसे नियन्त्रित होती है जिसे मैं अपना धर्म मानता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग–१, पृष्ठ १८९।

६०८. पत्र : कुसुम देसाईको

३० मई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

अच्छा हुआ तू मिल आई। प्यारेलाल मेरे उत्तरके लिए अधीर हो गया था। मैंने यहाँसे एक कार्ड सीधा लिखा है। महादेव बादमें लिखता रहेगा। अब क्या करनेका विचार है, यह लिखना। प्यारेलालको पत्र लिखनेवाली हो तो बता देना कि रामकृष्ण और विवेकानन्दकी पुस्तकें[2] अभी पढ़ रहा हूँ। पढ़ लेनेपर रामेश्वरदास[3]को भेज दूँगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३९) से।

१. पत्र प्रापकने गांधीजीको राजनीतिसे संन्यास लेने और इस्लाम, ईसाईधर्म और बौद्धधर्मके जो समान मूल सत्य हैं, उनका प्रचार करनेको कहा था।

२. संभवत: रोमाँ रोलाँ-द्वारा लिखित; देखिए "दैनन्दिनी, १९३२" के अन्तर्गत २२ और २३ मईकी प्रविष्टियाँ।

३. धूलियाके रामेश्वरदास पोद्दार।

६०९. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

३० मई, १९३२

भाई रामेश्वरदास,

तुम्हारा पत्र मिला है। उसके पहले लिखा गया मेरा वह पत्र जो मैंने आश्रमकी मारफत भेजा था, मिल गया होगा। कातनेके व्रतपर दृढ़ रहना। जबतक मन दृढ़ न हो जाये, तबतक अब एक भी नया व्रत मत लेना। किन्तु जो व्रत ले चुके हो और जो आजतक निभ रहे हैं, उनपर दृढ़तासे अमल करते रहना। जो व्यक्ति किसी एक छोटे कहे जानेवाले व्रतपर चाहे जितनी कठिनाइयोंके रहते हुए भी दृढ़ बना रह सकता है, उसके लिए वही व्रत अन्तमें पतवार बन जाता है। माँ और भौजाई यदि प्रेमपूर्वक समझानेसे समझ जायें तो ठीक है, नहीं तो उनके विरोधको शान्त रहकर सहन करना। उनके साथ किसी प्रकारकी जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए। बच्चेको गुरुकुल कांगड़ी भेज सको तो अच्छा। वहाँ उसे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी सिखाई जायेगी। हाईस्कूलमें जो विषय पढ़ाये जाते हैं, लगभग वे सभी वहाँ उसे सीखनेको मिलेंगे। गुरुकुल जानेसे इनकार करे तो फिर शान्तिनिकेतन चला जाये। वहाँ जाना हो तो बंगला सीखनी चाहिए; वहाँ भी न जाना चाहे तो काशी विद्यापीठमें प्रवेश ले ले। घर रहकर विद्याभ्यास नहीं हो पायेगा। उसे हाईस्कूलसे अलग कर लेनेके बाद फिरसे वहीं भेजने लगना योग्य नहीं कहा जा सकता और उसकी पढ़ाई अस्तव्यस्त हो जाये, यह भी उचित नहीं है। इसलिए ऊपरके तीन स्थानोंमें से कोई एक ठीक रहेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८१) से।

६१०. एक पत्र[1]

३० मई, १९३२

मेरी राय यह है और डॉक्टर भी यही मानते हैं कि किसी भी स्त्रीपर केवल बलात्कार होना सम्भव नहीं है। मरनेके लिए तैयार न होनेके कारण स्त्री अन्तमें अत्याचारीके वशमें आ जाती है। मगर जिसने मौतका डर बिलकुल छोड़ दिया है, वह बलात्कार होनेके पहले ही मर मिटेगी। यह लिखना आसान है, करना कठिन है; इसलिए हमें यह मानना शोभा ही देगा कि जो स्त्री खुशीसे अत्याचारीके वशमें नहीं हुई, उसपर बलात्कार ही हुआ है। ऐसी स्त्रीको गर्भ रह जाये तो वह गर्भपात हरगिज न करे। जिसपर बलात्कार हुआ है, वह किसी भी तरह निन्दाके

१. दि डायरी ऑफ महादेव देसाई, भाग-१, में प्रेषितीके नामका संक्षेप "एस" दिया गया है।

लायक है ही नहीं। वह तो दयाकी ही पात्र है। जो स्त्री अपनेपर हुए बलात्कारको भी छुपाना चाहती है, उसे किस बातका अधिकार है – गर्भपातका अधिकार है या नहीं–यह कौन कह सकता है? इस तरह भयभीत हुई स्त्री अधिकार न होनेपर भी अधिकार मान बैठेगी और जो जीमें आयेगा, करेगी। बलात्कार हो जानेके बाद स्त्रीको आत्महत्या करनेका बिलकुल अधिकार नहीं है, आत्महत्या करनेकी कोई जरूरत भी नहीं है।

मेरे जो जवाब तुम्हें मिलें या मैं दूसरोंको लिखूँ, वे जेलसे लिखे होनेके कारण प्रकाशित नहीं होने चाहिए। मैं यहाँसे जो अनेक पत्र लिखता हूँ, वे प्रकाशित होते रहें तो यह बिलकुल ही अशोभनीय बात है। सरकार शायद इस तरह पत्रोंका प्रकाशित होना बर्दाश्त कर भी ले, मगर सत्याग्रही इस तरहकी छूट नहीं ले सकता। सत्याग्रहीको कितनी ही मर्यादाओंका अपने-आप पालन करना होता है। यह वैसी ही मर्यादा है। मेरे विचारोंको सुनने या अपनानेके लिए दुनिया अधीर नहीं है। हो तो भी ऐसे समय धीरज रखनेकी जरूरत है। मैं खुद अपनी रायकी इतनी बड़ी कीमत नहीं लगाता हूँ। हरएक रायके लिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि आज दी हुई राय कल मैं बदलूँगा नहीं। तुम्हारे-जैसोंको निजी राय दूँ, इसमें मुझे हर्ज मालूम नहीं होता। मैं मान लेता हूँ कि मेरे स्वभाव और मेरी खामियों वगैरहको ध्यानमें रखकर मैं जो राय दूँगा, उसकी तुम्हारे-जैसे तुलना कर लेंगे।

अब तुम्हारे सवालोंको लेता हूँ। तुम्हारे कितने ही सवाल न पूछने लायक होते हैं। जिज्ञासुको जिसपर श्रद्धा हो, उससे तात्विक निर्णय कम-से-कम माँगने चाहिए। काल्पनिक शंकाओंका निवारण कभी न कराना चाहिए। अपनेको कोई कदम उठाना हो और उसके बारेमें शक हो, तो उसपर सवाल जरूर पूछा जा सकता है। किसी घटनाके बारेमें पूछना हो, तो उस वक्त उस घटनाका हाल बताना चाहिए। उस घटनासे कोई सार्वजनिक प्रश्न कभी नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि इस तरह प्रश्न बनाते समय असली चीजमें से कुछ-न-कुछ रह जानेकी सम्भावना है। इसलिए सार्वजनिक प्रश्नका उत्तर घटना विशेषपर लागू करनेमें जोखिम है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग – १, पृष्ठ १८८-९।

६११. दैनन्दिनी, १९३२[1]

४ जनवरी, सोमवार, यरवदा[2]

चरखेपर १९० तार। सुबहके तीन बजे पुलिसने आकर गिरफ्तार कर लिया। भजन गाकर विदा हुए। एलिविन,[3] प्रिवा, मिल्म, आदि थे। इसी अवसरपर वल्लभभाईको भी पकड़ लिया। जेल एक साथ गये और साथ ही रखे गये। कह सकता हूँ कि दिनमें आराम किया। स्टीमरसे उतरनेके बाद आज पहली बार घूम सका। विल ड्यूरेन्टकी पुस्तक[4] शुरू की। आज कोई ताजा फल नहीं खाया। दो सेर दूध पिया।

५ जनवरी, मंगलवार

चरखेपर १७२ तार। आज भी अच्छी तरह आराम किया। मुलाकात आदिके बारेमें हमारी क्या इच्छा है, इस विषयमें एक टिप्पणी[5] सिर्फ इन्स्पेक्टर जनरलकी जानकारीके लिए भेजी। ड्यूरेन्टकी पुस्तक चल रही है।

६ जनवरी, बुधवार

चरखेपर १९६ तार। मेजर मार्टिन मिलने आये। आज 'टाइम्स ऑफ इंडिया' मिला। ड्यूरेन्टकी पुस्तक पूरी की। क्रोज़ियरकी पुस्तक[6] शुरू की। अभी थकावट है। वजन लिया गया; मेरा १०५½ [पौंड] सरदारका १४७।

७ जनवरी, गुरुवार

चरखेपर १९७ तार। क्रोज़ियरकी पुस्तक पूरी की। ब्रेल्सफोर्ड[7] की [पुस्तक] शुरू की। अभी अच्छी तरह आरामकी जरूरत। आज पपीता लिया। कलसे टमाटर लेना शुरू।

८ जनवरी, शुक्रवार

चरखेपर १९५ तार। सर मुहम्मद शफीके देहान्तके बारेमें लेडी शफीको तार। सातवलेकरने 'पुरुषार्थ'[8] भेजी। गुजराती पुस्तक आई।

१. इसके पूर्वके अंशके लिए देखिए खण्ड ४८।
२. २६ जनवरी, १९३२ से गांधीजी ने यरवदा-जेलको यरवदा-मन्दिर कहना शुरू किया था।
३. वेरियर एल्विन।
४. **दि केस फॉर इंडिया।**
५. दैनन्दिनीमें उल्लिखित यह टिप्पणी और कतिपय अन्य पत्र अप्राप्य हैं।
६. **द वर्ड टु गांधी।**
७. **रैबेल इंडिया।**
८. मराठी भाषाकी एक पत्रिका।

९ जनवरी, शनिवार

चरखेपर २१२ तार। आज ब्रेल्सफोर्डकी 'रैबेल इंडिया' पूरी की। त्रिवेदी[1] के यहाँसे फल और शाककी दो टोकरियाँ आईं।

१० जनवरी, रविवार

चरखेपर १६० तार। महमुदअली अल हज सालमीनकी पुस्तक 'इमाम हुसैन' कल शुरू की। आज समाप्त की। अब उसकी 'खलीफा अली' . . . पुस्तक पढ़ रहा हूँ। आज तीन बजे मौन शुरू किया। अभी ज्यादा कातने या ज्यादा काम करने योग्य शक्ति नहीं आई। सोये रहना अच्छा लगता है। आज दिनमें तीन बार सोया। त्रिवेदीके भेजे नारंगी और अंगूर खाये।

११ जनवरी, सोमवार

चरखेपर १६३ तार। आज थोड़ी डाक आई। उसमें मीरा, काशीनाथ, कलावती और प्रभावतीके पत्र हैं। अय्यर नामक वकीलने स्काउट-सम्बन्धी पुस्तक भेजी है।

१२ जनवरी, मंगलवार

चरखेपर २०६ तार। आज फिर पत्र और पुस्तकें आईं। पत्र लिखनेकी अनुमति मिली। नारणदास, बा, मीरा, राधा, अमीना, आदिको लिखा।[2] प्रभावती और काशीनाथको भी लिखा।

१३ जनवरी, बुधवार

चरखेपर १८५ तार। कमिश्नर क्लेटन मिलने आये। प्रभावतीका पत्र मिला। नारणदासको पत्र लिखा, साथ महालक्ष्मी आदि और चन्द्रशंकर तथा हेमप्रभादेवीको पोस्टकार्ड भेजे। डाह्याभाई वल्लभभाईसे मिल गया। आज खजूर मँगाई।

१४ जनवरी, गुरुवार

चरखेपर १८५ तार। जो पत्र कल वाइसरायको लिखना शुरू किया था आज पूरा किया। कल [खलीफा] अलीकी जीवनी पढ़कर पूरी की। आज होरकी चौथी सील[3] शुरू की। आश्रमसे पूनियाँ, चप्पल, धुनकी आई। सैम्युअल होरको पत्र भी लिखा। आज वजन लिया गया। मेरा उतना ही निकला। सरदारका ३ रतल कम हो गया।

१५ जनवरी, शुक्रवार

चरखेपर १९४ तार। मेजरको वाइसराय और होरके लिए पत्र दिए। होरकी पुस्तक समाप्त होनेवाली है। आज डाह्याभाई फिर सरदारके लिए डॉक्टरको लेकर आया।

१. पूना कृषि विद्यालयके जयशंकर पीताम्बरदास त्रिवेदी।

२. नारणदास गांधीको पत्र लिखे जानेका उल्लेख १२ जनवरीकी दैनन्दिनीमें किया गया है; किन्तु उन्हें लिखे गये इस पत्रपर ११ जनवरी अंकित है। देखिए पृष्ठ ४।

३. दि फोर्थ सील।

१६ जनवरी, शनिवार

चरखेपर १६३ तार। कुमारप्पाकी मातरकी [ताल्लुकाकी] जाँच-सम्बन्धी पुस्तक[१] आई। आज 'क्रॉनिकल' मिला। दूसरे कई पत्र भी आये। होरकी पुस्तक समाप्त की। मैक्डॉनल्ड[२] की [पुस्तक] शुरू की।

१७ जनवरी, रविवार

चरखेपर १९६ तार। आज ठीकसे पढ़ सका। त्रिवेदीके यहाँसे फिर फल और शाक-सब्जीकी दो टोकरियाँ आईं।

१८ जनवरी, सोमवार

चरखेपर १६६ तार। पत्र — आश्रमकी डाकमें — नारणदास, खुशालभाई, चम्पा, प्राणजीवन, अब्बास, पारनेरकर, सुरेन्द्र, बालकृष्ण, छोटेलाल, दुर्गा, रतिलाल, भणसाली, वसुमती, पद्मा, वालजी, प्रभुदास, रामदास, मीरा, छोटालाल गांधी (महुआ), मगनलाल शामजी, उर्मिला देवी, अब्दुल मजीद (बाराबंकी), रैहाना, कमला नेहरू, निर्मला जोशी, हकीम अब्दुल लतीफ (दसुया) सुरबाला देसाई (सूरत), प्रोफेसर त्रिवेदीके। मैक्डॉनल्डकी पुस्तक पूरी की।

१९ जनवरी, मंगलवार

चरखेपर २२८ तार। आज समाचारपत्र, मुलाकातों, आदिके सम्बन्धमें खबर आ गई। सन्तोषजनक मान सकते हैं। प्यारेलाल आदिके पत्र आये। लेडी ठाकरसीने फल भेजे। मातर ताल्लुकाकी जाँच-सम्बन्धी पुस्तक कल शुरू की।

२० जनवरी, बुधवार

चरखेपर १७३ तार। आज कलक्टर मिलने आये। समाचारपत्र भेजनेके बारेमें। 'ट्रिब्यून,' 'लीडर' और 'हिन्दू' को पत्र लिखे। कुमारप्पाकी पुस्तक, रामनाथनकी पुस्तिका और हेकी 'इंडियन बाइबिल्स' पूरी की। रस्किनकी 'सेंट जार्जेज गिल्ड' शुरू की।

२१ जनवरी, गुरुवार

चरखेपर २०५ तार। आज आश्रमसे डाक आई। काशीनाथका भी पत्र आया। स्टेनली जोन्सने अपनी नई पुस्तक भेजी। कल और आज पत्र लिखे — लेस्टर, हॉपकिन्सन, सर जॉर्ज बर्न्ज, नारणदास, (कुसुम, प्यारेलाल, मैत्री, महावीर,) एस्थर मैनन, रेंच, मेरी लॉडरको। आज रस्किनकी गिल्ड-सम्बन्धी पुस्तक पूरी की। शाह[३] की 'फैडरल फाइनेन्स' शुरू की।

१. जे० सी० कुमारप्पाकी पुस्तक **सर्वे ऑफ मातर ताल्लुका**।
२. **ट्रैवॅलॉग**।
३. के० टी० शाह।

२२ जनवरी, शुक्रवार

चरखेपर २३१ तार। कलके पत्र डाकमें डालनेके लिए दे दिये। इसके अतिरिक्त रामानन्द बाबू, 'क्रॉनिकल,' मेरी पीटरसनको भी पत्र लिखे। कर्नल स्टीलने हम दोनोंकी जाँच की।

२३ जनवरी, शनिवार

चरखेपर १५३ तार। आज दूध नहीं लिया। फिर फलकी टोकरी आयी। कल सर फ्रेडरिक साइक्सको पत्र लिखा। आज मेजरको दिया। दिनमें थोड़े-से पत्र आश्रमको लिखे। आज हेमप्रभादेवी आदिके पत्र मिले। रैहानाका भी।

२४ जनवरी, रविवार

चरखेपर १६० तार। आज सुबह क्रेसवेल मिलने आये। आज फिर दूध नहीं लिया। दोपहरको काफी पत्र आश्रमको लिखे।

२५ जनवरी, सोमवार

चरखेपर २०१ तार। आश्रमकी डाक पूरी की। उसमें ६१ पत्र और १४ वें अध्यायपर प्रवचन। दूसरे पत्रोंमें प्रभावती, रैहाना, हेमप्रभा, कंगाणी सुन्दरम और विश्वनाथ थाणेरकरको पत्र हैं। फिर बहुत-सी पुस्तकें आईं उनमें इंगरसोलके भाषण हैं। जोशिया[1] को इन पुस्तकोंकी पहुँच लिखी।

२६ जनवरी, मंगलवार

चरखेपर २११ तार। कलके पत्र डाकमें डालनेके लिए दिये। आज दूध लिया। खजूर मँगाई। 'पुरुषार्थ' का गीता-अंक आया। एमर्सनके पत्रका मसविदा तैयार किया। यह इतना लम्बा हो गया और इतना इसमें तल्लीन हो गया कि सातका घंटा नहीं सुना, इससे प्रार्थनामें आधे घंटेकी देरी हो गई। विच्छनचरण पटनायक, काशीनाथ, एडिथ स्कॉट, होप तथा नारणदासको पत्र लिखे। १४ वाँ अध्याय उसके पत्रके साथ भेजना भूल गया। 'इजिप्टका नाश'[2] शुरूकी।

२७ जनवरी, बुधवार

चरखेपर १९० तार। कलके पत्र सुपरिंटेंडेंटको दिये। आज प्रोफेसर शाहको एक पत्र लिखा। वह भी उनको दे दिया। मीरा, प्यारे अली, नूरबानू और राधा आये। 'हिन्दू' और 'लीडर' आ गये। आश्रमकी डाक आई। गिरि-कुटुम्बके बारेमें नारणदासको पोस्टकार्ड लिखा। काफी पत्र लिखे।

२८ जनवरी, गुरुवार

चरखेपर १७२ तार। एमर्सन और नारणदासके पत्र सुपरिंटेंडेंटको दिये। पत्र लिखे। 'लीडर' आ गया।

१. डॉ. जोशिया ओल्डफील्ड, **वेजिटेरियनके** सम्पादक, 'बेजवाटर वेजिटेरियन सोसायटी' के अध्यक्ष, जिसकी स्थापना गांधीजी ने इंग्लैंडमें अपने अध्ययन-कालमें की थी; देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ ५०-१।

२. **रुइन ऑफ ईजिप्ट**।

२९ जनवरी, शुक्रवार

चरखेपर १७९ तार। आज 'ट्रिब्यून' आया। और किताबें आईं। नारणदास और प्रभावतीके पत्र आये। एरी[1] को बम्बई जानेका हुक्म मिला। होरकी पुस्तक साथ ले जानेके लिए कहा। कुछ पत्र लिखे। अब भी नींद खूब आती है।

३० जनवरी, शनिवार

चरखेपर तार। १६८ अभीतक काफी नींदकी जरूरत बनी है। दिनमें बहुत-से पत्र लिखे।

३१ जनवरी, रविवार

चरखेपर २०७ (दो सौ सात) तार। 'इजिप्टका नाश' पुस्तक पूरी की। हेजकी पुस्तक[2] शुरू की। विलायतसे कई पत्र आये। उनमें एस्थरका पत्र भी था।

१ फरवरी, सोमवार

चरखेपर २३५ तार। आज पत्र लिखे और [भेजनेके लिए] तैयार किये। आश्रमके लिफाफेमें मणिलाल (धीरू, मंगल, गुलाब), चिन्तामणि, 'हिन्दू,' कालीबाबू, प्रभावती, कमला नेहरू, चन्द्रहास, केशवराम दवे (और उसकी बहनों), एमा हार्कर, खुशाल शाह, स्वामी चिदात्मानन्द, वीरेन्द्रनाथ, हरिराम मोहनदास, प्रभाकर, बिहारीलाल, कान्तिलाल त्रिवेदीको पत्र। शाहने पाँच पुस्तकें भेजीं। और डाक आई, उसमें दक्षिण आफ्रिकासे मणिलालका पत्र था। क्वीन वीसापुर गया। डाह्याभाई सरदारसे मिलने आया।

२ फरवरी, मंगलवार

चरखेपर १६४ तार। लेडी विट्ठलदासको फल न भेजनेके बारेमें लिखा। सुपरिंटेंडेंटको डाकमें डालनेके लिए दूसरे पत्र दिये। ए० ई० की 'कैंडिल ऑफ दि विज़न' पूरी की। किन्लेकी 'मनी' शुरू की। जोन विडिकिस, गर्ट्रूड केलर, डी वेलेरा, रेवरेन्ड डब्ल्यू हेज़, प्रोफेसर हॉइलैंड, कार्ला, सारमानीको पत्र लिखे।

३ फरवरी, बुधवार

चरखेपर १५२ तार। आज तार इतने कम क्यों हुए समझ नहीं पाया। पूनियोंकी संख्या तो ठीक थी। कल लिखे हुए पत्र सुपरिंटेंडेंटको डाकमें डालनेके लिए दिये। मजिस्ट्रेट मिलने आया। वजन लिया। वल्लभभाईका १४४ ½ पौंड, मेरा १०७। श्री भूपतिनाथका चरित्र पढ़ा। दोपहरको लेडी विट्ठलदास, प्रो० त्रिवेदी, दामोदर और विद्या मिलने आये। मीराने तलेके लिए चमड़ा और शहद भेजा। रामदास, छगनलाल जोशी, सुरेन्द्र, सोमभाई-सहित १९० लोग साबरमतीसे आये। मणि,

१. साधन-सूत्रमें स्पष्ट नहीं है।
२. द बुक ऑफ दि काउ।

लीलावती, नन्दूबहन, आदि बहनें आईं। उन्हें बेलगाँव भेज दिया गया। आश्रमकी डाक आई।

४ फरवरी, गुरुवार

चरखेपर २१० तार। कुछ पत्र आश्रम लिखे। मीराको अलग पत्र लिखा। लेडी ठाकरसीने शहदकी दो बोतलें भेजीं।

५ फरवरी, शुक्रवार

चरखेपर २१० तार। सुपरिंटेंडेंटसे अन्य कैदी साथियोंसे मिलनेके सम्बन्धमें बात की। उसे पत्र लिखा। 'मॉडर्न रिव्यू' आ गया। सुपरिंटेंडेंटने कल कोहनीकी मालिशके लिए तेल दिया।

६ फरवरी, शनिवार

चरखेपर २४४ तार। आज ज़काउल्लाकी जीवनी[1] शुरू की। आश्रम पत्र लिखे। इसके अतिरिक्त मेरी बार, करीमनगर, रामानन्द बाबूको भी पत्र लिखे।

७ फरवरी, रविवार

चरखेपर १८० तार। 'गीता'के १६वें अध्यायका सार लिखा। बंगालके गवर्नरपर एक बालिका[2]-द्वारा हमलेका समाचार पढ़कर दुःख हुआ। ईश्वर-सम्बन्धी भाषणका अनुवाद किया।

८ फरवरी, सोमवार

चरखेपर २४१ तार। पत्र लिखे — अंजना देवी, ललिता, बुकेन, अगाथा हैरिसन, जेनकॉफ, डेविस, नागरदास, एस्थर, रैहाना, खन्डेलवाल, अम्बिकाईमक्कमको, आमश्रको — ३६। किन्लेकी 'मनी' पूरी की। शाहका ६० वर्षका आर्थिक इतिहास[3] पूरा किया। आज दूध नहीं लिया। बादामकी लुगदी ली।

९ फरवरी, मंगलवार (रमज़ान ईद)

चरखेपर १९२ तार। कल लिखे हुए पत्र डाकमें भेजनेके लिए दिये। ईद होनेके कारण मेजर नहीं आया। प्रभुदासके पकड़े जानेका समाचार मिला।

१० फरवरी, बुधवार

चरखेपर १८५ तार। आज पूँजाभाई, जूठाभाई, शंकर, अमीना और कान्ति मिलने आये। आश्रमसे डाक आई। कान्ति कई पुस्तकें दे गया है। उनमें पंडितजी की भेजी हुई बर्वेका 'संगीतशास्त्र' भी है। बम्बईके गवर्नरका पत्र आया। आज वजन लेनेपर मेरा १०५$\frac{3}{4}$ [पौंड] और वल्लभभाईका १४१$\frac{1}{2}$।

१. सी० एफ० एन्ड्र्यूज़-द्वारा लिखित **जकाउल्ला ऑफ दिल्ली**।

२. देखिए पृष्ठ ७३।

३. **सिक्स्टी ईयर्स ऑफ इकॉनॉमिक एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इंडिया।**

११ फरवरी, गुरुवार (बसंत पंचमी)

चरखेपर १७० तार। लीलावती मुंशीका पत्र आया। पत्र — मीरा, मनु त्रिवेदी, नारणदास, लीलावती मुंशीको।

१२ फरवरी, शुक्रवार

चरखेपर १८३ तार। कलके पत्र भेजे। आज आश्रमकी डाक जारी रखी। काफी पत्र लिखे।

१३ फरवरी, शनिवार

चरखेपर २०७ तार। प्रोफेसर ग्लेन क्लार्कने अपनी पुस्तकें भेजीं। एक-दो दूसरी पुस्तकें भी आईं। आज दोपहरको भी आश्रमकी डाक लिखी। मेजरने खून आनेके कारण वल्लभभाईके पाखानेकी जाँच की।

१४ फरवरी, रविवार

चरखेपर २०१ तार। दोपहरको पत्र लिखे। शामको १७ वें अध्यायका अनुवाद किया।

१५ फरवरी, सोमवार

चरखेपर २१७ तार। डाकमें ६८ पत्र। नारणदासको आश्रमके लिए पत्र और १७ वाँ अध्याय और इसके अतिरिक्त वेस्ट, नरसी प्रेमजी, जीवराज मेहता, फिलिप हार्टोग, के० टी० शाह, छगनलाल, मेहताब भाई, गर्ट्रूड केलर, रसिकलाल चुनीलाल, वेलशी रणशी, हरिलाल गोविन्दजी, मगनलाल मेहता, निर्मला पंड्याको पत्र।

१६ फरवरी, मंगलवार

चरखेपर १८९ तार। आज मेजर मार्टिन मिलने आये। दूसरे कैदियोंसे मिलनेके बारेमें चर्चा हुई। परिणामस्वरूप दूसरा पत्र लिखा। कलका पत्र अधिकारीको दिया। टैगोरकी दी गई 'पुष्पांजलि'[1] पुस्तक मिली। ए० ग्रे[2]की जीवनी मिली। महाराजा बीकानेरको तार। पत्र लिखे — नारणदास, झवेरचन्द, चाकेचाके[3], हनुमानप्रसाद, गौसीबहन, रामानन्द बाबू, श्रीमती गेईलको।

१७ फरवरी, बुधवार

चरखेपर १७१ तार। कल लिखे हुए पत्र अधिकारीको दिये। आज मीरा, वालजी और लीलावती मिलने आये। थोड़ी बहसके बाद मिलानेपर राजी हुये। मीरा कल गिरपत्तार होगी। वालजी आकाश-दर्शनकी पुस्तक लाया। तीन पत्र लाया। लेडी ठाकरसीने शहद और पपीते भेजे। मीरा साबुनका चूरा और बादाम लाई।

१. गोल्डन बुक ऑफ टैगोर।
२ और ३. शब्द स्पष्ट नहीं हैं

१८ फरवरी, गुरुवार

चरखेपर १६० तार। आज लक्ष्मीदासका भेजा हुआ 'गांडीव' आया। एन्ड्रयूजका पत्र मिला। मुझे लोग मिलने आते हैं, इसके विषयमें पूछताछ हो रही है। आश्रमसे डाक आई। आश्रमके पत्र लिखने शुरू किये। आज वजन लिया गया। वल्लभभाईका १४२ [पौंड] मेरा १०६ हो गया। लक्ष्मीदास और दामोदरदासको पत्र लिखे।

१९ फरवरी, शुक्रवार

चरखेपर १५० तार। कलके दो पत्र डाकमें डालनेके लिए आज दिये। डाह्याभाई वल्लभभाईसे मिलने आया। मैथिलीशरणने चार पुस्तकें भेजीं। विलायत जानेके बारेमें मगनका तार आया। आश्रमके पत्र लिखे।

२० फरवरी, शनिवार

चरखेपर २०५ तार। जिला मजिस्ट्रेट मिलने आये। पत्र लिखे। सुपरिंटेंडेंटके साथ ईशुके बारेमें बातचीत की। किसीने मुसोलिनीके विषयमें पुस्तक भेजी है।

२१ फरवरी, रविवार

चरखेपर १६० तार। अट्ठारवें अध्यायका भावार्थ पूरा किया। कह सकता हूँ कि आश्रमकी डाक लगभग पूरी हो गई। आज पाँचवीं चीजमें लौकीका शाक लिया। ओढ़नेका कपड़ा बदला। पुराना बहुत फट गया था।

२२ फरवरी, सोमवार

चरखेपर १६० तार। जी० एन० गोखलेने[1] धर्मशास्त्रपर लिखी अपनी पुस्तक भेजी। नारणदासको 'गीता'के भावार्थके अतिरिक्त आश्रमके ३२ पत्र हो गये। दूसरे पत्रोंमें घनश्यामदास, कमला नेहरू, रानी विद्यावती, मैथिलीशरण, जेराजाणी, रामेश्वरलाल बजाज और रैहानाको। शाहकी पुस्तक 'सिक्सटी इयर्स ऑफ इकॉनामिक एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इंडिया' पूरी की। मैथिलीशरणकी 'पंचवटी' पूरी की। 'साकेत' शुरू।

२३ फरवरी, मंगलवार

चरखेपर १८३ तार। ईशुको एक रातके लिए भेजा है। मुलाकातोंके सम्बन्धमें अधिकारीसे बातचीत की। कलके पत्र भेजे।

२४ फरवरी, बुधवार

चरखेपर १५९ तार। सिविल सर्जनने स्वास्थ्यकी जाँच की। आश्रमकी डाक आई। पत्र लिखना शुरू किया।

१. गंगाधर नीलकंठ गोखले।

२५ फरवरी, गुरुवार

चरखेपर २२२ तार। सर सैम्युअलका पत्र आया। मीराका भी आया। आज यशवन्तप्रसाद, जीवनलाल, लेडी विट्ठलदास मुलाकातके लिए आनेवाले थे, किन्तु अधिकारीकी आपत्तिके कारण नहीं आये। मीरा, हरजीवन, बबलभाई और रणछोड़भाई कुँवरजीके मामाको पत्र लिखे, आश्रमके पत्र तो लिखे ही।

सालमीनकी मुसोलिनी-सम्बन्धी पुस्तक कल शुरू की। कल 'साकेत' पूरी की।

२६ फरवरी, शुक्रवार

चरखेपर १७६ तार। आश्रमको पत्र लिखे। कलके पत्र अधिकारीको दिये। आज २४ पोस्टकार्ड आये हैं। कल्याण प्रेससे हिन्दीकी पुस्तकें आईं।

२७ फरवरी, शनिवार

चरखेपर १९५ तार। डाह्याभाई आया। मैं भी मिला। अमेरिकासे हेनरी जॉर्ज[१] [की जीवनी] आदि पुस्तकें आईं। कुछ पत्र भी आये। बा को पोस्टकार्ड लिखा और भेजा। आश्रमको पत्र लिखे।

२८ फरवरी, रविवार

चरखेपर २०६ तार। आज रोटी ली। मुँहमें छाले पड़ जानेके कारण टमाटर छोड़ दिये। आश्रम[वासियों]को तथा कुछ दूसरे पत्र लिखे। सर फजलीको और सर सैम्युअल होरको पत्र लिखे।

२९ फरवरी, सोमवार

चरखेपर १६३ तार। कलके दो पत्र अधिकारीको दिये। आज मुंशीका और दूसरे पत्र आये। पत्र लिखे: लीलावती (मुंशी), हेमप्रभा, एस्थर, जेसी जोन्स, सुमंगल, लक्ष्मीदास, पुरुषोत्तम, मगनलाल प्राणजीवन, भगवानजी अनूपचन्द, मूलचन्द पारेख, कनु मुंशी, माधवदास गोकुलदास, नारणदासको; और इनके अतिरिक्त आश्रमके ४२ पत्र और सुकरातके मृत्यु-सम्बन्धी विचार।

१ मार्च, मंगलवार

चरखेपर १५३ तार। मुसोलिनी-सम्बन्धी पुस्तक पूरी की। डिलाइल बर्नकी 'डेमोक्रेसी' शुरू की। कलकी डाक अधिकारीको दी। घनश्यामदासकी भेजी खजूर आ गई। पत्र लिखे: राधा, रूखी, बनारसी, परशुराम, टहल रामानी, महुलीकर, दिनकर मेहता, त्रिवेदी, लेडी विट्ठलदासको।

२ मार्च, बुधवार

चरखेपर १६३ तार। लेडी रामनाथनने अपनी पुस्तक 'रामायण' भेजी; अय्यरने एक्सचेंज-सम्बन्धी, और साठेने नीति-सम्बन्धी पुस्तक भेजी। तीनोंको पोस्टकार्ड

१. एक अमेरिकन अर्थशास्त्री।

लिखे। खुशालभाईकी बीमारीके सम्बन्धमें नारणदासका पत्र। आज 'बालगीता'[१] शुरू की।

३ मार्च, गुरुवार

चरखेपर २१७ तार। बा और शान्ता मिलने आईं। लेडी ठाकरसीने फल भेजे। दिनकर शहद और खजूर दे गया। आश्रमकी डाक आई। आश्रमको पत्र लिखे, कलके पोस्टकार्ड डाकमें भेजे और खुशालभाईको तार।

४ मार्च, शुक्रवार

चरखेपर २०५ तार। कुछ पुस्तकें आईं। सर जॉर्ज बर्न्स और घनश्यामदासके पत्र। वर्धासे सन्तरे आये। आश्रमको पत्र लिखे। डाह्याभाई और यशोदा आये थे।

५ मार्च, शनिवार

चरखेपर १६० तार। आजकी पाँच अंटियोंमें तीन तार कम होनेकी सम्भावना है। बाहरके लोगोंसे मुलाकातके सम्बन्धमें आज सरकारी हुक्म आ गया। नारणदासको पत्र लिखा। बाकी पत्र आश्रमको लिखे।

६ मार्च, रविवार

चरखेपर १९५ तार। इन दिनों बादाम लेने छोड़ दिये थे, आज फिर लिये। मुलाकातके सम्बन्धमें मेजर भण्डारीको पत्र लिखा। नारणदासका पत्र डाकके लिए दे दिया। 'डेमोक्रेसी' कल पूरी की। अप्टन सिंक्लेयरकी पुस्तक 'वैट परेड' शुरू की।

७ मार्च, सोमवार

चरखेपर १८० तार। आश्रमको ३७ पत्र, इमाम साहबके संस्मरण और बिड़ला, क्वीन, कुसुम, श्रीमती विलियम डोनॉल्डसन, अप्टन सिंक्लेयर, ईश्वरभाईको पत्र लिखे।

८ मार्च, मंगलवार

चरखेपर १९६ तार। आज चरखेमें कमानका दूसरा सुधार कराया। लक्ष्मीदास, रैहाना, मनमोहन, आदिके पत्र आये। पत्र लिखे: रैहाना, मनमोहन, लक्ष्मी और रामचन्द्र, गर्ट्रूड कैलर्शीग, अगाथा हेरिसन, औब्रे मनी, रामगोपाल मोहता, नागरदास, कांतिलाल शाह, रामबिहारीलाल, लक्ष्मीदासको।

९ मार्च, बुधवार

चरखेपर २१५ तार। आज मेरा वजन १०५.५ निकला। वल्लभभाईका १३९। कलके पत्र डाकके लिए दिये। रामदास मिल गया है। अस्पृश्योंके सम्बन्धमें मतदाताओंकी अलग सूची बने तो क्या कर्त्तव्य है, आज इस सम्बन्धमें चर्चा की। सर सैम्युअल होरके पत्रका मसविदा भी तैयार किया। आश्रमकी डाक आई।

१. किन्तु गांधीजीने उस समय "इमाम साहबके संस्मरण" लिखे; देखिए पृष्ठ १७५-६, १९४-५ और २०८-१०; देखिए "पत्र: काका कालेलकरको", पृष्ठ १७७ भी।

१० मार्च, गुरुवार

चरखेपर १८९ तार। आज पुराना चरखा इस्तेमाल किया। बहुत समय लगा। मेजर एमर्सनका पत्र लाया। जयसुखलाल आदि मिलने आयेंगे। त्रिवेदीके यहाँसे अंगूर आये। महादेव आया। सर सैम्युअलके पत्रमें सुधार किया।

११ मार्च, शुक्रवार

चरखेपर १६० तार। आज मेजरने महादेवका पैर देखा। सर सैम्युअलको पत्र भेजा – गवर्नरकी मारफत। वल्लभभाईने पत्र रोकनेको नहीं कहा लेकिन पत्र भेजनेमें अपनी सहमति देनेको भी तैयार नहीं थे। उनकी रायकी कीमत नकारात्मक। महादेवने कहा, मेरे स्वभावके अनुसार ऐसा पत्र भेजा जाना चाहिए। आश्रमके पत्र शुरू किये।

१२ मार्च, शनिवार

चरखेपर २०७ तार। डाह्याभाई मिलने आया। बर्न्सकी भेजी पुस्तक मिली। आश्रमको पत्र लिखे।

१३ मार्च, रविवार

चरखेपर २०३ तार। आश्रमको पत्र लिखे। एमर्सनको पत्र लिखा।

१४ मार्च, सोमवार

चरखेपर १८५ तार। आश्रमको ४१ पत्र, इसके अतिरिक्त एक नारणदासको इमाम साहबके संस्मरण और सर जॉर्ज बर्न्स, शान्ति मेहता, भानुमती, राधा, बनारसी, रूखी, एवलिन रैंच, कीलन को पत्र लिखे।

१५ मार्च, मंगलवार

चरखेपर १५५ तार। आज काशी, जमना, मोती, लक्ष्मी, ललिताबहन, जयसुखलाल, दुर्गा, बबलो, प्रबोध मिलने आये। मार्टिनको पत्र लिखा कि हरिदास आदिसे मिलनेके बारेमें शुक्रवारतक जवाब मिल जाना चाहिए। आज त्रिवेदीके यहाँसे फल आये। 'वैट परेड' पूरी की। कार्पेन्टरकी 'एडम्स पीक टु एलीफेन्टा' शुरू की। हेमप्रभा, एलेक्जेंडर गैरी और दिनकररावको पत्र लिखे।

१६ मार्च, बुधवार

चरखेपर १८५ तार। हरिदासके सम्बन्धमें मेजर मार्टिनका उत्तर आ गया। इवन्स और रोजरकी ओरसे इंडिया ऑफिससे जवाब आया।[1] पत्र लिखाये: शाह, मूलचन्द पारेख, ओरिएन्टल यूक्लिपटस कम्पनी, चम्पकलाल, सैयद मुस्तफा हुसेन, नेपोलियन, पृथुराज शंकरसागरको। कलके पत्र डाकके लिए दे दिये।

१. भारतमें आनेके पश्चात् गांधीजी-द्वारा भेजे गये उपहारकी प्राप्तिके विषयमें सम्भवतः यह जवाब था। देखिए पृष्ठ ५, पाद टिप्पणी २।

१७ मार्च, गुरुवार

चरखेपर २२१ तार। कलके पत्र दे दिये। आश्रमकी डाक आई। धीरूका पत्र मिला।

१८ मार्च, शुक्रवार

चरखेपर १६० तार। कैदियोंसे मुलाकातके सम्बन्धमें निर्णय आ गया है। चम्पाका दुःखद पत्र आया। आश्रमके पत्र शुरू किये। नारणदास, पेटावल[1] और हरजीवनको पत्र लिखे।

१९ मार्च, शनिवार

चरखेपर १६२ तार। कलके पत्र डाकमें डालनेके लिए दिये। जोशी, नरसिंहभाई और हरिदाससे मिला। हरिदासको खजूर भेजी। स्टोक्सकी पुस्तक मिली। बहनोंसे मिलनेके बदले फिलहाल पत्र लिखकर ही सन्तोष कर लेना कबूल किया।

२० मार्च, रविवार

चरखेपर १९५ तार। 'एडम्स पीक टु एलीफेन्टा' पूरी की। 'अनघ' पूरी की। आश्रमकी डाक लिखी।

२१ मार्च, सोमवार

चरखेपर २०७ तार। आश्रमको पत्र, गंगाबहनको पत्र। छगनलालको 'फेडरल फाइनेन्स', 'मनी' और 'सिक्स्टी इयर्स ऑफ इकॉनामिक एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इंडिया' भेजीं। स्टोक्सकी 'सत्यकाम'[2] शुरू की।

२२ मार्च, मंगलवार

चरखेपर २२० तार। आश्रमको चार और पत्र और एक विट्ठलदासको लिखा। ये डाकके लिए दिये। शाहने इजिप्टके सम्बन्धमें पुस्तक भेजी। किसीने 'ज्ञानेश्वरी' भेजी। पत्र लिखे: लेस्टर देवी, एरिस्टार्ची, मुथु, दिनकर, मैटलर, अगाथा, हेमप्रभा, मदनमोहन, हीरालाल, हनुमानप्रसाद, जेठालालको।

२३ मार्च, बुधवार

चरखेपर १७० तार। कलके पत्र और आज जयकरको लिखा हुआ पत्र डाकमें डालनेके लिए दिया। गंगाबहन मिलने आई। जेलकी बहनोंने उपवास शुरू किया है। इस सम्बन्धमें मेजरके साथ जरा तेज बातचीत हुई। हरिदासको खजूर भेजी। आश्रमकी डाक आई।

१. कैप्टेन जे० डब्ल्यू० पेटावल।

२. **सत्यकाम** या **ट्रू डिजायर्स**।

२४ मार्च, गुरुवार

चरखेपर १५९ तार। आश्रमकी डाक शुरू की। मेजर मार्टिन, रैहाना और डॉक्टर नॉरवुडके पत्रोंका मसविदा तैयार किया। 'फॉर्स क्लेविगेरा'[1] मिली। बहनोंके उपवास छोड़नेका समाचार मिला।

२५ मार्च, शुक्रवार

चरखेपर १७७ तार। एडिथ स्कॉट, मेजर मार्टिन, रैहाना, एवलिन रेंच, हॉरेस और डॉक्टर नॉरवुडके पत्र डाकमें डालनेके लिए दिये। आश्रमको पत्र लिखे। स्टोक्सकी पुस्तक पूरी की। 'फॉर्स' शुरू की। आज बादाम और खजूर मँगाई।

२६ मार्च, शनिवार

चरखेपर २१४ तार। मेजरने समाचार दिया है कि कैदी साथियोंको पत्र लिख सकता हूँ। इसलिए मीरा, मणि, जमनालाल, देवदासको पत्र लिखे और भेजे। धीरजलाल बैंकरके देहान्तके सम्बन्धमें शंकरलालको तार दिया। गंगाबहनका पत्र मिला। उसे पूनियाँ भेजीं। विट्ठलदासकी भेजी खजूर आई। लेडी विट्ठलदासके यहाँसे शहद और पपीता। आज पुराने बादाम समाप्त किये। रामेश्वरका भेजा हुआ रोलाँ-लिखित विवेकानन्द और रामकृष्णका जीवन-चरित्र मिला। दूसरी पुस्तकें भी आईं।

२७ मार्च, रविवार

चरखेपर १८१ तार। आश्रमको पत्र। और शंकरलालका तार आया। उसे तथा लीलावती, एमर्सन, राघवनको पत्र। आत्मकथा [बच्चोंके लिए] प्रूफ।

२८ मार्च, सोमवार

चरखेपर १७७ तार। कलके पत्र आये। कैदियोंको खजूर देनेको लेकर उथल-पुथल। आश्रमकी डाक लिखी। उसमें रस्किनके विषयमें लिखा। तारामती, नरसिंह-भाईकी विमला, अमतुलको लिखा।

२९ मार्च, मंगलवार

चरखेपर २०८ तार। सर्जनने जाँच की। खजूरके सम्बन्धमें मेजरको समझाया। आश्रमकी डाक आदि आई।

३० मार्च, बुधवार

चरखेपर १७४ तार। मेजरको मुलाकातोंके सम्बन्धमें पत्र लिखा। हरजीवन और शारदा मिलने आये। मथुरादासका पत्र आया। 'बाल आत्मकथा' का प्रूफ पूरा किया।

३१ मार्च, गुरुवार

चरखेपर १६३ तार। मथुरादासको पत्र लिखा। जयकरका पत्र मिला। आश्रमकी डाक शुरू की। बकरीका दूध मँगाना बन्द किया।

१. रस्किनकी।

१ अप्रैल, शुक्रवार

चरखेपर १८४ तार। आज कुरेशी और दो महाराष्ट्रीय भाइयोंसे दो घंटे मुलाकात हुई। दो सेर बादाम आ गये।

२ अप्रैल, शनिवार

चरखेपर २०१ तार। डाह्याभाई मिलने आया। जालके सम्बन्धमें नरगिसको तार। आश्रमको पत्र लिखे। लेस्टर आदिके पत्र आये।

३ अप्रैल, रविवार

चरखेपर १९० तार। आश्रमको पत्र लिखे, लिखाए। कुछ अमेरिकावासियों को लिखाये।

४ अप्रैल, सोमवार

चरखेपर १८६ तार। डाकके लिए दिये : कमला नेहरू, जयकर, राधा, कनु देसाई, जमुदानी, चतुर्भुज शर्मा, आश्रमको लिखे ५२ पत्र। इसके अतिरिक्त नारणदासको और 'रशियाकी एक साध्वी'[1] लेख, लोवन, रेवरेंड स्कडर, हैनर्सा, प्रभावती, जेराजाणी, रैहाना [पाशाभाई], सावित्री, स्टेंडेनथ,[2] शंभुशंकर, रेवरेंड स्माइलीको पत्र लिखे।

५ अप्रैल, मंगलवार

चरखेपर १८२ तार। कलके पत्रोंके अतिरिक्त शाह और एल्विनको पत्र दिये। पत्र लिखाए : मैथिलीशरण, घनश्यामदास, गंडालाल, एन्ड्रयूज, त्यागी और गोपालदासको। आश्रमका इतिहास शुरू किया। संतराम आदिकी भेजी हुई पुस्तकें आईं।

६ अप्रैल, बुधवार

चरखेपर १९२ तार। कलके पत्र डाकके लिए दिये। उनमें दुर्गाको एक पोस्टकार्ड भी डाल दिया। आज उपवास था। आज बैठनेके लिए गद्दी बनवाई। लेडी ठाकरसीके यहाँसे शहद आया। 'फॉर्स'का पहला भाग समाप्त किया। नरसिंहभाईके पत्र, 'समर्पण' और 'बुद्ध महावीर' पूरी की। 'फॉर्स'का दूसरा भाग शुरू किया।

७ अप्रैल, गुरुवार

चरखेपर १९८ तार। लक्ष्मणराव काणेको पत्र लिखा। आश्रमकी डाक शुरू की। क्रेसवेलने आकाश-दर्शनपर दो पुस्तकें भेजीं। आर्मीनियासे दरी आई। तीन सेर बादाम आए। मीराका पत्र आया। जयकरकी भेजी हुई वेदान्त-सम्बन्धी पुस्तक आई। नानाभाईका पत्र आया। नानाभाई भट्ट, करतार सिंह और बड़ी एडिथ रॉबर्ट्स[3]को पत्र लिखाये।

१. महादेव देसाईकी **ए सेंटली वुमन ऑफ रशिया**। देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ३-४-१९३२।

२. फ्रांसिस्का स्टेंडेनथ।

३. आर्मिनियावासी, जिन्होंने दरी भेजी थी।

८ अप्रैल, शुक्रवार

चरखेपर २३४ तार। कलके पत्र डाकके लिए दिये। मेजर मेहता मिलने आये। जमनालाल, एस्थर, नरगिसके पत्र आये। आश्रमकी डाक लिखी। हनुमानप्रसाद, रामेश्वर, हंगरीके पादरी और अम्बालाल मोदीको पत्र लिखाये।

९ अप्रैल, शनिवार

चरखेपर २३५ तार। डाह्याभाई मिलने आया। हीरालालकी ओरसे आकाश-दर्शनकी पुस्तक लाया। हीरालालका पत्र आया। मेजर मेहताने हाथकी जाँच की। महादेवके पैरकी जाँच की। दोनोंपर आयोडीन लगाई। थोड़े पत्र लिखवाये।[१]

१० अप्रैल, रविवार

चरखेपर २३७ तार। आश्रमको पत्र लिखे। मंगल सिंह, भाईलाल, दिनकर, नागेश्वर प्रसाद, चारुबाबू, इन्द्रप्रसाद, जमनालाल, ब्रजकृष्णको पत्र लिखवाये।

११ अप्रैल, सोमवार

चरखेपर ३८३ तार (१९४ + १८९ = ३८३)। आज लगातार कातकर ३७५ तार पूरे किये। आजतक एक दिन छोड़कर अंटी पूरी होती थी। आज और कल रोज एक-एक पूरी हो गई। जहाँतक हो सके इतना रोज कातनेका विचार है। सर सैम्युअलका कारवाँ-सम्बन्धी मेरे पत्रका जवाब आया[२]। आश्रमकी डाक पूरी की। कलके पत्र सुपरिंटेंडेंटको दिये। कमला नेहरूके लिए तार दिया है। वह आई० जी० के पास जायेगा। आश्रमको आकाश-दर्शनपर लिखा है।

१२ अप्रैल, मंगलवार

चरखेपर (१८६ + १८७) = ३७३। कोष्ठकमें दिये गए पहले अक आज गिने गए तारोंके हैं। दूसरे अंक तकुएपर लपेटे आजके तारोंके हैं। आश्रमकी डाक दे दी। २८ पत्र थे। गंगाबहन और छगनलालको पत्र वल्लभभाईसे लिखवाये। शंकरलाल मारवाड़ीको पोस्टकार्ड लिखा। ये भी एक साथ मेजरको दे दिये। दोपहरको पत्र लिखे: खम्भाता, नरगिस, नारणदास, ललिता सुबैया, शान्ति मेहता, शंकरभाई मेजर मार्टिन तथा हीरालालको।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ **पाण्डव गीता**का यह श्लोक है:

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचलाभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि।
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु।

२. सर सैम्युअल होरने २८ जनवरी, १९३२को आकाशवाणीसे प्रसारित अपने वक्तव्यमें कहा था: "हमारी नीति सरल, सीधी और सहानुभूतिपूर्ण है। वह एक प्रगतिमुखी किन्तु दृढ़तासे युक्त नीति है। . . . कुत्ते भौंकते रहते हैं किन्तु कारवाँ आगे बढ़ता जाता है।"

१३ अप्रैल, बुधवार

चरखेपर (१८८+२०७)=३९५ तार। आज सबेरे हीरालाल, रामधारी, लक्ष्मी राजा, धीरू रेवाशंकरको पत्र लिखे। गंगाबहन और छगनलालको आकाश-दर्शनकी नकल और पत्र। ये और कलके पत्र मेजरको दिये। आज उपवास है तो भी वजन १०४.५ निकला। पिछले बुधवारको १०३.५ निकला था। आश्रमकी डाक आई।

१४ अप्रैल, गुरुवार

चरखेपर १६८+२१७=३८५ तार। राधिका, एस्थर और हेमप्रभा देवीके पत्र डाकमें डालनेके लिए दिये। आज मोहनलाल, मणिभाई और धुरन्धरसे मिला। शंकरराव देव उपवास कर रहा है। उससे मिला। वह नहीं माना। बली, मनु, कुँवरजी, कुसुम मिल गये हैं।

१५ अप्रैल, शुक्रवार

चरखेपर १५८+२४८=४०६ तार। रणजीतका तार आया। देवको पत्र लिखा। देवके पास महादेवको भेजा। उसने उपवास छोड़ दिया। खगेन्द्रप्रिय बरुआको खादीकी पहुँच लिखी। तीन सेर बादाम आये। पुराने अभी समाप्त नहीं हुए।

१६ अप्रैल, शनिबार

चरखेपर १२७+२८२=४०९ तार। मेजर पॉल मिलने आये। डाह्याभाई मिलने आया। खम्भाताका पत्र आया। हीरालालका और दूसरे पत्र भी आये।

१७ अप्रैल, रविबार

चरखेपर ९३ तार। आज चरखा बायें हाथसे चलाया। काफी परिश्रम करना पड़ा। लेकिन तार रोज अधिक हो जाया करते थे, इस कारण अंटी पूरी हो सकी। बायें हाथसे चक्र चलाकर दाहिने हाथसे तार खींचनेमें उद्देश्य बायें हाथकी दुखती कोहनीको आराम देना है। आज मेजर मेहताने दोनों हाथोंमें बिजली लगाई। खम्भाता, महावीर, हीरालाल और शंकरभाईको पोस्टकार्ड लिखवाये।

१८ अप्रैल, सोमवार

चरखेपर ८५ तार बायें हाथसे। आश्रमको पत्र लिखे। आज नये बादाम शुरू किये। आज ग्यारह बजेतक काम किया। कलके पत्र और एक पिछला पत्र डाकके लिए दिया।

१९ अप्रैल, मंगलवार

चरखेपर ८५ तार बायें हाथसे। आश्रमके ३९ पत्र तथा 'आकाश-दर्शन' और नारणदासका पत्र दिया। नानाभाईके यहाँसे सौ-एक पुस्तकें आईं। सरकारने आश्रमसे बाहरके व्यक्तियोंसे मुलाकातके सम्बन्धमें पाँच लोगोंके लिए अनुमति भेजी है, और त्रिवेदी जब मुझे जरूरत हो। छगनलाल, रामदासके पत्र। रामदासको जवाब। बिजलीका उपचार चालू है।

२० अप्रैल, बुधवार

चरखेपर ११२ तार। आश्रमके पत्र आये। गंगाबहन और छगनलाल जोशी तथा सुरेन्द्रको पत्र लिखे। मेजरको दिये। आश्रमकी डाक आई। घनश्यामदास, नानाभाईको पत्र लिखाये। नारणदास, चतुर्भुजको पत्र लिखवाये। सुमंगल और कान्ताको पत्र भेजे।

२१ अप्रैल, गुरुवार

चरखेपर ९२ + ३३ तार। कर्नल डॉयलको दो पत्र काका कालेलकर आदिके विषयमें और मुलाकातोंके विषयमें। लेडी ठाकरसीको रुईके बारेमें। नानाभाई, घनश्यामदास, नागरदास, चतुर्भुजको पत्र भेजे।

२२ अप्रैल, शुक्रवार

चरखेपर १८२ तार। काती हुई १७ तारीखतककी २८ अंटियोंको बाँधा। बायें हाथसे एक अंटी आज उतारी। रैहाना, मगनलाल, प्राणजीवन, बा, मीठूबहन और कान्तिके पत्र डाकमें भेजे। मैथिलीशरण, वेरियर, मणि, काकाके पत्र मिले।

२३ अप्रैल, शनिवार

चरखेपर १३५ तार। पत्र — मणि, नरहरि, प्रभुदास, अमेड़िया, खम्भाताको। डाह्याभाई मिलने आया। शिवाजी ने और हीरालाल ने खगोल-सम्बन्धी पुस्तकें भेजीं। पाशाभाईने फोर्डकी एक किताब भेजी। दूसरी उर्दू रीडर समाप्त की।

२४ अप्रैल, रविवार

चरखेपर २७ + १४१ = १६८ तार। काफी सारे पत्र लिखे। पहले बचे हुए लगभग सारे पत्र पूरे कर लिये हैं। उर्दूकी तीसरी रीडर शुरू की। हीथकी खगोल सम्बन्धी पुस्तक शुरू की।

२५ अप्रैल, सोमवार

चरखेपर १७१ तार। पत्र — तारामती, देवदास, कुँवरजी, हरजीवन, जानकीबहन, बिन्देश्वरीप्रसाद, सत्येन्द्रनाथ गांगुली, चन्द्रशंकर, एल्विन, ब्रजभूषण चौधरी, शारदा कोटक, रामानन्द, लक्ष्मीदास, सुशीला नायर, राधा, वैदेहीशरण, मथुरादासको। नैयरके पाससे बुद्ध-सम्बन्धी पुस्तकें आईं।

२६ अप्रैल, मंगलवार

चरखेपर ६३+९३=१५६ तार। आश्रमको लिखे पत्रोंमें 'लेखा-जोखा रखनेकी आवश्यकता' लेख, मैथिलीशरण, दास्ताने, हीरालाल (शंकर), हेमप्रभा, शंकरलालको पत्र। आज नया मजिस्ट्रेट मिलने आया। खम्भाताकी भेजी हुई मालिश-सम्बन्धी पुस्तकें मिलीं। आश्रमकी डाक आई।

२७ अप्रैल, बुधवार

चरखेपर १८२ तार। पत्र — मॉड रॉयडन, डॉक्टर नैयर, 'अपना साबू', डायर, डॉयल, नटराजनको। वल्लभभाईने नाकका विशेषज्ञ डॉक्टर भेजनेके लिए मेजरको पत्र लिखा। मैंने भी लिखा। आज मिल्सका पत्र आया।

२८ अप्रैल, गुरुवार

चरखेपर १०० + १०१ = २०१ तार। नारणदास और हरिलालके पत्र डाकमें भेजे। त्रिवेणी मिल गया है। वल्लभभाईने भोजनके समयमें परिवर्तन किया जिससे वे तीन बार कुछ खा सकें। मगनलालका पत्र आया।

२९ अप्रैल, शुक्रवार

चरखेपर २०३ तार। पत्र — मगनलाल प्राणजीवनदास, पोलक, नारणदास, दिनकर मेहता, सन्तोकको। गंगाबहनको लम्बा पत्र लिखा। उसे बहुत-सी किताबें भेजीं। आज रामदास, तिलक विद्यालयके शिक्षक और गोकुलदास तलाटीके साथ दो घंटे बैठा। सैम्युअल होर और पर्सी बार्टलैटके पत्र मिले। आज भीमजी के बादाम समाप्त हो गये। तीन रतल कल आये हैं। कल शुरू होंगे। अप्टन सिंक्लेयर लिखित उनका जीवन-वृत्तान्त आया।

३० अप्रैल, शनिवार

चरखेपर ७१ + १२६ = १९७ तार। डाह्याभाई मिलने आया। उर्दूकी एक कापीबुक आई। नये बादाम शुरू।

१ मई, रविवार

चरखेपर २०८ तार। कल बर्नार्डका पत्र और फ्रांसिस एडमकी कविताएँ मिलीं। पत्र लिखे, लिखाये।

२ मई, सोमवार

चरखेपर ४१ + १९६ = २३७ तार। यशोदाके देहान्तका तार आया। होर और सेन्कीके पत्र डाकके लिए दिये।

३ मई, मंगलवार

चरखेपर १७९ + १६ = १९५ तार। आश्रमके लिए ४३ पत्र। उनमें सप्ताहका सार[1], प्रभावती, डाह्याभाई, बर्नार्ड, भागीरथी शिरोडकरको पत्र। आश्रमकी डाक आई। परीख दशरथलालका भेजा हुआ शहद मिला।

१. राष्ट्रीय सप्ताहका सार।

४ मई, बुधवार

चरखेपर २३९ तार। पत्र — मथुरादास, नूरबानू, लक्ष्मीदास, मंजुकेशा, डॉयल, अगाथा, तारामती, कमला (भड़ौच), सुरबाला, मिल्स, लक्ष्मीदेवी, कमु, हेमप्रभा, बार्टलेट, रामदासको। मणि परीख और शंकरलाल परीख महादेवसे मिलने आये। आश्रमसे कई पुस्तकें और पूनियाँ आईं, धोती आई। त्रिवेदीने धोतियाँ भेजीं।

५ मई, गुरुवार

चरखेपर १२० + ८० = २०० तार। पत्र — शारदा, नरसिंहन, लक्ष्मी, शंकरलाल, छगनलालको पुस्तकें, गंगाबहनको 'आकाश-दर्शन', मराठी 'पुरुषार्थ,' भजनावली और गीता अंक और अनसूयाबहनको पत्र। मणि परीख, वनमाला, मोहन, कुसुम, गिरधारी मिलने आये। कपड़े, फल आदि लाये। मगनचरखा आया। आज बादाम समाप्त हो गये।

६ मई, शुक्रवार

मगनचरखेपर २४ तार। पत्र — वॉल्स, दामजी, दशरथलाल, शंकर, नानाभाई (अकोला), इब्राहिमजीको। गंगादेवीका देहान्त। आज मगनचरखा चलाया। चलानेमें कठिनाई हुई। आज मूँगफली खाई। जेलके सम्बन्धमें सरोजिनीका पत्र।

७ मई, शनिवार

मगनचरखेपर ५६ तार। पत्र — हनुमानप्रसाद, चन्दूलाल पटेल, प्रोफेसर नायक, नारणदास, मीरा, कर्नल डॉयलको (काकाके बारेमें और गुम होनेवाले पत्रोंके बारेमें)। गंगाबहन, सरोजिनी नायडू, छगनलाल जोशीको पत्र। डाह्याभाई मिलने आया। 'अपना साबू' आया। हीरालालने खगोलपर मुकर्जीकी पुस्तक भेजी। आज शायद पहली बार कुल्ला करते समय गलेसे खून आया। इसके छातीसे आनेकी तो सम्भावना नहीं है।

८ मई, रविवार

मगनचरखेपर ७१ तार। आश्रमको पत्र। मूँगफली समाप्त हो गई।

९ मई, सोमवार

चरखेपर ५९ + ३६ = ९५ तार। ये तार बायें और दायें दोनों हाथोंसे काते। नये बादाम शुरू। पत्र — अप्टन सिंक्लेयर, बनारसी, हीरालाल, हरजीवन, एवलिन रेंचको। आश्रमकी डाक लगभग पूरी कर दी। गंगाबहन और छगनलालके पत्र आये। काँटावालाके यहाँसे चरखा, 'गीता' पर मोदीकी पुस्तक आई। 'अपना साबू' आज समाप्त।

१० मई, मंगलवार

चरखेपर १०२ तार। आज दायें हाथसे चरखा चला ही नहीं पाया। लगभग पाँच घंटे काम किया। पत्र — आश्रमको ३८, उनमें सफाई-सम्बन्धी लेख, रैहानाको पत्र। इमामसाहब कृत नबीसाहबका जीवन[1] पढ़ रहा हूँ।

११ मई, बुधवार

चरखेपर १३१ तार। आज दायें हाथसे ठीक काम हो पाया। पत्र — गंगाबहन और बिहारीलाल काँटावालाको। सुपरिंटेंडेंटके साथ वल्लभभाईके लिए डॉक्टर बुलानेके सम्बन्धमें जरा तेज बातचीत। काका आदिके सम्बन्धमें डॉयलका पत्र। शारदाबहनका पत्र। विनयचन्द्रजी की पुस्तकें। आज वजन १०५.५ पौंड हुआ। वल्लभभाईका १४०.५, महादेवका १४७.५।

१२ मई, गुरुवार

चरखेपर १२६ तार, सब दाहिने हाथसे। पत्र — डॉयल, भीखाभाई, देवदास, लक्ष्मीदास, प्यारे अलीको। पण्डितजी, लक्ष्मीबहन, मथुरी और यशवन्तप्रसाद मिलने आये। नारणदासका पत्रोंका दूसरा पुलिन्दा आया।

१३ मई, शुक्रवार

चरखेपर ९० तार। आज कताईको अढ़ाई घंटे भी नहीं दे सका। पत्र — मीरा और शारदाबहनको। सुरेन्द्र, पटवर्धन और रबड़े दो घंटेसे भी ज्यादा समयतक बैठे। अप्टन सिंक्लेयरकी पुस्तकें और मोंडलसे भी पुस्तकें आईं। रोलाँकी 'रामकृष्ण' शुरू की।

१४ मई, शनिवार

चरखेपर ९७ तार। अच्छी तरह थक गया। पत्र — छगनलाल जोशी, चन्दुलालको। डाह्याभाई मिलने आया। त्रिवेदीके यहाँसे पुस्तकें आईं।

१५ मई, रविवार

चरखेपर ७८ तार। आश्रमको पत्र लिखे।

१६ मई, सोमवार

चरखेपर ९० तार। पत्र — सुशीला (फीनिक्स), त्रिवेदी, मीराको। फूलचन्दका पत्र आया। और डाक आई।

१. सीरत-अन-नबी

१७ मई, मंगलवार

चरखेपर ११५ तार। आश्रमको ४५ पत्र, उनमें त्याग-सम्बन्धी लेख, मैथिलीशरण, नटराजन, प्रतापराय मोदी, बिड़ला, फूलचन्द बापूजीको पत्र। आज काफी पत्र लिखवाये।

१८ मई, बुधवार

चरखेपर १६५ तार। पैर और हाथसे कातनेकी आदत होती जा रही है। पत्र — रामेश्वर बजाज, बिन्देश्वरी, त्रिवेदी, नानाभाई मेहता, राधा, नरसिंहन, ललिता, निर्मला मशरूवाला, बारदा उकिल, बलदेवप्रसाद, राममोहन राय (बैजवाड़ा) को। लेडी ठाकरसी, मणि और मैथ्यू मिलने आये। मीरासे मिलनेकी मंजूरी नहीं मिली। आज और बादाम आये।

१९ मई, गुरुवार

चरखेपर १६८ तार। पत्र — कर्नल डॉयल और मीराबहनको। आज नये बादाम शुरू।

२० मई, शुक्रवार

चरखेपर १८३ तार। अब चरखेपर ठीक हाथ चला ऐसा मान सकते हैं। पत्र — सुमंगल प्रकाश, तिलक, मीठूबहन, पेटिट, रणछोड़जी, शास्त्री, नारणदास, गोविन्दभाई चावड़ा, कैलाशनाथ काटजू, कमला नेहरूको।

२१ मई, शनिवार

चरखेपर २०९ तार। पत्र — नरगिस, दिनकरको। विपिन बाबके सम्बन्धमें तार। डाह्याभाई और मणि मिलकर गये।

२२ मई, रविवार

चरखेपर १९३ तार। पत्र — काफी चिट्ठियाँ लिख पाया। रोलाँकी 'रामकृष्ण' समाप्त हो गई।

२३ मई, सोमवार

चरखेपर २०३ तार। पत्र — तारामती मथुरादास, रैहाना, प्रभुदास, डॉक्टर राय, हेमप्रभा, एस्थर, देवीचन्द्र, नारायण पण्ड्या, रामानन्दन, गर्ट्रूड कैलर, शारदा कोटकको। 'विवेकानन्द' पढ़ना शुरू किया। आश्रम आदिको पत्र लिखे।

२४ मई, मंगलवार

चरखेपर २०४ तार। ३९ पत्र आश्रमको, उनमें 'बिल्ली — एक शिक्षिका' लेख, मिस एलिजाबेथ हॉवर्ड, जयप्रकाश, मॉड चीजमेन, जेठालाल गोविन्दजी, नानकचन्द, रुखीको पत्र।

२५ मई, बुधवार

चरखेपर २०२ तार। पत्र — गंगाबहन, लक्ष्मीदास, अभय, मूलचन्दभाई, सत्यचरण ला को।[1]

२६ मई, गुरुवार

चरखेपर २१० तार। निरंजनलाल, सिद्धनाथ पंत, मीरा, शान्तिकुमार, नटराजन, परचरे शास्त्री, म्यूरियल, अगाथा हैरिसन, देवी वेस्टको पत्र। कल प्यारे अली, नूरबानू, शारदा, अमतुल, प्रेमा और सुशीला मिलने आये थे। छक्कड़दासकी भेजी पूनियाँ आईं। त्रिवेदीके यहाँसे 'विचार सागर', 'पंचदशी', 'तिलक पंचांग' आया। प्यारे अली शहद और आम लाया।

२७ मई, शुक्रवार

चरखेपर २१७ तार। पत्र — कृष्णचन्द्र अग्रवाल, प्यारेलालको। आज महादेव मैलार, मगनभाई और रबड़ेसे मिला। मैथिलीशरणकी पुस्तकें आईं। घनश्यामदास, देवदास, एल्विन, आदिके पत्र।

२८ मई, शनिवार

चरखेपर २०५ तार। पत्र — सुखलाल, घनश्यामदास, एल्विन, देवदास, बा को। लीलावतीको चरखा भेजा। डाह्याभाई और मणि मिलने आये। मेजर पॉल मिलने आया। नये बादाम आ गये। मोडरका खगोल समाप्त, हिन्दू खगोल शुरू।

२९ मई, रविवार

चरखेपर २०० तार। आजसे बायें हाथ [में दर्द] के कारण कपड़े धोना बन्द किया।

३० मई, सोमवार

चरखेपर २११ तार। पत्र — मगनलाल मेहता, अमतुल, दाउदभाई, तिलकम, राजा, लक्ष्मी, करसनदास, गोसीबहन और एस्थर।

३१ मई, मंगलवार

चरखेपर २२० तार। पत्र — ३६ पत्र आश्रमको, उनमें 'मृत्युबोध' लेख, हरजीवन, गुलचेन लम्सडन, तिजारे, सुमंगल, एरिस्टार्ची, न्यूहैम, रैनविक। आज नये बादाम शुरू। रोलाँकी 'विवेकानन्द' समाप्त। आश्रमकी डाक आई।

मूल गुजराती (एस० एन० १९३३७) से।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

वेरियर एल्विन द्वारा गांधीजी की गिरफ्तारीका वर्णन[1]

गांधीजी मणि भुवनमें ठहरे हुए थे। उन्होंने हम लोगोंको अपने साथ वहीं ठहरनेकी दावत दी। शहरमें बड़ी सनसनी थी। वाइसरायने कांग्रेसका शान्ति-प्रस्ताव अन्तिम रूपसे ठुकरा दिया था। नेहरू जेल पहुँच ही चुके थे, अन्य राष्ट्रीय नताओंकी गिरफ्तारी किसी भी क्षण आशंकित थी।

लेकिन मणि भुवन पहुँचकर जब हम ऊपर छतपर गये तो बड़ा विचित्र लगा — वहाँ वातावरणमें अनुपम शान्ति थी, न शहर-जैसी भीड़-भाड़ और न सनसनी खलबली ही। छतपर बहुत ही अच्छा लग रहा था। बौने-से तम्बू खड़े कर दिये गये थे, जहाँ-तहाँ खजूर और अन्य पौधे दिख रहे थे। कम-से-कम सौ व्यक्ति तो वहाँ जुड़ ही सकते थे। थोड़ी ठंडक थी और आकाशमें तारे देखे जा सकते थे। बापू शान्त मुद्रामें बैठे चरखा कात रहे थे। उनका मौन-दिवस आरम्भ हो चुका था। मैं उनसे एकतरफा बात चलाता रहा। उन्होंने अपने प्रश्न और उत्तर एक पुरजेपर लिख दिये थे, जो अब भी मेरे पास मौजूद हैं। मैंने शुरूमें शायद यही पूछा होगा : मेरे लायक कोई काम?

उन्होंने लिखा :

इसीलिए मैंने आपको बुलाया है। मेरे दिमागमें जो-कुछ चल रहा है, मैंने महादेवको बतला दिया है। आनेपर वह बतलायेगा, या फिर मैं ही संक्षेपमें लिख दूंगा कि आपसे क्या अपेक्षा है।

आपका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है?

वह [महादेव[2]] आता ही होगा। मैं अभी जो लिख रहा हूँ, इसके पूरा होते-होते यदि वह नहीं आया, तो मुझे जो कहना है वह मैं लिख कर दे दूंगा।

क्या आप यहीं सोते हैं? यदि सोते हैं, तो क्या आपके बिस्तर वगैरह लग चुके हैं?

इसके बाद शामराव और मैं एक छोटे-से तम्बूमें आराम करने चले आये। बापू हमसे लगभग तीन गजकी दूरीपर लेट गये। तीसके करीब और लोग छतपर कैनवासके शामियाने तले लेटे थे। श्रीमती गांधी और मीराबहनने हम लोगोंको

१. देखिए पृष्ठ २।

२. साधन-सूत्रके अनुसार।

खजूर, गिरीवाले मेवे और फलोंका बहुत ही तृप्तिकर भोजन कराया। लेकिन नींद मुझे नहीं आई। जैसा मैंने उसी समय लिखा था : "मुझे लगा कि मुझे चौकन्ना रहना चाहिए और मैं अपने ऊपर एक-पर-एक फैली उन अनूठी तारावलियोंको घंटों देखता रहा। बापू मेरी ही बगलमें लेटे थे — परमेश्वरके हाथों अपने आपको सौंपकर, शिशु-सहज निद्रामें निमग्न! मेरे मनमें ईसाकी वह गम्भीर छवि कौंध गई जब आँखोंमें संकल्प और अपार धैर्य लिये वे यरुशलम जा रहे थे; और मुझे लगा जैसे सभी प्रकारके अन्यायों अत्याचारोंपर खिंची एक चमचमाती तलवारकी भाँति, ईसाकी आत्माको शताब्दियोंके पार संचरण करते मैं साक्षात् देख रहा हूँ। हमारे इन अत्यन्त प्रिय निद्रा-निमग्न मित्रों — वीर, शुद्धात्मा, निष्ठावान मित्रों — में प्रेमकी वही भावना मुखर और अदमनीय थी।

आखिरकार मैं बापूकी बगलमें ही फर्शपर जल्दी-जल्दीमें लगाये अपने बिस्तर पर, शामराव और बर्नार्डके बीच लेटा रहा और गहरी नींदमें डूब गया। जैसे कोई सपना आता है — एकाएक हलचल हुई और खुसफुसाहट: "पुलिस आ गई।"

हम चौंके; और मैंने जो दृश्य देखा उसे मैं कभी भूल नहीं सकूँगा — बापूके बिस्तरके पैताने पूरी वर्दीमें लकदक एक पुलिस कमिश्नर और नींद-भरी आँखें मलते हुए बापू — थोड़ी उलझनमें, कुछ बुढ़ाए-से, कुछ नाजुक-से और चेहरेपर नींदकी खुमारी लिये थोड़े दयनीय-से दिखते बापू।

'मिस्टर गांधी, आपको गिरफ्तार करना मेरा फर्ज है।'

स्वागतभरी, एक सलोनी मुस्कान बापूके चेहरेपर खिल उठी; और अब वे तरुण तथा सबल दिख रहे थे, आत्म-विश्वाससे भरे-पूरे। उन्होंने इशारेसे बतलाया कि उनका मौन चल रहा है।

कमिश्नर मुस्कराया और बड़ी शिष्टतासे बोला : "मैं चाहता हूँ कि आप आधे घंटेमें तैयार हो लें।"

तीन बजकर पाँच मिनट हुए थे। बापूने अपनी घड़ीपर नजर डाली। कमिश्नर बोल उठा, 'ओ, वही आपकी मशहूर घड़ी', और दोनों ठठाकर हंस पड़े। बापूने एक पेंसिल उठाई और लिख दिया : "मैं आधे घंटेमें आपके साथ चलनेको तैयार हो जाऊँगा।"

कमिश्नरने बापूके कन्धेपर अपना हाथ इतने स्नेहसे रखा कि मुझे लगा जैसे गले मिल रहा हो; बादमें मेरी समझमें आया कि वह गिरफ्तारीका औपचारिक संकेत था। फिर बापूने अपने दाँत साफ किये और थोड़ी देरके लिए अन्दर चले गये। दरवाजेपर पहरा था। हम जितने लोग छतपर थे, सब एक घेरा बना कर बैठ गये। मैंने बाहर सड़कपर नजर दौड़ाई। वहाँ कुछ लोग पूरी रात चौकसी लगा रहे थे और एक छोटी-मोटी भीड़, बहुत ही शान्त तथा संयत भीड़, जमा हो गई थी, लेकिन पुलिसने कोई खास एहतियात नहीं बरता था।

बापू तैयार होकर आये तो हम लोगोंके बीच प्रार्थनाके लिए बैठ गये। हम सबने समवेत स्वरमें भजन गाया : "वैष्णवजन तो तेने कहिये . . .।" फिर बापू

ने पैंसिल और कागज लेकर कुछ सन्देश और अपने अनुयायियोंके लिए कुछ अनुदेश लिखे और एक पत्र सरदार वल्लभभाईको लिखा, जो इस प्रकार था :[1] . . .

इसके बाद उन्होंने एक छोटा-सा पुरजा लिखकर मुझे दे दिया।[2] . . .

बापू फिर विदा लेने खड़े हुए। अनोखा था वह दृश्य : दरवाजेपर पुलिस थी, मीराबहन और देवदास बँधा हुआ सामान लिये जल्दी-जल्दी इधरसे-उधर आ-जा रहे थे। बापू अपने मित्रोंसे घिरे खड़े थे, जिनमें से कईकी आँखें गीली थीं। श्रीमती गांधीके आँसू गालोंसे नीचे ढुलक रहे थे, वे पूछ रही थीं : 'आप मुझे अपने साथ नहीं ले चल सकते ?' सबने बारी-बारीसे उनके चरण छुए और मैंने जब उनको अलविदा कहा तो उन्होंने मुस्कराते हुए मेरा कान मसल दिया। वे बहुत ही प्रसन्न मुद्रामें थे : जैसे जेल नहीं बल्कि किसी मेले-ठेलेमें जा रहे हों।

फिर वे सीढ़ियाँ उतर चले और सब उनके पीछे-पीछे चले। शामराव और मैं छतसे देखते रहे। वह छोटी-सी आकृति कारमें प्रविष्ट हुई और भीड़ उसके चारों ओर उमड़ आई। भारतकी अहिंसाकी बलिहारी कि वहाँ मुट्ठी-भर पुलिसवाले ही थे और वे किसी भी भय या खतरेके बिना उस भीड़के बीच मौजूद रह सके। उसी समय खबर आई कि कांग्रेसके अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई भी गिरफ्तार कर लिये गये हैं। और भारतकी उस मूर्तिमंत आत्माको लेकर वह कार जब अंधेरी सुनसान सड़कोंकी ओर चल पड़ी तो भीड़ तितर-बितर हो गई।

[अंग्रेजीसे]

ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन, पृष्ठ ६५-८

१. देखिए पृष्ठ २।

२. देखिए पृष्ठ २।

परिशिष्ट २

आर० एम० मैक्सवेलका पत्र[1]

गोपनीय

संख्या एस० डी० ३१०

गृह विभाग (राजनीतिक)
बॉम्बे कैसिल
१६ जनवरी, १९३२

प्रेषक
आर० एम० मैक्सवेल महोदय, सी० आई० ई०
कार्यवाहक सचिव, बम्बई सरकार
गृह विभाग

सेवामें
जेल महानिरीक्षक
बम्बई प्रेसीडेंसी

महोदय,

मुझे आपको यह सूचित करनेका आदेश मिला है कि सपरिषद् गवर्नरने सर्वश्री मोहनदास करमचन्द गांधी तथा वल्लभभाई झवेरभाई पटेल, राज्यबन्दियोंको फिलहाल दी जानेवाली विशेष सुविधाओंके सम्बन्धमें और समय-समयपर की जानेवाली चिकित्सीय जाँचके प्रबन्धोंके बारेमें निम्नलिखित आदेश जारी किये हैं।

२. पत्रिकाएँ तथा समाचारपत्र: दोनों बन्दियोंको निम्नलिखित पत्रिकाएँ तथा समाचारपत्र प्राप्त करनेकी अनुमति दी जाये: 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'लीडर' (इलाहाबाद), 'ट्रिब्यून' (लाहौर), 'हिन्दू' (मद्रास), 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर', मॉडर्न रिव्यु', 'यंग इंडिया', तथा 'नवजीवन'।

३. पत्र: दोनों बन्दियोंको, उनके अनुरोधके अनुरूप, सप्ताहमें एक बार अथवा एकाधिक बार, जेल-अधीक्षककी पूर्वानुमति लेकर पत्र लिखनेकी अनुमति दी जाये। बन्दियों द्वारा लिखे और प्राप्त किये गये सभी पत्र जेल-अधीक्षक द्वारा 'सेंसर' किये जायें। जेलमें अनूदित न हो सकनेवाले, हिन्दुस्तानी भाषामें लिखे गये पत्रोंके अनुवाद की यदि जिलाधीश अपने कार्यालयमें व्यवस्था न कर सकें, तो वे सरकारके प्राच्य अनुवादकको अनुवादके वास्ते भेज दिये जायें। सभी आपत्तिजनक पत्र रोक लिये जायें। शंका होनेपर सरकारसे पूछा जाये। जेल-अधीक्षक जिस पत्रको ऐसा भी मानें

१. देखिए पृष्ठ १९।

कि पुलिसको उसे देखना चाहिये, उसे वे पुलिस उप-महानिरीक्षक, गुप्तचर विभाग, पूनाको भेज दें।

४. स्वास्थ्य तथा सावधिक चिकित्सीय जाँच: दोनों बन्दी जेल-अधीक्षककी चिकित्सीय देखरेखमें तो रहेंगे, परन्तु पूनाका सिविल-सर्जन जेल-अधीक्षकके साथ मिलकर उनकी पूरी चिकित्सीय जाँच करे और इसके लिए बम्बई सरकारके सर्जन-जनरलके परामर्शसे यथाशीघ्र सभी आवश्यक प्रबन्ध किये जायें और जाँचकी रिपोर्ट सरकारको तुरन्त भेज दी जाये। बादमें, इन दोनों अधिकारियों द्वारा श्री गांधीकी हर महीने और श्री वल्लभभाई पटेलकी हर तीसरे महीने चिकित्सीय जाँच करानेके वास्ते इसी प्रकारके प्रबन्ध किये जायें हर जाँचकी रिपोर्टकी एक-एक नकल गवर्नर महोदयके निजी सचिवको भेजी जाये। यदि कभी दोनोंमें से किसी भी बन्दीका स्वास्थ्य गिरता दिखाई पड़े या वह किसी बड़ी बीमारीका शिकार बन जाये, तो अधीक्षकको पूनाके सिविल सर्जनसे भी सलाह लेनी चाहिये।

मेरा अनुरोध है कि आप इसके पैरा २, ३ तथा ४ में दिये गये आदेशोंका उतना अंश जितना कि बन्दियोंसे सम्बन्धित है, अधीक्षकके जरिये उनको भिजवा दें, पर पैरा ३ में पत्र-व्यवहारके सेंसर-सम्बन्धी जो अनुदेश हैं, वे छोड़ दिये जायें।

मुझे यह भी अनुरोध करना है कि आप अधीक्षकका ध्यान बॉम्बे रेग्यूलेशनकी धारा ५ की पहली उप-धाराकी ओर दिलायें और उनसे इस उप-धारा द्वारा अपेक्षित एक रिपोर्ट सरकारको प्रस्तुत करनेके लिये कह दें।

आपका,
आज्ञाकारी सेवक
कार्यवाहक सचिव, बम्बई सरकार
गृह विभाग

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल संख्या ८०० (४०), भाग-१

परिशिष्ट ३

सर सैम्युअल होरका पत्र[1]

१३ अप्रैल, १९३२

प्रिय श्री गांधी,

यह मैं आपके ११ मार्चके पत्रके उत्तरमें लिख रहा हूँ। पहली बात मुझे यही कहनी है कि मैं पूरी तरह समझता हूँ कि 'दलित' वर्गोंके लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डलोंके प्रश्नपर आपकी भावनाएँ कितनी तीव्र हैं। मैं इतना-भर कह सकता हूँ कि हम वही निर्णय करना चाहते हैं जो पूरे प्रश्नके गुण-दोषोंको देखते हुए, और केवल उनके आधारपर ही, सर्वोचित और आवश्यक जान पड़े। आपको मालूम ही है लॉर्ड लोथियनकी समिति अबतक अपना दौरा पूरा नहीं कर पाई है और वह जो निष्कर्ष निकालेगी उनके हमतक पहुँचनेमें कुछ सप्ताह तो लगेंगे ही। उसका प्रतिवेदन आ जानेपर, हमको उसमें की गई सिफारिशोंपर पूरी सतर्कताके साथ विचार करना पड़ेगा और हम तबतक कोई निर्णय नहीं करेंगे जबतक कि समिति द्वारा प्रकट किये गये मतके साथ ही आपके तथा आपकी तरह सोचनेवालोंके इतने जोरदार ढंगसे व्यक्त किये गये विचारोंको भी अच्छी तरह तोल नहीं लेंगे।

मुझे पूरा यकीन है कि यदि हमारी जगह आप होते तो आप भी ठीक वही करते जो हम करने जा रहे हैं। आप भी समितिके प्रतिवेदनका इंतजार करते, फिर पूरी सतर्कताके साथ विचार करते और फिर कोई भी अन्तिम निर्णय करनेसे पहले दोनों पक्षों द्वारा व्यक्त किये गये विचारोंको खूब तोलकर देखते। मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता। और सचमुच, मैं नहीं समझता कि आप मुझसे इससे अधिक कुछ कहनेकी आशा करेंगे।

अध्यादेशोंकी बात यह है कि उनके सम्बन्धमें मैं वही सब दोहरा सकता हूँ जो सार्वजनिक तथा निजी तौरपर मैं पहले ही कह चुका हूँ। मुझको इसमें तनिक भी शंका नहीं है कि व्यवस्थित सरकारकी ऐन जड़ोंपर जान-बूझकर प्रहार किया गया था और ऐसी स्थितिमें अध्यादेशोंको लागू करना नितान्त आवश्यक हो गया था। मुझे इसमें भी कोई शंका नहीं कि भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें, दोनों ही अपनी व्यापक शक्तियोंका दुरुपयोग नहीं कर रही हैं और वे हर प्रकारकी अति अथवा प्रतिहिंसक कार्यवाहीको रोकनेके लिए यथासम्भव सभी कुछ कर रही हैं। हम इन आपात्कालीन विधियोंको केवल तबतक ही प्रभावी रखेंगे जबतक कि कानून और व्यवस्थाके मूलभूत तत्त्वोंको सुरक्षित रखने और आतंकवादियोंकी हिंसापूर्ण

१. देखिए पृष्ठ १८१-४ और ३७७-८।

कार्रवाइयोंसे अपने अधिकारियों तथा समाजके अन्य वर्गोंको बचानेके लिए हमें उनको प्रभावी रखना पड़ेगा, इससे अधिक बिलकुल नहीं।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी महोदय

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-९-१९३२

परिशिष्ट ४

आर० वी० मार्टिन तथा आर० एम० मैक्सवेलका पत्र-व्यवहार[1]

(क) आर० वी० मार्टिनका पत्र आर० एम० मैक्सवेलको

जेल-महानिरीक्षक
बम्बई प्रेसीडेन्सी
पूना
१५ मार्च, १९३२

प्रिय मैक्सवेल,

मो० क० गांधीकी ओरसे अभी-अभी मिला एक पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। अन्य बन्दियोंसे मुलाकातके बारेमें मुझे लौटती डाकसे उत्तर भेजनेकी कृपा करें। लगता है, वे इस मामलेमें काफी क्षुब्ध होते जा रहे हैं।

उन्होंने जिस बन्दीका जिक्र किया है, उसकी बीमारीके बारेमें मुझे कोई जानकारी नहीं है।

हृदयसे आपका,
आर० वी० मार्टिन

आर० एम० मैक्सवेल महोदय, सी० आई० ई०, एम० ए० (ऑक्सन), आई० सी० एस०, जे० पी०,
सरकारके सचिव
गृह विभाग, बम्बई

गृह सचिव।

आदेश दिये जा चुके हैं। कृपया देखिए कि वे तुरन्त जारी कर दें।

आर० एम० मैक्सवेल
१६/३

१. देखिए पृष्ठ २००।

(ख) **आर० एम० मैक्सवेलका पत्र जेल-महानिरीक्षकको**

पी० १४७, संख्या एस० डी०, २३५७

गृह विभाग (राजनीतिक)
बॉम्बे कैसिल
१६ मार्च, १९३२

प्रेषक

आर० एम० मैक्सवेल महोदय, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०
कार्यवाहक सचिव, बम्बई सरकार
गृह विभाग

सेवामें,
जेल-महानिरीक्षक
बम्बई प्रेसीडेंसी

विषय: श्री गांधी और यरवदा जेल या उसके विस्तारित शिविर-भागके अन्य बन्दियोंके बीच मुलाकातें।

महोदय,

मुझे दिनांक ४ मार्च, १९३२ के अपने पत्र संख्या एस० डी० १५६८ के ही क्रममें यह कहनेका आदेश मिला है कि श्री गांधीको मुख्य यरवदा जेल या उसके विस्तारित शिविर-भागके अन्य कैदियोंसे मिलनेकी अनुमति दे दी जाये। उसकी शर्तें, जैसी आपने सुझाई थीं, ये होंगी:

१. एक ही समयमें अधिक-से-अधिक तीन बन्दियोंसे, एक पखवाड़ेमें केवल एक ही बार, मुलाकातकी अनुमति दी जाये।

२. दोनोंमें से कोई भी पक्ष इन मुलाकातोंको यह पता लगानेका साधन न बनाये कि जेलमें अन्य बन्दियोंके साथ किस तरहका बर्ताव हो रहा है या वे क्या कर रहे हैं। मुलाकातोंमें जेलके प्रबन्ध, अनुशासन अथवा राजनीतिक विषयोंपर चर्चा न की जाये।

३. मुलाकातें जल-अधीक्षकके कार्यालयमें हों।

४. मुलाकातका समय २० मिनट हो।

आपका,
आज्ञाकारी सेवक
आर० एम० मैक्सवेल
१६/३
सरकारका कार्यवाहक सचिव

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल संख्या ८०० (४०), भाग-१

परिशिष्ट ५

मीराबहनके पत्रके कुछ अंश[1]

८ अप्रैल, १९३२

मीराबहनका २४ पृष्ठोंका एक पत्र मिला, जिसकी एक-एक पंक्तिसे उनकी निर्मल निष्ठा छलकी पड़ती है। बापूके साथ रहने और उनकी सेवा करनेके सौभाग्य से वंचित रहनेपर वे दुःखी ही रहेंगी। परन्तु बापू चाहते हैं कि मीराबहन अपनी इस इच्छासे मुक्ति पायें, क्योंकि अन्यथा जब बापू हमारे बीच नहीं रहेंगे तो वे अपनेको असहाय अनुभव करेंगी। यह विवाद मीराबहन जबसे भारत आई हैं तभीसे चल रहा है। आजके पत्रमें मीराबहनने अपना हृदय ही उँड़ेलकर रख दिया है।

बापू, आपकी ज्यादा-से-ज्यादा सेवा कैसे की जाये, यह विचार एक क्षणको भी मेरे मनसे हटता नहीं है। मैं सोचती हूँ, प्रार्थना करती हूँ और अपने मनको समझाती हूँ, पर मेरे अन्तःकरणमें सदा यही विचार रहता है। जब आपको हमारे पाससे हटा लिया जाता है, जैसेकि जब आपको जेल भेज दिया जाता है, तो एक अन्तःप्रेरणा मुझे आपके ध्येयकी बाह्य सेवा में पूरी शक्तिसे जुट जानेको प्रेरित करती है। मैं तब न कोई द्विविधा महसूस करती हूँ न कोई कठिनाई। और जब आप हमारे साथ होते हैं तो एक उतनी ही बलवती अन्तःप्रेरणा मुझे सब काम छोड़कर चुपचाप आपकी निजी सेवामें लग जानेको प्रेरित करती है। कुछ और करनेकी कोशिश करनेपर मैं अपनेको दिग्भ्रान्त और व्यर्थ अनुभव करने लगती हूँ। बाह्य सेवाकी क्षमता निजी सेवाकी प्रेरणाकी पूर्तिपर निर्भर करती है। पहली दूसरीका ही प्रतिरूप है, और मुझे निरन्तर ऐसा लगता है कि इस तरहकी पूर्तिके लिए ही मुझे आपके पास लाया गया है। यह अन्तःप्रेरणा इतनी बलवती है कि मैं न तो इससे कतरा सकती हूँ, न इसका सामना कर सकती हूँ और न इसपर काबू पा सकती हूँ। आपसे इस बातपर विश्वास करनेके लिए कहना कठिन है, क्योंकि इसकी सच्चाईका प्रमाण तो इससे आगे और कोई दिया नहीं जा सकता। पर इतना मैं बिलकुल अच्छी तरह जानती हूँ कि इस संघर्षके दौरान मुझमें पिछली बारसे बहुत अधिक शक्ति, क्षमता और आन्तरिक सुख-शान्ति है, क्योंकि मैं (आपकी पिछली रिहाईके बाद की, मानसिक सन्तापकी, छोटी-सी अवधिको छोड़कर) अपनी अन्तःप्रेरणाके अनुसार सेवा करती रही थी। जब मैं यहाँ आई तब मेरा शरीर बस टूटने ही वाला था, इस बातका इस प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह सब तो शक्तिसे बहुत अधिक काम करनेका परिणाम था, क्योंकि जब मैंने देखा कि मैं जल्दी ही गिरफ्तार होनेवाली हूँ, तो यह जानकर कि जल्दी ही जबर्दस्तीका विश्राम मिलनेवाला है, मैं अपनी

१. देखिए पृष्ठ २६८-७०।

शक्तिको बड़ी बेपरवाहीसे खर्च करने लगी थी। और उस समय मेरे आसपास काम भी इतना था कि आदमी बेपरवाह हो सकता था।

कौन जानता है कि यह सब भ्रम ही हो। परन्तु स्त्रीको अपनी अन्त:प्रेरणा पर चलना होता है। वह उसमें तर्क-बुद्धिसे कहीं अधिक बलवती होती है, और उसकी पूरी शक्ति केवल तभी प्रयोगमें लाई जा सकती है और सेवामें लगाई जा सकती है जब उसकी प्रकृतिको पूरी अभिव्यक्ति मिले। आपके सिवा मुझे दुनियामें और किसी बातका खयाल नहीं है, चिन्ता नहीं है, लालसा नहीं है——आप ही ध्येय हैं, आप ही आदर्श हैं। इस जीवनमें उस ध्येयके लिए काम करने और जीवनोपरान्त उस आदर्शतक पहुँचनेके लिए जो ईश्वर मुझे घोर अन्धकारसे आपके आलोकित पथपर लाया है, वह निश्चय ही मेरी प्रार्थनाओंका उत्तर मुझे किसी गलत अन्त: प्रेरणाके पीछे घिसटने देनेके रूपमें नहीं देगा। यह सब मैंने तर्कके लिए नहीं लिखा है, बल्कि जेलमें आनेके बादसे अपनेको समझनेका मैं जो निरन्तर प्रयास कर रही हूँ, उसका परिणाम आपको बतानेके लिए ही लिखा है।

[अंग्रेजीसे]

डायरी ऑफ महादेव देसाई, भाग-१, पृष्ठ ६२-३

परिशिष्ट ६

ई० ई० डॉयलका पत्र[1]

गोपनीय

डी० ओ० संख्या ३३२

जेल-महानिरीक्षक
बम्बई प्रेसीडेंसी
पूना
२३ अप्रैल, १९३२

प्रिय श्री,

इसी महीनेकी २२ तारीखके आपके डी० ओ० पत्रके सन्दर्भमें।

आप जिन व्यक्तियोंके बारेमें जानना चाहते हैं, उनका ब्यौरेवार विवरण भेजनेके लिए मैंने बेलगाँव लिखा है और आशा है कि आपने जो जानकारी चाही है, मैं उसे एक सप्ताहके अन्दर-अन्दर आपको भेज सकूँगा।

यदि परिस्थिति अनुकूल रही तो मैं यथाशीघ्र बेलगाँव जानेकी सोच रहा हूँ। और तब मैं आपको खुद अपनी ही जानी-समझी जानकारी दे सकूँगा।

मेजर मार्टिनके पत्रका कोई उत्तर मुझे नहीं मिला। इससे मैंने कयास लगाया है कि उत्तर उनके नामसे लिखा गया होगा और अब वह उनका पीछा करता हुआ

१. देखिए पृष्ठ ३२७-८।

इंग्लैंडके रास्तेमें होगा। पर मुझे भरोसा है कि आपको अपेक्षित सारी जानकारी मुझे शीघ्र ही मिल जायेगी।

आपका,
ई० ई० डॉयल

श्री मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल संख्या ९

परिशिष्ट ७

ई० ई० डॉयलका पत्र[1]

१९३२ का संख्या ३५६

जेल-महानिरीक्षक
बम्बई प्रेसीडेंसी
पूना
२८ अप्रैल, १९३२

प्रिय श्री,

मुझे अपने पत्रके उत्तरमें बेलगाँव सेन्ट्रल जेलके अधीक्षककी रिपोर्ट अभी-अभी मिली है। इसमें जितना मैंने मांगा था, उतना ब्यौरा नहीं दिया गया है। इसलिए मैंने इससे आगे और अधिक स्पष्ट ब्यौरेकी एक और रिपोर्ट लौटती डाकसे भेजनेके लिए कहा है। इन चारों व्यक्तियोंका वजन जेलमें दाखिल होनेके समयसे ही गिरता रहा है। लेकिन चूँकि इसके कारण नहीं बतलाये गये हैं, इसलिए मैंने उनसे कारण लिखनेके लिए कहा है।

चारमें से तीन व्यक्तियोंको निम्न प्रकारसे विशेष खुराक मिल रही है:

द० बा० कालेलकर —	डबल रोटी	१२ औंस
	दूध	२ पौंड
	गुड़	२ औंस
	जैतूनका तेल	$\frac{१}{२}$ औंस
मणिबहन पटेल —	दूध	२ पौंड
	चावल	१ पौंड
प्रभुदास गांधी —	गेहूँकी चपाती	१ पौंड २ औंस
	दाल तथा सब्जियाँ	
	दूध	८ औंस

१. देखिए पृष्ठ ३५५।

मैं बेलगाँव सेन्ट्रल जेलसे उत्तर मिलते ही इस विषयमें आपको फिर लिखूँगा।

आपका,
ई० ई० डॉयल

श्री मो० क० गांधी
यरवदा

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी०, फाइल संख्या ९

परिशिष्ट ८

ई० ई० डॉयलका पत्र[1]

१९३२ का संख्या ३६५

जेल-महानिरीक्षक
बम्बई प्रेसीडेंसी
पूना
२ मई, १९३२

प्रिय श्री,

मुझे और अपेक्षित जानकारी मिल गई है और अब मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूँ कि आपने अपने पत्रमें जो नाम लिखे थे, उनमें से किसी भी व्यक्तिके बारेमें आपको चिन्ता करनेका कतई कोई कारण नहीं है।

द० बा० कालेलकरका पिछला सारा चिकित्सीय विवरण बेलगाँवके चिकित्सा-अधिकारीको मालूम है। वे बड़े ध्यानसे उनके स्वास्थ्यपर नजर रखे हुए हैं और उन्होंने उनके लिए आवश्यक उपचार तथा पथ्य लिख दिया है।

पी० गांधी मलेरियासे पीड़ित होनेके कारण ९-३-१९३२ से १२-३-१९३२ तक अस्पतालमें थे, इस कारण उनके बदनमें खूनकी थोड़ी कमी हो गई है। पर इसका इलाज किया जा रहा है और वे ठीक चल रहे हैं।

मणिबहन पटेलको जब-तब कमरका गठिया होता रहा है। इसका इलाज किया गया और उनको उससे फायदा हुआ है। कब्जकी शिकायत भी उनकी पुरानी है, इसका आवश्यक उपचार रेचक औषध देकर तथा पथ्य बदलकर किया जा रहा है।

[illegible] न० द्वा० परीख वजनमें थोड़ी कमी आनेके बावजूद एकदम चंगे बताये गये हैं।

१. देखिए पृष्ठ ३८२।

आशा है, इससे आपके दिमागको राहत मिल जायेगी।

आपका,
ई० ई० डॉयल

श्री मो० क० गांधी
यरवदा

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल संख्या ९

परिशिष्ट ९

रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी अपील[1]

विश्वभारती
शान्ति निकेतन
बंगाल
२२ मार्च, १९३२

कष्ट तथा पीड़ाके वर्तमान वातावरणकी गहराइयोंसे यह पुकार उठी है कि आस्था तथा मैत्रीके एक नूतन युगका समारम्भ हो; क्रूरतापूर्ण राजनीति तथा कूट-नीतिके हाथों विमुख बनी जातियों तथा राष्ट्रोंके बीच मतैक्यपर आधारित साहचर्य स्थापित हो। हम भारतके लोग अपने यहाँ ऐसा आधारभूत परिवर्तन लानेको सन्नद्ध हैं जो उन लोगोंके साथ जिन्हें विधिका विधान हमारे निकट ले आया है, हमारे सम्बन्धोंमें समस्वरता एवं मतैक्य पैदा कर दे। हम दोनों पक्षोंकी ओरसे एक सद्भाव-पूर्ण संकेतकी राह देख रहे हैं — ऐसे संकेतकी जो स्वतःस्फूर्त हो तथा मानवताके प्रति आस्थासे भरपूर हो, जो भारत तथा इंग्लैंडके लोगोंके बीच नैतिकतापर आधारित एक संघके निर्माणका, लोकहितकारी रचनात्मक कार्योंका तथा शान्तिसे उद्भूत आन्तरिक सामंजस्यका भविष्य समुज्वल कर दे।

इंग्लैंडके हमारे मित्रोंके आगमनसे इस संभावनाकी पुष्टि हो गई है कि हमारे पारस्परिक सम्बन्धोंमें ऐसा अन्तरंग साहचर्य तथा सत्यका आधार तत्काल स्थापित हो सकता है। इस अवसरपर अपनी आन्तरिक प्रेरणासे मैं मानवताके सभी शुभ चिन्तकोंसे यह कहना चाहता हूँ कि वे इस संकटकी घड़ीमें आगे आयें और मात्र

१. देखिए पृष्ठ ३८३; यह सन्देश मार्चमें शान्ति निकेतन आये "सोसाइटी ऑफ फ्रैंड्स" के शिष्ट-मण्डलको दिया गया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने शिष्टमण्डलसे इसे अपने ही हाथों गांधीजी को देनेका अनुरोध किया था, किन्तु भारत सरकारने इसकी अनुमति नहीं दी।

आस्थाके आधारपर तथा क्षमाशीलताकी उदार भावना से सत्यको स्वीकार करनेके आधारपर निर्माणके अपने इस नैतिक दायित्वको पूरा करनेका भार साहसपूर्वक अपने कंधोंपर ले लें।

विगतकी स्मृति हम सबके लिए कितनी ही क्लेशपूर्ण क्यों न रही हो, उससे पूर्णताकी और उस भविष्यकी हमारी संकल्पना धूमिल नहीं होनी चाहिये जिसे हमें अपने सम्मिलित प्रयत्नोंसे साकार बनाना है। और सचमुच, सन्देह तथा वैमनस्य की निस्सारताके अपने अनुभवसे हमको निश्छल हार्दिक साहचर्यकी सच्चाईमें, प्रेमकी पारस्परिक प्रतीतिसे प्रेरित व्यक्तियों तथा राष्ट्रोंके रचनात्मक मतैक्यकी अपार शक्तिमें और अधिक गहराईसे विश्वास करनेकी ही प्रेरणा मिलनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

एडवांस, २३-६-१९३२

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी-साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९ (प्रथम संस्करण) तथा पृष्ठ ३५५ (द्वितीय संशोधित संस्करण)।

साबरमती संग्रहालय : गांधीजी से सम्बन्धित आलेखोंका संग्रहालय और पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९ (प्रथम संस्करण) और पृष्ठ ३५५ (द्वितीय संशोधित संस्करण)।

होम डिपार्टमेंट, बम्बई सरकार।

भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काईव्ज ऑफ इन्डिया), नई दिल्ली।

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, १९३२ : बम्बई सरकारके सरकारी आलेख।

'बाम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'बापुना पत्रो–६ : गं० स्व० गंगाबहनने (गुजराती) : काकासाहब कालेलकर द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापुना पत्रो–४ : मणिबहन पटेलने' (गुजराती) : मणिबहन पटेल द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : एलिस एम० बार्न्ज द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'महादेवभाईनी डायरी', भाग-१ (गुजराती) : नरहरि द्वा० परीख द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' : काकासाहब कालेलकर द्वारा सम्पादित, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५३।

'ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन' (अंग्रेजी) वेरियर एल्विन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९६४।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(४ जनवरीसे ३१ मई, १९३२ तक)

४ जनवरी : बम्बईमें 'मणि भुवन' में गांधीजी को प्रातः तीन बजे गिरफ्तार किया गया।

वल्लभभाई पटेलको लिखे पत्रमें लोगोंको सन्देश दिया।

यरवदा सेन्ट्रल जेल ले जाया गया, वल्लभभाई पटेलके साथ नजरबन्द किये गये।

पटनामें कांग्रेस-अध्यक्ष, राजेन्द्रप्रसादको गिरफ्तार किया गया।

डॉ० मु० अ० अन्सारी कांग्रेस-अध्यक्ष बने।

जवाहरलाल नेहरूपर मुकदमा चलाया गया और दो वर्षकी सख्त कैदकी सजा दी गई।

चार नये अध्यादेश जारी किये गये; कांग्रेस और कांग्रेसके झंडेको छोड़कर, कांग्रेसके सभी संगठन गैरकानूनी घोषित किये गये।

५ जनवरी : बम्बई, कलकत्ता और दिल्लीमें भारी संख्यामें गिरफ्तारियाँ हुईं और लोगोंको सजाएँ दी गईं।

गुजरात विद्यापीठको गैरकानूनी घोषितकर उसपर कब्जा कर लिया गया।

६ जनवरी : बम्बईमें हड़ताल; कोयम्बटूरमें लाठीचार्ज।

७ जनवरी : अहमदाबादमें महादेव देसाई, द० बा० कालेलकर तथा कराचीमें जयरामदास दौलतराम गिरफ्तार हुए।

८ जनवरी : नई दिल्लीमें डॉ० मु० अ० अन्सारीकी गिरफ्तारी; शार्दूलसिंह कवीश्वरने कांग्रेस-अध्यक्षका पद संभाला।

९ जनवरी : वाइसरायने सप्रू और दूसरे लोगोंसे मुलाकात की।

मद्रासमें च० राजगोपालाचारी, एस० सत्यमूर्तिकी गिरफ्तारी; विदेशी वस्त्रकी दुकानोंपर धरना देनेवालोंपर लाठीचार्ज।

१० जनवरी : बारडोलीके समीप कस्तूरबाकी गिरफ्तारी।

११ जनवरी : तिरुपुरमें लाठीचार्जमें कुमारस्वामीकी मृत्यु।

१२ जनवरी : गांधीजी को पत्र लिखनेकी अनुमति मिल गई।

१३ जनवरी : इलाहाबाद और मद्रासमें पुलिसका कांग्रेस कार्यालयोंपर जबर्दस्ती कब्जा।

अहमदाबादमें 'नवजीवन' कार्यालयकी तालाबन्दी।

१५ जनवरी : भारत-मन्त्री सर सैम्युअल होरको लिखे पत्रमें गांधीजी ने कहा : "हर कदम मैंने अपनी प्रेरणासे उठाया था और वह सत्याग्रहके मेरे सिद्धान्तकी तर्कसंगत परिणति थी।"

सूरतमें कस्तूरबा, मणिबहन पटेल और मीठूबहनको सजाएँ दी गईं।

कलकत्तामें तीस विद्यार्थियोंकी, जिनमें लड़कियाँ भी थीं, गिरफ्तारी।

१६ जनवरी : बम्बईमें जमनालाल बजाज और डॉ० हार्डिकरकी गिरफ्तारी।
बम्बई सरकारके गृह विभागने गांधीजी और वल्लभभाई पटेलको सुविधाएँ देनेके आदेश जारी किये।

१८ जनवरी : संयुक्त राज्य अमेरिकाके १०६ धार्मिक नेताओंने ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीसे गांधीजी को मुक्त करनेकी अपील की।

१९ जनवरी : मद्रासमें प्रभावशाली गैर-कांग्रेसी व्यक्तियोंने लाठी-चार्जके विरोधमें वक्तव्य जारी किया।

२० जनवरी : बम्बईमें 'एस० एस० गेंगेज' जहाजमें सवार जे० एम० सेनगुप्तको गिरफ्तार किया गया और यरवदा जेल लाया गया।

२३ जनवरी : गांधीजी ने बम्बईके गवर्नरको लिखा कि दमन बन्द किया जाये और क्षतिपूर्तिकी जाये।

२४ जनवरी : गांधीजी को सप्ताहमें एक भेंटकी अनुमति मिली।

२५ जनवरी : लार्ड विलिंग्डनने विधान सभामें कहा : "सविनय अवज्ञा आन्दोलनका मुकाबला करनेके सवालपर कोई समझौता नहीं हो सकता . . . कोई भी सरकार, यदि वह सरकार कहलाने लायक है तो, इस चुनौतीको स्वीकार करनेमें आनाकानी नहीं कर सकती।"

२६ जनवरी : अहमदाबाद, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और लखनऊमें स्वतन्त्रता-दिवसके जुलूस निकले और गिरफ्तारियाँ हुईं।

२७ जनवरी : मीराबहन गांधीजी से मिलीं।

२८ जनवरी : सर सैम्युअल होरने एक रेडियो-प्रसारणमें कहा : "हमारी नीति दृढ़ता और प्रगतिकी है . . . कुत्ते भौंकते रहते हैं, पर कारवाँ आगे बढ़ता रहता है।"

२९ जनवरी : बम्बईमें पुलिसने गोली चलाई, एक व्यक्ति मारा गया।

२ फरवरी : देवदास गांधीकी गिरफ्तारी।

५ फरवरी : गांधीजी ने यरवदा सेन्ट्रल जेलके सुपरिंटेंडेंट, एम० जी० भण्डारीको पत्र लिखकर अन्य कैदियोंसे मिलनेकी अनुमति माँगी।

६ फरवरी : कलकत्ता विश्वविद्यालयके दीक्षान्त-समारोहमें एक छात्राने बंगालके गवर्नर सर स्टेनली जैक्सनपर गोली चलाई।

१४ फरवरी : कार्यवाहक कांग्रेस-अध्यक्ष शार्दूलसिंह कवीश्वर गिरफ्तार किये गये।

१७ फरवरी : मीराबहनको बम्बई न छोड़नेके कारण गिरफ्तार किया गया और तीन महीनेकी सख्त कैदकी सजा देकर बम्बईके ऑर्थर रोड जेलमें भेजा गया।

२१ फरवरी : नारणदास गांधीको लिखे पत्रमें गांधीजी ने 'भगवद्गीता'के अन्तिम अध्यायका सार पूरा किया।

२२ फरवरी : दिल्लीमें गोलमेज परिषदकी सलाहकार समितिकी बैठक वाइसरायकी अध्यक्षतामें शुरू हुई।

२४ फरवरी : सिविल सर्जन द्वारा गांधीजी की डॉक्टरी जाँच।

२६ फरवरी : एक पत्रमें कहा कि दूध छोड़नेका मुख्य कारण स्वास्थ्य है।

२७ फरवरी : ब्रिटेनकी इंडिपेंडेंट लेबर पार्टीने एक घोषणापत्र जारी किया, जिसमें भारत सरकारकी दमन-नीतिकी निन्दा की गई थी।

२८ फरवरी : डॉ० मुंजे और एम० सी० राजाने, हिन्दू महासभा और दलित वर्गके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे, ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीको तार द्वारा सूचना दी कि उन्हें संयुक्त निर्वाचन पद्धति, जिसमें जनसंख्याके आधारपर सीटें सुरक्षित हों, स्वीकार है।

२९ फरवरी : घोषणा की गई कि के० वी० रेड्डीके बाद अब जी० एस० वाजपेयी, आई० सी० एस० दक्षिण आफ्रिकाके एजेंट-जनरल नियुक्त किये गये हैं।

१ मार्च : आर० वी० मार्टिनको लिखे एक पत्रमें गांधीजीने साथी कैदियोंसे मिलनेके प्रश्नपर जल्दी निर्णय देनेको कहा।

दाएँ हाथमें दर्द होनेके कारण बाएँसे लिखना शुरू किया।

४ मार्च : दिल्लीमें गोलमेज परिषदकी सलाहकार समितिकी बैठक।

५ मार्च : गांधीजी को मुलाकातियोंसे मिलनेकी अनुमतिका आदेश मिला।

नारणदास गांधीको एक पत्रमें ये हिदायतें भेजीं कि जो भी व्यक्ति मिलने आये, वह पहले जेल-सुपरिंटेंडेंटको उसकी सूचना दे दे।

नवजीवन प्रेस लौटा दिया गया।

६ मार्च : एम० जी० भण्डारीको लिखे पत्रमें गांधीजीने अपने मुलाकातियोंसे मिलनेके सम्बन्धमें "राजनीतिक" शब्दका स्पष्टीकरण चाहा।

७ मार्च : द० बा० कालेलकरको एक पत्रमें बताया कि नक्षत्रोंकी स्थिति जाननेके लिए वे रातमें उठ जाते हैं।

१० मार्च : महादेव देसाई गांधीजी के पास आ गये, उन्हें नासिक जेलसे यहाँ स्थानान्तरित किया गया था।

११ मार्च : सर सैम्युअल होरको लिखे पत्रमें अपना यह इरादा जाहिर किया कि दलित वर्गके लिए यदि पृथक् निर्वाचक-मण्डल बनाया गया तो वे उपवास करेंगे।

१२ मार्च : महादेव देसाईके साथ खगोल-विज्ञानपर चर्चा की।

१३ मार्च : सर सैम्युअल होरने अपने पत्रमें गांधीजी को बताया कि पृथक् निर्वाचक-मण्डलके प्रश्नपर लोथियन समिति और गांधीजी के समर्थकोंके विचारोंपर गौर किये बिना कोई फैसला नहीं किया जायेगा।

कस्तूरबाको छः मासकी कैद और ५० रुपये जुर्माना, या जुर्माना न देनेपर १½ मासकी और कैदकी सजा दी गई।

१६ मार्च : बम्बईके गृह विभागने गांधीजी को साथी कैदियोंसे मिलने देनेके आदेश जारी किये।

२५ मार्च : सर सैम्युअल होरने हाउस ऑफ कॉमन्समें भारतीय परिस्थितिपर वक्तव्य दिया।

२६ मार्च : गांधीजी को जमनालाल बजाज और अन्य कैदी साथियोंके नाम पत्र लिखनेकी अनुमति मिली।

२८ मार्च : एच० डब्ल्यू० एमर्सनको लिखे पत्रमें "जिद्दी" किसानोंकी जमीनें बेचनेके सुझावपर दुःख प्रकट किया और यह आग्रह किया कि ऐसा कोई काम नहीं किया जाना चाहिए।

२९ मार्च : सर्जन द्वारा डॉक्टरी जाँच।

२ अप्रैल : दूधीबहन देसाईको लिखे पत्रमें कहा कि उनके दायें हाथमें कोई खराबी नहीं है। "केवल सावधानीके विचार" से वे इससे नहीं लिख रहे हैं।

५ अप्रैल : मैथिलीशरण गुप्तको लिखे पत्रमें 'साकेत,' 'अनघ,' 'पंचवटी' और 'झंकार' पर अपने विचार व्यक्त किये।

६ अप्रैल : सरकारने दिल्लीमें होनेवाले कांग्रेस अधिवेशनपर प्रतिबन्ध लगाया।

७ अप्रैल : सी० एफ० एण्ड्रयूजको पत्रमें बताया कि "'आमरण अनशन' कहना भाषाका एक भद्दा प्रयोग है . . . यह अनशन एक नये जीवनकी प्राप्ति तक है।"

८ अप्रैल : मीराबहनको लिखे पत्रमें अपने भोजन, कार्य और सोनेका प्रतिदिनका ब्यौरा दिया।

११ अप्रैल : कमला नेहरूको भेजे गये तारमें इलाहाबादमें राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान पुलिसके हमलेसे स्वरूपरानीको चोट पहुँचनेपर दुःख प्रकट किया।
लोथियन समितिकी शिमलामें बैठक।

१२ अप्रैल : गांधीजी ने नारणदास गांधीको पत्र लिखकर हिदायतें दीं कि वे अमेरिका तार भेजकर यह स्पष्ट कर दें कि आश्रमकी नीति अपने प्रकाशनोंपर विशेष अधिकारोंका उपभोग करने या दूसरोंको वैसा अधिकार देनेकी नहीं है।

१५ अप्रैल : साथी कैदी शंकरराव देवसे एक पत्रमें उपवास छोड़नेकी अपील की।

१८ अप्रैल : सरकारने दिल्ली कांग्रेस-अधिवेशनकी स्वागत-समितिपर प्रतिबन्ध लगाया।

२१ अप्रैल : सरोजिनी नायडूको बम्बई न छोड़नेका आदेश मिला।

२२ अप्रैल : बम्बईमें सरोजिनी नायडू और दिल्लीमें म० मो० मालवीय गिरफ्तार किये गये।

२४ अप्रैल : दिल्लीमें पुलिसने रणछोड़लाल अमृतलालकी अध्यक्षतामें हो रहे कांग्रेस-अधिवेशनको तितर-बितर कर दिया; ४०० कांग्रेसी गिरफ्तार किये गये।
न्यूयॉर्कके कम्यूनिटी चर्चने गांधीजी को मानव-सेवा पदक देनेकी घोषणा की।

२७ अप्रैल : हरिलाल गांधीको लिखे पत्रमें गांधीजीने कहा : "मैं अभी भी तेरे अच्छे बननेकी आशा नहीं छोडूंगा, क्योंकि मैं आशावादी हूँ।"

२९ अप्रैल : सैम्युअल होरने हाउस ऑफ कॉमन्समें कहा : "सविनय अवज्ञासे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी व्यक्तिके साथ सहयोगका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि श्री गांधी गोलमेज परिषदके दिनोंमें जैसे सम्बन्ध थे वैसे ही पुनः स्थापित करनेका रुझान दिखायें, तो उन्हें उसमें कोई कठिनाई पेश नहीं आयेगी।"

३० अप्रैल : मिदनापुरके डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट रॉबर्ट डगलसपर गोली चलाकर उन्हें जख्मी कर दिया गया।

७ मई : ई० ई० डॉयलको पत्र लिखकर खोये हुए पत्रोंकी छानबीन करनेकी प्रार्थना की।

८ मई: काम्पटीमें अखिल भारतीय दलित वर्ग सम्मेलन हुआ।

दक्षिण आफ्रिकामें कुँवर महाराज सिंह भारतीय एजेंट नियुक्त किये गये।

१० मई: लन्दनमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लन्दन-शाखाकी पुनः स्थापनाका निर्णय किया गया।

११ मई: देवदास गांधीको लिखे पत्रमें गांधीजी ने बताया कि जेलसे मुक्त होनेपर उन्हें दूध लेना होगा।

ब्रिटेन जानेसे पूर्व लोथियनने भारतीय संवैधानिक सुधारोंपर विदाई सन्देश दिया।

१४ मई: बम्बईमें हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए।

१५ मई: फूलचन्द बापूजी को लिखे पत्रमें गांधीजी ने कहा: "खाने-पीनेमें जितना अंकुश हम स्वयं रखें उतना ही है। और इसी तरह सोना, बैठना, कातना, पींजना सब ठीक-ठीक चल रहा है। . . . पढ़ते तो हैं ही।"

१८ मई: बम्बईमें मीराबहन ऑर्थर रोड जेलसे रिहा हुईं।

मीराबहनको गांधीजी से मिलनेसे रोका गया।

ई० ई० डॉयलको लिखे पत्रमें गांधीजीने माँग की कि सरकार मीराबहनके सम्बन्धमें किये गये निर्णयपर पुनः विचार करे और उन्हें मुझसे मिलनेकी अनुमति दे।

२० मई: विपिनचन्द्र पालका देहावसान।

२१ मई: रणछोड़लालको नौ माहकी सख्त कैदकी सजा दी गई।

२२ मई: 'नवजीवन' के प्रबन्धक और 'बम्बई समाचार' के सम्पादकको एक-एक वर्षकी सख्त कैदकी सजा दी गई।

गांधीजी ने पत्र-व्यवहारमें अंग्रेजी तारीख डालना शुरू किया।

२४ मई: सत्यचरण लॉको लिखे पत्रमें गांधीजी ने पी० सी० रायके ७० वें जन्म-दिवस पर उनका अभिनन्दन किया।

२६ मई: फैनर ब्रॉकवेकी अध्यक्षतामें हुई ब्रिटिश समाजवादियोंकी सभाने कांग्रस-जनों, खास तौरपर जेलमें बन्द कांग्रेस-जनोंको, अपनी बन्धुत्वपूर्ण शुभ कामनाएँ भेजीं।

२७ मई: वेरियर एल्विनको पत्र द्वारा यह सूचना दी कि 'लीड काइंडली लाइट' भजनके गुजराती रूपान्तरको हर शुक्रवारको सायंकाल ७.४० पर गानेका निर्णय किया गया है और आशा है कि आप भी जहाँ कहीं भी होंगे, ऐसा ही करेंगे।

देवदास गांधीको लिखे पत्रमें नारणदास गांधीके धैर्य, दृढ़ता, साहस, त्याग और विवेक-जैसे गुणोंकी प्रशंसा की।

२८ मई: 'बंगाल आतंकवाद-विरोधी अध्यादेश' (बंगाल ऐंटी-टेररिस्ट ऑर्डिनेंस) फिर लागू किया गया।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

उ

ऋ

ए

ऐ

ओ

क

ख

च

छ

ज

झ

ट

ठ

ड

त

थ

द

ध

न

फ

ब

भ

म

य

श

स

ह